आ ग्रंथ मळवानुं ठेकाणुं :—

वकील मोहनलाल हिमचंद—पादरा (गुजरात.)

वडोदरा—शियापुरामां, लुहाणामित्र स्टीम प्रेसमां, विठ्ठलभाइ आत्माराम ठक्करे
ता. १–१०–१९१९ ना रोज प्रगटकर्त्ता माटे छापी प्रसिद्ध कर्युं.

निवेदन.

श्रीमद् बुद्धिसागर सूरिजी ग्रंथमाळाना ओगणत्रीशमा मणका तरीके श्रीमद् देवचन्द्र प्रथम भाग छपाया पछी दोढ वर्षे आ श्रीमद् देवचन्द्र बीजो भाग बहार पडे छे. श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराजना तमाम ग्रंथो एकत्र करी छपाववानी योजना जैनाचार्य श्रीमद् बुद्धिसागर सूरिजीनी प्रेरणाथी अने उपदेशथी क्यारे अने केवी रीते थई, तेमज क्या ग्रंथो क्यांथी केवी रीते मळ्या ते सर्व हकीकत श्रीमद् देवचन्द्र प्रथम भागनी प्रस्तावनामां विगतवार जणावेली होवाथी ते फरीथी अत्रे जणावेल नथी. प्रथम भागनी ५०० नकलो छपावी हती तेमांथी जैन पुस्तक भंडारो तथा साहाय्य करनार विगेरेने भेट आपवामां १५० नकलो तेमज वेचाणमां २०० नकलो मळी एकंदर ३५० नकलो खपी छे जो के मागणीओ घणीज आवे छे छतां नकलो थोडी होवाथी उपयोग प्रमाणे आपवामां आवे छे.

श्रीमद् देवचन्द्र बीजा भागनां एकंदर पृष्ठ १२०० ना आशरे छे अने तेनी पण ५०० नकलो छपावी छे, ग्रंथनुं कद भारे थवाथी बधी नकलो बे वडके बांधवामां आवी छे ते पैकी पहेला वडकामां विचारसार ग्रंथ अने बाकीना ग्रंथो बीजा वडकामां आव्या छे. बाकीनी २०० नकलो आखी बांधवामां आवशे के पुस्तकालयो विगेरेने आपवामां उपयोगी थशे.

श्रीमद् देवचन्द्र बीजा भागनां जे जे ग्रंथो छपाया छे

तेनी वीगतवार यादी अनुक्रमणिका उपरथी वांचको जोई शकशे. श्रीमद् देवचन्द्र प्रथम भागनी पेठे आ बीजो भाग पण जैनो तेमज जैनेतरोने अत्यंत उपयोगी थई पडे तेम छे. युरोपीय विग्रहना समयमां आ ग्रंथ छपाववामां आवेलो होवाथी सस्त मोघवारीना लीधे कागळो–छपामणी–बंधाई वगेरेनो एटलो बधो खर्च थयो छे के एक नकलनी पडतर कीं. रु. ६–०–० ना आशरे थाय छे तेमज कद वधी जवाथी बे कडके बांधेल छे छतां तेनी कींमत मात्र रु. ३–८–० राखी छे. बे कडका सायेज आपवामां आवशे.

श्रीमद् देवचन्द्र प्रथम भाग तथा बीजा भागमां मदद करनार जैन ग्रहस्थोनां नाम नीचे प्रमाणे:—

रु.५०१ शा. म्होहनलाल नाथाभाई–पादरा.
२०० शा. म्होहनलाल नरोतमदास–एणु (पादरा)
२०० शा. झवेरभाई भगवानदास–कावीठा (बोरसद)
१०१ श्रीयुत श्रेष्ठी अमरचंदजी बोथरा बालुचर (मुर्शिदाबाद)
३१ श्रीयुत श्रेष्ठी बुधसिंहजी बोथरा „ „
६१ „ „ जगतपतिसिंहजी दुगड „ „
५१ „ „ हरखचंदजी नाहटा „ „
२५ „ „ गुलाबचंदजी मूरा „ „
१८६ शा. हीरालाल छोटालाल–पादरा
२५० बाइ रतन शा. चुनीलाल कहानदासनी विधवा इटोला (वडोदरा)
१०१ वकील मोहनलाल हीमचंद–पादरा
२९ सौ. बाइ जमनां. वकील मोहनलाल हीमचंदनां पत्नी „

५१ शा. हीराचंद केशवजी गंभीरा
२५ शा. अंबालाल आशाराम ,,
२५ शा. माणेकलाल केशवजी ,,
१० शा. जेचंद केशवजी ,,
११ शा. प्रेमचंद दलसुखभाइ पादरा
१० शा. नगीनलाल मोतीलाल ,,
१० शा. हीरालाल ललुभाइ ,,
१० बाइ परसन ते वकील दलपतभाइ ललुभाइनी विधवा पत्नी,,
१० बाइ समरत ते शा. कस्तुर दीपचंदनां सौ. पत्नी ,,
३३२०

---

१०१ ऊ. श्री सुमति सागरजी महाराजना उपदेशथी शा. पीथालाल मुंबइ.
१५ श्रीयुत् सालमचंद गुलेछा वीकानेरवाळा, बेंगलोर.

श्रीमद् जैनाचार्य बुद्धिसागर सूरिजीए श्रीमद्नां पुस्तको सुधारवामां-प्रस्तावना लखवामां-तेमज बंने भागनु काम पुरु थतां सुधी दरेक प्रसंगे उपयोगी सूचनाओ आपवामां जे आत्मभोग आपेलो छे ते उपकारनो बदलो कोई रीते वळी शके तेम नथी एटलुंज नही पण आ कार्य तेओश्रीना खास उपदेश अने प्रेरणाथीज उपस्थित थयुं होवाथी आ कार्यथी जैन समाजने तथा मने पोताने जे लाभ थयो छे ते सर्वना निमितभूत तेओश्रीज छे तेथी तेओश्रीनो जेटलो उपकार मानीए तेटलो ओछो छे.

श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराजनां पुस्तको मेळवी आपवामां जे जे मुनि महाराजाओए तथा अन्य ग्रहस्थोए मदद करेली छे तेमज जे जे ग्रहस्थोए द्रव्य सहाय करी छे तेमनो अने मारा सहाध्यायी बंधु मानेकलाल वर्जीवनदास, मंगलभाइ लक्ष्मीचंद (वडु) प्रेमचंद दलसुखभाइ तथा भाइलाल चुनीलाल वगेरे जेमणे आ कार्यमां घणी मदद करी छे ते सर्वनो प्रथम भागमां उपकार मानवामां आवेलो छे तेमज आ बीजो भाग छपावी पूर्ण करती वखते पण फरीथी उपकार मानवामां आवे छे.

श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराजना ग्रंथो बहार पाडनार अमो तेमज आ कार्यना मुख्य उत्पादक श्रीमद् बुद्धिसागर सूरिजी महाराज ए सर्वे मोटा भागे तपगच्छना छैए छतां श्रीमद्ना गुणानुरागथी तेमना ग्रंथो छपाववामां अहोभाग्य मानीए छीए तेज प्रमाणे खरतर गच्छना मुनिराजो तथा श्रावको श्री तपागच्छना मुनिओ उपर गुणानुरागी बनी तेमना बनावेला उत्तम ग्रंथो बहार पाडी बंने गच्छवाळा परस्पर सहकार्यथी प्रयत्न करशे तो जैन कोमने घणो लाभ थशे.

सं १९७५ ना वैशाख सुदि ६ ना दीवसे पादरामां श्री शांतिनाथजी महाराजना देराशरना ध्वजा दंडारोपण महोत्सवना वरघोडामां जैनाचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी महाराजना उपदेशथी श्री कल्पसूत्र, महोपाध्याय श्रीयशोविजयजी महाराजना ग्रंथो तथा श्रीमद् देवचन्द्र भाग पहेलो तथा श्री आनंदघनपद-भावार्थ संग्रह ए ग्रंथोने लेइ बहुमान पुर्वक खास

एक हाथी उपर बेसवानो चढावो बोलतां वडुना शा. मगीलाल लक्ष्मीचंदे मारे रूपानो चढावो बोली श्रीमद् देवचन्द्र पदेनो भाग लेइ हाथीपर बेठेला. आ उपरथी श्रीमद्‌ना ग्रंथो प्रत्येनो अपूर्व भक्तिभाव जणाइ आवे छे. जैन कोममां पूर्वाचार्योना ग्रंथो खरेखर आगमोनी पेठे मनाय छे. श्रीमद्‌ना बने भागो छपावीने बहार पडवाथी अमोने घणोज आनंद थयो छे. आ ग्रंथोमां शुद्धि कर्या छतां जे भुलो रही गएली जणाशे ते बीजी आवृतिमां सुधारी लेवामां आवशे.

श्रीअध्यात्म ज्ञान प्रसारक मंडळ तरफथी घणां पुस्तको पडतर किंमते अने केटलांक पडतरथी पण ओछी किंमते बहार पाडवामां आवे छे. माटे आ संस्थानी कदर करनार सखी गृहस्थो मंडळ तरफथी पुस्तको छपाववामां सहाय करशे तो मंडळ वधारे उत्साहथी पूर्वी पण वधारे उपयोगी कार्य बजावशे.

बीजी आवृत्ति छपावता पहेलां आ ग्रंथो संबंधी जे जे महाशयो योग्य सूचनाओ करशे तो बीजा प्रसंगे ते उपर पूर्ण ध्यान आपवामां आवशे.

इत्येवं ॐ अर्हं शान्तिः३

मु० पादरा—आश्विन } वकील मोहनलाल हीमचंद
शुद्ध २ सं. १९७५ }

श्रीमद् देवचंद्र भाग २.

विभाग योजो.

अनुक्रमणिका.

॥ ॐ ॥

अथ श्रीमद् पाठक देवचंद्रकृत

॥ अध्यात्मगीता प्रारंभः ॥

राग ॥ चाल भमरगीतानी ॥

प्रणमिए विश्व हित जैन वाणि ।
महानंद तरु सिंचवा अमृत पाणी ।
महा मोहपुर भेदवा वज्रपाणी ।
गहन भवफंद छेदन कृपाणी ॥ १ ॥

अर्थः—विश्व कहेतां जे जगत् तेने हित के० कल्याणनी करनारी एवी जैन के० श्री वीतरागनी वाणी जे तेने प्रणमी के० नमस्कार करीए छीए, वळी जिनवाणी केहेवी छे? महा आनंदरूप तरु के० वृक्ष तेहने सिंचवा अमृत रुपी पाणीज होइने तेहवी छे. वळी जिनवाणी केहेवी छे? मोहोटो एहवो मोहराजा तेहनुं पुर के० नगर तेने भेदवा के० भांगवाने वज्र सरिखी एहवी. वळी ते वाणी केवी छे? गहन के० अतिरूढ भव जे संसार तेनो फंद के० बंधन तेने छेदवाने कृपाणी के० तरवारनी धार सरीखी ॥ १ ॥

॥ दोहा. ॥

द्रव्य अनंत प्रकाशक भासक तत्त्व स्वरूप ।
आतम तत्त्व विबोधक शोधक सच्चिद्रूप ॥

नय निक्षेप प्रमाणे जाणे वस्तु समस्त ।
त्रिकरण जोगे प्रणमुं जैनागम सुप्रशस्त ॥२॥

अर्थः—वली जिनवाणी कहेवी छे ? घणा पुद्गलादिक सर्व जे द्रव्य तेने प्रगट करी देखाडवावाली एहवी, वली तत्त्व आत्मतत्त्व जे आत्मानुं स्वरूप तेने शोध के० समजाववावाल वली चिद्रूप के० चेतनरूप एहवुं जे आत्मस्वरूप तेने शोध के० प्रगट करी देखाडे एहवी, वली जिनवाणी कहेवी छे नय के० नैगमादिक सात नय तथा नामादि च्यार निक्षे तथा प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणे करी समस्त वस्तु पदार्थनी जा पणानी कारणहारी छे, अन्यमतिनां शास्त्र छे ते अप्रशस्त है अने जिनमतनां आगम छे ते प्रशंसनीय छे, एहवो जिनाग तेहने त्रिकरण योगे करी मनोवाक्कायपयोगे करी प्रणमुं छुं ? न स्कार करुं छुं इति भावः ॥ २ ॥

जिणे आतमा शुद्धताये पिछाण्यो ।
तिणे लोक अलोकनो भाव जाण्यो ॥
आत्म रमणि मुनि जग विदीता ।
उपदिसी तिणे अध्यात्म गीता ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे सर्व द्रव्यनो ज्ञायक जे जीव द्रव्य सर्वद्रव्य मध्ये ते आत्मद्रव्यनो लक्षण कहीये, माटे प्रथम आत्मद्रव्यना जाणने साधक कहिये ते कहे छे. ते जिणे आतमा के० जे जिव समकित प्रमुखे आत्मा छे ते शुद्धता छे. मूल सत्तास्वरूप पिछाण्यो के० ओलख्यो तेणे लोक तथा अलोकनो भाव सर्व

जाण्यो जे आचारांग सूत्रे कह्युं छे "जे एगंजाणइसे सव्वंजाणइ" ते आत्म के० आत्मस्वरूपमेंज रमे एहवा मुनि जगमांहि प्रसिद्ध छे, तेणे अध्यात्मगीतानो उपदेश कर्यो छे पण करता कहे छे हुं नथी करतो इतिभावः ॥ ३ ॥

द्रव्य सर्वना भावनो जाणग पासग एह ।
ज्ञाता कर्त्ता भोक्ता रमता परिणति गेह ॥
ग्राहक रक्षक व्यापक धारक धर्म समूह ।
दान लाभ बल भोग उपभोगतणो जे व्यूह ॥४॥

अर्थः—द्रव्य सर्वना के० धर्मास्तिकायादिक षट् द्रव्यना गुणपर्याय तथा औदयिकादिक भावना भिन्न २ करी जाण्या छे, तथा दीठा छे एहवो आत्मा छे, ज्ञाता के० स्वपरनो स्वरूप जाणे छे ज्ञाने करीने कर्त्ता के० शुभाशुभ विभाव दशानो कर्ता नथी अने पोताना ज्ञानादि अनंतगुणरूप लक्ष्मी तेहनो कर्त्ता छे अने पोताना ज्ञानादि अनंतगुणरूप जे पर्याय तेहनो भोक्ता छे, रमतापरिके० स्वपरिणतिरूप जे घर तेहने विषे सदाकाल रमे ज्ञाता तथा कर्ता तथा भोक्ता तथा रमता इत्यादिक परिणतिना गेह के० घर छे, ग्राहक के० ज्ञानादि गुणधर्म समूह तेहने ग्रहे ते भणी ग्राहक ते धर्मनो राखणहार तथा स्वधर्मने विषे व्यापी रह्यो छे, स्वपरिणतिने धरे ते धारक एटले ग्राहक, रक्षक, व्यापक, धारक, स्वधर्मनो समूहनो छे, एहिज आत्म दान लाभ के० दानादिक पांच लब्धिना समूह प्रगट्या छे, दानलब्धि ते दानांतराय कर्मक्षय

गये दान पोताना ज्ञानादि अनंतगुणने विषे दीये छे ते दानलब्धि, १ लाभांतरायक्षयगये पोताना स्वरूपनो लाभ थयो ते लाभलब्धि २ भोगांतराय कर्म क्षय थाय त्यारे पोताना ज्ञानादि अनंतगुणना पर्याय वेहने समये समये उपभोग करे छे ते उपभोगलब्धि ४ वीर्यांतराय कर्म क्षय गये पोताना अनंतज्ञानादिकने विषे अनंतो वीर्य फोरवे छे ते वीर्यांतरायलब्धि ५ तथा जिहां आत्मा ज्ञान दर्शन रूपगुण वेमयिज कहे छे, तिहांनो वीर्यादिक गुण सिद्धमां नथी. कहेता अने जिहां अनंतगुणी व्याख्या करे तिहां कहे छे एटले असंख्यात प्रदेशी, अरूपी, अखंड ज्ञानदर्शन गुणमयी उपयोग लक्षण कर्त्ता, भोक्ता सहज परिणामे जीवद्रव्य जाणवो. जीवभाव द्रव्य प्राणे करीने सदा जीवे ते जीव, चेते–जाणे तेमाटे चेतन कहिये, तथा नवा नवा पर्यायने पमाडे माटे आत्मा कहे छे इत्यादिक अनेक नाम छे. ॥ ४ ॥

संग्रहे एक आया वखाण्यो ।
नैगमे अंशथी जे प्रमाण्यो ॥
दुविध व्यवहार नय वस्तु बीहचे ।
अशुद्ध वलि शुद्ध भासन प्रपंचे ॥ ५ ॥

अर्थः—साते नये करी जीवनो स्वरूप ओलखावे छे. संग्रहे एक आत्मा वखाण्यो, संग्रहनयना मतवालो सत्तानो ग्रहण करे छे एटले ए सर्व जीव चेतना समुदाय जोतेथके एक सरीखा छे, ए संग्रहनयनोमत. नैगमनयना मतवाला एक अंश ग्रहीने सर्व वस्तुनो प्रमाण करे एटले जीवना आठ रुचक

प्रदेश कर्मे लेपाता नथी सदा उवाडा छे, तेणे करी आत्मा सिद्ध समान जाणवो. व्यवहारनय मते बे प्रकारे जीव कहे छे, अशुद्ध ते अष्ट कर्माश्रित संसारी जीव, अने शुद्ध ते अष्टकर्म रहित सिद्ध, एवं बे प्रकारे वहेंचे, एक सकळ कर्म क्षय करी लोकाग्रे विराजमान ते सिद्ध, बीजा संसारी तेहना बे भेद– एक सयोगी बीजा अयोगी इत्यादिक जे भेद ते व्यवहारनयना मतवालो ते वस्तुना गुण पर्यायथी प्रवर्त्तिने ग्रहे छे, ते प्रवर्त्ति बे प्रकारनी–जे द्रव्यना गुणनी शुद्धता जेथी निपजे ते प्रवृत्ति ते साधन शुद्ध व्यवहार १ अने जे प्रवृत्ति करतां द्रव्यधर्मनी अशुद्धता नीपजे ते प्रवृत्तिने अशुद्ध व्यवहार कहीये २.५

अशुद्धपणे पणसय तेसठी भेद प्रमाण ।
उदय विभेदे द्रव्यना भेद अनंत कहाण ॥
शुद्धपणे चेतनता प्रगटे जीवविभिन्न ।
क्षयोपशमिक असंख्य क्षायिक एक अनुन्न ॥६॥

अर्थः—अशुद्ध व्यवहारनयने मते जीवना पांचसे त्रेशठ भेदनो प्रमाण जाणवो. अशुद्ध औदयिक भावने योगे करी जोतां तो जीवद्रव्यना भेद अनंता कह्या छे, अने शुद्धव्यवहारनय मते जीवनी चेतनता नीपजे अने विभिन्न ते अभेदात्मपणे जाणवो. पुद्गलथी जीव जूदो जाणे जेहने घणो क्षयोपशम तेने अधिक कहिये जेहने घणो क्षयोपशम तेहने ओछो कहिये ते चेतना प्रगटी क्षयोपशमभावे अथवा क्षायिकभावे प्रगटे. क्षयोपशमिक समकितना असंख्याता भेद छे. क्षायिकभावनो एक भेद छे बीजो भेद नहीं ॥ ६ ॥

नामथी जीव चेतन प्रबुद्ध ।
क्षेत्रथी असंख्य प्रदेशी विशुद्ध ॥
द्रव्ये स्वगुण पर्याय पिंड ।
नित्य एकत्व सहजे अखंड ॥ ७ ॥

अर्थः—नामथी जीवने चेतन कहिये. चेतनालक्षणो जीवः तेना हे ज्ञानदर्शन चारित्र तप उपयोग वीर्य लक्षण इत्यादि तथा बीजो अर्थ, नाम निक्षेपे जीव अथवा चेतन अथवा प्रबुद्ध कहिये, ए जीवनां पण नाम कहीये, क्षेत्रथी जीवनो स्वक्षेत्ररूप असंख्य प्रदेशात्मक अने विशुद्ध ते अत्यंत निर्मल छे, द्रव्यथी निज द्रव्य पोताना गुण ज्ञानादि स्वपर्याय तेहनाज पिंड समुदायरूप छे ते द्रव्य कहीये. अने नित्य ते सदैव शाश्वतो छे, केम कर्यो नथी अने एकत्व ते निश्चय नयमते जीव सदाकाल पोताना स्वरूपमां एकत्वपणे छे, सहज अखंड ते खंडाय नहि, अछेदी अभेदी छे. ॥ ७ ॥

ऋजुसुत्रे विकल्प परिणामे जीव स्वभाव ।
वर्त्तमान परिणतिमय व्यक्ते ग्राहक भाव ॥
शब्दनये निज सत्ता जोतो इहतो धर्म्म ।
शुद्ध अरूपी चेतन अणग्रहतो नव कर्म ॥ ९ ॥

अर्थ—ऋजुसूत्रनयने मते जीव विकल्परूप पारिणामिक भाव ग्रहे छे, एटले वर्त्तमान समये जीवने जेवो उपयोग होय तेवो प्रगट करी बोलावे, ऋजुसूत्र नयवालो यथार्थिन्

श्राद्धः सामायिके स्थितोऽपिमनोभावात् गृहेगतस्तदाकेनाऽपिपृष्टं-श्राद्धः कुत्रगतः एवं पृष्टे सत्यपिअधुना भणितं ममस्वामी गृहेगतः एम कयुं अने-शब्दनयमते पोतानी आत्मसत्ताने जोतो ज्ञानदर्शन चारित्रादिक अनंतो धर्म पोतानी आत्मसत्ताने विषे रह्यो छे, तेहने प्रगट करवा इहतो-चांहतो थको शुद्ध निर्मल अरूपी पुद्गलादि विभावदशा रहित चेतना लक्षणो पोताना क्षयोपशमथी स्वगुणने साधकपणे प्रवर्त्ततो ते शब्दनयजीव कहीए. इहां लेश्ची आत्मप्रवृत्ति नवाकर्मने न ग्रहे अबंधक थाय तेटलो जीवपणो गवेस्ते एटले एहवा जीवने जे समये उपयोग होय ते समये नवा कर्मनो ग्रहणो न करे ॥८॥

> इणिपरे शुद्ध सिद्धात्म रूपी ।
> मुक्त परशक्ति व्यक्त अरूपी ॥
> समकिति देश यति सर्वविरति ।
> धरे साध्यरूपे सदा तत्त्व प्रीति ॥ ९ ॥

अर्थः—एणिरीते शुद्ध सिद्धात्मरूपी शुद्ध जे सिद्ध भगवान् ते सरीखो निज आत्मा ध्यावतो आत्मभावे विचरतो आत्मस्वरूपी छे. ए मुक्त के० पुद्गलादिक विभावथी मुकाणो छे पर के० उत्कृष्टशक्ति के० आत्म सामर्थ्यता व्यक्त के० प्रगटपणे तेने अरूपीभावना साधक समकिति, देशविरति तथा सर्व विरति ते जीवने साध्यपणे तत्त्वनी प्रीति वाल्हाप्त छे, एहवा जीवतेहने शब्दनये जीव कहीये० पोताना आत्मतत्त्व निरावरण करवारूप जे भेदो छे तेहने विषेज तेहनी प्रीति लागे, परवस्तुतीने विषे नहि. ॥ ९ ॥

समभिरूढ नये निरावरणि ज्ञानादिक गुण मुख्य।
क्षायिक अनंत चतुष्टयी भोगी मुग्ध अलक्ष्य ॥
एवंभूते निरमल सकल स्वधर्म्म प्रकाश।
पूरण पर्याय प्रगटे पूरण शक्ति विलास ॥ १० ॥

अर्थः—समभिरूढनयमते शुक्लध्यानरूप अग्नियेकरी घाती कर्मने क्षये निरावर्णपणे ज्ञानादि अनंतगुण रूप लक्ष्मी प्रगटे एटले मुख्य लक्ष्मी प्रगटे अने क्षायिकभावे अनंत चतुष्टय प्रगट्या अनंतज्ञान १ अनंतदर्शन २ अनंतचारित्र ३ अनंत वीर्य ४ तेहना भोगी तेरमे चौदमे गुणठाणे केवली भगवान् जाणवा. तेहनो जाणपणो भोला अजाण जीव न जाणे, एवं भूतनयमते कर्म मळ रहित निर्मल सकलसंपूर्ण पोतानो ज्ञानादिक स्वधर्म आत्मसत्ताने विषे प्रकाश करे प्रगट करे छे एवो धर्मनो प्रकाश प्रगट्यो एटले एक एक प्रदेशे अनंता जे पर्याय ते संपूर्ण प्रगट्या छे सकल गुणना पर्याय पोताने कार्य करवे प्रवर्त्ते छे तेवारे पूर्ण पर्याय प्रगटे छे ते संपूर्ण शक्तिनो विलास भोगववो प्रगटे. इत्यर्थ. सादि अनंत भांगे करी एवंभूतनये सिद्धनुं स्वरूप वखाण्युं. ॥ १० ॥

एम नय भंग संगे सनूरो।
साधना सिद्धतारूप पूरो ॥
साधक भाव त्यां लगी अधूरो।
साध्य सिद्धे नहि हेतु शूरो ॥ ११ ॥

अर्थः—इम नैगमादि समनयनुं रूप भंगने संगे करी दीपतो छे. साधकता ते चोथा गुणठाणाथी मांडी अयोगी लगे घटी सिद्ध भाव करे छे पणे छे. शुद्ध व्यवहारनयने मते चोथा गुणठाणाथी मांडी यावत् तेरमा गुणठाणालगे साधक-भाव छे. निश्चयनयमते कार्य सिद्ध निपजे तिवारे जीवने पूर्ण कहिये. ज्यां त्यां साधकभाव छे तिहां लगण अधूरो छे. साधकभाव शब्दनय समभिरूढ नयमते देशविरति सर्वविरतिरूप साधकभावे त्यांलगे जीवने अधूरो कहीये अने जेवारे साध्य ते कार्य सिद्ध नीपन्यो तेवारे पछी हेतु के० कारण साधक-पणानो प्रवर्तन ते हणे के० प्रवर्तन नहिं एटले कार्य सिद्धि कारणनो फल नहि ॥ ११ ॥

काळ अनादि अतीत अनंते जे पररक्त ।
संगांगि परिणामे वर्त्ते मोहासक्त ॥
पुद्गल भोगे रिझ्यो धारे पुद्गल खंध ।
परकर्त्ता परिणामे बांधे कर्मना बंध ॥ १२ ॥

अर्थः—जेवारे पूर्ण आत्मा छे तेवारे संसार किम थाय? ते कहे छे. ते आत्मा अनादिकाल अतीत के० गयो छे अतीतकाळ अनंतां पुद्गल परावर्त्त थयां परभाव ते पौद्गलिक सुखने तेहना संबंधना गुण वर्णादिक तेहने विषे रक्त के० रागीपणो थको थयो? ते कहे छे. संगांगी के० पुद्गले दीधा अंग तेनो संगे वर्त्ते संग एटले अंगी के० पुद्गल ते परभाव तेनो संग मेळवतो अने आत्मा तेहने अंगी करी तेहनो संग करे एटले तेहना संगने परिणामे करी वर्ततो मोहनो आसक्त.

समभिरूढ नये निरावरणि ज्ञानादिक गुण मुख्य।
क्षायिक अनंत चतुष्टयी भोगी मुग्ध अलक्ष्य ॥
एवंभूते निरमल सकल स्वधर्म्म प्रकाश ।
पूरण पर्याय प्रगटे पूरण शक्ति विलास ॥ १० ॥

अर्थः—समभिरूढनयमते शुक्लध्यानरूप अग्निये करी घाती कर्मने क्षये निरावर्णपणे ज्ञानादि अनंतगुण रूप लक्ष्मी प्रगटे एटले मुख्य लक्ष्मी प्रगटे अने क्षायिकभावे अनंत चतुष्टय प्रगट्या अनंतज्ञान १ अनंतदर्शन २ अनंतचारित्र ३ अनंत वीर्य ४ तेहना भोगी तेरमे चौदमे गुणठाणे केवली भगवान् जाणवा. तेहनो जाणपणो भोला अजाण जीव न जाणे, एवं भूतनयमते कर्म मळ रहित निर्मल सकलसंपूर्ण पोतानो ज्ञानादिक स्वधर्म आत्मसत्ताने विषे प्रकाश करे प्रगट करे छे एवो धर्मनो प्रकाश प्रगट्यो एटले एक एक प्रदेशे अनंता जे पर्याय ते संपूर्ण प्रगट्या छे सकल गुणना पर्याय पोताने कार्य करवे प्रवर्त्ते छे तेवारे पूर्ण पर्याय प्रगटे छे ते संपूर्ण शक्तिनो विलास भोगववो प्रगटे. इत्यर्थ. सादि अनंत भांगे करी एवंभूतनये सिद्धनुं स्वरूप वखाण्युं. ॥ १० ॥

एम नय भंग संगे सनूरो ।
साधना सिद्धतारूप पूरो ॥
साधक भाव त्यां लगी अधूरो ।
साध्य सिद्धे नहिं हेतु शूरो ॥ ११ ॥

परलाभे परभोगने योगे पर कर्त्तार।
एह अनादि प्रवर्त्ते वाधे पर विस्तार॥ १४ ॥

अर्थः—आत्मगुण ते ज्ञानादिगुण ते कर्मरूप आवरणे अवराणा तेवारे आत्मानो धर्म ज्ञानादि कीहांथी ग्रही शके ? ज्ञानादिगुण न आदरे अने ग्राहक शक्ति छे तेवारे शुं ग्रहे ? पुद्गल खंधना सर्व शेष पुद्गल जोडवा मांड्या प्रयोगे करी एटले पुद्गलनो भोगी थयो त्यारे ते शुभाशुभ पुद्गलना खंध मेळा कर्या ते पर पुद्गलने लाभे लाभपणो मान्यो १ अने शुभाशुभ-पर पुद्गलनो दान देइने दान मान्यो २ शुभाशुभ पुद्गलनो भोग मिले भोग मान्यो ३ अने शुभाशुभ परपुद्गलनो उपभोग मिले उपभोग मान्यो ४ एम दानादिक च्यार लब्धिने वळी वीर्य शक्ति फोरवी तेहने योगे करी परनो कर्त्ता थयो. कोइ पूछे के ए जीवपर कर्त्तापणो किस्ये कारणे पाम्यो ? तिहां कहे छे ए अनादिनी प्रवृत्ति छे, एहवी रीते अनादिकाळनी जीवने अवळी प्रवृत्ति थइ तेथी परभावनो विस्तार एम कर्मनो विस्तार पाम्यो छे तेणे करी संसार छूटतो नथी. ॥ १४ ॥

एम उपयोग वीर्यादि लब्धि।
परभाव रंगी करे कर्म वृद्धि॥
परदयादिक यदा सुह विकल्पे।
तदा पुण्य कर्म्मतणो बंध कल्पे॥ १५ ॥

अर्थः—एहवी रीते वीर्यादि पांच लब्धिने-विषे जीवने अवळो उपयोग वर्त्यो, त्यारे-पोताना स्वभावनुं वीर्यपणुं

थयो तेवारे जीवने श्यो बिगाड थयो? ते कहे छे. जीव पुद्गलने भोगे रीझयो थको पुद्गलना संचने धरवानी इच्छा उपजे एटले पुद्गलने भोगे रीज्यो इष्टता पाम्यो थको पुद्गलना संचने धारे-राखे, पुद्गलनुं ग्रहण करे छे अने परनो कर्ता पोते थाय छे त्यारे कर्मना बंध पोते बांधे छे ॥ १२ ॥

> बंधक वीर्यकरणे उदेरे ।
> विपाकि प्रकृति भोगवे दल विखेरे ॥
> कर्म उदयागता स्वगुण रोके ।
> गुण विना जीव भवोभव ढोके ॥ १३ ॥

अर्थः—जे कर्म बंधपणे प्रवर्त्तनो जे वीर्यने बंधक वीर्य कहीए. ते बंधक वीर्यकरणे सत्तागतकर्मने उदये जीव नवीन कर्मबंध बांधे, शेणे करीने ? करण जे इंद्रिय तेहनो वीर्य जे पराक्रम तेहनी प्रेरणाए करी शुभाशुभ प्रकृतिरूप विपाकनां दळियां सत्ताये रह्यां ते उदय आव्ये भोगवीने विखेरे ते खेरवे अने तेहने विषे रागद्वेष परिणामरूप मननी चिक्कणताइं नवां कर्म बांधे छे, ते कर्म ज्यारे उदय आवे त्यारे आत्माना स्वगुण रोके आवरे गुण ढंकाणा एटले जीव गुण विना थयो त्यारे जीव, भव च्यारगतिमांहे रझळतो फिरे छे एटले रागद्वेषे प्रणम्यो जीव निर्गुण थको च्यारगति मध्ये अनादिकालनो आत्मा भव भ्रमण करे छे. ॥ १३ ॥

> आतम गुण आवरणे न ग्रहे आतम धर्म ।
> ग्राहक शक्तिप्रयोगे जोडे पुद्गल शर्म्म ॥

परलाभे परभोगने योगे पर कर्त्तार।
एह अनादि प्रवर्त्ते वाधे पर विस्तार॥ १४॥

अर्थः—आत्मगुण ते ज्ञानादिगुण ते कर्मरूप आवरणे अवराणा तेवारे आत्मानो धर्म ज्ञानादि क्रीहांथी ग्रही शके ? ज्ञानादिगुण न आदरे अने ग्राहक शक्ति छे तेवारे शुं ग्रहे ? पुद्गल खंचना सर्व दोष पुद्गल जोडवा मांड्या प्रयोगे करी एटले पुद्गलनो भोगी थयो त्यारे ते शुभाशुभ पुद्गलना खंच मेळा कर्या ते पर पुद्गलने लामे लाभपणो मान्यो १ अने शुभाशुभ-पर पुद्गलनो दान देइने दान मान्यो २ शुभाशुभ पुद्गलनो भोग मिले भोग मान्यो ३ अने शुभाशुभ परपुद्गलनो उपभोग मिले उपभोग मान्यो ४ एम दानादिक च्यार लब्धिने वली वीर्य शक्ति फोरवी तेहने योगे करी परनो कर्त्ता थयो. कोइ पूछे के ए जीवपर कर्त्तापणो किस्ये काले पाम्यो ? तिहां कहे छे ए अनादिनी प्रवृत्ति छे, एहवी रीते अनादिकालनी जीवने अवली प्रवृत्ति थइ तेथी परभावनो विस्तार एम कर्मनो विस्तार पाम्यो छे तेणे करी संसार छूटतो नथी. ॥ १४॥

एम उपयोग वीर्यादि लब्धि।
परभाव रंगी करे कर्म वृद्धि॥
परदयादिक यदा सुह विकल्पे।
तदा पुण्य कर्म्मतणो बंध कल्पे॥ १५॥

अर्थः—एहवी रीते वीर्यादि पांच लब्धिने विषे जीवनो अवलो उपयोग कर्यो, त्यारे पोताना स्वभावनुं वीर्यपणुं टल्युं

त्यारे जीव परभावनो रंगी थयो त्यारे ते जीव नवनवा कर्मनी वृद्धि करे, कर्मनी वृद्धि करता मांडी जिवारे एकवी जे परदयादिक करे अनुकंपा करे एहवो जे शुभ विकल्प उपजे शुभ परिणाम तेहथी शुं थाय ? तेवारे पुण्य कर्म बंधाय तेहथी पण आत्मानो गुण न प्रगटे. ॥ १५ ॥

तेहीज हिंसादिक द्रव्याश्रव करतो चंचलचित्त।
कटुक विपाकि चेतन मेले कर्म विचित्र ॥
आतम गुणने हणतो हिंसक भावे थाय।
आतम धर्मनो रक्षक भाव अहिंसक कहाय॥१६॥

अर्थः—जे जीव हिंसादिक द्रव्याश्रव करतो चित्त जे० मननी चंचल परिणतिए जीवने एहवो जे हिंसादिकनो विकल्प उपज्यो, जीवने हणवानो परिणाम उपज्यो, तेथी शुं थाय ? घणा कडवा विपाकनो बंध थाय, एम कडुआ कर्मनी विचित्रता बंधाय एटले अशुभ परिणामे अशुभ कर्म जीव मेलवे भेगां करे, ए द्रव्य तथा द्रव्य हिंसा तेहनो फल देखाड्यो छे, जे विभाव परिणामे प्रवर्त्तीने आत्माना गुणने हणता ते भाव हिंसा आत्मगुण जे हणाय ते भाव हिंसा छे, पण जीव हणतां जो आत्मगुण हणता नथी तो निश्चयथी हिंसा नथी. जो आत्मगुण हणाय छे तथी हिंसा थति नथी तोहि पण तेने भाव हिंसक कहीये. आत्म हिंसाथी पाप नथी एटले आत्म धर्मने रक्षे छे ते भाव अहिंसक छे० मुनी महा त्मादिक एटले अप्रमत्त थईने उपयोग करीने आत्मगुण हणाय नहि ते भाव अहिंसा कहीये ॥ १६ ॥

आत्मगुण रक्षणा तेह धर्म ।
स्वगुण विध्वंसणा ते अधर्म्म ॥
भाव अध्यात्म अनुगत प्रवृत्ति ।
तेहथी होय संसार छित्ति ॥ १७ ॥

अर्थः—आत्मगुण के० पोताना आत्माना गुण जे ज्ञानादिक तेहने शुद्ध उपयोगने विषे प्रवर्तिने राखवा तेहिज निश्चय धर्म छे, स्वगुण विध्वंस के० पोताना आत्माना गुण ज्ञानादिक हणाय अथवा अशुद्ध उपयोगे परभाव अनुयी प्रवर्तनां तेहिज अधर्म कहीए. हवे अध्यात्मना च्यार प्रकार कहे छे, नाम अध्यात्म १ स्थापना अध्यात्म २ द्रव्य अध्यात्म तेने कहीये जेहथी भाव अध्यात्म उपजे, सद्गुरु अध्यात्मना जाण तेहनी सेवा भक्ति विनयादिक करीने अध्यात्मना स्वरूपनी गुरुगमथी ओळखाण करे, अथवा अध्यात्म शास्त्रनो अभ्यास करे, तथा ध्याननुं स्वरूप गुरुगमथी करीने प्रथम अभ्यास व्यवहारथी करवा मांडे इत्यादिक द्रव्य अध्यात्म ते भाव अध्यात्म प्रगट करवानुं कारण छे. ए द्रव्य अध्यात्म जाणवुं ३ हवे भावअध्यात्म कहे छे पहेलो आत्माने ओळखे छे आत्माना ज्ञान पणुं होय ते ओळखे जेना अध्यात्म ते मोक्षनुं कारण छे, भाव अध्यात्म तेहने कहीये ज्ञानादिक शुद्ध उपयोगने अनुयायी सम्मुख प्रवर्ते ते भाव अध्यात्म कहीये. पहेलो आत्माने गुण प्रगटे तिहां तिहांथी गुण निपजे ? ते संतप्त मनुष्यो उद्धार करे एटले [illegible] कारणनी निपजे ॥ १७ ॥

एह प्रवोधना कारण तारण सद्गुरु संग ।
श्रुत उपयोगी चरण नंदि करि गुरुरंग ॥
आतम तत्त्वालंबि रमता आतम राम ।
शुद्ध स्वरूपने भोगे योगे जसु विश्राम ॥१८॥

अर्थः—एहवुं जे आत्मज्ञान पूर्वे कयुं तेहना बोधना कारण के० संसार समुद्रथी आत्मस्वरूपनो प्रतिबोध देइ ओलखाण करावीने कोण तारे भला जे सद्गुरु तेहनो संग भक्ति करतां बोधबीज जे समकीत भव्य जीवने करावीने संसार समुद्रथी तारे ते गुरुनो वर्णव करीए छीए; गुरु केवा होय? ते कहीये छीये. भाव श्रुतज्ञानना उपयोगने विषे सदा रमे छे. चरणादि के० चारित्रने विषे रमे छे. सदा आनंदपणे वर्त्ते छे. एवा गुरु संघाथे रंग करवो ते गुरुनी सेवा करवी जेथी अध्यात्मज्ञान पामीए, वली गुरु केवा छे? जेम आत्मा प्रगट थाय तेहनो उद्यम छे, रमणीय ते आत्मामां रमी रह्या छे, आत्मस्वरूपने अवलंबी रमण करे छे. सदा एहवा आत्माराम आत्मस्वरूपने विषे रमे ते आत्माराम कहीये, वळी गुरु केवा छे? जेहने शुद्ध स्वरूपना भोगनी इच्छा छे तेहनो भाव योग जे ज्ञान दर्शन चारित्र ए त्रण ३ योग साधे छे, जसु के० योगने विषे विश्रामपणे वर्त्ते छे एवा गुरु मीले तो अध्यात्म स्वरुप जाणीये ॥ १८ ॥

सद्गुरु योगथी वहुल जीव ।
कोइ वली सहजथी थइ सजीव ॥

आत्म शक्ति करी गंठी भेदी ।
भेद ज्ञानी थयो आत्मवेदी ॥ १९ ॥

अर्थः—घणा जीव एवा शुद्धगुरुथी बोध पामे, एवी रीते सद्गुरुनी संग-सेवा करी घणा जीवने समकितनी प्राप्ति होय, कोइ वळी गुरुनी योगवाइ विना भवस्थिति पाकी हुइ तो कोइक जीव सहजथी बोध पामे एटले कोइक जीव सहजथी बोध पामे एटले कोइक जीव सहजथी ज्यार प्रत्येक बुद्धादिकनी पेरे समकित पामे गुरुना उपदेश विनाज इत्यर्थः जीव पोताना आत्मानी रागद्वेष परिणाम भावकर्मनी गांठ आत्माने पुद्गल शुं ममत्वता एकीभूत ते गांठ जे अनादिनी छे. ते पोतानी शक्तिए करीने भेदे, ज्यां ग्रंथीभेद करवो त्यांनो पोतानी आत्मशक्तिए अपूर्व करण के० पहेला कदि न आव्या एवा परिणाम छे अपूर्व करणरूप पोताना वीर्योल्लासे करीने रागद्वेषनी गांठ भेदे तो समकितनी प्राप्ति पामे, गुरुना योग विनाये तिवारे स्यो गुण निपजे ? ते कहे छे, भेदज्ञान जे शरीर आत्मानो भेद विवेक भिन्नता वैधगरूपज्ञान थयुं. शरीर जड ते अचेतन छे, आत्मा चेतन छे. एहवो भाववी ज्यारे ओळख्यो ते भेद ज्ञान थयुं, त्यारे आत्मानी ऋद्धि हवी ते जाणी तिवारे आत्मस्वरूपनो वेदी-जाण थयो. ॥ १९ ॥

द्रव्य गुण पर्याय अनंतनी थइ परतीत ।
जाण्यो आतम कर्त्ता भोक्ता गइ परभीत ॥
श्रद्धा योगे उपन्यो भासन सुनये सत्य ।
साध्यालंबी चेतना वळगि आतम तत्व ॥२०॥

अर्थः—आत्मस्वरूपने उपयोगे वर्ते तेवारे एक द्रव्यने विषे अनंताग्रुण छे ते मध्ये एकेका गुणमे अनंता पर्याय छे. जे जीम हता तेम परतित यइ तेवारे शुं थयुं ? आत्मा पोताना स्वभावनो कर्त्ता भोक्ता ययो. परभावना कर्तादिकनी मूल मटी गइ, एटले निर्भय ययो एवी श्रद्धाने योगे प्रतीत प्रगटी त्यारे जाणपणुं पोतानुं छतु थयुं, जेवारे ओळख्यो तेवारे तेहवुं आलंबन करवा मांडयुं त्यारे चेतना वळगी आत्मतत्व जे ज्ञानादिकने विषे ॥ २० ॥

इंद्र चंद्रादि पद रोग जाण्यो ।
शुद्ध निज शुद्धता धन पिछांण्यो ॥
आत्म धन अन्य आपे न चोरे ।
कोण जग दीन वळी कोण जोरे ॥ २१ ॥

अर्थः—एवुं ज्यारे खरुं भासन थयुं त्यारे इंद्रनी पदवी चक्रवर्तिपणुं वासुदेवपणुं ए औदयिक सिद्धि इंद्रियजनित पौद्गलिक सुख ए सर्व रोग जाण्या, शुद्धनिज के० शुद्ध निर्मळ पोताना आत्मानो शुद्धतापणो जे ज्ञानादिक धन जे पोतानी भावऋद्धि हती ते जाणी ओळखी पोताना आत्मानी ऋद्धि जे अरुपी धन ज्ञानादिक भाव लक्ष्मी स्वगुण पर्यायरूप ते स्वाधीन छे. कोइयी आपी अपाती नयी एटले अरुपी वस्तु कोइयी आपी जाय नहि, कोइनी लेवाय नही, त्यारे मांगवानुं दीनपणुं टळ्युं अने जगतने विषे कोइ एवो दीन नथी जेहने आपे अने कोइयी आत्मानी ऋद्धि लेवाय नही; एवो

कोइ जोरावर नथी ले खेंची छे, एवो ओलख्यो तेवारे पोतानी ऋद्धिनो भणपण टळीज गयो. ॥ २१ ॥

आतम सर्व समान निधान महा सुख कंद ।
सिध्धतणा साधर्म्मी सत्ताये गुणवृंद ॥
जेह स्वजाति तेहथी कोण करे वध बंध ।
प्रगट्यो भाव अहिंसक जाणे शुध्ध प्रबंध ॥२२॥

अर्थः—आतम के० आत्मा सर्व सरिखा छे, कोइनो न्यूनाधिक छे नही, निधान के० निश्चे महासुखरूप छे, जे सुखनी किहांइ उपमा नथी ते सुख सिद्ध भगवान्‌ने प्रगट थयुं छे अने संसारी जीवने ए सुख सत्तामां रह्युं छे, बीजी रीते अर्थ सर्व जीव सत्ताये एक सरिखा सामान्यपणे जाणवा. निश्चय नयने मते सर्व जीव ज्ञानदर्शन चारित्ररूप निधाने करी युक्त छे. निश्चयथी सर्व जीव सत्ताए महासुखनां कंदमूळ छे, सिद्ध के० सिद्धना जीव तथा संसारि जीव सरिखा साधर्मीपणे गणे छे, पण सत्ताये बेना गुण बराबर छे, तेवारे पोतानी बराबरीना सकळ जीव थया, तथा बीजी रीते निश्चयनयथी सर्व जीवनो धर्म सत्ताये सिद्ध समान एक सरीखो छे, जेनो सरखो धर्म होय तेने साधर्मी कहिये, सर्व जीव सत्ताये ज्ञानादि गुणना वृंद-समूह छे, तेवारे सर्व जीव एक जातिना थया, कुटुंब थयुं तेवारे तेनी हिंसा किम थाय ? तेवारे तेहने दुःख किम देवाय ? तेहनो वध बंध कुण करे ? एवी रीते ज्यारे दया प्रणमे तेवारे भाव अहिंसकपणुं प्रगट थाय तेवारे जिनशासन-शुद्ध स्वरूपनो प्रबंध जाण्यो, ते ज्ञाता कहिये

॥ यतः ॥ यथाममप्रियाःप्राणास्तथा तस्यापि देहिनः इतिमत्वान कर्त्तव्यो घोरःप्राणिवधो बुधैः ॥ २२ ॥

ज्ञाननी तिक्षणना चरण तेह ।
ज्ञान एकत्वता ध्यान गेह ॥
आत्म तादात्म्यता पूर्णभावे ।
तदा निर्मलानंद संपूर्ण भावे ॥२३॥

अर्थः—एटले ज्ञान दर्शन चारित्ररूप निश्चयनय ज्ञाननी तिक्षणना के० एहनुं ज तिक्षणतापणे निर्मल आत्मज्ञानना उपयोग तेहिज चारित्र कहीये. जे पोताना आत्मस्वरूपना ज्ञानमें एकत्वपणे रहे ते ध्यानरूपी घर कहीये, एहवो जे आत्मा आत्माने आत्मताने ज्ञानादिक पूर्ण भावने पामे, तदा वहेलां निरार नीर्मल आनंद संपूर्ण पामे. ॥ २३ ॥

चेतन अस्तिभावमें जेह न भासे भाव ।
तेहथी भिन्न अरोचक रोचक आत्म स्वभाव ॥
समकित भावे भावे आतम शक्ति अनंत ।
कर्म नाशनो चिंतन नाणे ते मतिमंत ॥२४॥

अर्थः—चेतन के० आत्मानो अस्ति स्वभाव आपनी ऋद्धि आत्मामें नहि छे स्वभावना धाम धर्म किहारे छे नहि ते अस्ति स्वभाव कहिये. निश्चयथी पोतानी आत्म सत्ताने विषे ज्ञानादिक अनंत गुण निर्मल अस्ति स्वभावे रह्या छे तेहनो कोइ काले नास्तिपणो नथी, अने जे परभाव आ-

रमाणी जे ऋद्धि खुरी ते पोतापणे जाणे नहि तेहथी अलगो रहे तेहनी रुचि पण राखे नहि. अरुचि भावे पौद्गलिक वस्तुनी उपाधिथी अंतरंग न्यारो प्रवर्त्ते छे, त्यारे रुचि किहां छे? ते कहे छे, रोचक के० पोताना आत्म स्वभावनी ऋद्धि ज्ञानादिकनी रुचि राखे जे पोतानी श्रद्धा प्रगटी छे ते समकित भावे अनंति शक्ति पोतानी जाणी छे तेहनी रुचि करे तेहने ध्यावे छे, तेना ध्यानमां लयलीन थयो थको प्रवर्त्ते छे, कर्म टालवानो विकल्प कदी आवे नही एहवी श्रद्धा प्रगटी छे, पोतानुं स्वरुप ओलख्युं छे, तेहथी कर्म ते एनी मेले टली जाय ते कर्म टालवानी बुद्धि राखे नहि तेहने मोटी बुद्धिना धनी कहिये, कारणपणो न लावे जे माहरा कर्म कितारे टले इम कायर न थाय. ॥ २४ ॥

स्वगुण चिंतनरसे बुद्धि घाले ।
आत्मसत्ता भणी जे निहाले ॥
शुद्ध स्याद्वाद पद जे संभाले ।
परघरे तेह मति केम चाले ॥ २५ ॥

अर्थः—तिवारे शुं चिंतवे ते कहे छे. स्वगुण के० पोताना आत्माने विषे ज्ञानादि अनंता गुण रह्या छे ते गुणनी चीतवणाने रसे करीने युक्त एटले ज्ञानादिकनो अल्मा रसीयो थाय तेहमें बुद्धि घाले के० प्रवर्तावे, तेवारे शोगुण थाय? ते कहे छे, ते जीव पोताना आत्मानी सत्ता से ज्ञानादिक गुण भणी निहाले—देखे एटले आत्म स्वरूपने अंतरंग द्रष्टिये करी, वोइ शुद्ध स्याद्वाद के० शुद्ध यथार्थ स्याद्वाद पदनो जे

रुचिवंत थयो तेहने जोवे–संभाले, अंतरंग दृष्टिये करीने परवेर के० ते परभावमां पोताना आत्मानी चित्त निमित्त जे बुद्धि तेहमां घाले नहि एटले परपरिणतिमां पेसे नहि, ते जीव पोताना स्वभावरूप घरमां बुद्धि प्रवर्त्तावे इति रहस्य. ॥ २५ ॥

पुण्य पाप बे पुद्गल दल भासे परभाव ।
परभावे परसंगत पामे दुष्ट विभाव ॥
ते माटे निज भोगी योगीसर सुप्रसन्न ।
देव नरक तृण मणि सम भासे जेहनें मन्न ॥२६॥

अर्थः—पुण्य पाप कहेतां जे पुण्य पाप छे ते बे पुद्गलनां दलीयां छे, पाप छे ते कडवा विपाकछे अने पुण्य छे ते मीठा विपाक छे. ए बे जेने मन सरखा जाण्या छे. पुण्य पाप ए बे मुनिने मन परभाव भासे छे, आत्मिक धर्म नहीं, पुद्गलनां दलियां छे ते माटे परभाव भासे छे, वळी पुद्गलं विचारे जे परभाव जे विभावदशा, एना संगथी च्यार गतिमां रझळवुं थाय छे, तिणे करी पुण्य पाप बेहु दुष्ट विभाव छे, आत्मधर्म नहि, तथा बीजो अर्थ कहे छे, परभाव रूप विभावदशा ते परसंग तिणेकरीने दुष्ट विभाव जे मोहादिक पामे आत्मस्वरूप न पामे, तिणेकरी संसारमां फरतां अनेक प्रकारे कर्म विटंबना रूप दुःखविपाक भोगवे, पर संग थकी, ते माटे के० ते कारणे निज भोगी के० पोताना आत्मस्वभावना भोगमां वर्ते छे तेहने योगीश्वर सुमुनिराज कहिए, योग जे आत्मस्वभावना ज्ञानदर्शन चारित्ररूप ए त्रे भावयोग तिणेकरि सेहु मन सुप्रसन्न के० अकलुषितचित्ते संकल्प विकल्प

हर्ष विषवाद रहित समभावे निर्विकल्पपणे चित्त प्रसन्नपणे रहे छे तेहने मुनिराज कहिये. ते मुनिराज केवा छे ? देवताना सुखने विषे तथा नरकना दुखने विषे सम भावे छे, तृण के० तृणखलु तथा मणिरत्न ए बे सरिखा जाणे छे; ए सर्व पौद्गलिक विभाविक सुख दुःख जाणी समभाव चित्ते जे मुनि वर्ते छे. ए सर्व शुभाशुभ पुद्गल छे ते विनाशिक भाव छे, माहरा गुणनो अंश नथी एहवुं मुनिराज जाणे. ॥ २६ ॥

> तेह समता रसी तत्त्व साधे ।
> निश्चलानंद अनुभव आराधे ॥
> तीव्र घनघाति निज कर्म तोडे ।
> संधि पडिलेहिने ते विछोडे ॥ २७ ॥

अर्थः—ते मुनिराज एवी रीते शुद्ध जाणपणे करी स्वाभाविक समभाव जे अचल समताना रसीया थाये ते पोतानुं तत्त्व के० ज्ञानादिक आत्मतत्त्व साधे के० संपूर्ण भाव निपजावे, निश्चल जे अचल आनंदने उपार्जे, कोइ दहाडे ए आनंद मटे नहीं एहवो जे आनंदमयी अनुभव अमृतरूप सदाकाल जे आत्मधर्मनो भोग आस्वादन करे, आराधे तेवारे आकरां घनघाती कर्म छेदे आत्मगुणना घातकारी छे, ते आत्मप्रदेशथी दूरा करे कोनीपरे ? कठीआरानी परे ते कठीआराना हाथमां कुहाडो तिखो छे, ने लाकडुं सामुं छे तेनी संधि जाणे छे, ते लाकडाने चीरतां वार लागे नहि, तिम मुनिराज एवी शुद्ध क्रियारूप जे कुहाडो तेणे जे जाणपणा सहित क्रिया करे तेणे करी कर्म दूरा थाय ॥ २७ ॥

सम्यक् रत्न त्रयी रस राच्यो चेतन राय।
ज्ञान क्रिया चक्रे चकचूरे सर्व अपाय ॥
चक्र स्वभावथी साधे पूरण साध्य।
करता कारण कारज एक थया निराबाध ॥२८॥

अर्थः—सम्यक् के० सम्यक्ज्ञान १ सम्यक् दर्शन २ सम्यक् चारित्र ३ ए जे त्रण रत्नत्रयी रस राच्या के० सावधाने रीझ उपनी चेतन राजानी तेवारे ज्ञान के० स्वपरनुं जाणपणुं ते आत्मिक ज्ञान, ज्ञानना बे भेद बाह्यज्ञान शास्त्र पठनरूप ते द्रव्यज्ञान १ भावज्ञान आत्मिकज्ञान क्रिया के० क्रिया बे भेदे, योगक्रिया शुभाशुभ बंधरूप आश्रवरूप. उपयोग क्रिया ते २ स्वरूपने विषे रमणरूप चारित्रगुणने विषे वीर्यनाणंग टस्नाए बने—आत्मवीर्य एकत्वपणे परिणमे ते क्रिया मोक्षनी आपनारी एवी ज्ञान क्रियारूप चक्रेकरी भाव शत्रु कर्मरूपने चकचूर करे, सर्व कष्ट टाळे कारक के० ६ षट्कारकरूप चक्रे करी पोताना संपूर्ण कार्य प्रते साधे करे, कर्त्ता ते जीव १ कारण ते सम्यक्त्व २ कार्य ते करवो केवलज्ञानरूप ३ अपादान ते कर्मक्षयरूप ४ संप्रदान ते गुणश्रेणि वृद्धिरूप ५ अधिकरण ते आत्मामुन केवलज्ञान रूप ६ कार्यमां ए छये समाय इति ॥ कर्त्ता १ कर्म २ करणं ३ संप्रदानं ४ तथैव च, अपादान ५ अधिकरण ६ मित्यादिकारकाणि षट्, कर्त्ता चेतन १ कारण ज्ञानादिगुण २ कार्य केवलज्ञानादि अनेक संप्रदाए छता आत्मस्वभावने अनुयायी थाय तेवारे संपूर्ण सिद्धिने साधे निराबाधे एवं ग्रन्थ एकठा थाय त्यारे अबाधा रहितपणे निपजे छे.

स्वगुण आयुधथकी कर्म चूरे ।
असंख्यात गुणी निर्जरा तेह पूरे ॥
टळे आवरणथी गुण विकासे ।
साधनाशक्ति तिम तिम प्रकाशे ॥२९॥

अर्थः—स्वगुण के० पोताना ज्ञानादि गुण ते रूप जे हथीआर हाथमां आव्युं ते हथियार कर्म चूरे ते घणी समये २ असंख्यातगुणा कर्मनां दलियांने आत्मप्रदेशथी खेरवी नाखे, तेवारे शुद्ध उपयोगथी स्वगुणे करी आत्माने पूरे, भाव निर्जराए करीने एवी निर्जरा पुष्ट करे, ते घणी जिम २ असंख्यातगुणा कर्मदल खेरवे तिम २ आवरण टळे तेथी गुण विकसेज प्रगट करे ते गुण प्रगटे तिम साधननी शक्ति वधती जाय, पोतानुं आत्मगुण रूप कार्य साधवुं तेने विषे निश्चलता रूप परिणामनी शक्ति वीर्य उल्लास वधतो जाय २ प्रकाश वधतो जाय. अग्रवत् निंबवत् ॥ २९ ॥

प्रगट्या आतम धर्म थया सवि साधन रीत ।
बाधक भाव ग्रहणता भागी जागी नित ॥
उदय उदीरणा ते पण पूरव निर्जरा काज ।
अनभिसंधि बंधकतानिरस आतमराज ॥ ३० ॥

अर्थः—प्रगट्या आत्मधर्म के० तेवारे शक्ति जागी तेवारे प्रगट्यो के० अनंत आत्मधर्म प्रगट्यो, आत्मधर्म प्रगटे थके पांच शक्ति अनादिकालनी पर अनुयायिपणे जे अवरी

प्रणमी हती ते तिहां थकी निवारीने पोताना स्वरूप अनुयायि साधनपणे परिणमावी ते कहे छे. आत्मानी कर्तृत्व शक्तिरूप ते अनादिकाळनी परकर्त्तापणे अवळी प्रणमी हती तिहांथकी निवारीने पोताना स्वरूप कर्त्तारूप साधनपणे प्रणमावी, अने आत्मानी भोक्तृत्वरूप शक्ति अनादिकाळनी पर पुद्गलादि विभाव दशाना भोगने विषे प्रणमी हती त्यां थकी निवारीने पोताना स्वभाव भोगीपणे प्रणमावी २ अने आत्मानी रक्षकत्वरूप जे शक्ति ते अनादिकाळनी परपुद्गलादि विभावदशाना रक्षकपणे प्रणमी हती तिहां थकी निवारीने पोताना स्वभाव रक्षकपणे प्रणमावी ३ अने आत्मानी व्यापकतारूप जे शक्ति ते अनादिकाळनी पर स्वभावरूप विभावदशाने विषे व्यापी रही हती ते तिहांथी निकाळीने पोताना स्वभाव व्यापकपणे प्रणमावी ४ अने आत्मानी ग्राहकत्वरूप जे शक्ति ते अनादिकाळनी परग्राहकपणे परिणमी हती ते त्यां थकी निवारीने पोताना स्वभाव ग्राहकपणे परिणमावी ५ एवी रीते ए पांच शक्ति अनादिकाळनी पर अनुयायिपणे अवळी प्रणमी हती ते तिहां थकी निवारीने पोताना स्वरूप अनुजाइरूप साधनपणे प्रणमी त्यारे बाधकभाव के० अनादिकाळनो पर स्वभावरूप विभावदशा जीवने बाधकभावरूप ग्रहणता के० पौद्गलिक विभावमें पेसीने ग्रहण करतो हतो ते हवे विभावना ग्रहणपणामां चेतना पेसती नथी ते विभावनो ग्रहणपणो हतो ते भाग्यो. परपरिणतिरूप अनित्य ग्रहण भाव टल्यो, जागी के० जाग्रत् थयो स्वरूप ग्रहणरूप नित्यतापणो प्रगट्यो जाग्रत् थयो उदय के० स्थितिपाके उदय भावने योगे जे कर्म उदये आव्यां ते भोगवीने निर्जरा करे अने जीवनी सत्ताये बंधरूप

नें पुद्गल लाग्यां छे ते वेंची उदेरी उदयआणी पूर्व कर्मने गवीने निर्जरे एटले उदय उदीरणा पण पूर्व कर्म निर्जराने ने हेतु छे, अनभिसंधि के० अणउपयोग वीर्य अनभिसंधि अनुपयोगवीर्य अनेक कर्मग्रहण करतो हतो ते निरस के० मना करावना रसथी आत्मा लखो थयो, अनुपयोगे कर्मग्रहण करतो हतो तेथी लखासपणे अंतरंगथी न्यारो थयो तेरे आत्मस्वरूपनो आत्मा राजा जाणवो. ॥ ३० ॥

देशपति जब थयोनीति रंगी ।
तदा कुण थाय कुनय चाल संगी ॥
यदा आतमा आत्मभावे रमाव्यो ।
तदा बाधक भाव दूरे गमाव्यो ॥ ३१ ॥

अर्थः—देशपति के० असंख्यात प्रदेशरूप देश तेने विषे थयो एटले स्वस्वभावमां रंग लाग्यो, तदाकुण के० तिवारे कुण थाय, कुनय के० मिथ्यात्व ते भाठानय अनीति मार्गनो चालनाने न थाय तेहनो संग न करे, सुनय ते सम्यक्त्वनो मार्ग स्वभाव धर्म तेमां रमण करे ते मार्ग पोते चाले तेहिज उपदेश दे तेनी संगकरे अने परपरिणतिरूप कुमार्गे चाले तेवानो संग न करे; यदा के० जिवारे पोतानो आत्मा आत्मभाव के० ज्ञानादिक अनंत गुण रूप आत्मभावनेविषे रमाव्यो—रमण करतो, तदा के० तिवारे अनादिकालनो बाधक भाव के० परभाव रूप विभावदशारूपवाधक भावनो ग्रहणकरतो हतो ते दूर गमाव्यो एटले वेगलो कर्यो. ॥ ३१ ॥

सहेज क्षमा गुण शक्तिथी छेद्यो क्रोध सुभट्ट।
मार्द्दव भाव प्रभावथी भेद्यो मान मरट्ट ॥
माया आर्जव योगे लोभ ते निस्पृह भाव।
मोह महा भट ध्वंसे ध्वंस्यो सर्व विभाव ॥३२॥

अर्थः—सहज के० स्वाभाविक क्षमागुण अकृत्रिम शक्ति के० आत्मवीर्यथी छेदायो के० हण्यो, मोह राजाना क्रोध सुभटने हण्यो निर्मूल कर्यो मार्दव के० मानरहितपणुं सुकुमाल परिणामि ने नम्रांशपणुं आत्मधर्मने विषे नमतो भाव ते मार्दव गुणने प्रभावे करी मान जे अहंकार सुभटनो मरट्ट जे मोटाइपणुं उन्मूली नाख्युं. माया के० कपट तेने आस्रव के० सरल परिणामी द्रव्यभाव वक्रपणा रहित ने आर्जवगुणे करी करी माया सुभटने हण्यो. निर्लोभना सर्व द्रव्यनी अभिलाषा रहित एक शुद्धात्म द्रव्यग्राही मोक्षाभिलाषी पण संसाराभिलाषी नहीं एवो निर्लोभ भाव तेणे करी मोहराजाना लोभ सुभटने हण्यो. मोह के० मोहरूप महासुभट जे सर्व अवगुणने विषे राजा मुख्य तेने ध्वंसे के० हडमेली नाखी दूर करे. सर्व विभाव दशारूप जे परभाव अनादिकालना जीवने शत्रुभूत थइ लाग्या छे ते ध्वंसाणा जे नाश पाम्याज एटले समकिते मिथ्यात्वने हण्यो. वीतरागभावे कंदर्प सुभटने हण्यो एम कहे छे. ॥ ३२ ॥

इम स्वभाविक थयो आत्मवीर।
भोगवे आत्म संपद सुधीर ॥

जेह उदयागता प्रकृति वळगी ।
अव्यापक थको खेरवे तेह अळगी ॥३३॥

अर्थः—इम ए० के० एवी रीते आत्मानो वीर्य पराक्रमे करी शूरवीर थयो अनंत बळनो धणी कर्म शत्रुने जीतीने पर परिणतिर्थी निस्यो. आत्म स्वभावे रमण करीने शूरवीर थयो भोगवे के० आत्मानी ज्ञानादिक संपदा शूरवीर के० निर्भय थइ भोगवे. जे उदय आवी प्रकृति आत्माने वळगी छे, अव्यापक के० निर्लेप न्यारो थको उदय आवी कर्म प्रकृति वळगी छे तेने भोगवी खेरवे अळगी करे, समभावपणे. ॥ ३३ ॥

धर्मध्यान इक तानमें ध्यावे अरिहा सिद्ध ।
ते परिणतिथी प्रगटी तात्विक सहज समृद्ध ॥
स्वस्वरूप एकत्वे तन्मय गुण पर्याय ।
ध्याने ध्यातां निर्मोहीने विकल्प जाय ॥३४॥

अर्थः—धर्मध्यान के० पोताno आत्मिक धर्म सत्तागतने विषे अनंतो रह्यो छे, ते धर्मने ओळखी प्रसिद्ध करी तेहना ध्यानने विषे प्रवर्ते ते धर्मध्यानना शुद्ध शुक्लध्यान रूपातीत परिणामरूप एकत्वपणे अरिहंत सिद्धना गुण ते पोताना आत्म तुल्य गणीने ते ध्यावे, तीनगतरूपे ओळखीने ध्यावे, ते शुद्ध परिणतिथकी प्रगटी निपनी तत्त्व के० तद्रूपपणे जेवी छत्राय हती तेवी अहर्निश सहज स्वाभाविक समृद्धि के० ज्ञानादि लक्ष्मी प्रगटी तेवारे स्वस्वरूप के० पोतना आत्मिक स्वरूपने

ने एकत्व के० एकत्वपणे तन्मय उपयोगे लयलीन थाय, ताना आत्मगुण अने आत्मपर्यायना ध्यानने विषे तेहवा ानने विषे एकत्वपणे प्रवर्ते तेवारे ते जीव निर्मोही मोह हित थयो तेवारे सर्व विकल्प दूर जाय, विकल्प मटे तिवारे ागुण थाय ? ते कहे छे ॥ ३४ ॥

यदा निर्विकल्पी थयो शुद्ध ब्रह्म ।
तदा अनुभवे शुद्ध आनंद शर्म ॥
भेद रत्न त्रयी तिक्ष्णताये ।
अभेद रत्न त्रयीमें समाये ॥ ३५ ॥

अर्थः—यदा के० जेवारे संकल्प विकल्प रहित निर्विल्प आत्मा थयो, तेवारे शुद्ध ब्रह्म के० शुद्ध ज्ञानमयी थयो ा पूर्वे पोताना आत्मस्वरूपना शुद्ध ज्ञानमयी थयो, तदा ० तेवारे अनुभवे के० भोगवे, शुद्ध निर्मल आनंदमयी ारूप अव्याबाधपणे भोगवे. आत्मिक सुखमते भेद रत्नत्रयी ० ज्ञान १ दर्शन २ चारित्र ३ ते भेदपणे ते ज्ञान ज्ञाने जाणे १ दर्शनने दर्शनरूपे जाणे, श्रद्धा सद्दहणारूपे २ े जाणे, तेनी वर्ताए भेद रत्नत्रयीरूप तीक्ष्णतानी वृत्तिए ी अभेद रत्नत्रयी के० अन्योन्य सहाय विना ते अभेद नत्रयी ते सुज्ञाननुं जाणवुं ज्ञाननुं श्रद्धान ज्ञाननी थिरता ानता एकता १ दर्शननुं जाणवुं श्रद्धान थिरता रमणता ता २ चारित्रनुं जाणवुं श्रद्धान थिरता रमणता ३ ए ेनी एकत्वता ते अभेद रत्नत्रयी कहीये ॥ ३५ ॥

दर्शन ज्ञान चरण गुण सम्यग् एक एकना हेतु।
स्वस्व हेतु थया समकाळे तेह अभेदता सेतु॥
पूर्ण स्वजाति समाधि घनघाति दल छिन्न।
क्षायिकभावे प्रगटे आतम धर्म विभिन्न॥३६॥

अर्थः--दर्शन के० सम्यग्दर्शन १ सम्यग्ज्ञान २ सम्यग्चारित्ररूप ३ जे गुण एटले दर्शन छे ते जीवने सामान्य उपयोग गुण ज्ञान छे, एटले दर्शन तथा ज्ञान ए बेने विषे थिरतारूप एकाग्रता पणे उपयोगे वर्त्ते ते चारित्र जाणवो, माटे ए त्रण परस्पर एक के० एक एकना हेतु कारणरूप जाणवा. स्वस्व के० पोतपोताना एक समये हेतु थया ज्ञान १ दर्शन २ चारित्ररूप ३ रत्नत्रयी ते एकत्वापणे प्रणमि तेमज स्वक्षेत्र के० आत्माना असंख्याता प्रदेशरूप क्षेत्रने विषे भेद भाव रहित अभेदपणे प्रणम्या एकरूप थया तेवारे केयो थयो, घनघातिया कर्मना समूहनां दळीयां आत्मप्रदेशनेविषे लाग्यां हतां, ते छिन्न के० छेदी नाख्यां तेवारे पूर्ण के० संपूर्ण पोतानी जाति जे ज्ञानादि गुणनी समाधि ध्यान तेणे करी घनघाती कर्म छेद्यां, क्षायिकभाव के० क्षायिकभावे प्रगटे थके एटले सत्तागतने विषे अनंतो आत्मिक धर्म शक्तिपणे रह्यो हतो ते व्यक्त के० प्रगटपणे क्षायिकभावे प्रगट्यो तेवारे विभिन्न के० अभेद आत्मपने लोकालोकना भाव जाण्या थका विचरे॥३६॥

पछे योग रुंधि थयो ते अयोगी।
भाव शैलेसता अचळ अभंगी॥

पंच लघु अक्षरे कार्य कारी ।
भवोपग्रहीकर्म संतति विडारी ॥३७॥

अर्थः—तेरमा गुणठाणाने विषे छेल्ले समये योगत्रिक मन-वचन काया ए त्रण योग रुंधीने सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाती शुक्ल ध्याननो त्रीजो पायो ध्याना चउदमे गुणस्थानके चढे, तिहां प्रथम बादर मनोवाक्काय रुंधे, पछे सूक्ष्मयोग रुंधि अयोगी थयो. भाव के० स्वभावे शैलेसता के० मेरु पर्वतनी परे अकंप अडग अचळ थिरताभावे अडग थयो एवो स्वभाव अचळ थयो, पंचलघु के० चउदमे गुणस्थानके जीव, अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए पांच लघु अक्षररूप उच्चार करे एटलामां स्वसिद्ध कार्य निपजावे, भवोपग्रहिक–भवने आश्रयी जे अघातीकर्म पुद्गलनी श्रेणिअवशेष के० थाकतां रह्यां हतां ते विडारी, ध्यानाग्नि शुक्लध्यानना चोथा पायाने ध्याने करी कर्मक्षय करे तेवार पछी ॥ ३७ ॥

समश्रेणे एक समये पहोता जे लोकांत।
अफुसमाण गति निर्मळ चेतन भाव महांति॥
चरम त्रिभाग विहीन प्रमाणे जसु अवगाह।
आत्मप्रदेश अरूप अखंडानंद अवाह ॥३८॥

अर्थः—समश्रेणे करी एक समयने विषे चौदराज लोकने अंते लोकाग्रभागे अजरामर स्थानके जे क्षेत्रे अनंता सिद्ध परमात्मा विराजमान वर्त्ते छे, ते सिद्धक्षेत्रे पोहता सिद्धपणे अफुस्समाण के० आकाशरूप क्षेत्रना प्रदेश प्रथम फरस्या छे

तेहज आकाश प्रदेशनी समश्रेणीए वसंता सिद्धि पाम्या, सिद्धि वर्या, कर्मरूप मल थकी रहित निर्मळ थया, तेवारे शुद्ध ज्ञानादिआत्मस्वभावे क्षायिकभावे सदाकाळ शाश्वता रहे. सिद्ध क्षेत्रमें परम के० छेल्ला शरीरनो त्रीजो भाग घटाडीने अवशेषे के० पाछला बे भागना शरीर प्रमाणे आत्मप्रदेशनो घन करी ते प्रमाणे अवगाहना करी सिद्ध क्षेत्रने विषे विराजमान थयां. आत्मप्रदेश के० आत्मप्रदेश अरूपी छे. अखंड आनंदमयी अबाह के० अबाधा के० पीडा रहित स्वक्षेत्रे व्याप्या छे, आत्मस्वभावमें रह्या छे ॥ ३८ ॥

जिहां एक सिद्धात्म तिहां छे अनंता ।
अवन्ना अगंधा नहि फासमंता ॥
आत्मगुण पूर्णतावंत संता ।
निराबाध अत्यंतसुखास्वादवंता ॥३९॥

अर्थः—जिहां एक सिद्धात्म के० जिहां एक सिद्ध परमात्मा छे, ते क्षेत्रने विषे अनंता सिद्ध मेळा मळीने रह्या छे, ते सिद्ध कहेवा छे ? अवन्ना के० पांच वर्ण रहित, अगंधा के० बेगंध रहित, नही फासमंता के० आठ फरसरूप धर्म पण रहित छे, वळी सिद्ध कहेवा छे ? आत्मगुण के० पोताना आत्माना गुण ज्ञानादि अनंतगुणनी पूर्णता छता भाव प्रगट्या छे, वळी निराबाध के० सर्व प्रकारे अबाधा पीडा थकी रहित सिद्ध छे, अत्यंत सुखास्वादवंता के० त्यागनी कामना देवताना इंद्रिय जनित पौद्गलिक जे सुख ते सर्व काळनो भेळो करी अनंतगुणो वर्ग वर्गित करीये पण सिद्ध

त्मिक सुख अनुभवे छे, पोताना परिणामिक भावे वर्त्ते छे. अप्रयासी परिणामे रह्या छे, उपादान के० स्वज्ञानादि अनंतगुण कारणरूप प्रगट्या छे अने अनेकज्ञेय पदार्थ जाणवा देखवारूप पर्यायनो उत्पाद व्यय समये थइ रह्यो छे, ते कार्य पोताना आत्मस्वरूपने विषे निवास कर्यो छे एटले ए प्रणे एकतापणे परिणमे छे. शुद्ध के० निर्मळ च्यार निक्षेपे करी युक्त छे सिद्ध एहवो नाम त्रणेकाले एकरूप शाश्वतो वर्त्ते छे १ अने थापना सिद्ध ते त्रिभागे शरीर प्रमाणे क्षेत्र अवगाही रह्या छे २ द्रव्य सिद्ध ते सिद्धतादि गुणरूप छतां पर्याय वस्तुरूप प्रगट्या छे ते द्रव्य सिद्ध ३ सामर्थ्य पर्याय प्रवर्त्तनारूप अनंतो धर्म प्रगट्यो तेणे करी नव नवा ज्ञेयनी वर्त्तनारूप पर्यायनो उत्पाद व्यय समये २ अनंतो थइ रह्यो छे, तेणे सिद्ध अनंतो सुख भोगवे छे, ते भाव सिद्ध ४ ए च्यार निक्षेपे करी सदा रक्त प्रवर्त्ते छे. आत्मिक आनंदसुख भोगवे छे, केवलनाणी के० एहवा सिद्धनो स्वरूप प्रत्यक्षपणे केवळज्ञानी जाणे देखे अने सिद्ध परमात्माने अनंतगुणना समूह प्रगट्या छे तेहने विषे अनंतो सुख भोगवे छे, ते केवळज्ञानी गम्य छे, पण छद्मस्थ मुनिना जाणवामां न आवे. ॥ ४२ ॥

एहवि शुद्ध सिद्धता करण इहा ।
इंद्रिय सुख थकी जे निरीहा ॥
पुद्गली भावना जे असंगी ।
ते मुनि शुद्ध परमार्थ रंगी ॥ ४३ ॥

अर्थ—एहवी के० ते पूर्वे वखाणी शुद्ध निर्मल सिद्धता के० सिद्ध परमात्मानी संपदा छे, तेहवी सिद्ध संपदा प्रगट करवानी जे मुनिने इहा के० वांछा छे, ते मुनि कहेवा छे? इंद्रिय के० पांच इंद्रियना त्रेवीस विषय सुख पौद्गलिक तेहनी वांछा रहित वर्त्ते छे, वळी मुनि केवा छे पौद्गलिक के० स्व स्वरूपथी भिन्न के० जुदा एहवा शुभाऽशुभविभाव दशारूप जे पौद्गलिकभाव तेहना संगथी रहित न्यारा जे मुनि प्रवर्ते छे, ते असंगी ते मुनिराज निर्मळ बुद्धिना धणी अने जे साध्य एक अने साधन अनेक एवी रीते सत्ता रमनता धर्मने साधे ते मुनि, परमार्थ साधवाना रंगी छे. ॥ ४३ ॥

स्याद्वाद आतम सत्ता रुचि समकित तेह।
आतम धर्मनो भासन निर्मळ ज्ञानी जेह ॥
आतम रमणी चरणी ध्यानी आतम लीन।
आतम धर्म रम्यो तेणे भव्य सदा सुख पीन॥४४

अर्थः—स्याद्वाद के० नित्य अनित्यादि आठ पक्षे करी अनेकांतरूप मार्ग ते स्याद्वादे करी आत्मसत्ता रुचिने ओळखीने प्रकट करवानी रुचि प्रवृत्ति ते मुनि, शुद्ध भासनरूप समकित भाव सहित जाणवा. आतमधर्म के० आत्मा शुद्ध निश्चय नयेकरी जोतां तो पोतानी आत्मसत्ताने विषे ज्ञानादि अनंत गुण रूप धर्म रह्यो छे, तेहनो भासन प्रतीत प्रगटी तिवारे निर्मल ज्ञानी थयो निर्मल जाणपणुं थयुं त्यां आतम के० ते मुनि सदाकाळ स्वआत्म स्वरुप रमण करे तेहने शुद्ध चरित्रनो उपयोग वर्त्यो, तिवारे आत्मस्वरूपना ध्यानने लीन-

पणे प्रवर्त्त्यो, तिवारे निर्मल शुद्ध ध्यानी थयो जाणवो, ते आत्मधर्म कारणे हे भव्य जीवो ते आत्मधर्ममें रमो, तेणे करी सदाकाल पुष्ट सुख उपजे ॥ ४४ ॥

अहो भव्य तुम्हें ओलखो जैन धर्म ।
जिणे पामीयें शुद्ध अध्यात्म मर्म ॥
अल्पकाळे टळे दुष्ट कर्म ।
पामीयें सोय आनंद शर्म ॥ ४५ ॥

अर्थ—अहो भव्य जीवो ! अहो देवानुप्रिय तुम ओलखो जैनधर्म, *श्री वीतरागे समोसरणने विषे बेसीने भाख्यो*, निश्चय आत्मिक धर्म ज्ञानादिक शुद्ध उपयोग लक्षण धर्म अंतरंग सत्तागते रह्यो छे, तेहनी तुमे ओलखाण करो, तेहथी सुख थाय, जिणे वस्तु स्वभाव ओलखवाथी आत्मा पामे शुद्ध अध्यात्मनो मर्म रहस्य जे आत्म स्वरूप प्रगटे तेहथी जीवने शुं गुण थाय ! जे वळी थोडा कालमांहे दुष्ट दुःखदाइ ज्ञानावरणादि आठ कर्मनो नाश थइ आनंद जे पोतानो नित्यानंद परम सुख तेहनो स्थानक *जिहां अनंतासिद्ध* वसे छे एवो स्वस्थानरूप घर प्रते पामे. ॥ ४५ ॥

नय निक्षेप प्रमाणे जाणे जीवाऽजीव ।
स्वपर विवेचन करतां थाये लाभ सदीव ॥
निश्चय ने व्यवहारे विचरे जे मुनिराज ।
भवसागरना तारण निर्भय तेह जिहाज ॥४६॥

अर्थः—नय के० नैगमादि सातनयनामादि च्यार निक्षेपे अने प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणे करी जीव, अजीवादि नवतत्व षट्द्रव्यनो स्वरूप जाणे, स्वपर के० स्वजीव चेतनावंत ज्ञानादिक गुण पर ते अजीव पुद्गलवंत सडण पडण विध्वंसण धर्म एवी रीते स्वपरनी वेंचण करतां थकां सदा स्वरूपनो लाभ हुवे, निश्चय के० निश्चय नयते आत्म स्वरूपने विषे दृष्टि राखी ओळखीने व्यवहार शुद्ध विचरे, शुद्ध क्रिया आचरणाइं प्रवर्त्ते ते मुनिराज ते मुनिराज निश्चय नय व्यवहार नयनो उपदेश दे, निश्चय धर्म निर्जरा हेतु छे, बाह्य व्यवहार धर्म पुण्यबंधनो हेतु छे. एहवा उपदेश दइने भव समुद्रथी तारवाने जिहाज समान जाणवा. निर्भयपणे भयरहित जिम जिहाज आलंबी समुद्रने तरे, तिम आत्मज्ञानी मुनिराज ने आलंबी भव्य प्राणी संसारनो पार पामे. ॥ ४६ ॥

वस्तु तत्वे रम्या ते निग्रंथ ।
तत्त्व अभ्यास तिहां साधु पंथ ॥
तिणे गीतार्थ चरणे रहिजे ।
शुद्ध सिद्धांत रस तो लहिजे॥ ४७ ॥

अर्थ—वस्तुधर्म के० आत्मधर्मने विषे रम्याते निग्रंथ, तत्त्व के० आत्मतत्त्वना अभ्यासने विषे सदाकाळ निरंतरपणे जेहनो उपयोग वर्त्ते तिहां साधुपंथने साधुनो मार्ग कहीए, मोक्ष मार्गनो साधनारो ते साधु कहीए. द्रव्य चारित्र ते, हिंसादिक पांच आश्रवनो त्याग, पांच महाव्रत चरण सित्तरि करण सित्तरि पाळे, बेताळीस दोष रहित आहार ले, सर्व सिद्धांत

भणे वांचे संभळावे एवावे पण आतम स्वरूप ओळख्यो नथी. शुद्ध उपयोगे न वर्त्तेवे द्रव्य चारित्रिया कहिए. १ भाव चारित्र ते आतम स्वरूपमां एकत्व थावुं, वे आत्मस्वरूपनी थिरता, आत्मस्वरूपनुं रमण, आत्मस्वरूप निश्चलता आत्मस्वरूप भोगी परभाव अभोगी ते भाव चारित्र २ तेणे गीतार्थ के० आत्म स्वरुपना जाण एवा गीतार्थ मुनिना चरण कमळ सेवीने मोक्षाभिलाषी मुनिने सेव्यायी शुं नीपजे ! शुद्ध के० शुद्ध निर्मल यथार्थ निःसंदेहपणे सिद्धांत जे आगम संबंधी या जिन वाणीना ज्ञानरस मते चाखी जे गुरु कृपायकी तथा आगमना रहस्य ते इयाने कहीए ? यतः आतमाराम अनुभव भजो, तजो परतणिमाया, एह छे सार जिनवचननुं, वली एह शिवछाया श्री परमात्मए त्रिगडे बेसी एहवी प्ररूपणा करी अहो भव्य जीवो ! आत्माने आराम के० रमावे एवो अनुभव भजो सेवो एटले आत्मानो अनुभव करजो, पर के० पुद्गल परभावनो त्याग करवो एह जिनवचननुं सार छे, वळी शिव तरुनी छाया छे संसारतापनी टाळणहारि छे. इत्यर्थ ॥ ४७ ॥

श्रुत अभ्यासी चोमासि वासी लिंबडी ठाम ।
शासन रागी सोभागी श्रावकनां बहु धाम ॥
खरतरगच्छ पाठक श्री दीपचंद्र सुपसाय ।
देवचंद्र निज हरखे गायो आतमराय ॥ ४८ ॥

अर्थः—सिद्धांत शास्त्रना अभ्यासी लिंबडी गामनेविषे चोमासुं रहिने ए ग्रंथ रच्यो, जैन शासनना रागी सौभाग्यवंत श्रावकनां घणां घर छे, खरतरगच्छने विषे दीपचंद्र ना

उपाध्यायजीने प्रसादे देवचंद्र नामा उपाध्याये पोताने हर्षे करी आत्म राजाने गायो, आत्मस्वरूप यथार्थ वर्णवायो.॥ ४८ ॥

आत्मगुण रमण करवा अभ्यासे ।
शुद्ध सत्ता रसीने उलासे ॥
देवचंद्रे रची अध्यात्मगीता ।
आत्म रमणि मुनि सुप्रतिता ॥ ४९ ॥

अर्थः—भव्य जीवने आत्मगुण रमण करवा अभ्यासे ज्ञानादि गुणवडे रमण करवा स्वरूप जाणवा. अभ्यासने अर्थे शुद्ध आत्म सत्ता ज्ञानादि चेतमनी तेहना रसिया जे आर्थेने उल्लास करवाने अर्थे देवचंद्र उपाध्याये अध्यात्मगीता रची, पोताना आत्म रमण करवाने अर्थे अने अध्यात्म ज्ञानवंत मुनिने प्रतीतकारी छे, ए ग्रंथ रचना कीधी स्वरूपने अर्थे ॥ ५० ॥ इति पाठक देवचंद्रकृत अध्यात्मगीता संपूर्ण ॥ ॥ शुभं भवतु ॥

॥ इति श्री अध्यात्मगीता देवचंद्रकृता
॥ संपूर्णा शुभं भवतु ॥

॥ ॐ नमः सिद्धं श्रीगुरुभ्योनमः ॥

॥ अथद्रव्यप्रकाशभाषालिख्यते ॥

॥ दोहा ॥

अज अनादि अक्षयगुणी, नित्य चेतनावान् ।
प्रणमु परमानंदमय, शिवसरूप भगवान ॥ १ ॥

॥ अथस्याद्वादभावको नमस्कार ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जाके निरखत सते थिरनासु भाव धरै, धरे निज मोक्षपद हरे भवतापको, करमको बंध वारे मोहको बिडारडारे सारे निज-सकति वधारे ज्ञानदानको; एकानेकरूप जानै नित्यानित्यभाव ठानै आपा पर भेदकरी ग्रहे स्वसुभावको, अक्षर निगुण इंद कर्मजालसो अफंद नमतहे देवचंद स्यादवादभावको. ॥ २ ॥

॥ अथअध्यात्ममाहात्म्यकथनम् ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

अध्यात्मभावको प्रभाव कहो कहा ताहि जाको महिमान ज्ञान जगतने गायोहे, याहिको सभाव टहि आपा पर भेद गहि सम्यक्तभावमांहि बोधिबीज वायोहे; घातको अघाती भेद कर्मको मूल छेदि येद- निजभावको परमभाव आयोहे. रिषभदेवाधिदेव अध्यात्मभाव सेव अखट अखंड निज केवलको पायोहे. ॥३॥

॥ ॐ नमः सिद्धं श्रीगुरुभ्योनमः ॥

॥ अथद्रव्यप्रकाशभाषालिख्यते ॥

॥ दोहा ॥

अज अनादि अक्षयगुणी, नित्य चेतनावान् ।
प्रणमुं परमानंदमय, शिवसरूप भगवान ॥ १ ॥

॥ अथस्याद्वादभावको नमस्कार ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जाके निरखत मिटे थिरतासु भाव धरे, करे निज मोक्षपद हरे भवतापको, करमको बंध चारे मोहको विडारडारे सारे निज-सकति यथारे ज्ञानदायको; एकानेकरूप जानै नित्यानित्यभाव टानै आपा पर भेदकरी ग्रहे स्व सुभावको, अक्षर त्रिगुण इंद कर्मजालसो अफंद नमनहे देवचंद स्याद्वादभावको. ॥ २ ॥

॥ अथअध्यात्ममाहात्म्यकथनम् ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

अध्यात्मभावको प्रभाव कहो कहा ताहि जाको महिमान ज्ञान जगतमे गायोहे, याहिको सभाव लहि आपा पर भेद गहि सम्यकसुभावमांहि बोधिबीज वायोहे; घातकी अघाती भेद कर्मको मूल छेदि वेद- निजभावको परमभाव आयोहे, रिषभदेवआदिदेव अध्यात्मभाव सेव अमल अखंड निज केवलको पायोहे. ॥३॥

॥ अथमोहविलासकथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

लह्योते आरिजकुल गुरुको संजोग वलि पूरवके पुण्यवल एसो जोग लह्योहे, अध्यातमग्रंथसार सुणो कान धरी प्यार पीयो ताको रस निज तत्वशुद्ध ग्रह्योहे; तौभी यह तेरो जीव चाहत विशेष दौव भोगकी ममत्वतासौ माचिराचि रह्योहे, जगको जीवनहार एतो सव मोहभार मोहकी मरोरमें जगत लहलह्योहे. ॥४॥

॥ अथप्रथमद्वार ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

प्रथम धरमद्रव्य, दूसरो अधर्मद्रव्य, तीसरो आकाशद्रव्य, लोकालोकमानहे, चोथो कालद्रव्य एक पुद्गलद्रव्यरूपी निजनिजसत्तावंत अनंत अमानहे; पांचोहु अचेतनजं चेतनासरूप लीये छठो ज्ञानवान द्रव्य चेतन सुजानहे, स्याद्‌वादभाव लीये तीनुं अधिकार याके ग्रंथको आरंभ कीनो ग्रंथज्ञान भानहे. ॥५॥

॥ कविलघुताई ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

कोउ बाल मंदमति चित्तसो करे उकति नभके प्रदेश सव गनि देखे करसे, कोउ जन छीन तन पुरातन वयातीत वचन सो कहे एसो ज़ुद्ध करो हरिसे; भूधर वामन सो सकति विनु कहे एसो लंघीकरि मूजा मेनो मेरुतुलापरसो, तेसे में अलपबुद्धि महाशुद्ध ग्रंथ मड्यो पंडित हसेगे निज ज्ञानके गह्वरसो. ॥६॥

॥ ग्रंथअधिकारीवर्णन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

परम धरम जानि करम मरम भानि नरम सभाव रहि धाम सौ

उदासी है, आतमके विसरामी ज्ञानके अंतरजामी मायासों विरमिनित राधायामवासी है; जालसो जगतजाके माल सब मेठ जैसो अमल अखंड निज मक्के विटासी है, एसे समकीत धारी शुद्ध नयके विचारी कंदनदे देवचंद ज्ञानके प्रकाशी है. ॥७॥

॥ अथ देशविरति वरणन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

अभक्ष्यके त्यागी है परम रस पागी एसे परसो निरागी जिनधर्मके विनीत है, आत्मिक सुख लहि समतासु धीर गहि विषय कषाय मोह रससो वितीत है; परम धीरज धरि आत्मीक घट करि समकित थीर करि मिथ्यासो अजीत है, मिष्ट मित बोल भाषी सिद्धसुख अभिलाषी इकवीस गुण धारी श्रावक पुनीत है ॥ ८ ॥

॥ दोहा ॥

साधक शिवको साधुमुनि, ताके भेद विचार,
जिनवर आचारिजप्रवर, उपाध्याय अनगार ॥ ९ ॥

॥ अर्हंतकोद्रव्यस्वरूपवना ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जाकी देहदुति अति सोभित अनंततेज जाकी तन चतुराई नाही थान और है, ताही जिनराजके वचनको विलास मानो, शिवपुरा राह शुद्ध अनुभव कोर है; जाके अतिसे अमंद, वंदे देवदेवी वृंद जाको धर्मशासन परम सुख ठौर है, जाहीके दरससेति सुखको परसोहत ऐसो जिन देवचंद त्रिभुवन मौर है ॥१०॥

॥ दोहा ॥

दर्वितस्तवनाना थकी, करतां पुन्यप्रकाश,
आनमके गुन गावनां, केवलज्ञान विलास. ॥११॥

॥ अथ भावस्तवनं ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

लोकालोक भासक अनंत ज्ञानदृष्टि जाकी वीरज अनंतसुख उपेरै कर्मकंदजू, चरण अनंतवर लोकालोक भावधर पुन्य पापसौ व्यतीत सुध सुख वृंदजू; वेद कौन भेद तीनौ जोग कौन खेद तहां चेतन प्रकाश भयो कर्मसौ अफंदजू; ऐसे जिनराज निज ज्ञानमे विराजमान अमल अखंड नित ध्यावे देवचंदजू. ॥ १२ ॥

॥ आचार्यस्तवनं ॥

॥ सवैया बतीसा ॥

पंचाचार पाले निज अंगको संभाले भाले-टाले परभाव सब शुद्धभाव भावे हे, परमधरम गहे समता सभाव वहे रहे न सराग चित्त नित्त लिव लावे हे; दुविध दयाके धार कीनो नारि परिहार परिग्रह दूर डारि नीरलोभी दावे हे; परव्याधि दूर टारे रागद्वेष मोह वारे ऐसे आचारज जिको देवचंद ध्यावे हे ॥ १३ ॥

॥ अथ उपाध्याय वरणन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

नित्य सो अनित्यरूप एकानेक कोशरूप सदसद्भाव

स्याद्वादको सहाय है, द्रव्य अभेद नय परजाय भेदनय सग- नैगमादिनै असंख भेद पाय है; द्वादशांगी सूत्रसार पढावे सपरिवार साधे शुद्ध कारज से मोक्षके उपाय है, पंच महाव्रत पाले दोष सबहिको टाले पूजनीक भव्यजीको ऐसे उपाध्याय है ॥ १४ ॥

॥ अथ साधु स्तुति ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

आतमारामके आरामी निज सुखवीसरामी पुन्यके अकामी पापदृष्टिसो न काज हे, इंद्री सुखको न जास रहे जगसो उदास परिग्रह हीन भी अजाचि महाराज हैं, मिथ्यासो विमुख निज ज्ञान भावही के रुख मोक्ष सनमुख सिद्धसुखके समाज है, करम उदिकसेती करत है कियाकर्म सतावीस गुणधारी ऐसे मुनिराज हैं ॥ १५ ॥

॥ दोहा ॥

अविरत आदि अजोग, लगी पदे सिद्धको हेत,
जो गुन जहां पुरन हुवे, सोइ सिद्धको खेत. ॥१६॥

॥ अथ मिथ्यादृष्टिद्वेष कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

आपको न जाने परभावहिको आपा माने गहिके एकांत पक्ष मात्योहे गहलने, भरममे परयो रहे पुन्यकर्महिको चहे वहे अहंबुद्धिभाव थंभ ज्युं महलने; कुगतिसो डरे सद्गतिहिकी इछा करे करनीने धीर होके चाहे मोक्ष दीलने, स्याद्वाद भावविनु एसो जो मिथ्यात्व भाव हेयरूपी कह्यो ज्ञानभावके अदलने ॥ १७ ॥

॥ अथ ग्रंथारंभको नमस्कार ॥

॥ दोहा ॥

छहोभाव स्याद्वादको, जामे अरथ विलास,
समकित कारण ग्रंथ यह, नामे द्रव्यप्रकाश. ॥ १८ ॥

॥ शिष्य प्रश्न ॥

॥ दोहा ॥

ज्ञानरूप आदेयजो, जानो चेतन सोय,
जे अजीव फुनि हेय है, उन जाने क्या होय. ॥१९॥

॥ अथ गुरुउत्तरकथनं ॥

॥ सवैया तेत्रीसा ॥

चेतन द्रव्य अनंत गुनाश्रित ध्येय आदेय स्वभाव धरे है, आप विसारि वसे भवकीचमे आप लखे शिवभाव वरे है, इने यह जीव पराइ कुसंगति चंचलभाव लिये विचरे है, शिष्य संदेह निवारन कारन त्याग स्वरूप वखान करे है॥२०॥

॥ दोहा ॥

त्यागे परको जानिके, गहे आपनो जान,
या ते दोनुं भावको, पंडित करे वखान. ॥ २१ ॥

॥ भेदज्ञान वरणन ॥

॥ दोहा ॥

भेदज्ञान शिवमा गहे, ज्ञानगेय द्रुहिमांहि,
ध्यान ध्येयकी शुद्धता, भेदज्ञान विनुं नाहीं. ॥ २२ ॥

॥ भेदज्ञान उभयमूल नयवरणन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

शुध नय निहचे अवारय सरूपी सत्य व्यवहार क्रिया नय ताते विपरीत है, भेदज्ञान कारन न होय विवहारनय ज्ञानके निहारसे याको त्याग वेही नित है; वस्तुको पीछाने निज शुद्धिको विशुद्ध गने शुद्ध नैसरूप एसो सम्यक्को मीत है, रतन त्रितयको स्वामी देवको अंतरजामी एसो शुद्धनयसो हमारी धीर मीत है ॥ २३ ॥

॥ पुनःचंद्रायणः ॥

बाज लिंग यह नय विवहारा, तत्त्वहीन किरिया आचारा; गहण जोग नय शुद्ध वहन विवेकमे, त्यागयोग विवहार ज्ञानकी टेकमे. ॥ २४ ॥

॥ शुद्धनय महिमा ॥

॥ दोहा ॥

परविमुक्त यह आतमा, चिनमय चंदसमान,
आदि मध्य नहि अंत तस, घोतक निहचे जान. ॥२५॥

॥ शिष्य प्रश्न ॥

॥ दोहा ॥

कह्यो हेय व्यवहार नय ज्ञानहीन पर गेह,
तो कहु कैसे वरणयो, जिनशासनमे एह. ॥ २६ ॥

॥ अथ गुरुउत्तरकथन ॥

॥ सोरठा ॥

जाणण आतम तत्त, निश्चे नय व्यवहार है,
तीर्थ प्रवृत्ति निमित्त तिण, दोनय जिनवर कह्या. ॥२७॥

॥ भेदज्ञान माहात्मकथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जे ते केई भव्य जीव लीन ज्ञानमे सदैव करमके बंधको उखारे एक पलमे, ताको मूळ हेत एक भेदज्ञानहीकी ढेक छेकते विवेकको विचार जोगु दीलमे; बंधको विलासमे मगन जेऊ आतु जाम परे कर्मबंधमांहे रूले जगजालमे, तेतो भेद-ज्ञान विनु निहचे पिछान्यो देव करमको गाढवाढे अज्ञानकी चालमे ॥ २८ ॥

॥ अथ ज्ञानविलास कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

आपा पर भेद लीन आतमा स्वज्ञान पीन करमके पुंजको न आने निज देसमे, वसि निज गुनग्राम भासे आप रूप रास विराजे अखंडरूप आतम प्रदेशमे; अनादि अज्ञानके वशावसि गह्योहे ज्ञानभान जेसे रवि रह्यो घटाके प्रवेशमे, तेसे ए पुराणदेव तत्त्वको पीछाने नाही करमको करतार भयो परदे-शमे ॥ २९ ॥

॥ आतमाअकर्ताकथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

सहज स्वभाव जब गुरुके वचन सेती जान्यो निज तत्त्व तब जाग्यो जीवराय है, मेंतो परद्रव्य नाहि परद्रव्य मेरो नाही ऐसी बुद्ध भासि तब बंध केसे थाय है; देखी जानी गहो तुम परम अनंत पद जाके पद आगे और पद न सुहाय है, प्रमाण

निक्षेप नय जाके तेज आगे अस्त ऐसो निज देव शुद्ध मोक्षरो उपाय है ॥ ३० ॥

॥ अथ आत्मा मुक्तरूपवरणन ॥

॥ दोहा ॥

पंचोदय दीरण प्रमुख, ए सब पुद्गल युक्त;
इनसो पर निज तेजमय, मैंहु कर्म विमुक्त. ॥ ३१ ॥

॥ आत्माथिरभावनाकथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

पवनके थंभसों सुभाव थीर रहे जल तेसो आत्मा जीव होइ करम वियोगसों, जे ते ज्ञान नाथके लगेहे परभाव साथ तेते परजानि दूर करे ज्ञानयोगसों, स्वयंभू चेतनरूप अमल अनंत भूप ताको थिर ध्यान धरो त्यागना तो लोगसों, आस्रव विनास होवे संवररूप भयो ताको बंध गले कौन करम अभोग सों ॥ ३२ ॥

॥ दोहा ॥

वरणादिक परभाव ए, है सब तनके अंग;
नव नव रंग गहे फटिक, पइयुं उपाधिके संग. ॥ ३३ ॥

॥ आत्मफटिकदृष्टांतकथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जैसे मणिफटिक सभाव निरमलरूप तैसे थिर चेतन सदाइ निरमल है, तोभी राग दोष मोह आपनी उपाधिसेती वरयो है संसारमें अजान सो विकल है, तोभी नजे मांहि कब अपनो

॥ भेदज्ञान माहात्मकथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जे ते केई भव्य जीव लीन ज्ञानमे सदैव करमके बंधको उखारे एक पलमे, ताको फल देत एक भेदज्ञानहीकी ढेक छेकते विवेकको विचार जोउं शीलमे; बंधको विलासमे मगन जेऊ आठुं जाम परे कर्मबंधमांहे रुले जगजालमे, तेतो भेद-ज्ञान विनुं निहचे पिछान्यो देव करमको गाढवाढे अज्ञानकी चालमे ॥ २८ ॥

॥ अथ ज्ञानविलास कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

आपा पर भेद लीन आतमा स्वजान पीन करमके पुंजको न आने निज देसमे, वसि निज गुनवास भासे आप रूप रास विराजे अखंडरूप आतम प्रदेशमे; अनादि अज्ञानके वढावसि गड्योहे ज्ञानभान जैसे रवि रह्यो घटाके प्रवेशमें, तैसे ए पुराणदेव तत्त्वको पीछाने नाही करमको करतार भयो परदे-शमे ॥ २९ ॥

॥ आतमाअकर्त्ताकथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

सहज स्वभाव अथ गुरुके वचन सेती जान्यो निज तत्त्व तव जाग्यो जीवराय है, मैंतो परद्रव्य नाहि परद्रव्य मेरो नाही ऐसी बुद्ध भासि तव बंध कैसे थाय है; देखी ज्ञानी गहो तुम परम अनंत पद जाके पद आगे और पद न सुहाय है, प्रमाण

निक्षेप नय जाके तेज आगे अस्त ऐसो निज देव शुद्ध मोक्षरो उपाय है ॥ ३० ॥

॥ अथ आत्मा मुक्तरूपवरणन ॥

॥ दोहा ॥

बंधोदय दीरण प्रमुख, ए सब पुद्गल युक्त;
इनसो पर निज तेजमय, मैं हु कर्म विमुक्त. ॥ ३१ ॥

॥ आत्माथिरभावनाकथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

पवनके थंभसों सुभाव थीर रहे जल तेसो ज्ञाना जीव होइ करम वियोगसों, जे ते ज्ञान नायके लगेहे परभाव साथ तेते परजानि दूर करे ज्ञानयोगसों, स्वयंभू चेतनरूप अमल अनंत भूप ताको थिर ध्यान धरो त्यागना तो लोगसों, आस्रव विनास होवे संवरसरूप भयो ताको बंध गहे कौन करम अभोग सो ॥ ३२ ॥

॥ दोहा ॥

वरणादिक परभाव ए, है सब तनके अंग;
नव नव रंग गहे फकिक, पड्यु उपाधिके संग. ॥ ३३ ॥

॥ आत्मस्फटिकदृष्टांतकथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जैसे मणिफटिक सभाव निरमलरूप तैसे थिर चेतन सदाइ निरमल है, तौभी राग दोष मोह आपनी उपाधिसेती वरपो रे संसारमें अजान सो विकल है, तौभी तजे नांहि कब अपनो

स्वभाव द्रव्य, मूष न कहावे बद्ध कंचन सकल है, तम पक्ष राहु संग चंद्र राहु योग भयो चंद्र कहा तम होइ नित्य जो विमल है ॥ ३४ ॥

॥ संसारीआत्माकथन ॥

॥ कवित ॥

पर परनति निज मानी शुद्ध परनति पर जाने रागादिक संजोग आतमपर भावहि ठाने, रागी रोषी अहं एह विकलप मल मिलीयो करे करमको बंध फीरे जगमेहल फलीयो जिम मूत छाय जुत पुरुष निज मूतभावको इक कहे त्यो जीव एह अज्ञानवसि विविध कर्म बंधन लहे ॥ ३५ ॥

॥ दोहा ॥

चेतन परके जोगमा, परको करता होय,
या ते परको पर लखे, नजे अकर्ता सोय. ॥ ३६ ॥

॥ निजउपादेयपरहेयकथन ॥

॥ दोहा ॥

चेतन विनुं जे ते दरव, ते अशुद्ध परहेय,
शुद्ध चेतना संजुगत, नित्य जीव आदेय. ॥ ३७ ॥
पंच द्रव्य जड हेय है, नामी कहीये शेय;
सांत वखानो प्रगट, स्याद्वाद नय लेय. ॥ ३८ ॥

॥ अथद्रव्यलक्षण ॥

॥ दोहा ॥

उपजे विनसे थिर रहे, यह सद्लक्षण जान;
सत्लक्षनकुं जो धरे, सोइ द्रव्य परधान. ॥ ३९ ॥

॥ द्रव्यचतुष्टयसरूप ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

धरम अधरम द्रव्य नभ काल च्यारो द्रव्य अरूपी अखंड जड भाव लीये वरते, तामे तिन आस्तिकाय काल विनु जिन कहे गहे गनधार तीन पद अनुसरते; च्यारो निज गुणवान लछन नियान नित निज निज काज साजे मिले कौन परते, च्यारो सो विमुक्त नित अधिचितन भवत जीव तत सिद्ध होय समुद्र तरते ॥ ४० ॥

॥ कालद्रव्य विनुं तीन द्रव्यभाव ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

धरम अधरम नभ तीनोको इकेक खंध अकिरीय निरंतर जैनमें वखाने है, धरम अधर्म दोनुं असंख्य प्रदेशवंत लोक असमान मान अचल वहमे है, नभ अंस है अनंत लोकालोक मानवंत गुण पजायमंत अकृत पिछाने है, एवे उनसम तोभी ज्ञान विनुं ज्ञेय नाहि ज्ञेय एक जीव जो तो लोकालोक जानेहे ॥ ४१ ॥

॥ अथ द्रव्यलक्षण ॥

॥ दोहा ॥

जोतो पुद्गल जीवको, चलन सहाई होय;
आप अचल अक्रियनित, धर्म द्रव्य है सोय. ॥४२॥

॥ अथ शिष्य प्रश्न ॥

॥ दोहा ॥

शिष्य कहे सद्गुरु सुनो, यह हम मनमें मर्म;
जगमें पुद्गल जीवको, कैसे प्रेरे धर्म. ॥ ४३ ॥

॥ गुरु उत्तर कथन ॥

॥ दोहा ॥

जैसे जलचर जीवकूं, चलनसहाई नीर;
तैसे पुद्गल जीवको, चलन सहाए वीर ॥ ४४ ॥

॥ अधर्म द्रव्य लक्षन ॥

॥ दोहा ॥

अधर्म द्रव्य जो थिर करे, जीव पुद्गलको साहि,
मध्य दीह ग्रीषम समे, ज्युं पंथी तरुछांही. ॥ ४५ ॥

॥ आकाश द्रव्य लक्षण ॥

॥ दोहा ॥

जो देवें अवगाहना, सो आकाश कहेवाय,
गुणपरजयजुत जा समे, पांचो द्रव्य समाय. ॥ ४६ ॥

॥ अथ सामान्य अष्ट गुण कथन ॥

॥ कवित ॥

पहिलो अस्ति सभाव वस्तु सभावता बीय गिन तीजो द्रव्य सरूप गुन चतुर्थ परमेय परमान पंचम अगुरू लघुत्व छठो सप्रदेश कहीजे, सतम चेतनहीन आठमो अरूप लहीजे, ए आठ द्रव्यके जाति गुन कदाकाल नाविभचरे, धर्मादि द्रव्य-त्रय नीत्य ए आठो गुन नित्यप्रत्ये धरै ॥ ४७ ॥ गति हेतु कह्यो धर्मथिन हेतु है अधर्म अवगाह दैन तो अकाशहीको गुन है तिनौ ए विशेष गुन कहे तिनौ द्रव्यहीके अत्र गुन तीनबोध कहिवेको मन है, द्रव्यको विशेष गुनयहै असाधारन

है [illegible] गुन [illegible] है, [illegible]
गुन [illegible] [illegible] ॥ ४८ ॥

॥ [illegible] कथन ॥

॥ सवैया [illegible] ॥

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] है, [illegible]
[illegible] ॥ ४९ ॥

॥ [illegible] कथन ॥

दोहा ।

[illegible] विलास,
[illegible] आकाश. ॥ ५० ॥

॥ आकाशसृष्टि कथन ॥

॥ दोहा ॥

जो आकाश त्रिविध कह्यो, [illegible] है [illegible]
[illegible] ॥ ५१ ॥
[illegible]
[illegible] ॥ ५२ ॥
[illegible]
[illegible] ॥ ५३ ॥

॥ अथ शिष्य प्रश्न ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

धर्मलोकाकाश मान अधरमताकेमान असंख्य प्रदेशी एक जीव युं अनंत है, लोकालोक नभसम पुद्गलअणु द्रव्य कालके गुणमसमें वरतना अनंत है; आधार लोकाकाससो प्रदेश ते असंखराशि याम थान तुछ अरु आधेय महंत है, ताते कैसे ए समाय कहो सामी को उपाय द्रव्य रिती थिति कीतो हम मन भ्रांति है ॥ ५४ ॥

॥ अथ गुरु उत्तर ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जैसे एक जलवाउं तदमित जलभृत तामे तदुचित सरकरा गलि जाय है, तामे लुणका करको गारिडारे वारडारे तामे सूइको समूह पोमे ठहराय है; जैसे एक गउंमांहि पांचो वस्तु ठहगहि जवादिक तद्रूपक प्रगट दीसाय है, तैसे लोकाकाश-मांहि पांचो द्रव्यमाय जाहि अवगाह गुनकी सामर्थि कहयाय है ॥ ५५ ॥

॥ अन्यमति प्रश्नोत्तर कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

अन्यमति पक्ष गहे कहे यही बान सब धरम अधर्म द्रव्य जगमांही नाही है, परतक्ष दीसे नाही अनुमान ज्ञान नाही उपमान शब्दमांही एनो न कहाही है; ताते जैन कहे वे न अनुमान लेके यथा इंद्री आदहीन मात्र जगमांहि होही है, गतिहेत सो उहेन दविकुन पुनवत् तैसे अरुपी नित्य द्रव्य जगमांहि है. ॥ ५६ ॥

॥ अन्यमति प्रश्नोत्तर ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

कालवादीकी उकती गत थिती रीत इत कालके अधीन दीन हीन मत पीन है, बुध कहे कालगुन नव पुरातनपन दोष क्रिया एक द्रव्य करहु न कौन है; पंचभूत वादी कहे गति वाउ भूत छति थितिरीत समसत प्रथवी अधीन हे, बुध कहे वायुभूमि जीव पुद्गलदल वाको बल और याको बल तोन पीन है ॥ ५७॥

॥ दोहा ॥

या ते पुद्गल जीवको, गति थिति हौत सदीव;
धर्म अधर्म दो द्रव्यजड, इनको ज्ञाता जीव. ॥५८॥

॥ कालद्रव्य लक्षण ॥

॥ दोहा ॥

वरतन परणति जासु नित, क्रियापरा परवान;
नव जीरनको हेतु जो, कालद्रव्य सो जान. ॥५९॥

॥ कालद्रव्य गुणपर्याय कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

अस्ति आदि अष्टगुन युत अप्रदेशी नित समेको मीलन विनुं नाहि अस्तिकाय है, वरतना हेतुए विशेष गुन कहे जिन अगुरु लघुत्व भेद याके परयाय है; आवली प्रमुखपर परजाय हे अनंत उतपाद व्यय ध्रुवमंत कही वाय हे, सो तो द्रव्य एक कहे समय अनंतवंत नरखे नमित वरतनाको उपाय हे ॥६०॥

॥ शिष्य प्रश्न ॥

॥ चोपाई ॥

शिष्य कहे तुम काल बखाना, मनुज खेतमित कह्यो सुजाना;
उत्पादादिक सब जगमांही, समेसमेमें क्युं कहवाही ॥६१॥

॥ अथ गुरु उत्तर ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

सब आचारिज एक गहि जिनमत टेक कहे एसि बात परवान पक्ष गहिकै, नरखेत समे मितकालमांही तीनो होहि छहो द्रव्यमांही तीन देखे ज्ञान लहीकेः ताते उपदेशमांहि कहे जिन बैन एम गहे गनधार परवान सुध गहिकै, देख्यो युं अनंत ज्ञान संवेगे अनंतफलि देखत हमी अनंतज्ञान सरदहिकै ॥ ६२ ॥

॥ अन्य आचारिज वचन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

कहे और गुरु काल द्रव्य है असंख्य थिर रेणुकण लोक-प्रदेश परवान है, एकएक रेणुकमें अनंत प्रगट होत समय सत्त सबे काज परवान है; निज निज काज करे अनमिलपने सदाप ते अग्निकायको कदापि न कहान है, अनंत अतीत काल देखो अनागतकाल अप्रदेशी परिणामी कालद्रव्य मान है ॥ ६३ ॥

॥ निश्चयकालस्वरूप कथन ॥

॥ दोहा ॥

मनुज खेतमित जो कह्यो, सो व्यवहारीकाल;
निहचे सांचो द्रव्यको, कालाणुना चाल. ॥ ६४ ॥

कालद्रव्य उपचारहे, पंच आस्तिकी घाली;
और कथन सब शास्त्रके, सो उपच्यारि भालि. ॥६५॥

॥ हेयउपादेय विवेचन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

उतपाद व्यय ध्रुवपने जीवसम एमी अगुरुलघु वे परजायमी समान हे, अरूपी अखंड अज अनादि अनंतसंत अनमिल औरसे तीलोकके प्रधानहे; इत्यादिक गुनसोस मान तौमी ए अजान तातें ध्यानध्येयमा ध्येय ज्ञानवान् है, अनंत त्रिगुणसाथ देवचंद गुणनाथ ध्येय उपादेय मझ ज्ञानको निधान हे ॥ ६६ ॥

॥ इति द्रव्यप्रकाशको प्रथम अधिकार ॥

॥ दोहा ॥

बरने न्यारो द्रव्यपर, जेह अरूप अजान;
अब बरनौ संक्षेपसौं, रूपी जड परमान. ॥ १ ॥

॥ अथ आतमाकरमयोगको दृष्टांत ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जैसे नीरनिधि नीर समीरकी भीर मेती उछरे उतंग अति चंचलता विससे, डौलतनदीकोनाथ चपलकल्लोलसाथ रंचनसु थिर होइ आकुलता मिलसे; तैसे ए चेतनभूप अमल अडोलरूप अखंड अनंत ज्ञान सुद्र समेवसे, सोइ जीव कर्म प्रेर्यो मोहके पवन घेर्यो फेर्यो फीरे ममताको क्षोभ भाव क्रोध सौं ॥ २ ॥

॥ पुनः दृष्टांत ॥

जैसे माटी जलसंग–घट दीपकादि चंग–नवनव भाव धरे मृदरूप वोइ है, तैसे कर्मजल जोग–जीव च्यारगति रोग–लहेयें अखंड ध्रुव चेतनत्व सोई है; ऐसो निज गुणवंत–अमल अखंड संत–ताहिको सरूप गहि सिद्धरूप जोइ है, कहे देवचंद वंदि ऐसे चिदानंद विनु मोक्षको साधक भइया और नही कोइ है ॥ ३ ॥

॥ पुद्गल द्रव्य लक्षण ॥

॥ दोहा ॥

पूरण गलणन सभावधर, अस्तिकायपुग्लिक,
फरसं वरण रसगंधमय, पुद्गलद्रव्य सु ठीक ॥ ४ ॥

॥ अथ पुद्गलगुणपर्याय कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जाके मूल गुनगनि रूपी अचेतन भनि अस्तिपन आदि खट आठे ओव गुन है, पुरनगलनरूपी अनुको विसेस गुन यहै असाधारनके उरमांही जैन है ॥; हानिवृद्धिषटविध मूल परयाय याके द्रुणुक प्रमुखखंध परजायआने है, एकवर्ण एक गंध एक रस द्वै फरस पांचो गुन याके मूल परीयैयजाने है ॥ ५ ॥

॥ पुद्गल द्रव्य सरूप ॥

॥ दोहा ॥

अन्यखंधसौ मिलनकी, यामे सकति सदाय,
याते परनासी प्रगट, अस्तिकाय कहेवाय. ॥ ६ ॥

पुद्गल द्रव्य अनंत है, सब नभ अंस समान,
ताके खंध अनंत है, नानापास संठान. ॥ ७ ॥
सो पुद्गल है दोय विध, इक अनु दूजो खंध,
खंध दुविध एक जीव, विन जीव कर्मको बंध. ॥८॥

॥ पुद्गलखंध स्वरूप ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

छूटे अनुहे अनंत तेम्यां खंधमें मिलत अनुके सकंध होय खंध अनु होय है, जे ते अनुहे अनंत ते ते खंध होय नाहि ऐसी बात कहे सोतो मुरख अबोह है; तासे कहे द्रव्य पुद्गल परावर्तकाल मिले कैसी भांति जासें पुद्गल सोहहे, अनुगति जीवसम बीतिहे अमीतनिन कही अनुबात अब खंधको मबोहहे ॥ ९ ॥

॥ पुद्गलपर्याय कथन ॥

॥ दोहा ॥

छाया आतप तेजतम, सबदबंध लघुथूल,
विछुरन मिलन प्रवाहगति, इनको पुद्गलमूल. ॥ १० ॥
केइ इंद्री गम्य है, केइ अगम्य निरधार,
संखअसंख अनंतअनु, त्रिधा खंध विस्तार. ॥ ११ ॥
ज्ञानहीन जडहेय सब, उपादेय जीउ सार,
अब बरनौ निज ज्ञानहित, कर्मबंध विस्तार. ॥ १२ ॥

॥ अथ कर्महेतु कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

पंचमिथ्याको अविरत बारसंच पंचविस संपराय योग पंच

दस है, एते सगवन हेतु कर्मबंधहीके खेत ताके भेद चौ प्रकृति थितिरस देस है; प्रकृति समावथिति कालठहरा वरस चिकणाई दल समुदाय परदेस है, करे निजनिज काज भाव-कर्मके समाज मोदकको दृष्टांत च्यारोमे अवस है ॥ १३ ॥

॥ कर्म अष्टप्रकार कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

प्रथम ज्ञानावरणीय ज्ञानको अछादलेय आंखपर पट जैसे याको सब दाव है, भेदमति आदि पंच पांच्यो निज गुण वंचे क्षायकक्षयोपशम यामे दोय भाव है; दरसन उछेदक दरसना वरनीय प्रतिहारसम ध्रुवबंधी ठहराव है, दंसनावरन च्यार निंद पांच परकार यामे दोय भाव मोहदृष्टिको उपाव है ॥ १४ ॥ वेदनीकरमभर अव्याबाध रसहर ताके दोय भेद एक सातामी असाता है, असाताको पाप हेतु साता हेतु पुण्य होत मधु-लेपयुत असिधारासी घटात है; मोहनीके भेद दोय दंसनके तीन भेद जगमे कहात है, मिथ्यामोह मिश्रमोह समकित कंखामोह तिनोंइ प्रकृति निज गुनकेरे घात है ॥ १५ ॥

॥ मिथ्यामतवरणन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

देहसों भ्रांत प्रतीत अनीत सों पून्यकी रीत सौ जाकी मिताई, जीव अजीव विवेककी टेक न जानत नां कछु आप पराई; करे बहिरंग दयादि क्रियाफुनि अंतर ज्ञान भगति न पाई, चंद कहे जिनचंद कृपावसि ऐसी मिथ्यामति जाइ पुलाई ॥ १६ ॥

॥ मिश्रदृष्टिवरणन ॥

॥ दोहा ॥

वीतरागके वचनपे, नाहि राग नाहि द्वेष;
फलभक्षीनर अन्नज्युं, मिश्रमोहसे लेख. ॥ १७ ॥

॥ सम्यकृदृष्टिलक्षन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

ज्याको तन भांति नांहि सातापर मिती नांहि ज्ञानरीति लीयो निज नीत माही वसेहे, निसंकादि अष्ट सिष्ट इष्ट निज गुननिष्ट अंतरंग बहिरंग संतरस लसेहे; इंद्री सुखसु विमुख सिद्ध सुख सनमुख निज ज्ञान रूपसौ वस्तुथ भाव नसे है, वरते धरमराग देवादिकपे सराग पावे समकीत मोह राग संग हसे है ॥ १८ ॥

॥ दोहा ॥

मिथ्यामोह अशुद्ध दल, शुद्ध सो समकीत नाम;
भद्रा शुचि रुचि तो सही, जति यार परनाम. ॥१९॥

॥ चारित्रमोहनीयकेभेद ॥

॥ चोपाई ॥

चरनमोहके द्वै परकारा, तिहां कषायका बहु विस्तारा;
नोकषायकी नवविध धारा, अब बरनो टहन परचारा.॥२०

॥ आयुकर्मभेद ॥

॥ दोहा ॥

भवथितिकरिगज लेटसम, अन्तरगाहको खेद;
नानारक तिग अमर, आउकरम चौभेद. ॥ २१ ॥

॥ नामकर्मभेद ॥

॥ दोहा ॥

नामकर्मके भेद बहु, वरणन बडे ग्रंथ;
तातें वरनो नाम कछु, जासे कछु अरथ. ॥ २२ ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

पैसठि प्रकृति पींड अठावीसहे अपींड सब मिल्यां नामभेद तिरानु कहानहे, तनपंचदशमांहि पांचको गहन कीजे वरनादी वीसमांही च्यारोइ गहनहे; तब सडसठी भेद भये बंधमांही गहे उदय उदीरनामे इनहुको मानहे, सत्ताके सरूपमांही ग्रान- वेकोहे उछाही देवचंद कर्ममुक्त सदा सुखथान हे. ॥२३॥

॥ अथगोत्रकर्मभेद ॥

॥ दोहा ॥

उंच नीच दो भेदको, गोतकरम जड जान;
मुंदे निजगुन अगुरुलघु, कुंभकारसम जान. ॥ २४ ॥

॥ अंतराय पांच भेद ॥

॥ दोहा ॥

दान लाभ बल भोगको, वळी उपभोग प्रकार;
इन पांचोको मुदले, अंतराय सो धार. ॥ २५ ॥

॥ अष्टकर्म उत्कष्टथीति कथन ॥

॥ दोहा ॥

ज्ञानदर्शनावरण अरु, वेदनीय अंतराय,
इनकि कोडाकोडी थीति, सागर तीस कहाय. ॥२६॥

सित्तरी कोडाकोडी थीति, मोहनीयके थीस;
सागर कोडाकोडी थीति, नामगोतके बीस. ॥२७॥

॥ अष्टकर्म जघन्यथीति ॥

॥ दोहा ॥

बंधकर्मकी जघन्य थीति, एक महुरत होय;
परमदेव अरु नरककी, सागर तेवीस जोय. ॥ २८ ॥

॥ अथ रसबंध कथन ॥

॥ दोहा ॥

सर्वघाति उत्कृष्टरस, देस घातकी मध्य;
शुभ अघातीको हीनरस, आगममांहि प्रसिद्ध. ॥ २९ ॥
वरणगंध अरु परस ते; रस अनंतगुण होय;
कर्ममांही रस अनंत विन, कर्म न बंधे कोय. ॥३०॥

॥ अथ प्रदेशबंध अष्ट वरगना सरूप कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

उदारिक वैक्रिय आहारक तेजससो भासा सासोस्वास मन कारमण अंतहे, एकाणुक आदि है अभव्य जीवसो अनंत उदारिक अगहन गहन अनंतहे; वैकरीकी अगहन ताही सो अनंत तासो वैक्रिय गहन वरगना अनंत है, [illegible] पुद्गलदल षट्दमंत इनसो विमुक्त देवचंद महासंत है ।[illegible]।

॥ अथ कर्मदल विभंजन कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

परयो मोहकर्मपास बंधे आठ [illegible]
अरु आउके वरतमीये, ताते [illegible]

ज्ञानदंस आवरन अंतराय ठानीये; ताही ते अधिकमोह कर्म परमाणु होत ताहिके अधिक वेदनीयके पीछानीये, याते तुछ अणुदल वेदनी प्रगट नांहि सरस निर सरूप भोजन ज्युं जानीये. ॥ ३२ ॥

॥ दोहा ॥

सर्व घाती परमाणु अति, देसघातके हीन;
वीभजै बंधसमे तुरत, सक्ति जीवकी पीन. ॥३३॥

॥ जीवमहिमा कथन ॥

॥ दोहा ॥

इत्यादिक बहु कर्मदल, इनमे लपट्यो जीव;
लहे विविधविध बंधको, तोभी मुक्त सदीव. ॥ ३४ ॥

॥ आतममहिमा ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

पुद्गल है प्रगट चेतन है गुप्तरूप अणु मुरतीक ठीक जीव मूरतीन है, पुद्गल है अजान जीव लोकालोक जान ज्ञानादिक गुनधान थिरतामे लीन है; चिरकाल कर्मसंग रह्यो तौभी कर्ममुक्त विवहारपक्ष गहे कर्मके अधीन है, अक्षर त्रिगुणइंद देवचंद ज्ञानइंद अक्षर सभाव लीये अक्षैरस पीनहे. ॥३५॥

॥ इतिश्री द्रव्यप्रकाशको द्वितीयद्वारं संपूर्णम् ॥

॥ दोहा ॥

वरण्यो पुद्गल द्रव्यको, संक्षेपे अधिकार;
अब वरनो संक्षेपसो, जीवद्वार सुविचार. ॥ १ ॥

॥ जीवलक्षण ॥

॥ दोहा ॥

तिहुं काल जयवंत जो. चेतनता गुणखानि,
लिपे न परके लेपसों, सोउ जीव बखानि. ॥ २ ॥

॥ जीवस्वभाव कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

कर्मको करता न भोगता न करमको आतम धर्मवंत परम अफंद है, असंख्य प्रदेशधर चेतना रमणीक अस्तिआदि खट-पर कारणुन कंद है; परभाव भावितर्ष सदाई अपरभाव निज परभाव भवमीतीसु अमंद है, अनंत अभेदवंत संतसधावंत संत सदा देवचंद है ॥ ३ ॥

॥ जीवद्रव्यके च्यार पर्याय कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

मूल परजाय है अगुरुलघुको विकार खट हानि वृद्धिरूप द्रव्यको सरूप है, परपरजाय नर नरकादि अवयार मति आदि परजाय व्यंजन अनूप है; स्वभाव द्रव्यव्यंजन ए परजैचर मतरं ताते न्यून सिद्ध अवगाहना अरूप है, अनंत चतुष्क गुण व्यंजनके परजाय निजकाज करतार निजगुण भूप है ॥४॥

॥ एक द्रव्य एक क्रिया करे यह कथन ॥

॥ चोपाई ॥

दोय द्रव्य एक किरिया न करे, दोय किरिया इक द्रव्य सिन धरे;
एक वस्तु एक किरिया गने, यह यथार्थ जिनराज बखाने. ॥५॥

॥ शिष्यप्रश्न ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

निहचे असुद्धनय व्यायरागादिक चय ताहीको व्यापक होय कर्मसौ करतुहे, सोई व्यवहार लई वेदक सभाव गहि गतसमय कृत क्रिया फलको गहतु हे; कृतकर्म भोगता हे नुतनको करता हे एक समे एक जीव क्रिया दो धरतु हे, हमकुं संदेह एह कहो गुरु गुनगेह तुंहारे सिद्धांत वीचीके सो अभिमतुहे. ॥ ६ ॥

॥ अथ गुरुउत्तर कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

सुद्धपने अपने गुनको करता यह जीव जथारथ एही, ज्ञान सरूप अनुप सबे गुण रासि वधे गतदोष अनेही; भावत कर्म करे पर योग विभाव संजोग अज्ञानको गेही, ताही ते द्रव्यत कर्म उपाधि लगे जीउको किरिया द्रपकेही ॥७॥

॥ दोहा ॥

चिद्रुप रागादि पर, कीने ताके रोध;
द्रव्यकर्मको रोव हे, ताते निर्मल बोध. ॥ ८ ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

ज्ञानरूप ज्ञानमांहि क्रोध भाव क्रोधमांहि ज्ञान क्रोध एकतान होय कहुं वातमे, ज्ञानरूप आतमामे रागदोष मोह नाही वस्तुको स्वभाव भेद सुद्धताके ध्यानमे; एसो ज्ञान धरे सोतो कर्म कोन बंध करे वरे न असुद्ध मोह जग्यो भेद ज्ञानमे, चेतनाहे जीव वस्तु कर्म पुद्गल वस्तु वस्तु गुण कृति भेद जिनके वखानमे. ॥ ९ ॥

॥ संवरहेतुकथन ॥

॥ दोहा ॥

जाग्यो आतम ज्ञानसो, आतम आस्रव भेद;
तब आस्रव संवर भयो, गयो कर्मको खेद. ॥१०॥

॥ अथ ज्ञानाजीवबरणन ॥

॥ सवैया इकत्तीसा ॥

काहुं एक संत जीव निज गुन गहि लीने पर गुन त्याग जोग पर जानी त्यागे है, विरम्यो विरुद्ध सेती रम्यो निज गुन रेती मोहके सुभट जेते ते ते दूर भागे हैं; रातो निज आतमासो दूर टरयो हेतमांसो विमुख होय ज्ञान ध्यान लागे है, ऐसे शुद्ध जीव देव करे नही कर्म टेव शुद्धता सुधाइ पावे संतरस पागे है ॥ ११ ॥

॥ उपदेशकथन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

मूरख जीव धरे चित्तमे बहु अल्प विकल्प सदा दुखदाई, ध्यानदु मग्न सदा अति उज्ज्वल दूर तजो सब सोज पराई; दर्शन लाभ पहे जगमे वर जीवको काल अनंत सदाई, वदे देवचंद रहो हम सो ध्रुव अक्षर मय गुण भाँति सदाई।।१२॥

॥ रागादिकसौशिष्यप्रश्नगुरुउत्तरकथन ॥

॥ सवैया ॥

कोउ कहे रागादिक चेतनसो नित नांहि आदि विनुं सदा काल एकही सभाव है, ऐसे अनुरागी नाही रागी कहो

जीवहीको या ते जीव रागादिक तादात्म्यता दाव है; संत कहे बंध्ये विनु छुटो कहनो असत्य रागादिक एक माने मुक्तिको अभाव है, या ते यह तद्वीक कही देवचंद्रजात रागादिक पर द्रव्य कर्मको विभाव है. ॥ १३ ॥

॥ आतमशिक्षा कथन ॥

॥ चोपाई ॥

सदा अनंत विकलपजल्पको धारते कहा बंधतहो; कर्म नीकशी निज कार तेजो; विकल्प विनु एक नित्य निज अनुभवो, तो न करो पर बंध धरो न भव नवो. ॥ १४ ॥

॥ अथ ज्ञान महिमा ॥

॥ दोहा ॥

यह परमातम ज्ञान गुन, भवतरु छेदनहार;
ध्येयरूप आदेय फुनि, मुनिजन मन आधार. ॥१५॥

॥ शिवभयहेतु कथन ॥

॥ दोहा ॥

जिनवर जन सुखकर कह्यो, यह उपदेश उदार;
शिव थानक निज गुन गहन, निज गुन त्याग संसार.॥१६

॥ जीयमहिमा ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जामे इंद्री पंचनाही कर्मको प्रपंच नाहि मनको न रंच जामे तनको न अंगहे, नाहि कर्म हेतु खेद मार्गनाको भयो छेद ध्यानध्याता भेद नत वचन तरंग है; शांत ध्रुव निरुपाधि

छिन पर क्रिया व्याधि पर रूप न असेस लेस न अनंग है, ज्ञान जोतिमा समान रतन त्रिलपदको जान ऐसो सुध नित्य देव मेरे घट संगहे. ॥ १७ ॥

॥ भेदज्ञानमहिमा कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

ऐसे कोउ जैनमत भेदज्ञान भावधारि जीवकर्म भेद कीनो हंसक्षीर नीर ज्यो, मोहको विनास कीनो आत्मगुन गहेलीनो भीनो शुद्ध धरामांहि जैसे जयवीर ज्यो; आपविपे धीर भयो आपही आनंदरूप शुद्धस्वाप ध्यानध्येय ध्याता होय धीर ज्यो, शुद्धबुद्ध भयो इनो मुनी भयो कर्मपुर जनो कीनो रागदोष पायो भवतीर ज्यो ॥ १८ ॥

॥ स्याद्वादशुद्धचेतन स्वरूप कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जामें उतपात व्यय ध्रुव धारा तीनो एक समे विधी होइ रही गुणपर्यें ज्ञानमें, एक है अनेक है कि करता अकरता है भोगता अभोगता बखान्यो जिनवानमें, शुद्ध शिव महारूप मतिचेतनारूप पुरन प्रकाश भये जिन जैन थानमें, एसो शुद्धचेतन तन तिलन संगतिसो नट जैसे बाजी खेले भवके भोगानमें ॥ १९ ॥

॥ शिष्य प्रश्न ॥

॥ दोहा ॥

शिष्य कहे सद्गुरु सुनो, यह हम मन संदेह,
जातिभेद वे क्युं भयो, जडचेतनको नेह. ॥२०॥

॥ गुरु उवाच ॥

॥ दोहा ॥

[illegible]
[illegible] ॥ २१ ॥
[illegible]
[illegible] ॥ २२ ॥

॥ शिष्य उवाच पुनः ॥

॥ दोहा ॥

[illegible]
[illegible] ॥ २३ ॥

॥ गुरु उवाच [illegible] ॥

॥ [illegible] ॥

[illegible] ॥२४॥

[illegible]

[illegible]
[illegible] ॥२५॥

॥ [illegible] ॥

॥ [illegible] ॥

[illegible]

ताहीको विनाश दोनुं पुद्गलने रुसेहे; अनादिता कहे याको प्रसंग अनंत होत जेते [illegible] ते एक जो योग सदा वसेहे, एवे दोषवंत वानि तुम कहि कहा जाने गुरुजी हमारो चित संसयमांही धसेहे ॥ २६ ॥

॥ गुरु उत्तर कथन ॥

॥ दोहा ॥

मिळे हेतु विनसे जने, परनु अनादि ज्युं सांत,
कर्मभव्यके पुंनसे, कनक मेट दृष्टांत. ॥ २७ ॥
आतम करे निजभावको, न करे परपरनाम,
स्वस्वभाव किरिया करे, सो पावे शिव ठाम. ॥ २८ ॥
असद्भूत नीहचे करे, भावकर्म ए जीव;
द्रव्यकर्मको फुनिकहे, नयव्यवहार सदीव. ॥ २९ ॥

॥ शिष्य प्रश्न ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

व्यापक अरु व्यापकको भाव इह कह्यो शिष्ट करता करमको या निरपहीकी रितहे, ताहीके अभाव कैसे द्रव्य कर्म-पुद्गल करेगो चेतनराम तासों जो व्यतीत हे; व्याप अरू व्यापकता तनमय गुणसंग परभावसंग ताको कहीयो अतीत हे, तदमे अभाव होत करमको करतार अनादि अनंत जीव कही-नेकी भीति हे ॥ ३० ॥

॥ गुरु उत्तर कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

कर्मके निमित्त कहे आतमाके परिणाम आतम परिणामको निमित्त एवं कर्म हे, याते दुहुभावहीको हेतु हेतुमंत भाव

लगी रह्यो परभाव मेरो एतो भर्म हे; जेसे लोह भ्रमको निमित्त कह्यो चमकको चमकको शक्तिको निमित्त लोहकर्म हे, ऐसे जीव कर्मको संयोग लगी रह्यो तोभी निहचे विचारे भिन्न कर्म जीव धर्म हे ॥ ३१ ॥

॥ अथ मीमांसकमत कथन जैन उत्तर सहित ॥

॥ सवैसा इकतीसा ॥

मंद कहे सुखदुःख भाव सिव आदिककी करता प्रकृति एक जीव ब्रह्म न्यारो हे, करता न काहुको हे भोगता न होय काको करता दिवाको सब प्रकृतिको प्यारो हे; तासो कहे बुद्ध भैया शिव भेद दासुं किया एक करे ऐसो बोध कहा सौ विस्तारचो हे, सुखदुखकी निमित्त प्रकृति कहांसो सत्त ताको काके कारिजको कर्ताभोक्ता धारचो हे ॥ ३२ ॥

॥ जिनवचन ॥

॥ दोहा ॥

करता भोक्ता ज्ञानको, निहचे ब्रह्म सदैव;
करे भोगवे कर्मको, विवहारेय जीव. ॥ ३३ ॥

॥ ब्रह्मवादीमत कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

ब्रह्मवादी कहे ब्रह्म एकहे अखंड सो तो ध्रुवज्ञान मुद्रा धरि वैकुंठमे रहे हे, ताके सब अंस ए ते दीसे जगमांहि जे ते जडज्ञाता नवनव सब वास लहेदे; पूर्ण नित्य ब्रह्म ज्योति ताकी इछा जब होत तब ताही अंसको भी वैकुंठमे गहे हे, ऐसे सुध्द ब्रह्म देवचंद निजाधीन वसो ताको कर्मवसि सुखी दुःखी कोन कहेहे. ॥ ३४ ॥

॥ ताको जैनउत्तर कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जैन कहे ब्रह्म रीत इछाभावसौं अतीत गतदोष मोक्षमय इछा दोष गनीये, असंख्यप्रदेशी सी अखंड त्रिहुं काल सदा ताके खंड करि देखे हेतु कौन जानीये; ताते जीव हे अनंत निज ज्ञान गुणवंत नित्यानित्य भाववंत शुद्धते वखानीये, तामें जे विभाव वसी ते ते भववासी कहे जे ते कर्ममुक्त ते ते सिद्ध बुद्ध मानीये ॥ ३५ ॥

॥ अथ बौद्धमतकथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

बुद्ध कहे प्रथम समे मे जोउ जीव हुतो तृतीय समेमे सोउ जीव वस्तु नाहीहे, कर्त्ता हे कर्मकु जो सो तो भोगता न होय करे और लहे और मेरे मत मांही हे; जैसे जीव तैसे और वस्तु सब बुद्धी माने जाने न सरूप शुद्धबुद्ध रीति सोही है, परजे सभावको सर्वथा द्रव्य कहे रहे मद मत निज बोध धारा वाही हे. ॥ ३६ ॥

॥ जैनकथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जैन कहे वस्तुरीत्य नीयत दरव नय नित्य निराबाध पर जायते अनित्य हे, समे समे नयो होय तव कैसे एसी बात जाने यह मेरो कीनो यह मेरो कृत्य है; बालपने कीनो काम वृधपने याद आवे एकांत अनित्य पक्ष गहते असत्य हे; ताते

उतपात व्यय ध्रुव धारा तीनो सदा एक समे एक वस्तु बीचि कही सत्य है. ॥ ३७ ॥

॥ न्यायमति ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

ऐसे वानी सुनी मनमांही न सुहानी तब न्यायमति बोल्यो निज पक्षको पकरीके, नारी विनुं होय कैसे संतानके उपज न भोजनको करे कोउ पाक विनुं करेके; उद्यमके कीये विनुं कैसे कार्यसिद्धी होत उद्यम प्रधान याते कह्यो और हरिके, याते करतार जीव कह्यो विश्वनाथ ऐसे वीरजको फोरि निज उद्यमको धरिके ॥ ३८ ॥

॥ ताको जैन उत्तर कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जैन कहे एनो बात कही है एकंतनय स्यादवाद वादी ऐसी बात नाही कहे है, चेतनको वीरज जागे भागे परभाव सब याते यह उद्यम व्योहारमांही गहेहे; कर्म उदे उद्यम सो गुन भय वहेहे, कर्मको स्वामित्वपनो भेदज्ञान भाव विनुं अहं बुद्धि भाव वसि चेतनजी लहेहे ॥ ३९ ॥

॥ शिवमति कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

शिवमति कालवादि कालवस गहे रहे, कहे सब जगतात कालमत पीन है, कालवसि बालक सो युवा होय वृद्ध होय कालवाय वस्तु जो नवीन सोइ छीनहे; कालवसि रितु फिरे

कालपाय फल दिये जनममरन ग्यान कालहीमें लीन है, याते सुखदुख दाता सिवबास भवबास रवि ससी उदे अस्त कालके आधीन है ॥ ४० ॥

॥ जैनउत्तर कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जैन कहे सुनो भैया जेती कही तुम बात तेती सब साची पै एकांत नाहि गहनी, स्वभाव नियत पूर्व कर्म पुनी उद्यम सो पंचमो तो समवाय कालवसि यहनी; पांच समवाय मिले फले तब शिवकाज समवाय मिल्यो बिनु काज नाहि सरनो, मतपक्षपात दूरी स्याद्वाद भाव धरी नय भंग भेद सुन एसो ज्ञान धरनो ॥ ४१ ॥

॥ सर्वमत एकत्वीकरन जैनमत स्थापन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

मीमांसक कर्ममांनि विवहार पक्ष गहे वेदपाठी ब्रह्म मानी दर्व नय गहतुहे, बौध छिन भंग कहे परजाय नय जाय मति करे करतार उद्यम महतुहे; शिवमति कालवादी सर्व कालाधीन मानी पांचो समवाय तजि टेकमे रहतुहे, एते सब अंतवादी अंधगज रीति गहे स्याद्वादि सर्व ए अनेकता कहतुहे ॥ ४२ ॥

॥ अथ षट्दर्शन जैनके अंशरूप कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

विवहार नय गहे प्रकृतिहि मुख्य रूप निश्चे स्वभाव

ब्रह्म नित्य ज्ञान धाम हे, परजायनें अध्रुव सुक्षम सभाव धर उदिम सभाव लीये करतार राम हे; कालचाल हे प्रवाह पर नाम चक्रगति सुं अनेक अंगपान जीव पर नाम हे, एक अंग तजि सरवंग गहे सो सुबुन्द्धी एक अंगरंग रागि सो कुबुद्धि खाम हे ॥ ४३ ॥

॥ अथ स्यादयादस्वरूप कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

आपने चतुष्कगुन हेसो नाही परगुन या ते दोउं बात सम कथन रहतुहे, हे भी नाही कह्यो जाय नाहि नाहि कह्यो जाय, कह्यो जाय हेहत न कह्यो सर्व नयमें कहतु हे; नित्य हे अनित्य हेकी सत्य हे असत्य हेकि अवक्तव्य वक तव्य सव अभिमतु है, एसो प्रभु चिदानंद ज्ञानादि त्रिगुन योग देवचंद पद पाय आनंद लहतुहे ॥ ४४ ॥

॥ सविकल्पनिर्विकल्पज्ञान कथन ॥

॥ दोहा ॥

नय नय गुनमय जीव कह्यो, यह सविकल्प ज्ञान;
नास कर्म कर एकमय, निर्विकल्पको ध्यान. ॥ ४५ ॥

॥ निर्विकल्पमहिमाध्यान कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

अनादि अज्ञान लीये रागदोष मद पीये मोह महातम सो महातम वधारयो हे, तीन लोक जीत लीयो ज्ञानगुन मुद दीयो कीयो निज राज परभावको पसारयो हे; ताको पर-

ताप तोरी कर्म दोरको मरोरी भोरी परभाव राज ज्ञानराज धारयो हे, ऐसो निर्विकल्प ध्यान ताको महिमान मान जाने देवचंद औरको कहनहारो हे ॥ ४६ ॥

॥ अथ निर्विकल्पध्यानहेतु कथन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

ज्ञानको गेह अछेह आनंदको फंदके कंदको छेदनहारो, वीरयशक्ति अनंतको नायक लायक क्षायक भाव उजारो; घायक मोहको भायक सोहको सोजलीये निजबोधि पसारो, ध्यान एकत्वको हेतु हे आतम पातम तापको टालनहारो ॥४७॥

॥ अथ तनहेय कथन ॥

॥ दोहा ॥

जोति अनादि अनंतवर, परकरता निज मानी;
भयो गेह अज्ञानको, स्वस्वरूप गुनभानि. ॥ ४८ ॥
ज्ञानदृष्टि छुटे भइ, तन परिचे तन भांति;
परक्रिय करता भ्रम भयो, मतवाला दृष्टांत. ॥ ४९ ॥
जैसे इंद्री भोगपरि, हे तेरो अनुराग;
तैसो आतम ज्ञानहुं, धरि चित यह शिवमाग. ॥५०॥
जो रूपी सोहे नही, में अरूप चिद्रुप;
यावे तजी परभाव सब, आतमरूप भजी अनुप. ॥५१॥
जा तनको ममता गये, आतमतत्त्व दृढ होय;
ताको जो अपनो गिने, मूढ वृद्ध हे सोय. ॥ ५२ ॥
तन ए पुद्गल पिंड जड, तुं चेतन अमलानी;
एसो अमिल मिलाप सब, ज्युं कीसि विधि आनि. ॥५३॥

मांस अस्थि रुधिरादिको, करे दुगंछा पेखी;
तन्मय तनको निज गने, यह अज्ञानता देखी. ॥५४॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

देहको नेह तजो तुम चातुर आतुर भाव सदाईन पांही,
व्यंतरके पुरसी छिनभंगुर रूपकी सोभ सो बादर छांही;
घणा(?) दिनके सवसि दुगंधके दुपन गेह यदी इनमांही,
या तनकी ममता न तजो तो (लो,) आतमज्ञान जगे तुम नांही. ॥ ५५ ॥

॥ दोहा ॥

देहादिकको भिन्न गणी, गहि आतम शीवकुल;
परमें निज अभिमानता, यह भव भ्रमणा मूल. ॥५६॥

॥ निस्पृहताभाव कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

अघरम घाती शिव मारगको संघाती एसो रंच नाही पक्षपाती अध्यातम राव हे, परम नरमवर भेदज्ञान भावधर दुरि परदोष कर्म नासको उपाव हे; तन मन विषा धन योवनादि पर गिनें मोहद्रोहमें नमे न जीनकेको दाव हे,नरककी भीत नांहि सुरपद प्रीति नांहि भवरीति विरंयो ऐसा निरपृह भाव हे ॥ ५७ ॥

॥ दोहा ॥

स्व स्वरूपमग्न इन्द्रिको, नाहि शक्रपद चाहि;
स्व स्वरूपगत इन्द्रिको, टकुपद रहे उठाहि. ॥ ५८ ॥
परम ज्योति सुखस्वादग्न, योगी जोग विरत्त;
दुदिन अन्न ज्युं राग विनुं, आ नहि विषय अनित्त.॥५९॥

आतम अनुभव सुखसो, भ्रष्ट भये दुरबुद्धि;
विषयन रति चितमें करे, सुकर कादम शुद्ध. ॥ ६० ॥

॥ आतम स्वरूप वरणन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

शुद्ध सुछंद अमंद अनंद आनंदको कंद सदा सुख धारी, ऐसो अनोपम आतमज्ञान सुधाघर कुंडमें झीले अपारी; अनादि अज्ञानके भर्म लग्यो यह कर्म कलंको मैल परवारी, संत लहे निरवानको थानक दर्शनज्ञान चरित्रसे भारी ॥ ६१ ॥

॥ दोहा ॥

स्व स्वरूप आलंब विन, शिवपथ और नहींज;
मुक्ति स्त्री वश करनको, सोहं ध्यान सुबीज. ॥ ६२ ॥
जैसे पंकजदल अमल, रहे कर्मसें भिन्न,
त्यों आतम स्व सभावमय, कर्मखेदनिर्विन्न ॥ ६३ ॥

॥ इन्द्रियसुखहेय कथन ॥

॥ सवैया इकत्तीसा ॥

जग इंद्री सुख जेते ते ते सब दुखरूप कबहुं न समता. रे ममता अनंत हे, जैसे पंथी मरुदेश ग्रीषम समे प्रवेश मध्य दीन नीर बिन भोजन करत हे; कामभोग रतिमति उचित न तोरे राम पामराज जैसे दुख राशीमे महंत हे, पाग ज्युं दुख देय निह्चे सरूप हेय गेय योग उपादेय मानने अरंत हे ॥ ६४ ॥

॥ दोहा ॥

उत्तम पद-ते तुं पर्यो, सो विभाव अनुभाव;
तोमी शाहि मेरसें, कहाकहो गुनराव. ॥ ६५ ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

यह शरीर हे पीरको पीहरई पर आतमकी हरहेरी, घेरी करेरी परी यह ज्ञायक काई अनेरी रही नही सेरी; ज्ञान सरूपमयी भजि चेतन ए तनये मन प्रीति उवेरी, ज्ञानको मोगर लेकर आतम तोरि नुं मोह जंजीरकी जेरी ॥ ६६ ॥

॥ शरीर कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

मेनो तनधारी नांहि एनो तन मेरो नांही मेनो ज्ञान गुणधारी कम्मस्यो न्यारो है, मेनो चेतना सरूप एनो जड भावरूप मेरो याको कोन नेह यह न विचारयो है; मेनो नित्य ए अनित्य प्रगट अशुचिग्लानि हानिथान एसो देह मोको कैसे प्यारो हे, मोहके विलंब घेग्यो भयकाल थिन भ्रम्यो एसो भेदज्ञान मे नो चितमे न धार्यो है ॥६७॥

॥ परहेयआतमाउपादेय कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

शुद्ध दृष्टि समकिती भइने विनश्वर कायको ममत्व कह्यो कह्यो ज्ञान है, मिथ्यादृष्टि कुमति परंग राच्यो संतो पर वस्तु कहदेको भोगता कहान है; निज परको विवेक करे भेद-ज्ञान टेक टेक हारिके अनेक यह जैन बात हे परमुक्त गुणवृन्द भक्ति विन मुक्तिरूप एसो निज चेतनको देखंद रूप्त है ॥ ६८ ॥

॥ मनसंकल्प कथन ॥

॥ दोहा ॥

विकल्प जाल कल्लोल करि, पवत मनोजलरंद;
चितरुद्द चेतनता दुरि, ज्युं शदरमें चंद. ॥ ६९ ॥

॥ आतमामोक्षहेतु ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

आतम आतमभाव धरयो ध्रुव चेतनता गुनज्ञानको साई,
व्यापकत्वेय अभेद चिदाकर ध्यावहुं त्याग कैसो अपराइ;
पंचल भाव तजो भजि एकता चित तरंग अनंग हराई,
सादिअनंत महंत अमीत सो पावहु मोक्ष प्रधान सवाई. ७०॥

॥ दोहा ॥

परगुण संमुख ज्ञानसो, चेतन परवश होय;
निज गुण संमुखता लहे, लहे आतम गुण सोय. ॥७१॥

॥ ज्ञानथीरीकरण ॥

॥ दोहा ॥

चित प्रीति ज्युं देहपे, त्युं चेतनपे होय;
तोहु काल भी कर्मको, बंधन लहे न सोय. ॥ ७२ ॥

॥ आत्मा अबंध कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जडता सुभाव लीये मोह मद पान कीये, एसो परद्रव्य
सो तो मेरो धुन नांही हे, मेनो याको नाथ नाहि मेतो नाथ

चेतनाको ज्ञानादि अभंगरंग जाके संग याही है; अंतरंग बहि-रंग अंग परसंग भंगि इंद्रीकी उमंग तजी जामे परछाहि है, होय जो चेतन एसो जैसो तो सभाव तैसो तोए कर्मबंध पुंज तोकुन कहाही है. ॥ ७३ ॥

॥ आत्मासक्रिय कथन ॥

॥ दोहा ॥

निक्रिय लोहक्रिया लहे, अयस्कांत मणि योग;
त्युं निःक्रिय सक्रिय हुवे, जीव कर्मके रोग. ॥७४॥

॥ परमात्मास्वरूप कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

शुद्धबुद्ध चिदानंद निरद्वंद श्री मुकुंद अफंद अमोदकंद अनादि अनंत है, निरमल परब्रह्म पुरन परम ज्योति परम अगम अतींद्रिय महासंत है; अविनाशी अज परमात्मा सुजान जिन निरंजन अमलान सिद्ध भगवंत है, एसो जीव कर्मसंग संग लग्यो ज्ञानमूर्ति कस्तुरमृग ज्युं भुवनमे रटत है. ॥७५॥

॥ आत्मज्ञान लाभहेतु कथन ॥

॥ चोपाई ॥

कर्मकर्मकी रजसो त्याग, जे ध्यावहि चेतनकि धाग;
लहे निरपद तेह अनंत, स्यादवादयुत संत महंत. ॥७६॥

॥ दोहा ॥

ज्ञानदृष्टि चारित्रमय, एक शुद्ध निर्दोष;
स्वसरूप एकत्र भजि, कराहि कर्मको सोष. ॥७७॥

॥ शिष्य प्रश्न ॥

॥ दोहा ॥

एक द्रव्यमें तीन गुण, कैसे रहे एकत्र;
यह इम मन संदेह है, कहो गुरु परमपवित्र. ॥७८॥

॥ अथ गुरु उत्तर कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जैसे पीत स्निग्धगुरु तीनुं गुन भेद विनुं निरंतर आदि लेके कंचनमें रहो है, दहन पचन पुनि तपन ए तिन गुण अगनिमें एकसमें जिनवर कहे है; शीतल मतल वलि निरमल जटविधि तीनो गुण एकसमे स्वभावसे वहे है, तैसे जीव द्रव्यमांहि ज्ञानादि त्रिगुन रहे निहचेसु भावसे अभेद रूप गहेहै ॥ ७९ ॥

॥ ज्ञानगुन भेदाभेद कथन ॥

॥ चोपाई ॥

जो विचारीये नय विवहारा, तो ज्ञानादि जीवसु न्यारा;
राहुसीस जैसे यह लीजे, देश भेदपे भेद कहीजे. ॥८०॥

॥ भेदज्ञान महिमा कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

कामभोग लालची है सव जीव वशी कीने मीने मोहरसमे निरंतर रिरत है, ताकी डाक ढहरि आप पर भेद करि ऐसो भेद ज्ञानगुन अदोष अमल है; धारावाही रीत टीपे ताको धरेसो सुबुद्धि करमके मोलनको वासन सदैहै, अरन सकल विनुं सकल उगन धरि रहे सिद्धईके जैसे तोयमे कमलहै ॥ ८१ ॥

॥ आत्मबुद्धि उपदेश कथन ॥

॥ दोहा ॥

आतमबुद्धि सिरावो परी, देहबुद्धि संसार;
ता ते [illegible] त्यागिके, करी निजगुनसों प्यार. ॥८२॥
[illegible] पर्याय, है पुद्गलको अंश;
[illegible] आतमबुद्धि जो, इह कुमतको वंश. ॥ ८३ ॥

॥ शिष्य प्रश्न ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

[illegible] गुणपर्याय [illegible] यातो कोउ कर्ममांहि [illegible] जानीये, [illegible] समाना गुण [illegible] होय ताना यातो [illegible] जानीये, यातो [illegible] देय गुण [illegible] जानीये, यातो लगो अनिष्ट [illegible] जानीये ॥८४॥

॥ श्री गुरु उत्तर कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

[illegible] आतम [illegible] हेतु [illegible] यातो [illegible] गुणको [illegible] यातो [illegible] गुण- [illegible] सिरपीठे, तोहु [illegible] ॥ ८५ ॥

॥ [illegible] ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

[illegible]

कुगतिसुं डरेहै, करताके कारजको कीनोमें कारज एसो अहंबुद्धि मानो विपरीति धरेहै; आपको न पहिचाने टाने भ्रमभाव मन तन धन निजगुन कर्मको करेहे, कपटको आसन अज्ञानको विकासन हे ऐसो मिथ्यामति भवसागरमें परेहै ॥ ८६ ॥

॥ पुनः मिथ्यामति कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

आपको न जाने चित परहिको माने वित टाने भ्रमभाव रत करम कहरमें, चितमांही धरे वांक सुखहीकी कांक्ष राखे डोलतनिसांकरां कूकरज्यूं सहरमें; हानि थान मलखानि जाने न मिटानि आनि राचे ताके अतिविष वेदज्युं जहरमें, उलट अटल नित लोटन कबूतरज्युं सुलटत नाहिकव मिथ्याकी लहरमें ॥ ८७ ॥

॥ पुनः मिथ्यादृष्टि कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

करगत जीवनज्यो जीवन घटत मीन विन छीन छीन तन मन भी वहतु हे, कालकी न बात जाने करे बहुकाठ तात तात मात भ्रात संग सातकुं वहतु हे; धरम मरम विनु भरमके घेर परयो ज्ञान विन क्रियारत पुन्यको रटतुहे, इतनेमी मुरख पुरुष निज रुख नाहि सुख सुखभयो नित दुःखमें अटतुहे ॥ ८८ ॥

॥ पुनः मिथ्यामति कथन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

ग्रंथ पढे न बडे कछु ज्ञान, अज्ञानमे लीनज्युं पांपरसे,

मौन रहे ग्रहे जोग जुगतिसहि बंधबंधनहे खरसे; आसन मंडि आशा सब छंडि पवनके साधकहे हरसे, इति करतुति करे विनु ज्ञान जे मूढमिथ्यानमति नरसे. ॥ ८९ ॥

॥ मिथ्यामति कथन ॥

॥ दोहा ॥

मिथ्या मति अपराधीनी, परगुन चाहे आप;
ज्युं ज्युं परसंपनि बढे, त्युं त्युं होय संताप. ॥ ९० ॥

॥ परवस्तु हेय आत्मा उपादेय ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

वचन जुगति चित्त नवहुति मनथिति हित अनहित रति अरतिकी रतिहे, अंतेउर पुग्गर असन वसन धनवस्तु गन अनजहा नयनकी गतिहे; पुण्य पाप आदि देय मेय धेय हेय सब संयोग वियोग थिति जामे नित्य मतिहे, अक्षर त्रिगुन साथ देवचंद गुननाथ उपादेयरूप एक आतमा अमितहे।।९१

॥ पुण्य पाप हेय कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

पुण्य पाप पुद्गल मलहे असिल दल खलगुलदल मान व्यक्ति भेद धरेहे, याते पुन्य पाप रोध कीने निज बोध सोधि ध्यावकी समाधि राग रोष (द्वे) जरेहे; इंधन अभाव जेसे अगनि उद्योत नांहि बीजके अभाव जेसे वृक्षवृद्धि टरेहे, तेसे भाव कर्म नास ज्ञानचेतना प्रकाश परम अनंतपद देवचंद वरेहे. ॥ ९२ ॥

॥ आतमशिक्षा कथन ॥

। सवैया तेवीसा ।

करम उपाधि अनादिके बंधन प्रीति लगी तुंम्ह चापरसौ, रागरू रोसको रंग लग्यो जीउ नीलको रंगज्युं कापरसो; पारकी संपत्ति आपनी थापि के थापन दाबनको तरसौ, भयो तुंम झकरमके कारक मूरख रास लगे परसौ. ॥ ९३ ॥

॥ बंधविधि कथन ॥

॥ दोहा ॥

बंधे अपनी लालसौ, कुलीया वरतीरपंथ;
त्युं असुद्ध निज भावसो, बंधे आतम खंच. ॥ ९४ ॥

॥ मिथ्यामति गुरूउत्तर कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

ईश्वरकी रन इन आतमा कहत नित ज्ञान रित मत रत मदमत धारेहे, ईश्वरकी इछा करि नर फिरे बहुपरि नरग सरग तिरजग योनि धारे है; एवे परि जैन कहे आतमा अक्रिय संत अरूपी दिगादिवन् अलिपत सारे है, कुगति सुगति पावे आनि कोउ नाहि देत निजकृत कर्मफल भोगत विचारेहै ॥९५॥

॥ अज्ञानमहिमा कथन ॥

॥ दोहा ॥

मै अज्ञान वीरजसो, विविध कर्मकी आय;
करता भोगता ताहिको, सात धातु मल साय. ॥९६॥

॥ आत्माएक क्रिया कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

एक एक कारजके करनार हे अनेक एक एक करताके कारीज अनेक है, ऐसे कहे जीव करनार होय परहीको पर करतार चिदानंदकोमी एकहे, एक करनार एक कारजको तद्कीक स्यादवाद मनमांहि इहे थिर टेकहे ॥ ९७ ॥

॥ दोहा ॥

चेतन दुरगतिमे परे, पुरवकृत संबंध;
ज्युं विष्टामृत कूपमें, परे मत्त जन अंध. ॥ ९८ ॥

॥ पृथेज्ञानयत्न वर्णन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

आतमाको ज्ञान ध्यान मुक्तिको हे निदान आतमज्ञान विनुं शिव कबहु न जानीये, दान दया तप जप उपसम यम दम ज्ञान विनुं एति क्रिया तुछ फल मानिये; याते दोउं व्याप्ति जानि आतमा एकंत आनि मन तन वा निरोधी सिद्धसोची आनिये, यहै निरवान थान यहै हे केवलज्ञान आनकर कुतिथानि दोगमे वखानीये. ॥ ९९ ॥

॥ अथ आत्ममहिमा ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

धरम अधरम द्रव्य एक असंख्यातदेश उपचार काल नभ अनंत प्रदेश है, जीवहे अनंत ताते पुद्गलहे अनंत द्रव्य द्रव्यमे अनंत गुणको प्रवेशहे; गुण गुणमे अनंत परजाय परिणति नाना भव भावको परम गेयदेश है, अनादि अनंत निरद्वंद्व महानंदकंद महोदधी एसो मेरो आतमा हमेस है ॥१००॥

॥ परमात्ममहिमा कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

नवतत्त्वके विकल्प तीनुयोगके संकल्प तामें रहे नित्य वैं निरागी असपृष्टहे, ज्ञानावरणादिक जड कर्ममांही रह्यो तोभी चेतनाको भूप निज रूपहीमें निष्टहे; सुमतीसु चाह साही कुमतिको अंस नाही निज चित्त रस परसौ न लष्ट पष्ट है, परम अखंड ज्योति नित्य संत हे अमित देवचंद तत्त्वपर जिनजीको इष्ट हे ॥ १०१ ॥

॥ आत्मा अनेकरूप कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

नित्य हैकि अनित्य हैकि एकहै अनेक हैकि सदसद्‌भाववान कै तेन उपायो हे, सूषमसुं सूषम हे थूलसुं अनीयथूल अरूपी अगंध जिन ग्रंथनमें गायो हे, लोकालोक तीन काल उतपात ध्रुव नाम जाकी ज्ञानजोतिमांहि जगत समायो हे, ऐसो परमातम आतम महातम धारी परम आनंदकंद देवचंद पायो हे ॥ १०२ ॥

॥ दोहा ॥

पूर्वकृत निज कर्मफल, यूंहि भोगवे जीव;
तोभी ज्ञान विराग बल, बंधन विना सदीव. ॥१०३॥

॥ शिष्य प्रश्न ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

काम भोग भोगवेमें अबंधक कह्यो ज्ञाना एतो बात हम मनमांहि न सुहातीहे. श्रावकमुनिम एते क्रिया करे सब

जेति तेति फल वीतुं वीतुं काजकी कहांनि है; दान दया तप जप दम उपसम भाव तजेंगे कठीन वात जेते जग प्रानी हे, रहेंगे प्रमादरत निरबंध अंध जेसे ज्ञान मत बंधके अबंध मति ठानी हे ॥ १०४ ॥

॥ अथ गुरुउत्तर वचन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जैसे विषवेद नर विषको विकार जाने करि ताके उपचार विष अपहरे हे, सोइ आप विष भखे तोभि कछु नाहि लखे मुरछा न पावे सो नो लोक विष हरे हे; जैसे नाग मंत्रधर नागमे गहावे अंग आपनिःसंग रहे नागहीसो लरेहे, तेसे ज्ञानपुर्व कर्म जोग भोग भोगवेपे रहे अलिपत तातें बंध नाही धरे हे ॥ १०५ ॥

॥ पुनः गुरुवचन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जैसे कहीं दावानल जले अतिही चपल झाले पुर वन जामे गिरिकूट जले हे, तव कोउ मंत्रवादी मंत्रकी सकतीसेती, अग्निशक्ति बंध राखे तब ताप टले हे; सोनो मंत्रधर पर तामे कूदंकूदपरे फीरेघीरे इतउत तोभी नाही बले हे, तेसे ज्ञाता बोधशक्ति बंधशक्ति रोकिनी भोगवेपे भोग तोभी कर्ममे न लिहें हे. ॥ १०६ ॥

॥ शिष्य प्रश्न ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

शिष्य कहे स्वामी तुम कही एति बात साचि तोभि हम

मनमांहि संदेहतो रह्यो है, मूढ जैसे भोगरीत समकिती भोगवे हे तोभी तुंम चेनमे अबंध रीत बंदे है; जैसे कोउ मत्तनर मद्ये आरति नाहि रति साही वाही कहे गंध नाही गहे है, तैसे ज्ञाता द्रव्य भोगवे पे राग विनुं अभिनव कर्मको तो बंध नाहि रहे है.॥ १०७ ॥

॥ जिनमत कथन ॥

॥ दोहा ॥

सर्व भाव निज रुप गत, यह जिनवरकी वानि;
ताते कर्ता कर्मको, कृपा कितेस बखानि. ॥१०८॥

॥ मूढमति कथन ॥

॥ चोपाई ॥

सर्वभाव निजभाव निहारि, परकारजको कोय न धारे;
ताते मूढ अहंधी राच्यो, सदा रहे परगुनसु माच्यो. ॥१०९॥

॥ हेयोपादेय कथन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

करमके भरम परयो यह चेतन पुननपे मन भांति पसारे,
ज्ञानमयी कर लुति करि जब देहकी भीति अनीति उतारे;
राग निवारिके द्वेषकु टारिके निर्मम भाव सदा उर धारे,
ज्ञान निधान स्वरुपको जानके आतमरति मुनि आतम निहारे.११०

॥ आत्मकर्मक्षयहेतु कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

ऐसें भेदज्ञान धरि आपा पर भेद करि परिहर परभाव

तापे प्रीति टारीकें, अखंड अनंत ज्ञानवंत निज आतमामें चित्त थीर आंनी जीव औरकुं विसारिकें; ज्ञान जोर कर्मकोरी, भोरी माया डोरी तोरी मोरीकें मनोरी निज ज्ञानकु पसारिके, भानिको विकार आनी पायो निरवान थान जाको महिमान असमान सम धारिके. ।। १११ ।।

॥ आतमासिद्धसम कथन ॥

॥ दोहा ॥

अष्ट कर्म वन दाहिके, भये सिद्ध जिनचंद;
ता सम जो आपा लखे, ताको वंदे चंद. ।। ११२ ।।

॥ मोक्षपरंपरा कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

प्रथम ग्रंथि भेदीकरी उपसम भाव धरि क्षायक अंकुर भयो मिथ्या डर गयो हैं, उनेकी ने है कषाय ज्ञान गुन दोनु पाप बढ्यो गुनयान ध्यान श्रेणिथान आयो है; सूक्ष्मसंपराय-चीन छींन मोह लपलीन छीन कीन कर्मतीन केवलको पायो हैं, ज्ञानादि त्रिगुन राय देवचंद पद पाय ध्यान ध्याता ध्येय-भेद मूरते गमायो हैं. ॥ ११३ ।।

॥ पुनःमोक्षपरंपरा कथन ।।

॥ सवैया इकतीसा ॥

सूक्ष्मक्रिय छिन्नक्रिय ध्यानाक्रिय ज्ञान पीय लिय निरवान पद आपनीजो आधि है, अष्ट कष्ट नष्टभये इष्ट अष्ट गुन गहे वहे महानंदको अनादिको जे साथ है; जामे लोकरीति नाहि हार जानि मानि नाहि मीत मीत नीत नांहि ज्ञानको समाव

॥ आत्ममहिमा कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

गहन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] निरंतर रहि है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] प्रमोद होत [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रहे है ॥ १२२ ॥

॥ पुनः आत्ममहिमा कथन ॥

सवैया इकतीसा ।

महातम [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] भवन है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है ॥ १२३ ॥

॥ चिदानंद उपदेश कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तीनों [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible] [illegible] पद [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है, ऐसे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है ॥

॥ अशुद्धजीव कथन बहिरात्मीकि निंदा ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

ग्रंथ भने सब सासनके अभिमान धरै विचरै जगजेतें,
आपको पंडित मुख्य कहायकरे नित्य वाद विवाद अचेतें;
आतम बुद्धि तजे न शरीरसौं क्या पढिके गुनके समजेते,
पाठ पढ्यो गुन कारन नां कछु रामहिराम जपत ज्युं तोते. १२५॥

॥ जिनधर्मप्राप्ति कथन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

मैं बहुकाल अज्ञानकी चालमें आपके रूपको भाव भुलानो,
सो निजरूप लह्यो सुलहो अब मैं सबमैं भवसौंसु लजानो;
चेतनवंत सदा अतिउज्जल संत अनंतसुज्ञानी मिलानो,
ज्ञानको बीज अबीज निरंजन सज्जन श्रीजिनधर्म पीछानो. १२६

॥ आत्मपाठ स्तुति कथन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

आतमसुं मथि आतमज्ञानको भानु उद्योत ज्युं जोति बढेहैं,
घासको काठघटात ज्युं आपमे आपसु ज्युं दवदावकढे हैं;
याहिते आतम मग्नमती विरति सुव्रति शिवमाग चढेहैं,
आतमज्ञान विना सरनोंन न साधकआतमपाठ पढे हे. ॥१२७

॥ चोपाई ॥

जेसे रज्जु सरप भ्रम माने, त्युं अजान मिथ्यामति ठाने;
देहबुद्धिको आतम विचारे, याते भव भ्रमहेतु पसारे. ॥१२८॥

॥ अज्ञानविलास कथन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

मे बहु वेर अज्ञानके फेरमें औरकीओरति हेरनधायो,
मच्यो भवलोह विमोहकी निंदमे ज्ञापक दृष्टिको तेज दबायो;
आतम बुद्धि भइ परपे इरपे अरपे निज मित कहायो,
चंद कहे गुणचंद रहे विनुं काल अनंत भमंत गमायो.॥१२९॥

॥ ज्ञानजाग्रत्दशा ॥

॥ सवैया इकत्रीसा ॥

याहीके पीछान्यो अतिअतिसे चेतनसत्ति जागे जामे तिन-लोक अलोक समाने हे, याहिके सरूप जान्यो जाने खट भाव सब एवे खट भावके पिछानकु कहाने हे; अतिहीनि सतिमति शास्त्रके विचित्तताइ जाके जानपने विनुं भ्रमरूप ठानेहे, जैसे कन विनुं तुस खंडनहे निकारन तैसे ज्ञान विनुं सब काज निफलाने हे. ॥ १३० ॥

॥ पुनः ॥

याके अनुभवसेती भागे भवभीत निज परतीत सो अनित नित २ जागी है, जैसे भानके उद्योत सब जग ज्योति होत भासे घट पट भाव अंधकार भागे हे; तैसे जाके तेज आगे राग द्वेष मेंपी भागे टागे न करम नव शिव जाके आगे हैं, परम आनंदकंद देवचंद सुखकर धरमी व्रती मुनीस जाके ध्यान टागे हे.

॥ दोहा ॥

आतम आतमध्यान गत, न भजे और उपाय;
जैसे पावक काठ विनुं, सहजे उपशम थाय. ॥१३१॥

॥ पुनः आतमगुन कथन ॥
॥ छप्पय ॥

परम सुखी ध्यान नाहि को दुजो याते, निरमय पद ए मुख्य और सब जनकी वाते, यहे संतरस जान मोष मारगमी एही, कर्मवृक्षके छेदय हे फरसीज अवेही, इह ज्ञानध्यान भगवान वर ज्ञानादिक गुन मय वहे, यह भजो रमो जानो इहे सर्वमां इह दुरगम इहे. ॥ १३२ ॥

॥ अथ चेतनगुन कथन ॥
॥ सवैया तेवीसा ॥

ज्ञान अज्ञानके हेतु भए तुम आपनही भमते भवमांही,
कारक बुद्धि भई पग्सो नग्मो चित्तमें सुख संपती पाही;
आपको जानीके ध्यानमे आनिके सुद्ध मुनि निरवानको जाही,
आपको वायक आपही चेतन चेतनता गुनज्ञानको चाही.॥१३३

भोग संजोगसुं भोगके गेह ते नेह तेयाभव ते विरचे जे,
भावही आतम आनमते वर आनमज्ञान कला आचे जे;
मोहकी जेलको छेलके ते नर या भवके सुख नां परचेजे,
सम्यक ध्यानहियो निज आनिके कर्मको भर्म सही खरचेते.१३४

रोग विना जन तिक्त कसाय ज्युं ओषधसुं चित प्रीति उतारे,
आतुरता विनुं धातुर ते नर देहकी सार करे दिनसारे;
दर्शन मोह विना चित सुगति चेतन चेतनसुख संभारे,
भोग संयोगको जोग करे नहीं साधु सदा चित ज्ञानको धारे.१३५

॥ पुनः चेतनगुन कथन ॥
॥ सवैया तेवीसा ॥

अंतर तत्त्व विलोकी दीपा जीम भानुं उदे सब वस्तु प्रकाशे,
रहे जगमें जग रीति धरे नहीं आप गुने करी उज्जल भासे;

मोहकी निंदमें पूमित चेतन देखत स्वप्न भवादि उलासे,
आपमे आप समाय रहे ध्रुव शुद्ध निरंजन भाव अभ्यासे. ॥१२६॥

॥ ज्ञानविलास कथन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

ज्ञान विलास अभ्यास कीया विनुं कर्मको भर्म सहीउ वधारे,
इंद्रीय पंच प्रपंच करे चित या रस प्यार अपार संभारे;
फीरे भवमें नव वेस करे निन भावीत कर्म उपाधि ले लारें,
सो निज थान वसे जब देव ए हर्ष प्रकर्षकि नैन वधारे. ॥१२७॥

॥ पुनः परमात्म वरणन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

ज्याकी ज्ञानज्योतिहीमें फुरत परम रस सरस परस विनु जामे रस एनहे, लोकालोक लोकनकुं अमल विमल तेज योगादिक क्रिया विनुं ज्याकों आराधन है; मूलसे दलित अतिमोह गलके पटल अखिल विज्ञानवंत संत गुन धन है, एसो देवचंद इदं त्रिगुण आनंदकंद ताहीसो प्रतिति प्रीति थीर मेरे मन है ॥ १२८ ॥

॥ सम्यक्आत्मवर्णनं ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

जाके उर अंतरमें राग दोष मोह नांहि आपमे समाय रहें आपही अनंत है, और द्रव्यसु न प्यार सबे सार ध्यान धार धरीके संभार सार संत रस संत है; टंक सो उकेरयो जैसो रतन अभंग जोति तैसो परब्रह्म निज ज्ञानसो महंत है, निर्द्धंद है अबंध चेतनाको खंध संत अमलान ज्ञानगुन सनमंधवंत हैं ॥ १२९ ॥

॥ आत्माअबंध कथन ॥

॥ दोहा ॥

जे धीर आतम ध्यानमें, आतम ज्ञानविलीन;
जे निजगुन थिरता लहै, गहे न कर्म नवीन. ॥१४०॥
नव नव भव तरु छेदको, यह धीत शास्त्र उदार;
ध्यान पवित्र मुनिसको, रहे ध्येय गुन धार. ॥१४१॥
दुरगम पद पथ अगम ए, लहि ऐसो निज योग;
वृथा बाह्य करनी करे, दंडे तीनो योग. ॥ १४२ ॥

॥ करनी सरूप कथन ॥

॥ दोहा ॥

करनी निज गुनक तरनी, धरनी दोष अथांहि;
दुखमें या भवसमुद्रकी, तरनी बरनी नांही. ॥१४३॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

या करनी परनी परनितमे मोह महीपतिकी तरनी है,
या करनी धरनी तलकी फीरनी करनी परनी सरनी है;
या करनी हरनी गुनकी अरनीद्वर संवरकी दरनी है;
या करनी करे निच सभावको कोह महादवकी अरनी है.॥१४४

॥ दोहा ॥

करनी करता करमकी, इनमे चेतन दीन;
जब चेतन समता मिले, तबे लहे सुखपीन. ॥१४५॥

॥ परमात्मास्तुति ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

परम निधान हैकि निरवान थान हैकि असमान ज्ञानवान

सदा अमलान है, स्वंय निरगुंध निरबंध कर्म हीन पीन छीन-मसकीनभाव भावसो अदीन है; चितमे चेतन खान दरसन भासमान अनुभव ज्ञान जान अनगुन हीन है, अक्षर त्रिगुण इंद देवचंद महानंद परम अमृत संतपद लय लीनहे.॥१४६॥

॥ कुंडलीयो ॥

ऐसो चेतन मधुवर, समता नारि वियोग, चित्त थिरता न लहे कहुं, पावहि बहुविधि सोग, पावहि बहुविधि सोग जन्म मरण निखेद, अति भव भवभ्रमण भमंत, जह रज्जु विरह चित्त, क्षणभंगुर गुन हीन ग्रह्यो आत्म करण तन, निज मिप बिनु मद्द भर्म मधुवर एसो चेतन ॥ १४७ ॥

॥ आत्म ममता वियोग ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

मित्त विहीनमें दीन भयो अति मोचीन सौथिरता न लहे है, यह जगमे दीन राति निरंतर अंतरते थिरता न गहे है; आतम मीतके सुख वियोगत दुख परयो सुखकु न चहे हैं, सो सुख तो निज ज्ञानके आगम जो कबहु परकुं न वहे है.१४८

॥ पुनः आत्माके विशुद्धगुन कथन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

आदिरता थिरता समताहही जीरके टोलो नाहि रुलेगे, चित्त प्रवृत्तिसे अति निवृत्तिमे या गुन ज्ञानमे ठीक वूलेगे; ज्यों लगे चेतनता सुजने थिरता लखिया गुन थयन मुलेगे, देवकई निजदेवकी सेव सो वा मवदेवको दूर ठिलेगे. ॥१४९॥

॥ चेतनता समताप्रीति कथन ॥

॥ दोहा ॥

चेतन चेतनता सहित, परम धरम गुनथान;
पावे वर निरवान पद, समता प्रीति निवान. ॥१५०॥

॥ अथ कवि निज लघुनाइ कथन ॥

॥ सवैया तेवीसा ॥

मे जिनआगमते जो उलंघिके जो कछु वात विरुद्ध वखानी,
सो तुम सोधिके भाखहु पंडित पंडित आहीकी मोह नीसांनी;
गहो गुनमी मुनिके तुम सज्जन शास्त्रको अर्थसु तत्त्व पीछानी,
बोधिसु बोधक ग्रंथ गहो बुधडारिके संपति एह विरानी. १५१

॥ अथ पूर्व कविसरके गुन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

पाठक सुपाटहीके निवारन आठहीके हंसराज राजपति नामे हंसराजहे, ताके कीनेहेसलस शत अडवीस ज्युत ज्ञानहीके जान अरुदंसनके राज है; तत्त्वके पीछान जान ताहिको निधान मान विमल अमल सब ग्रंथ सिर तांज है, आपा पर भेद कर परब्रह्मभाव भर शुद्ध सरधान धर नरताके काज है. ॥ १५२ ॥

॥ दोहा ॥

हिंडु धर्मवीकानयर, कीनीसुख चौमास;
तिहां ए निज ज्ञानमे, कीनो ग्रंथ अभ्यास. ॥१५३॥

॥ अथ कवीसरके गुरुके नाम कथन ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

वर्त्तमान काळ थीत आगम सकल वीत जगमे प्रधान

ज्ञान वान सब कहे हैं, जिनवर धर्मपरि जाकी परतीति थिर और मत वात चितमांहि नाहि गहे है; जिनदत्तसुरीवर कही जो क्रियाप्रवर खरतर खरतर सुद्ध रीति वहे है; पुण्यके प्रधान ध्यान सागर सुमतिहीके साधुरंग साधुरंग राजसारल्हे है ॥१५४॥

॥ दोहा ॥

सब पाटक सिरसेहरो, राजसार गुनवान;
विचरे आरीजदेशमें, भवि जन छत्र समान. ॥१५५॥

॥ सवैया इकत्तीसा ॥

ताके शीश है विनीत परमीतसों वितीत साधुरीत नीत धारी गुन अभिराम है, आत्मज्ञान धर्मवर वाचक सिधंतवर अतिउपसंत चित्त ज्ञान धर्मनाम है; ताके शिष्य राजहंस राजहंस मानसर सुप्रधान उद्यमादि गुन गन धाम है, अंतेवासी देवचंद कीनो ए ग्रंथ वर अपनो चेतन राम खेलिवेकुं ठाम है ॥ १५६ ॥

॥ दोहा ॥

कीनो यहां सहाय अति, दुर्गदास शुभचित्त;
समजावन निज मित्रकों, कीनो ग्रंथ पवित्त. ॥१५७॥

॥ अथ शास्त्रके श्रोता तिनके नाम ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

आतम सभाव मिठु मल्लको पहारी दिठो मेरुदास मेउदास मुलचंद जान हैं, ज्ञानलेख राजत पारस स्वभाव धर सोमजीव तत्त्वपरि जाकी सरधान है; ज्ञानादि त्रिगुनमंत अध्यातम ध्यानमंत मुलतांन थांन वासी श्रावक सुजान है, ताकी धर्म

प्रीति मन आनिके गरंथ कीनो गुनपरजाय धर जामे द्रव्य-ज्ञान है ॥ १५८ ॥

॥ दोहा ॥

अध्यातमसेली सरस, जे मांनत सो जैन;
ते यार्चेगे ग्रंथ यह, ज्ञानामृत रस लेन. ॥ १५९ ॥
गुन लच्छन पहिचानिकें, हेयवस्तु करि हेय;
चिदानंद चितमय अगम, शुद्ध ब्रह्म आदेय. ॥१६०॥
परमातम नय शुद्ध धरि, शिवमारग एहीज;
यहै मोहमें नव भमें, यहै ग्रंथको बीज. ॥१६१॥

॥ संवत् कथन ॥

॥ दोहा ॥

विक्रम संवतमान यह, भय लेदयाके भेद;
शुद्ध संयम अहंमोदिके, करि आश्रवको छेद(१७६७)॥१६२॥
ता दिन या पोथी रची, वर्ध्यों अधिक संतोष;
शुभ वासर पूरन भई, प्रथम जिनेसर मोष. ॥१६३॥

॥ अथ ग्रंथ महिमा ॥

॥ सवैया इकतीसा ॥

गुनको निधान हैकि मानो निसान है कि साची जिन-वान यामे अधिक उदार है, मानों मद भंजन है मिथ्या मति-भंजन है ज्ञानदृष्टि अंजन दिलाको सुखकारहै; शमको रमनहै कि दुष्टकोदमन हैकि परकोवमन है अपार पारावार है, संतको स्वाद हैकि शुद्धि स्यादवाद यामे औरको विवादनाहि ज्ञानि उदार है. ॥ १६४ ॥

॥ दोहा ॥

स्याद्वादयुत द्रव्य पद, जहां बखाने ठीक;
नामे द्रव्य प्रकासयो, ज्ञानग्रंथ नहकीक. ॥ १६५ ॥

॥ पुनः ग्रंथमहिमा ॥

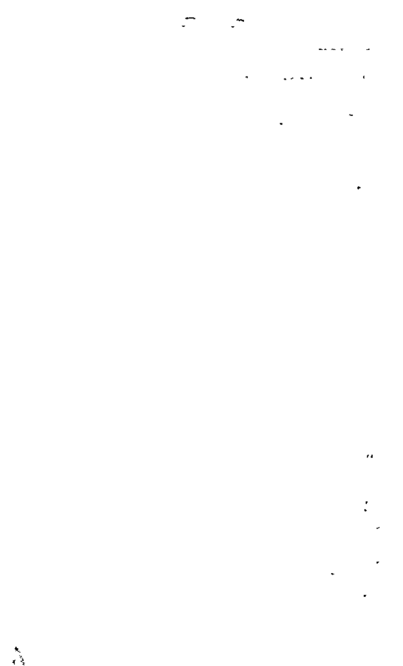
॥ सवैया इकतीसा ॥

वस्तु प्रतीत नाहि पुण्य पाप भीति नांहि रागदोष रीति नांहि आतम विलास है, साधककी सिद्धि है कि बुद्धवे कु बुद्धि है की रीजवेकी रिद्धिज्ञान भानको विकास है; सज्जन सुहाय दुज चंद ज्युं चढाव है कि उवसमभाव यामे अधिक उल्लास है, अन्यमनसौं अमंद वंदनहैं देवचंद ऐसे जैन आगममे द्रव्यको प्रकाश है ॥ १६६ ॥

॥ दोहा ॥

ज्ञान ध्यान सुखधान पद, यह मुनिनिको पंथ;
जीवद्वार नभय है (नव यह है) पूरन भयो ग्रंथ. ॥१६७॥

॥ इति श्री देवचंद्रमुनि विरचिते द्रव्यप्रकाश(व्रज)भाषाग्रंथ तृतीयं जीवद्वारं समाप्तम् ॥



॥ ॐ श्रीवर्द्धमानाय नमः ॥ श्रीगौतमाय नमः ॥

अथ श्रीदेवचंद्रजीकृत

आदिनाथप्रमुख चोवीश तीर्थंकरनी स्तवनागीत, चोवीशीनो बालावबोध सहित प्रारंभ करिये छैये.

तत्र प्रथम पीठिका.

ए संसारी जीव, देवतत्त्व, गुरुतत्त्व, धर्मतत्त्वनी मूलें नादिनो संसारचक्रमांहे भमी रह्यो छे, शरीर इंद्रियसुख परिग्रह तेने हितकारी मान्या छे, अने पोतानुं आत्मस्वरुप, अनंतानंदमय विसारी मूक्युं छे, ते संभारतोज नथी, पण संज्ञी पंचेंद्रियपणुं पामीने, जो पोतानो शुद्धधर्म तथा शुद्ध धर्मनां कारण सेवे नही, तो आत्मा, स्याद् संपदा केम पामे ? तेमाटे उपकारी, जगत् हितकारी, श्रीवीतराग, परमात्मा, परमपुरुषोत्तम, एवा श्रीअरिहंतनी स्तवना तथा सेवना करवी, पण राग विना प्रभुनी सेवना थाय नही, ते कारणथी प्रथम श्रीरुषभदेवजीनी स्तवना करतां श्रीवीतराग उपर प्रीति करवी, ते रीत कहे छे. प्रथम धर्मनां चार आचरण कह्यां छे. १ प्रीति, २ भक्ति, ३ वचन, ४ असंग. तेमां प्रथम प्रीतिनुं लक्षण, षोडशकथी जाणवुं. " यत्रादरोस्ति परमः प्रीतिश्च हितोदया भवति कर्तुः शेषत्यागेन करोति यच्च तत्प्रीत्यनुष्ठानम् " अभिरुचि- रुपाहित उदयोपरमाः सा तथा भवति कर्तुः अनुष्ठानुः शेषाणां

त्यागेन च तत्काले यच्च करोति तदेकभावनिश्चलया तत्प्रीत्यनुष्ठानं ज्ञेयमिति. " जिहां आचरण करवावालानुं अति आदर सहित उद्यमनुं अतिशयपणुं होय, ते प्रीति जाणवी, वे प्रीतिना विलास विना चाले नहीं, माटे तेहना रुचि अभिलाषी जीवें बीजां सर्व कार्य तजीने तेहज करवुं. तथा तिहांज एक निश्च प्रतीति करवी, तेने प्रीतिअनुष्ठान जाणवुं ॥ इति भावार्थः ॥ ते प्रीति संसारी भावथी सर्व जीवोने छे, पण ते पल्टावीने गुणीथी करवी, ते कहे छे.

॥ अथ प्रथम श्रीऋषभजिन स्तवन ॥

॥ निद्रडी वेरण हुइ रही ॥ ए देशी ॥

ऋषभ जिणंदशुं प्रीतडी,
किम कीजें हो कहो चतुर विचार ॥
प्रभुजी जइ अलगा वश्या,
तिहां किणें नवि हो कोइ वचन उच्चार ॥ऋ०॥१॥

अर्थः—श्रीनाभिकुलघरनी भार्या, श्रीमरुदेवी स्वामिनीनी कुक्षिनेविषे उत्पन्न थईने जेणे अढार कोडा कोडी सागरोपम सुधी, निर्वाण मार्गनुं विघ्न हतुं ते निवार्यु, एवा श्रीऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर, रागद्वेष रहितताथी जिन कहियें, तथा उपकारसंपदा, अने अतिशय संपदायेंकरि विराजमानताथी जिणंद कहियें. तेनाथी प्रीतिविलास करवानो अर्थी भव्य जीव, मोक्षाभिलाषी विचारे छे जे, नीरागी ऋषभ पुरुषोत्तम साथें शी रीतें कीजें ? ए वीतरागथी प्रीति, माहारा आत्मायें पहेलां

अनुभवी नथी, ते परमेश्वरनी प्रीतिनो अर्थी प्रीतिनी अजाणतो पूछे छे, ते हे चतुर ज्ञानी आचार्यादिक ! अथवा पोतानो आत्मा ते जाणें चतुर छे, तेहने छे, के ते प्रीतिनो विचार कहो जे नजीक होय, तेथी बने, पण प्रभुजी नो ... अलगा रह्या छे. प्रथम थी हुं अशुद्धपरिणामी, ... पुद्गलभावभोगी, अशुद्ध द्रव्य छुं. ... श्रीभगवंत नो शुद्धपरिणामी, निरावरणस्वभावी, ... अनंत अक्षयज्ञानादिस्वगुण-गी, तेथी शुद्धद्रव्य छे. वास्तु क्षेत्रथकी हुं संसार क्षेत्री, रावगाही छुं, अने श्रीऋषभप्रभु नो लोकांतक्षेत्रें रह्या छे, शरीरी, स्वप्रदेशावगाही छे. तेथी क्षेत्रें करी भिन्न छैयें. सज श्रीजुं कालें पण भिन्न छैयें. अने भावथी हुं रागी, द्वेषी, या अढार पापस्थानकें भर्यो छुं, अने श्रीदेवाधिदेव तो नीरागी, र्वपापस्थानरहित छे, माटे श्रीप्रभुजी, हमणां तो सर्व रीतें ... थी वेगला वसे छे. वली अलगाने पण वचनादिकें मलियें, ण श्रीऋषभदेव सिद्ध थया, तिहां सिद्ध अवस्थामां कोई वच-नुं उच्चारवुं नथी, त्यारे प्रीति केम कराय ? ॥ इति गाथार्थः ॥१॥

कागल पण पहोंचे नहीं,
नवि पहोंचे हो तिहां को परधान ॥
जे पहोंचे ते तुम समो,
नवि भांखे हो कोईनुं(नो) व्यवधान॥ऋ०॥२॥

अर्थः—तथा एक बीजो पण प्रीति करवानो उपाय छे, जे कागल वडे प्रीति थाय छे, पण सिद्धने विषे कागल पण

पहोंचे नहीं. तथा कागल नहीं पहोंचे तो कोई माणस मूकीयें,. पण तिहां सिद्धावस्थाने विषे कोई मनुष्य पण पहोंचे नहीं; के जेनी सायें विनति कहाविये. इहां कोई जीवने संशय उपजे के रत्नत्रयी आराधीने अनेक जीव मोक्षे जाय छे, तो कोई न पहोंचे एम केम कहो छो? ते उपर कहे छे, जे तिहां सिद्धावस्थाने विषे जे पहोंचे ते नम समो, तुम जेवो प्रभुतामय, वीतराग, अयोगी, असंगी, सकलज्ञायक, पण वचनरहित, एटले अर्थात् ते पण परमपूज्य ते कोइनुं व्यवधान कहेतां आंतरो भेद कहे नहीं, माटे प्रीतिना त्रण उपाय मांहेलो कोई उपाय दीसतो नथी, तेमाटे श्रीयुगादिदेव सायें प्रीति केम करीयें? ॥ इति ॥ २ ॥

प्रीति करे ते रागीया,
जिनवरजी हो तुमें तो वीतराग ॥
प्रीतडी जेह अरागीथी,
भेलवी ते हो लोकोत्तर माग ॥ ऋ० ॥३॥

अर्थः—हवे वळी कहे छे के संसारी जीव मुझ सरीखा तथा सम्यग्दृष्टि प्रमुख पण जे श्रीसर्वज्ञ त्रैलोकीतिलकथी प्रीति करवा चाहे तेनो रागी राग सहित छे, अने हे जिनवरजी! तुमें तो वीतराग छो, रागरहित छो, रागीने अनेक रीतें रीझवीयें, पण जे पोतें रागी नहीं, ते केम रीझ पामे? इहां कोई जीव कहेशे जे तेवारें वीतरागथी प्रीति न करवी? तिहां कहे छे. जे अरागी राग रहित तेहथी जे प्रीति मेळववी, तेनो लोकोत्तर मार्ग छे, एटले एम जाणवुं जे रागीथी रागी



अरिहंत उपर राग करवो, ते निर्विष करवो, जेमां विषया
लापपणुं नहा, वर्णादिकनी रीझ नहीं, तथा इहलोक, परलो
इंद्रियसुखाभिलाप नहीं, प्रभुना ज्ञानादिक गुण छे ते
आपे, एवी अभिलाषा नहीं. एक अरूपी, अज, अविना
अकृत्रिम, शुद्धज्ञानादिक गुण प्रकट व्यक्त थया, स्वरुपभो
स्वरुपरमणी, स्वरुपा भन, एवा गुणनो राग, एकलो गुण प्र
करवा वास्ते करवो ते राग, निर्विष जाणवो, ते निर्विष प्री
करवानी मुझमां तो शक्ति नथी, ते माटे हवे ए थनाय केम थं
हे उपकारी पुरुषो! ते तमे कहो ॥ इति चतुर्थगाथार्थः॥

प्रीति अनंती परथकी,
जे तोडे हो ते जोडे एह ॥
परम पुरुषथी रागता,
एकत्वता हो दाखी गुण गेह ॥ ऋ० ॥ ५

अर्थः—हवे चतुर पुरुष, उपाय कहे छे, प्रीति का
राग अनंतो परथकी एटले पुद्गलभावथी अथवा शरीरी जी
छे, ते सर्व जे जीव तोडे रहेतां टाळे, ते जीव ए
अरिहंतादिकथी प्रीति जोडे. एटले सर्व परभावथी राग
ते गुणीराग करी शके तेटला माटे एटले जे गुणी अ
हंतादिकथी गुणे मळे, ए गुणीराग ना पायस्थानक छे, ते शा
करियें? तिहां कहे छे के, परम पुरुष, वीतरागथी रा
करतां रागीपणुं ते पण गुणनु घर कह्युं छे, अने श्रीअरिहं
दिकथी गुणें एकत्वपाने मळवुं, ते पण गुणनुं गेह कह्युं

प्रभुजीने अवलंवतां,
निज प्रभुता हो प्रगटे गुणरास ॥
देवचंद्रनी सेवना,
आपे मुज हो अविचल सुखवास ॥रु०॥६॥

अर्थः—ए रीतें प्रभुजीने अवलंवनां कहेतां आश्रयतां पोतानी प्रभुना अनंतगुणपर्यायरूप प्रगटे, निरावरण थाए, गुणनो राशि समूह, सर्व व्यक्त थाय, तेमाटे देव जे चार निकायना देवना अथवा नरदेवादिकमांहे चंद्रमा समान श्रीअरिहंत देव, तेहनी सेवना भक्ति, द्रव्ययी तथा भावथी करवी, ते आपे कहेतां दे, मुजे अविचल सुख, अव्याबाध सुख, तेहनो वास कहेतां रहेवुं, एटले भावार्थ ए जे, श्रीपरमात्मा, परमपुरुषोत्तम अरिहंतनी सेवना असंयम आस्रवत्याग, संयम संवररूपपरिणमन, ते सेवना कहियें ॥ उक्तं च ॥ आणाकारी भत्तो, आणा छेईओ सो अभत्तोत्ति ॥ इति ॥ तथा अरिहंत प्रभु पोतें तो पोतानी सेवनाना अर्थी नथी, पण सर्व जीवोने स्वहित करवा वास्ते एहीज करवुं छे, अने अरिहंत आज्ञा ते कोईनो हुकम मनाववो नथी, पण श्रीअरिहंत देवें केवल ज्ञाने दीठुं, जे सर्व जीवोने पोतानां ज्ञान. दर्शन. चारित्र, ते परमानंदहेतु छे, तेमाटे जे रीतें ज्ञान. दर्शन, चारित्र नीपजे, ते मार्ग उपदेश्यो, ते प्रमाणे वर्त्ते ते अरिहंतनी सेवना करतां निश्चय मोक्षपद, सर्व उत्तम ठाम पावे, माटे प्रभुजीनी सेवा, ते अविचल सुख आपे. ते कारणें सर्व भव्य जीवें सकल संसार कार्य तजी सर्व प्रमादथी निरा

थईने, एक परमोपकारी, तत्त्वोपदेशी, धर्मनायक, श्रीअरिहंत देवनी सेवना करवी ॥६॥ इति श्रीऋषभजिनस्तवनं समाप्तम् ॥

॥ अथ द्वितीय श्रीअजितजिनस्तवनं ॥

॥ देखो गति दैवनी रे ॥ ए देशी ॥

ज्ञानादिक गुणसंपदा रे, तुज अनंत अपार ॥
ते सांभलतां उपनी रे, रुचि तेणें पार उतार ॥
अजित जिन तारजो रे, तारजो दीन दयाल ॥
अजित जिन तारजो रे ॥ १ ॥

अर्थः—हवे श्रीअजितनाथ स्वामीनी स्तवना करे छे. कारण कार्यभावनी साधनता देखाडे छे, जे कारण मले, ते कार्य नीपजे, ते कारणना बे भेद छे. एक निमित्त कारण, बीजुं उपादान कारण, पण उपादान कारणनी कारणता निमित्त मल्यां प्रगटे, ते निमित्त कारणनी पुष्टतायें थाय, अने मोक्षनुं निमित्त कारण, श्रीदेवतत्त्व छे, ते कारणें कार्य निपजे, ते परिपाटी देखाडे छे, सकल पंचास्तिकाय गुणपर्यायादि विशेष धर्म, प्रत्यक्ष भासन, त्रिकालावबोध, ते केवल ज्ञान तथा सकल सामान्यग्राहक ते केवल दर्शन अने स्वरूप एकत्व ते परम चारित्र, वली अरूपी अव्याबाध प्रमुख गुणनी संपदा, हे प्रभुजी ! तुज कहेतां तुमारे अनंत छे, अपार छे, जेथकी सर्व द्रव्यथी, सव द्रव्यना प्रदेश अनंत गुणा, सर्व प्रदेशथी एक द्रव्यना गुण अनंतगुणा, सर्व गुणथी आस्ति नास्तिरूप पर्याय अनंत गुणा, आस्तिपर्याय ते पण वस्तुनो स्वधर्म

छे. तथा नास्तिपर्याय ते पण वस्तुनो स्वधर्म छे, श्री विशेषावश्यकमांहे श्रुतज्ञानाधिकारें कह्युं छे.

॥ एवं उक्ते सति परः प्राह ॥ जइ ते परपज्जाया, न तस्स अह तस्स न परपज्जाया ॥ जं ते मिय संबद्धा, तो परपज्जाय ववएसो ॥ १ ॥ इह स्वपर्यायाणामेव तत्पर्यायता युक्ता ये चामी परपर्यायास्ते यदि घटादीनां तर्हि नाक्षरस्य तथाक्षरस्य ते तर्हि न घटादीनां ततश्च यदि परस्य पर्यायास्तर्हि तस्य कथं ? तस्य चेत्परस्य कथमिति विरोध स्तदयुक्तमभिप्रायापरिज्ञानाद्यस्मात् कारणात् तस्मिन्नकारेकाराद्यक्षरे घटादिपर्याया अस्तित्वेनासंबद्धास्ततस्तेषां परपर्यायव्यपदेशोऽन्यथा व्यावृत्तेन रूपेण तेऽपि संबद्धा एवेत्यतस्तेषामपि व्यावृत्तरूपतया पारमार्थिकत्वपर्यायत्वं न विरुध्यते अस्तित्वेन तु घटादिपर्याया घटादिष्वेव प्रतिबद्धा इत्यक्षरस्य ते परपर्याया व्यपदेश्यन्ते इति भावः ॥ द्विविधं हि वस्तुनः स्वरूपं, अस्तित्वं नास्तित्वं च ततो ये यत्रास्तित्वेन प्रतिबद्धास्ते तस्य स्वपर्याया उच्यंते, ये तु यत्र नास्तित्वेन संबद्धास्ते तस्य परपर्यायाः प्रतिपाद्यंते ॥ इति निमित्तभेदख्यापनपरावेव स्वपरशब्दौ, नत्वेकेषां तत्र सर्वथा संबंधनिराकरणपरौ ॥ वत्थुसहावंपइतंपि सपरपज्जायभेयओ भिन्नं ॥ तं जेण जीवभावो, भिन्ना इत्त उ घडाया ॥ १ ॥ वस्तुस्वभावं प्रति यथावस्थितं वस्तुस्वरूपमाश्रित्य तदपि केवलज्ञानं अकाराद्यक्षरवत् स्वपरपर्यायभेदतो भिन्नमेव ॥ ननु यथोक्तनीत्या स्वपर्यायान्वितमेवेति भावः ॥ कुतः ? इत्याह ॥ येन कारणेन तत्केवलज्ञानं जीवभावप्रतिनियतो जीवपर्यायो न घटादिस्वरूपं, तथापि घटादयस्तत्स्वभावाः किंतु ततो

मिन्ना इति ते ज्ञायमाना अपि ते कथं तस्य स्वपर्यायाभवेयुः ? सर्वसंकरैकत्वादिप्रसंगात्तस्मादमूर्त्तत्वचेतनत्वसर्ववेतृत्वाप्रतिपाती च निरावरणत्वादयःकेवलज्ञानस्यस्वपर्यायाघटादिपर्यायास्तु व्यावृत्तिमाश्रित्य परपर्यायाः ॥ अन्ये तु व्याचक्षते ॥ सर्वद्रव्यगतान् सर्वानपि पर्यायान् केवलं ज्ञानं जानाति येन च स्वभावेनैकं पर्यायं जानाति न तेनैवापरमपि किंतु स्वभावभेदेनान्यथा सर्वं द्रव्यपर्यायैकत्वप्रसंगस्तस्मात् सर्वं द्रव्यपर्यायराशितुल्याःस्वभावभेदलक्षणकेवलज्ञानस्य स्वपर्यायाः सर्वं द्रव्यपर्यायास्तु परपर्यायाः इत्येवं स्वपर्यायाः परपर्यायाश्चोभयेऽपि परस्परं तुल्याः केवलस्येति ॥ इत्यादि अधिकार सर्व माहाभाष्यथी जाणजो. ते अग्नि पर्याय ते जीवद्रव्यना सर्वथी अनतगुणा छे, ते सर्व प्रभुजी तुमारा निरावरण थया, ते अनतगुणमयी परमानंदसंपदा तमारी आगममांथी सांभलतां मुझने पण ए रुचि उपनी, जे एहवी सिद्धता माहरे प्रगटे, एहवो अभिलाप उपनो तेथी कहुं छु के हे परमपुरुष ! मुझ अनाथ दीन कर्मवशे भवभमनाने भवसमुद्रथी पार उतार, संसारथी पार उतारवानी विनति तुम विना बीजा कोण आगल करूं ? जे भवपार पाम्या ते आगल भवपार पामवानी विनति करूं ! ते भणी स्वामी ! मुझने संसार निस्तार करो. ए विनति जे जीव, भवथी उद्विग्न मोक्षाभिलाषी थयो, ते आतुर थईने कहे छे के हे अजित जिन ! मुने तारजो, संसारथी पार उतारजो. तारजो हे प्रभुजी तुमें दीनदयाल छो. हे स्वामी ! परमभावरक्षाना करणहार छो ॥ इति प्रथमगाथार्थः ॥ १ ॥

जे जे कारण जेहनुं रे, सामग्रीसंयोग ॥
मलतां कारज नीपजे रे, करतातणे प्रयोग ॥अ०॥२॥

अर्थः—हवे जे कार्यनुं जे कारण छे, ते कारण तथा सामग्री ए बेनो संयोग मळतां कार्य नीपजे, जेम घटरूप कार्य, तेहने दंड, चक्र, चीवर, निमित्त कारण छे, तथा मृत्तिका उपादान कारण छे, अने कुंभकार कर्त्ता छे, जे कार्य अभेद तेहनो तेहवो, कर्त्ता पण अभेद, जे कार्य कर्त्ताथी भिन्न, तेनो कर्त्ता पण भिन्न; एटले घटकार्य ते परवस्तु छे, तेहनो कर्त्ता कुंभकार पण भिन्न छे. अने सिद्धतारूप कार्य आत्माथी अभिन्न छे, तो तेहनो कर्त्ता आत्मा पण अभिन्न छे.

हवे आत्मा कर्त्ताने सकलस्वधर्मव्यक्त रूप जे सिद्धता, ते कार्य, तेहने देव श्री अरिहंत देवाधि देव तथा गुरुनिर्ग्रंथादिक ते निमित्त कारण मल्यां, अने सामग्री कर्म भूमि साधर्मिकादिक संयोग मल्यां मोक्षरूप कार्य नीपजे, माटे माहरुं मोक्षरूप कार्य तेना निमित्तकारण श्री वीतराग तुमें छो, तेथी तमने आश्रयतां मोक्षरूप कार्य नीपजे, पण कारण सर्व मल्यां, अने कर्त्ता जे आत्मा ते जो तेम प्रयोगसाधननो व्यापार न करे, तो कार्य निपजे नहीं, केमके अरिहंतादिकना निमित्त पामीने पण अनेक जीव आत्मा साध्यावलंबी तथा साधनपरिणति थया विना मोक्षकार्य निपजाव्या विना हजी संसारमां भमता दीसे छे, तेमाटे कर्त्ता जे आत्मा ते जो मोक्षसाधनरूप प्रयोग करतां व्यापार करे, तो सिद्धतारूप कार्य नीपजे ॥ इति ॥ द्वितीयगाथार्थः ॥ २ ॥

कार्य सिद्धि कर्त्ता वसु रे, लहि कारण संयोग ॥
निजपदकारक प्रभु मल्या रे, होए निमित्तह भोग ॥
अ० ॥ ३ ॥

अर्थः—माटे कार्यसिद्धतानी निष्पत्ति ते कर्त्ताने हाथ छे, जेम दंडरूप कारण तेने जो कर्त्ता घटरूप कार्य करवाने प्रवर्त्तावे तो घटरूप कार्य करे, अने तेज दंड जो घटध्वंसने प्रवर्त्तावे तो घटध्वंस करे, ते माटे निमित्तनी प्रवृत्ति ते कर्त्ता जे कार्य करवाने प्रवर्त्तावे ते कार्य करे, माटे कार्यनी सिद्धि ते कर्त्ताने हाथ छे, पण कारणनिमित्तादिक तेनो संयोग मल्यां कार्य निपजे, ए पद्धति छे. माटे कोई संसारी आत्मा निज कहेतां पोतानुं आत्मिक पद परमानंद महोदयरूप तेहनो कारक कहेतां करवावंत तेने मोक्षना पुष्टकारण प्रभुजी श्री अरिहंत मल्यां थकां अवश्य निमत्तनो भोग थाय, एटले जे जीव संसारथी उभग्यो मोक्षाभिलाषी थयो, ते मोक्षना निमित्त श्री तीर्थंकर देव पामीने, हर्षनो भोग आस्वादन पामे घणो विलास उपजे कार्यार्थी कारणनी पुष्टता वांछे, ए नीति छे इति ॥३॥

अजकुलगत केसरी लहे रे, निजपद सिंह निहाल॥
तिम प्रभुभक्तें भवि लहे रे, आतमशक्ति संभाल॥
अ० ॥ ४ ॥

अर्थः—ते उपर दृष्टांत कहे छे. जेम कोई केसरी सिंह जन्मकालथी बकराना टोलामां वध्यो छे तो ते एम जाणे जे बकरानो टोलो तेज माहेरुं कुटुंब छे, त्यां किवारें बीजो सिंह आवे, तेवारें बकरा सर्व नासे, अने पोतें पण नासे, एम करतां किवारें सिंहनो आकार देखीने पोता सामुं जुए, त्यारें ते पोतानो समान आकार जोईने विचारे जे एहनुं ने मारुं तो तुल्यपणुं दीसे छे, ने हुं पण सिंह छुं, पछी निर्भय थाय.

ए रीतें अज केनां वकरानां वृन्द केनां चेटामांहे नत केनां रहो छे सिंह, ते सिंहपणुं भूली गयो, ने बीजा सिंहने देखीने पोतानुं सिंहपणुं संभारे, तिम केहनां ते रीतें प्रभुनी भक्ति करतां भव्यजीव लहे, करेतां पामे. पोतानी आत्मशक्तिनी संभाल करेतां ओलखाण पामे, जे वीतराग देव देखीने तेनी भक्ति करतां तथा सेवतां थकां उपजे जे वस्तुस्वरुपसत्तायें हुं पण वीतराग निःकर्मा शुद्धस्वरूपी छुं, ए पण पहेलां संसारी जीवद्रव्य हता, पछी सिद्ध थया, तेम हुं पण प्रथमथी संसारी छुं, पण जो साधुं, तो सिद्धरूप थाउं. ए सर्व ओलखाण, प्रभुसेवना करतां निपजे ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

कारण पद कर्त्तापणें रे. करी आरोप अभेद ॥
निज पदअर्थी प्रभुथकी रे, करे अनेक उमेद ॥अ०५॥

अर्थः—केटलें कोई कहेशे जे अरिहंत देव तो अन्य जीवना मोक्षकर्त्ता नथी. तो अरिहंतदेव पासें मोक्ष मागो छो ? तेने उत्तर करे छे. के कारणपद जे अरिहंतादिक ते अतिपुष्टालंबन छे, माटे ते कारण तेनेज अनेदकर्त्तापणें आरोप करीने निज कहेतां पोतानुं पद जे शुद्ध सिद्धता, तेहनो अर्थी जे भव्य जीव, ते प्रभु श्रीतीर्थंकर देवथी अनेक सम्यक्त्वादिक गुणनी उमेद करेतां आशा करे, जे हे प्रभुजी! मुजने मोक्षनां कारण तथा मोक्ष तमें आपो. एटले निमित्त कारणने कर्त्तापणे आरोप करी स्तुति करी ॥ ५ ॥

अहवा परमातम प्रभु रे, परमानंद स्वरूप ॥
स्याद्वादसत्ता रसी रे, अमल अखंड अनूप ॥अ०६॥

अर्थः—हवे जे निमित्त पामीने उपादान समरे, पलटण पामे, ते रीत कहे छे, अथवा प्रभु परमात्मा तेहनुं स्वरूप कहे छे. आत्मा त्रण प्रकारना छे, एक बहिरात्मा, बीजो अंतरात्मा, त्रीजो परमात्मा. तिहां जे शरीरादिक औदयिकभाव-कर्मजनितने आत्मपणे गणे, ते बहिरात्मा कहियें, अने जे शरीरादिक औदयिकभावथी आत्मा असंख्यात प्रदेशी, चेतनाल-क्षणज्ञानादि अनंतगुण पर्याय सहित अरूपी भिन्न एटले आत्मा अरूपी, शरीर रूपी, आत्मा सहज अकृत्रिम, शरीर संयोगी कृत्रिम, तेमाटे कर्मयोगें शरीरादिमध्ये रह्यो, पण भिन्न छे, एहवो भेदज्ञानवंत, समकित गुणठाणाथी मांडी क्षीणमोह गुणठाणाना चरम समय पर्यंत अंतरात्मा जाणवो, तथा ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनी, अंतराय, ए चार कर्म क्षय गयां, केवलज्ञानी ते सयोगी अने अयोगी केवली तथा अष्ट-कर्ममुक्त सिद्धात्मा, ते परमात्मा जाणवो, एटले श्रीअजितनाथ अरिहंत एवंभूतनयें परमात्मा छे, प्रभु छे, सर्व सिद्ध वस्तु-गतें पोताना गुणपर्यायरूप संपदाना प्रभु छे, कोई द्रव्य, अन्यद्रव्यनुं स्वामी होयज नहीं, ज्यां सुधी जे द्रव्यना चि-तनमांहे पण परद्रव्यनुं स्वामिपणुं छे, त्यां सुधी ते द्रव्य शुद्ध नहीं, तेमाटे श्रीअजित अरिहंत पोताना स्वभावना प्रभु छे, अने उत्तम जीव पोताने कर्मवश पड्या मोहें मुंज्या जाणी, पोताने रंक समान गणे, अने अमोही स्वाधीन थया तेहने प्रभु कहे, अने अमोहीने अवलंब्यां पोतें स्वसंपदाना धणी थाय माटे तेहना कारणपणाथी पोतानुं प्रभुत्वपणुं पामीयें, तेहने प्रभु कहीयें, स्तवीयें, जगत्मांहे पुद्गलना संयोगें जे सुख कहेवाय छे, तेनो आरोपमात्र छे, एटले आतें सुख नथी

॥ उक्तं च विशेषावश्यके ॥ जत्तोविय पच्चक्खं, सोम्म सुहं नत्थि दुक्खमेवेकं ॥ तप्पडियार विभत्तं, तो पुन्नफलंति दुक्खंति ॥ १ ॥ हे सौम्य ! 'प्रभासज्ञानावलोकनेन' ए सर्व दृश्यमान ते सुख नथी, जे कांइ ए संसारमांहे, स्रग्चंदनअंगना संयोगथी उपनां जे सुख, ते सर्व दुःखज छे, विषयथी उत्सुकतापी उपनी जे अरति, तेहनो ए प्रतिकार छे. एटले दुःख तेनेज तत्त्वना अजाणपणाथी, सुखदुःखरूप भेदें वेहेंच्युं छे, पण जातें एक ज दुःखरूप छे ॥ यथा ॥ श्लोक ॥ औत्सुक्य मात्रमवसादयति प्रतिष्ठा, क्लिश्नातिलब्धपरिपालनवृत्तिरेव ॥ नातिश्रमापगमनाय यथा श्रमाय, राज्यं स्वहस्तधृतदंडमिवातपत्रम् ॥ १ ॥ जे पुण्यफल ते सर्व नश्वरथी दुःखरूप छे ॥ उक्तं च ॥ विसयसुहं दुःखं चिय, दुक्खपडिआरओ तिगिच्छव ॥ तं सुहमुवयाराओ, न उवयारो विणा तच्चं ॥१॥ विषयसुख ते तत्त्वथी दुःखज छे. जेम रोगीने क्वाथपान छेदन दंभनादि चिकित्सानी परें हित भासे छे. पण दुःखमयुं छतुं छे, मात्र उपचारें सुख भासे छे, अने जे उपचार ते तथ्य पारमार्थिक सुख नही, सुख ते मुक्त आत्माने निरुपचरित स्वाभाविक निःप्रतिकाररूप आत्मिक आनंद छे, तेज सुख छे, तथा सातानो उदय, ते पण दुःख, असातानो उदय ते पण दुःख, कारणके साता ते कर्म छे, अने कर्मनो विपाक ते गुण रोधक छे, स्वगुणनो रोध तेहने सुख कोण कहे ? ॥ उक्तं च ॥ सायासायं दुक्खं, तव्विरहंम्मि य सुहं जओ तेणं ॥ देहिंदिय दुक्खं, सुक्खं देहिंदियाभावो ॥ इति ॥ तेमाटे संसार सर्व दुःखरूप छे, अने सर्व परभावना संगथी रहित, स्वाभाविक जे आनंद; तेने परमानंद कहीयें, ते परमानंद, श्रीअजितना-

यतुं स्वरुप छे, जीवादि षट् द्रव्य छे, तेमध्ये पंचास्तिकाय ते परमार्थे द्रव्य छे, तथा छठो काल ते उपचारद्रव्य छे. ए चर्चा, तत्त्वार्थ, विशेषावश्यक तथा धर्मसंग्रहणी मध्येथी जोवी. तेमध्ये एक एक द्रव्यने विषे अनंता गुण, अनंता पर्याय छे, ते अनेकता जाणवी, अने एक द्रव्यने विषे एक समयें स्यान्नित्यं स्यादनित्यं, स्यात् एकं, स्यात् अनेकं, स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् भिन्नं, स्यात् अभिन्नं, स्यात् वक्तव्यं, स्यात् अवक्तव्यं. ए सर्व स्वभाव, समकालें वर्त्तता पामीयें छीयें, एटला धर्म समकालें जेमांहें वरते, ते धर्मनी अनंत प्रवृत्तिने स्याद्वावाद कहियें ॥ स्यात् इति पदं अनेकांतोद्योतकं एहवी स्याद्वादमयी जे आत्मानी गुणपर्यायरूप सत्ता छे, तेना रसी कहेतां रसीया छो, एटले स्याद्वादमयी आत्मसत्ता, तेहना भोगी छो, तथा अमल कहेतां कर्ममल रहित छो, अखंड कहेतां किवारें खंड न पामो, अनुप कहेतां जेहनी उपमा नथी, एहवा प्रभु देखीने माहारे लाभ थयो ॥ ६ ॥

आरोपित सुख भ्रम टल्यो रे, भास्यो अव्याबाध ॥ समर्यो अभिलाषीपणो रे, कर्त्ता साधन साध्य ॥अ० ७

अर्थः—एहवा प्रभुजी आत्मानंद भोगी, आत्मस्वरूप रमणी, तत्त्वविलासी, तेमनें जोइने माहरे अनादि कालनुं इंद्रियसुखने विषे जे सुखनुं भासन ते आरोपितसुखभ्रम हतो, ते टल्यो, अने अव्याबाध, आत्मिकआनंद सुख ते भास्युं. जिहां सुधि विषय सुख उपर सुखबुद्धि हती, तिहां सुधि विषय सुखनो अभिलाष हतो, ते हवे तो सर्व विषय रहित, अव्याबाध सुखी श्री प्रभुजी दीठा, तेथी ते भव्य जीवने पण

व, ते अव्याबाध छे. एहवो निर्धार थयो, तेवारें अभिलाष
। अव्याबाध सुखनो थयो, माटे अभिलाषीपणुं समर्यु, ते-
र स्वरूपानुयायी थयो, एटला काल सुधी विषय सुखने
मिलाषें, आत्मा विषयसुखनो कर्त्ता हतो, ते जिवारें एहने
व्याबाध सुखनो अभिलाष थयो, तेवारें कर्त्ता पण तेहवांज
ववे, अने साध्य पण तेहीज होय, एटले आज सुधि साध्य
षयसुखनुं हतुं, तेथी साधन पण विषयसुखनां मेलवतो हतो,
वे प्रभु श्री अजितनाथ निर्विकारी दीठा, तेवारें ते अव्या-
ध सुख साध्य थयो, एटले साध्य साधन समर्यु ॥ ७ ॥

ाहकता स्वामित्वता रे, व्यापक भोक्ताभाव ॥
ारणता कारजदशा रे, सकल ग्रह्युं निज भाव॥अ०८॥

अर्थः—एटला काल सुधि ए जीव विषयसुखनो ग्राहक
तो, हवे शुद्ध अव्याबाध सुखी परमेश्वर देखीने ए जीव,
व्याबाध सुखनो ग्राहक थयो, एटला काल सुधि मूलनो
ाड्यो विषयसुखनां हेतु जे धन, स्त्री, वस्त्र, आहारादिक पर-
ाव, तेनुं स्वामिपणुं करतो हतो, हवे ज्ञानादिक अनंत
ुण संपदाना स्वामी श्री देवाधिदेव देखीने ए जीवने पण
अनंत ज्ञानादिक स्वसंपदानुं स्वामिपणुं थयुं एटले ग्राहकभाव
था स्वामित्वभाव समर्यो. एटला काल सुधि ए आत्मा विष-
ादिक परभावमध्ये व्यापक हतो, ते हवे आत्मानंद मध्ये
तथा तेना साधनमध्ये व्यापक थयो, तथा अनादि काल सुधी
रभावनो भोक्ता हतो, हवे परमप्रभु स्वभावभोगी देखीने,
ु पण स्वभावनो भोक्ता थयो, एटले व्यापकता तथा भो-
क्तापणुं समर्यु. एटला काल सुधि भुलें पड्यो ए आत्मा, सं-

धर्नुं स्वरुप छे, जीवादि पट द्रव्य छे, तेमध्ये पंचास्तिकाय ते परमार्थे द्रव्य छे, तथा छठो काल ते उपचारद्रव्य छे. ए चर्चा, तत्वार्थ, विशेषावश्यक तथा धर्मसंग्रहणी मध्येथी जोवी. तेमध्ये एक एक द्रव्यने विषे अनंता गुण, अनंता पर्याय छे, ते अनेकता जाणवी, अने एक द्रव्यने विषे एक समये स्यान्नित्यं स्यादनित्यं, स्यात् एकं, स्यात् अनेकं, स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् भिन्नं, स्यात् अभिन्नं, स्यात् वक्तव्यं, स्यात् अवक्तव्यं. ए सर्व स्वभाव, समकाले वर्त्तता पामीये छीये, एटला धर्म समकाले जेमांहे वर्त्ते, ते धर्मनी अनंत प्रवृत्तिने स्याद्वाद कहिये ।। स्यात् इति पद अनेकांतोद्योतकं एहवी स्याद्वादमयी जे आत्मानी गुणपर्यायरूप सत्ता छे, तेना रसी कहेतां रसीया छो, एटले स्याद्वादमयी आत्मसत्ता, तेहना भोगी छो, तथा अमल कहेता कर्ममल रहित छो, अखंड कहेतां क्यारे खंड न पामो, अनघ कहेता जेहनी उपमा नथी, एहवा प्रभु देखीने माहारे लाभ थयो ।। ६ ।।

आरोपित सुख भ्रम टल्यो रे, भास्यो अव्याबाध ॥
समर्यो अभिलाषीपणो रे, कर्त्ता साधन साध्य ॥अ० ७

अर्थः—एहवा प्रभुजी आत्मानंद भोगी, आत्मस्वरूप रमणी, तत्त्वरिसागी, तेमने जोइने माहरे अनादि कालनुं इंद्रियसुखने विषे जे सुखनुं भासन ते आरोपितसुखभ्रम हतो, ते टल्यो, अने अव्याबाध, आत्मिकआनंद सुख ते भास्युं. जिहां सुधि विषय सुख उपर सुखबुद्धि हती, तिहां सुधि विषय सुखनो अभिलाष हतो, ते हवे तो सर्व विषय रहित, अव्याबाध सुखी श्री प्रभुजी दीठा, तेथी ते सत्य जाणीने पण

सुख, ते अव्याबाध छे. एहवो निर्धार थयो, तेवारें अभिलाष पण अव्याबाध सुखनो थयो, माटे अभिलाषीपणुं समर्यु, ते-वारें स्वरूपानुयायी थयो, एटला काल सुधी विषय सुखने अभिलाषें, आत्मा विषयसुखनो कर्त्ता हतो, ते जिवारें एहने अव्याबाध सुखनो अभिलाष थयो, तेवारें कर्त्ता पण तेहवोज मेलवे, अने साध्य पण तेहीज होय, एटले आज सुधि साध्य विषयसुखनुं हतुं, तेथी साधन पण विषयसुखनां मेलवतो हतो, हवे प्रभु श्री अजितनाथ निर्विकारी दीठा, तेवारें ते अव्याबाध सुख साध्य थयो, एटले साध्य साधन समर्यु ॥ ७ ॥

ग्राहकता स्वामित्वता रे, व्यापक भोक्ताभाव ॥
कारणता कारजदशा रे, सकल ग्रह्यं निज भाव॥अ०८॥

अर्थः—एटला काल सुधि ए जीव विषयसुखनो ग्राहक हतो, हवे शुद्ध अव्याबाध सुखी परमेश्वर देखीने ए जीव, अव्याबाध सुखनो ग्राहक थयो, एटला काल सुधि मूलनो ग्राह्यो विषयसुखनां हेतु जे धन, स्त्री, वस्त्र, आहारादिक पर-भाव, तेनुं स्वामिपणुं करतो हतो, हवे ज्ञानादिक अनंत गुण संपदाना स्वामी श्री देवाधिदेव देखीने ए जीवने पण अनंत ज्ञानादिक स्वसंपदानुं स्वामिपणुं थयुं एटले ग्राहकभाव तथा स्वामित्वभाव समर्यो. एटला काल सुधि ए आत्मा विष-यादिक परभावमध्ये व्यापक हतो, ते हवे आत्मानंद मध्ये तथा तेना साधनमध्ये व्यापक थयो, तथा अनादि काल सुधी परभावनो भोक्ता हतो, हवे परमप्रभु स्वभावभोगी देखीने, ए पण स्वभावनो भोक्ता थयो, एटले व्यापकता तथा भो-क्तापणुं समर्यु. एटला काल सुधि मुर्छे पड्यो ए आत्मा, सं-

सारमां आठ कर्मरूप उपाधिनुं उपादान कारण हतो, हवे शुद्ध स्वरूपी, निःकर्मा, तत्त्वदेव देखीने पोताना शुद्ध स्वरुपनुं उपादान कारण थयो, एटला काल सुधि ए आत्मा आठ कर्म रुप कार्यनो कर्त्ता हतो, हवे परमदेवनी श्रद्धा पामीने संवर निर्ज्जरा रुप कार्यनो कर्त्ता थयो; माटे हे परमेश्वर ! हे जगदाधार ! हे दीनबंधो ! तुमारे अनुयायी मारी चेतना प्रवर्त्ती तेथी कारण नया कार्य इत्यादि बीजी पण अनंती आत्मशक्ति, ते सर्व समरवा लागी, एटले सर्व आत्मानी शक्ति आत्मभाव ग्रह्यो, अने परभाव तजवा मांड्यो ॥८॥ इति अष्टम गाथार्थः ॥

श्रद्धा भासन रमणता रे, दानादिक परिणाम ॥
सकल थया सत्ता रसी रे, जिनवर दरिसण पाम
॥ अ० ॥ ९ ॥

अर्थः—एटला काल सुधि उदेक पुण्य प्रकृति तेनो विपाक जे शातावेदनी प्रमुख गुणरोधक तत्त्वविमुख तेना स्वाद, जीवने मीठा लागता हता, तेथी ते पुण्यना उदयने सुख मानतो हतो, ते हवे एवी श्रद्धा थइ जे अव्याबाध निःकर्म पद, तेहीज मारुं साध्य छे, तथा जे वस्तुनी यथार्थतानुं ज्ञान थयुं. ते भासन तेतां जाणपणुं ते पण समर्युं, अने रमण जे पुद्गलना वर्णादिकमां हतुं, ते सर्वस्वरूपनुं रमण थयुं, तथा १ दान, २ लाभ, ३ भोग, ४ उपभोग, ५ वीर्य. ए पांचेनो क्षयोपशम ते, एटला काल सुधि दान पुद्गलनो हतो, लाभ पण पुद्गलनो मानतो हतो, तथा भोगपणण पुद्गलनो, उपभोग पण संसारमां पुद्गलनो हतो, अने वीर्य पण बाल्यवीर्य, ते पुद्गल

द्रव्य बंधन प्रमुख आठ करणपणे प्रवर्त्ततो हतो, ते सर्व सत्तापणे पोताना जीवद्रव्यना मूलधर्म ज्ञानादि अनंत गुणपर्याय रूप तेना ग्राही थया, एटले पुद्गलानुयायीना तजीने, शुद्ध स्वरूपानुयायी थया, एटले स्वसत्ता ते माहारो धर्म, एहवी श्रद्धा थइ, अने स्वगुण जे पोतानो भावनिक्षेपो ते सार छे, एहवुं भासन थयुं, तथा रमण ते, आत्मधर्म क्षमादिकमां थयुं, अने सहकाररूप ते दानगुण, गुणप्राग्भाव रूप ते लाभ, भोग स्वगुणनो थयो, उपभोग स्वपर्यायनो, वीर्य ते पंडित वीर्य थइने, संवर हेतु निर्जराउप थयो. ते सर्व हे वीतरागदेव ! हे जिनवर ! तमारुं दर्शन पामीने एटले प्रभु दीठे माहारा एटला गुण समर्या ॥ ९ ॥ इति नवम गाथार्थः ॥

तेणे नियामक माहणो रे, वैद्य गोप आधार ॥
देवचंद्र सुख सागरु रे, भाव धर्म दातार ॥अ०॥१०॥

अर्थः—तेमाटे हे प्रभु ! तमे संसारसमुद्रनो पार पमाडनार एवुं जे चारित्रधर्मरूप झहाज, तेने चलाववाने निर्यामक समान छो. तथा तत्त्वधर्म पणे पोतें परिणम्या, तेथी द्रव्यहिंसा तथा भावहिंसाथी रहित छो, अने परम अहिंसक धर्मना उपदेशक छो माटे माहण छो, तथा आत्मअशुद्धता रूप भावरोग तेनी सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप भावचिकित्सा, तेने देखाडवाना वैद्य छो, तथा भावथी ज्ञानादिगुण अने द्रव्यथी छकाय रूप जीवनी रक्षा करवाने परम गोप छो, वळी भवअटवीमांहे भमता प्राणीयोने हे प्रभु तमे आधार छो, सर्व देवमांहे चंद्रमा समान पोताना सुखना सागर एहवा हे श्री अजितनाथ परमेश्वर, तमे भावधर्म जे जीवद्रव्यने विषे स्था-

पकपणे रह्यो जे सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्ररूप भावधर्म तेना दातार छो. एटले हे प्रभु ! तुम दीठां भावधर्म सांभरे, तमे भावधर्मना उपदेशक छो, सर्व जीवने भावधर्मना दातार छो ॥१०॥ इति श्री अजितजिनस्तवनम् ॥

॥अथ तृतीय श्रीसंभवजिन स्तवन प्रारंभः॥

॥ घणरा ढोला ॥ ए देशी ॥

श्रीसंभव जिनराजजी रे,
ताहरुं अकल स्वरूप ॥ जिनवर पूजो ॥
स्वपरप्रकाशक दिनमणि रे,
समतारसनो भूप ॥ जि०॥ १ ॥
पूजो पूजो रे भविकजिन पूजो,
हांरे प्रभु पूज्यां परमानंद ॥ जि० ॥

अर्थः—हवे श्रीसंभवनाथ जिन कहेतां श्रुतकेवली, अवधिज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी प्रमुखमांहे राजा समान, एवा हे संभव प्रभु ! ताहरुं कहेतां तमारुं अकल कहेतां कोइथी कळाय नहीं एहवुं स्वरूप छे, एहवा जिनवरने पूजो. अहो भव्यो ! तमे एहवा परम पूज्य परमेश्वरने पूजो; वळी प्रभु केहवा छे ? जे स्व केतां पोतानो धर्म अने पर केतां धर्मास्तिकायादिकनो धर्म, तेने प्रकाशवाने दिनमणि केहेतां सूर्य जेवा छे, तथा समता जे सर्वने विषे राग द्वेष रहीतपणुं, तेहना भूप केतां

ा छे, एहवा तत्त्वप्रकाशक अरिहंतने पूजो, वारंवार पूजो,
ेक केतां मोक्ष योग्य मोक्षरुचि जीव, तमे पूजो, ए स्वरूप-
मी, निर्मलानंदमयी, अज, अविनाशी, अक्षय, अणाहारी,
ारीरी, अनंतज्ञानमयी, अनंतदर्शनमयी, शुद्धस्वरूपी, देव-
ने पूज्यां परमानंद थाय. जे पुद्गलयोगथी सुख उपजे, ते
ाचारसुख माटे ते परमानंद नहीं, अने जे आत्मानुं सहज
विनाशी, अप्रयासी, स्वरूपनुं सुख अव्याबाधरुप तेने पर-
नंद कहीयें, ते सुख, अरिहंत देवने पूज्यां पामीयें. यद्यपि
रिहंत देव, कोइ अन्य जीवना अव्याबाधादि गुणना कर्त्ता
ी, पण जे भव्यजीव, पोतानुं शुद्धपारिणामिक परमसिद्धता
रुप साध्य करीने वीतराग परमात्माने सेवे, अवलंबे, ते नि-
ा पोतानुं तत्त्व प्रगट करे, नियामिक कारण माटे, एहवी
रूप प्रगट थाय एमज थाशे ॥ १ ॥इति प्रथम गाथार्थः॥

अविसंवाद निमित्त छो रे,
जगत जंतु सुखकाज ॥ जि० ॥
हेतु सत्य बहुमानथी रे,
जिन सेव्यां शिवराज ॥ जि० ॥ २ ॥

अर्थः—वली हे प्रभुजी ! तमें अविसंवादि केतां विसंवाद
ि निर्धार नही ते, अने तमें निश्चय निर्धार कार्यने करो,
ाटे अविसंवादनिमित्त कारण छो ॥ निमित्त लक्षणं ॥ कार्य-
भिन्नत्वे सति कर्तृव्यापारव्यत्वे सति हेतुर्निमित्तमिति ॥ माटे
 प्रभु ! तुमें जगत्ना जीव तेना आत्मिक सुखरूप कार्य नि-
ाजावराने प्रधान निमित्त छोजी. माटे हेतु केहेतां कारण ते

सत्य केहेतां साचुं तेने बहुमान केहेतां माहामोटमपणे सेवतां जे मुज सरिखो मोहवश पड्यो, तृष्णायें ग्रस्यो, पुद्गलनो रागी, असंयममयी, मिथ्यात्वें मूल्यो भाव, ते निराधार, अशरण एहवो हुं, तेने श्रीतीर्थंकर देव, परमतत्त्वमय, त्रैलोक्योपकारी, जेना नामथी परम कल्याण थाय, एहवा परमेश्वरनो योग मल्यो, माटे मारे ए वेला, ए घडी, धन्य. एम असंख्यात प्रदेशें निःकर्मी, निःसंगी, स्वरूपभोगी देवतत्त्वनुं बहुमान करतो थको जे जिन केतां वीतरागने सेवे, ते जीव, परम कल्याणमयी पोतें थाय. इहां सत्यपद बेने जोडवुं, हेतु सत्य ते अरिहंत देव आपणा मोक्षरूप कार्यना हेतु छे, तेनुं सत्य केहेतां साचुं बहुमान करवुं, एटले इहलोक, परलोक, इंद्रियसुखनी आशंसा टालीने अद्भुत वर्ण, गंध, संस्थानातिशय, वचनातिशय, प्रातिहार्य प्रमुख सर्व शुद्ध बहुमान कारण माटे बहुमान करवा योग्य छे, ते द्रव्यबहुमान पण जे अरिहंतना शुद्ध ज्ञानादि गुण अनंतानुं सकल पुद्गलातीतपणानुं परम अरूपी अनींद्रियपणानुं बहुमान तें सत्यबहुमान कहिए. एटले जिनशासनमध्ये १ नाम, २ थापना, ३ द्रव्य, ए त्रण निक्षेपा ते कारण छे. अने चोथो भावनिक्षेपो, ते कार्यवस्तु छे, माटे जिहां सुधी प्रभुना अतिशयादिकना योग विकल्प तिहां सुधी द्रव्यबहुमान छे, अने जे दर्शनगुणें प्रभुनानुं भासन थयाथी तत्त्वप्राग्भावनुं जे बहुमान, ते भावबहुमान कहिए. अने नामादिक त्रण निक्षेपा ते भावना कर्त्ता छे, अथवा भावाभिलाषी छे, तो ते पण सत्यबहुमान जाणवुं. ते सत्यबहुमानथी जे जिनसेवना तेज प्रभुनी आज्ञायें परभाव त्याग स्वभाव ग्रहण करतां शिव-निरुपद्रव जे सिद्धपणुं, ते राज पामीयें. एटले सांसारिक शिव

ते उपचारी अल्पकाळी अने मान्यतारूप छे, माटे ते निःकर्मा-पणे सर्वस्वरूप माण्भाव, ते निरुपचरित, अविनाशी शिव कहिए ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

उपादान आतम सहीरे, पुष्टालंबन देव ॥जि०॥
उपादान कारणपणे रे, प्रगट करे प्रभु सेव ॥जि०॥३॥

अर्थः—हवे आत्मनिष्पत्तिविषे तो उपादान कारण मुख्य छे, तोपण निमित्त कारण विशेष छे, ते देखाडे छे. जे कारण तेज कार्यरूपें अनेक परिणमे ते उपादान कारण जाणवुं, अने जे कर्त्ताना व्यापारे कार्यने निपजाववामां सहकारी थाय, तेने निमित्तकारण कहियें. ए निमित्तकारण ते कार्यथी भिन्न होय. इहां कोई पूछे जे उपादान कारणमां तथा निमित्तकारणमां जे कारण धर्म छे, ते वस्तुमां छतो पर्याय छे के अछतो उपजे छे ? तेने उत्तर करे छे. जो कारण पर्याय वस्तुधर्म होय तो सिद्ध भगवान्मां पण उपादान कारण पाम्यो जोइयें ? तेतो नथी देखातुं, केम जे सिद्धमां कारणपणुं होय तो कांई कार्य-पण निपजाव्युं जोइयें ते कार्य तो संपूर्ण निपन्नुं छे. तथा निगोदावस्थाविषे पण उपादान कारण मानवुं पडे, ते पण संभ-वतुं नथी, केम जे निगोदावस्थामां उपादान कारण मानियें, तो आत्मसिद्धिरूप कार्य पण थवुं जोइयें. ते केम ? जे का-रण, ते निपन्न कार्य करे, अने कारणकाल, कार्यकाल, ते निपन्न अभेद छे, ते विशेषावश्यकमां मतिज्ञानाधिकारथी जोइ लेजो. तेमाटे कारणपर्याय ते उत्पन्न छे, ते कार्य संपूर्ण थये कारणतानो अभाव छे, अने जेनी सादि होय तेनोज अंत थाय, माटे कारणपर्याय ते सादि सांत छे, इहां कोई कहेशे

जे उपादानपणुं ते केवारें उपनो ? त्यां कहे छे, के केवारें कर्त्ता कार्यरुचि थाय, ते वारें कारणता उपजे, एटले भव्य तथा अभव्य सर्व जीव संपूर्ण सिद्धतानां उपादान छे, पण सर्व सिद्धता निपजावता नथी, शा माटे ? जे कारणपणुं नथी, जो कारणपणुं प्रगटे, तो त्यारें निपजे, माटे सर्व आत्मा पोत पोताना गुणप्रागभावरूप सिद्धता कार्यना उपादान अवश्य छे, पण श्री जिनवरदेव शुद्धतत्त्वनें अवलंबनें कारणता निपजावे, माटे पुष्ट कहेतां नियामकी मोटुं आलंबन अरिहंत देव छे, जेमाटे सालंबन विना आत्मा अनादि दोषथी निवृत्तिने तत्त्वने आश्री शके नहिं, माटे अरिहंत देवनो तीर्थंकर नामकर्मनो विपाक, तेहथी उपनां समवसरणादि जे आश्चर्य, तेने आलंब्यां संसारी जीव पोतानो आत्मधर्म नजीक करे, तो जगत् जीवना आधार श्री तीर्थंकरनी स्वरूप संपदाने आलंब्यां थकां आत्मधर्म अवश्य निपजे, माटे अरिहंत देव, ते भव्य जीवने पोतानी शुद्धसत्ता प्रागभावें करतां मुख्य आलंबन छे, हवे श्री वीतरागदेव पुष्टआलंबन केवी रीतें छे ? तेनुं कारण कहे छे, जे आत्माने विषे उपादानपणुं अनादिनुं छे पण ते आत्मसिद्धतारूप कार्यने करतुं नथी, शा माटे ? जे उपादानं कारणपणुं थयुं नथी, ते श्री जिनवर वीतरागनी जे सेवना, ते उपादान कारणपणुं प्रगट करे छे, एटले अरिहंत देवनी द्रव्य भावथी भक्ति करतां संसारी आत्मा मोक्षनो साधक थाय, तेमाटे श्रीजगदयाल, कर्मरोगना भाववैद्य, मिथ्यात्वरूप अंधकार टालवाने सूर्यसमान, ममताररहित, एवा गुणी प्रभुने सेवतां आत्मा मोक्षरूप कार्य निपजाववानुं कारणपणुं प्रगट करे, तेथी प्रभुजी पुष्टालंबन जाणवा ॥ ३ ॥ इति तृतीयगा० ॥

कार्यगुण कारणपणे रे, कारण कार्य अनूप ॥जि०॥
सकल सिद्धता ताहरी रे, माहरे साधन रूप॥जि०॥४॥

अर्थः—हवे अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने शरीर, इंद्रिय, विषय, कषायरूप कार्य करतां अनंतो काल गयो, ते जेवारें सम्यग्दृष्टि गुण प्रगट्यो, तेवारें रत्नत्रयी जे सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र, ते पोतानुं कार्य जाण्युं. पछी श्रीअरिहंत सेवना आगमश्रवणादि कारण सेवीने रत्नत्रयीनो क्षयोपशम प्रगट कर्यो, एटले यथार्थ तत्त्वश्रद्धान, तत्त्वभासन तत्त्वरमण, परभावतत्त्व त्यागरूप भेदरत्नत्रयी जेटली प्रगटी, ते पहेलां कार्यगुणे थती, पछी तेज, क्षायिक अभेद रत्नत्रयीरूप स्वकार्य करवाने कारणपणे प्रवर्त्तावे, तेवारें जे कार्यपणे हतुं, ते कारणरूप थाय, पछी तेहीज कारणरूप, भेद रत्नत्रयी ते क्षायिक भावरूप कार्यरूपें परिणमे, माटे जे कारण, तेहीज कार्य थाय. ए उपादान कारण कार्यरूप पद्धति कही, हवे निमित्तपणे कहे छे. हे प्रभुजी ! तमारुं शुद्ध स्वरूप तेहीज तमारो कार्यगुण छे, पण ते भव्य मोक्षरुचि जीवने कारणपणे छे, केमके जे उपादानने तमारा शुद्ध गुण तेने कारणपणे अवलंबी तमारा जेवी सत्ता प्रगट करवी, ते कार्य छे, एटले जे कारण तेहीज करवाने संकल्पे कार्य छे, माटे हे प्रभुजी ! तुमारी सकल एटलां संपूर्णसिद्धता सकल प्रदेशें निरावरणता सर्वस्वधर्म प्रागभावता ते माहरे साधनरूप छे, एटले तुमारी शुद्धतानुं जे साधन छे, तेने जेवारें माहरो आत्मा परम प्रभुतारूप संपदाने अवलंबे, तेवारें परमात्मानी थईने, स्वरूपावलंबी थाय, तेवारें माहरी सिद्धता नीपजे, माटे तमारी सि-

छना निपजे, माटे तमारी सिद्धता ते माहारे साधनरूप छे, तेथी हुं जे माहरुं स्वरूप प्रगट करूं, ते उपकार तमारो छे, तेथी माहारे तो आधार, त्राण, शरण, सर्व हे देव ! तमेज छो ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

एकवार प्रभुवंदना रे, आगम रीतें थाय ॥
कारणसत्यें कार्यनी रे, सिद्धि प्रतीत कराय ॥ जि० ५॥

अर्थः—माटे श्रीअरिहंत अनंतज्ञानी, अनंतदर्शनी, शुद्धचारित्री, अविकारी, अकषायी, स्वरूपभोगी, स्वरूपरमणी, स्वरूपविलासी, त्रैलोक्यपूज्य, त्रैलोक्यउपकारी, चालना भावमूर्त, कर्मरोगना महावैद्य, परमेश्वर, परमोपकारी, तेने एकवार पण जे रीतें आगम कहेतां सिद्धांतमां कह्युं छे, ते रीतें जो वंदन थाय, एटले अनुष्ठान वर्जीने गुणबहुमानें अनुमोदना, आश्चर्यता, तद्विरहवासनार्थे जो थाय, तो माहरुं मोक्षरूप कार्य निपजे, एहवी प्रतीत कराय, शा माटे ? जे कारणसत्यें कहेतां छते कारणे अथवा कारण सत्यें कार्यनी सिद्धि एटले निष्पत्तिनी प्रतीत कराय, अने कार्य पण निपजे, एटले श्रीप्रभु परमात्माने निर्विघ्न वंदना करतां उपादान जे आत्मा, ते गुणानुसारी थयो, तो निमित्त तथा उपादान बेहु कारण साचां थयाथकी कार्य पण साचुं निपजे, जेम स्त्री, धन, विषयादिक अशुद्ध निमित्त मले तेवारें आत्मा अशुद्ध उपादानी थाय. तेथी संसार अशुद्धतारूप कार्य निपजे छे, तो श्रीजिनराज शुद्ध निमित्त मलेथी उपादान जे आत्मा ते शुद्धपरिणामी थाय. तेथी शुद्ध सिद्धतारूप कार्य निपजें, अनादिकाल संसारमां

भमतां न आव्युं एहवुं अरिहंत बहुमान ते जो एकवार आवे, तो कार्य निपजवानी प्रतीति थाय ॥५॥ इति पंचम गाथार्थः॥

प्रभुपणे प्रभु ओलखी रे, अमल विमल गुणगेह ॥जि०॥
साध्यदृष्टि साधकपणे रे, वंदे धन्य नर तेह ॥जि०॥६॥

अर्थः—हवे शुद्धसत्ता परिणामिपणे संसार तथा परजीवनी सिद्धिना अकर्त्ता अने स्वरूपनी सिद्धि प्रगटे, वली अमल कहेतां राग द्वेषादि आवरणादि मलथी रहित, विमल कहेतां भाव उज्ज्वलतावंत, गुणगेह कहेतां ज्ञानादि गुणना घर, एवी रीते प्रभुनुं जे रूप छे, तेने ओलखीने साध्यदृष्टि एटले पोतानो आत्मा परमानंद रूप छे, तेनी सर्व संपदा प्रगटाववा रूप साध्य नजरमां राखीने एटले तत्त्वकार्य आलंबनी थइने साधक-पने कहेतां पोतें साधक थइने, जे पोताना ज्ञानादिक गुण क्षयोपशमी छे, ते सर्व गुण निर्मल करवारूप कार्य करवापने प्रवर्त्तावनां जे शुद्धानंदी, परमज्ञानी, निर्मोही देवने वांदे, नमस्कार करे, ते नर धन्य, कृतपुण्य जाणवा ॥ उक्तं च ॥ जे पुण तिलोयनाहो, भत्तिब्भर परिपुण्ण हीयएण ॥ वंदंति न मंसंति, ते धन्ना ते कयत्था य ॥ ६ ॥ इति षष्ठगाथार्थः ॥

जन्म कृतारथ तेहनो रे, दिवस सफल पण तास॥
जगत शरण जिन चरणनें रे, वंदे धरीय उल्लास॥जि०७

अर्थः—ते जीवनो जन्म कृतार्थ जाणवो, वली ते दिवस पण तेहवोज सफल जाणवो. जगत्ना जीव, मोहें मुंजवाने, भव अटवीमध्ये पडवाने, मिथ्यात्वें लुंटाताने, परमशरण त्राण

आधारभूत एहवा श्रीजिन कहेतां वीतरागना चरणने जे उल्लास कहेतां हर्ष धरीने वंदे, कहेतां वांदे, तेनो जन्म कृतार्थ॥७॥

निज सत्ता निज भावथी रे, गुण अनंतनुं ठाण ॥
देवचंद्र जिनराजजी रे, शुद्ध सिद्ध सुखखाण ॥जि०८

अर्थः—ते प्रभु निज कहेतां पोतानी सत्ता अनंतगुण पर्याय रूप ते निज भावथी कहेतां पोताने भाव स्वभावेंथी थया छे. एहवा जे गुणज्ञानादिक अनंत तेनुं ठाण कहेतां ठेकाणुं छे. सर्व देवमां चंद्रमा समान जिनराज, ते कहेवा छे? शुद्ध सिद्ध कहेतां निष्पन्न गुणनी खाण छे ॥ ८ ॥ इति संभवजिनस्तवनं ॥ ३ ॥

॥ अथ चतुर्थ श्रीअभिनंदनजिनस्तवनम् ॥

॥ ब्रह्मचर्यपद पूजीयें ॥ ए देशी ॥

क्युं जाणुं क्युं बनी आवशे,
अभिनंदन रस रीति हो मित्त ॥
पुद्गल अनुभव त्यागथी,
करवी जसु परतीत हो मित्त ॥ क्युं० ॥ १ ॥

अर्थः—हवे श्रीअभिनंदन प्रभुनी स्तुति कहे छे. कोइ भव्य जीवने श्रीवीतरागदेवथी एकत्वपणे मलवानुं मन थयुं, पण प्रभुजीने मलवानी शक्ति पोतामां अण देखतो विचारे छे, जे एहवा परमोत्कृष्ट देवतत्त्वनी केम मिलाय ? तेनो विर-

ित थको बोले छे. जे ए प्रभुजीथी शुं जाणीयें केम बनी
आवशे ? ते परम वल्लभथी मलवानुं मन छे, पण मलवुं
दुर्लभ देखीने बोले छे, जे हे प्रभु ! श्रीअभिनंदन देव !
तमथी माहरे शुं जाणीयें केम बनी आवशे ? अभिनंदन क-
हेतां संवर राजाना पुत्र, सिद्धार्थे राणीनी कुक्षियें उत्पन्न, गर्भे
आव्याथी जिहां सुखी गर्भे रह्या, तिहां सुखी नित्य इंद्रें
आवीने सुखपृच्छा पूछी, तेथी अभिनंदन एवुं नाम थयुं, अ-
थवा अति समस्त पणे आनंदमयी तेथी अभिनंदन नाम
थयुं, ते प्रभुथी रस करेतां रसीली एकत्वना रीति केम थने ?
पुद्गलना वर्ण, गंध, रस, फरसनो अनुभव करेतां भोगववुं,
तेहना त्यागथी करवी, तेहनी प्रतीत एटले सर्व पुद्गलनो
अनादिनो अशुद्धभोग तजीने जेवारें जे वर्ते. तेवारें तेने प्र-
भुथी सहि शकवानी प्रतीति थाय, पण पुद्गलभोगीने ते शुद्ध
रसीली एकत्वता न थाय, जे स्वरूपभोगी थयो, तेहने ए
प्रतीत बनी, ए.॥ प्रतीत थाय, माटे पोताना आत्माने कहे
छे, जे हे मित्र ! ए कार्य केम बनशे ? ते ॥ विचारी जो
. ? ॥ इति प्रथमगाथार्थः ॥

परमातम परमेसरू, वस्तुगते ते अलिप्त हो मित्त॥
द्रव्ये द्रव्य मले नाहिं, भावे ते अन्य अव्यास हो
मित्त ॥ क्युं० ॥ २ ॥

अर्थः—प्रभु तो निःकर्मा देवरूप परमात्मा छे, तथा
परम करेतां उत्कृष्ट ईश्वर छे, एटले अनंतज्ञान प्रदेशें पारि-
णामिकपणे रह्या जे अनंता गुणपर्याय, तेहना ईश्वर अथवा

सर्व प्रकारें स्वाधीन, निर्दोषी तेथी परमेश्वर वळी केहवा छे? जे वस्तुगतें कहेतां मूलवस्तुधर्में अलिप्त छे, एटले सर्व जीवद्रव्य शुद्धसंग्रहनयें अलिप्त छे, पण कोइ अन्यद्रव्य तथा रागादि अशुद्ध परिणतिथी लेपाय नहीं, अने अभिनंदन प्रभु तो सर्वनयें विशुद्ध थया छे, टंकोत्कीर्णन्यायें प्राग्भावधर्मी थया छे, ते सर्व रीते पर्यी अलिप्त छे, एटले जे लेपाय, ते मले, पण जे लेपाय नहीं, ते केम मले ? हवे छ द्रव्य छे, तेनां नाम कहे छे. १ असंख्यात प्रदेशी, लोकप्रमाण, अरूपी अक्रिय, अचल, अचेतन,चेतन तथा जीव अने पुद्गल ए बे द्रव्य, गतिपरिणामी छे तेने गतिनो सहायी थाय, ते धर्मास्तिकाय द्रव्य जाणवुं. २ असंख्यातप्रदेशी, लोकप्रमाण, अरूपी, अचेतन, अक्रिय, स्थितिपरिणामी, एटले जे जीवपुद्गलने स्थिर रहेवानुं सहाय आपे, ते अधर्मास्तिकाय, ३ अनंतप्रदेशी, लोकालोकप्रमाण, अरूपी, अचेतन, अक्रिय, अने सर्व द्रव्यना पोतें अवगाहक परिणामी, तेने अवगाहनानुं हेतु, ते आकाशास्तिकाय द्रव्य, ४ पुद्गलपरमाणु, अनंतारूपी, अचेतन, सक्रिय, पूर्णगलनधर्ममयी, १ वर्ण, २ गंध, ३ रस, ४ स्पर्शयुक्त; एक एक परमाणु, एहवा अनंत परमाणु ते सर्वलोकमांहे व्यापक, पण लोकथी बाहेर नथी, ते पुद्गलास्तिकायद्रव्य, ५ चेतनालक्षण, १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, ४ तप, ५ वीर्य, ६ उपयोग, लक्षण तथा अरूपी, स्वभावनुं कर्ता, असंख्यात प्रदेशी, एहवुं एक जीवद्रव्य, एहवा अनंता जीव, ते जीवास्तिकायद्रव्य कहियें, ए पांच द्रव्यने प्रदेशनो संबंध छे, माटे अस्तिकाय कहियें. ६ तथा छट्ठं अप्रदेशी, अरूपी, वर्तनालक्षण, निश्चयनयथी पंचास्तिकायनी वर्तनारूप अने व्यवहारें उपचारथी ज्योतिष-

ने पांचमो जीवास्तिकाय, ते कालद्रव्य, ए छ द्रव्यनां नाम कह्यां.
मां १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय,
४ काल, ए चार द्रव्य, अपरिणामी कोइनी क्रिये नहीं, अने
१ जीव, २ पुद्गल, ए बे द्रव्य परिणामी, एटले अन्यद्रव्यनी
मळे, तेमांहे पुद्गलद्रव्य मांहोमांहे संक्रमण पामे, अने पगनु-
ग्राही हेतुपने परिणमतो जे जीव, तेने प्रदेशे कर्मने करे,
पण एक जीवथी बीजो जीव मळे नहीं अने पुद्गल तो संसारी
जीवथी मळे, पण माहरा अभिनंदन परमेश्वर तो सिद्ध थया
छे, मिथ्यात्वादिक हेतुथी मुक्त थया छे, तेने पुद्गल लागी
शके नहीं, ए स्वरूप छे, माटे द्रव्यथी द्रव्य मळे नहीं, एटले
शुद्ध जीव ते अशुद्ध जीवथी मळे नहीं. बीजुं पण मुक्तपणे
कोइ द्रव्य कोइ द्रव्यथी मळे नहीं. ते द्रव्ये तो मळवुं नथी,
तथापि कदाचित् भोले मळे तोपण भाव करेना वस्तुनी मूल-
परिणति प्रवृत्तिरूप तेथी अन्यजीव तथा अन्य पुद्गलने अ-
न्यपणुं छे, एटले भळे नहीं. जे परभावपणा ते उपाधिथी
छे, अने प्रभु श्रीअभिनंदन देवनो आत्मधर्म ते पाम निर्मल
थयो छे, सर्वथा भावे अनुयायी थयो छे, एटले कर्ता, भोक्ता,
ग्राहकता, व्यापकता, आधारता, रमणता, अवस्थानता, इत्या-
दिक सर्व स्वरूपपणे निपनां छे, ते केम अन्यद्रव्यने आपे?
तेथी प्रभुजीनां १ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, ४ भाव, सर्व शुद्ध-
धर्मी छे, ए द्रव्यादि चारनुं स्वरूप लखे छे ॥ गाथा ॥ दव्वं
गुणसमुदाओ, खित्तं ओगाह वट्टणा कालो ॥ गुणपज्जाय प-
वति, भावो निअ वत्थुधम्मो सो ॥१॥ इति आगमवचनात् ॥
गुणपर्यायनो समुदाय ते द्रव्य तथा प्रदेशावगाहना ते क्षेत्र,
अने उत्पाद, व्ययनी वर्त्तना, ते काल, तथा द्रव्यना पोत-

पोताना गुणपर्यायनी प्रवर्त्ति ते मात्र, एम द्रव्यादि घातनी परिणति ते वस्तुधर्म छे, माटे ते प्रभु केम मले ? ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

शुद्ध सरूप सनातनो, निर्मल जे निःसंग हो मित्त ॥
आतम विभूतें परिणम्यो, न करे ने परसंग हो मित्त ॥
॥ क्युं० ॥ ३ ॥

अर्थः—वळी श्रीवीतरागदेव केहेवा छे ? शुद्ध कहेतां सर्वदोषरहित, एहवुं स्वरूप जेहनुं सनातनो कहेतां नित्य छे, यद्यपि पर्यायें अनित्य छे, पण इहां कूटस्थ नित्यतायें नित्य छे, निर्मल ज्ञानावरणादि मल रहित, वळी निस्संग केहेतां सं संग रहित, जेहनो असंख्यातप्रदेशमध्ये द्रव्यथी कोइ परमा मात्र रह्यो नथी, अने भावथी जेहनी परिणतिमांहे रागी द्वेषी पणे कांइ अन्य भाव नथी, एहवो निस्संग छे ते परमेश्व वळी आत्मविभूति कहेतां पोतानी शुद्धस्याद्वादरूप, अनंत, अज अविनाशी, अखंड, स्वधर्मे परिणम्यो छे, एहवो जे परमेश्व ते पर-केहेतां बीजा द्रव्यनो संग एटले संबंध करे नहीं, प टले सत्तायें जीवद्रव्य परसंगी नथी, विभावें परसंगी थयो छे पण जे सम्यक् रत्नत्रयी रूप साधनपणे परिणमीने शुद्धरू थया ते कोइं रीतें परनो संग कर नहीं, तो एहवा प्रभुर्थ केम मळाशे ? माटे हे प्रभु ! तुमने मल्या विना मुझने शुद्ध केम थाशे ? ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

पण जाणुं आगम बले, मिलवुं तुम प्रभु साथ हो मित्त
प्रभु तो स्वसंपतिमयी, शुद्ध स्वरूपनो नाथ हो मित्त
क्युं ॥ ४

अर्थः—एम विचारतां उपयोग आव्यो ते कहे छे, पण-जाणुं आगमवलें केहेतां जे आगममां हें कयुं वे गुरुमुखें सांभल्युं, तेना बलथकी जाणुं छुं, जे हे भव्यजीव! प्रभुश्री वीतराग सार्थे आपणे मलवुं छे, जेहने गरज होय, ते मले, एटले पोतानी संपदा प्रगट करवानो रुचिवंत मले, प्रभु तो स्व केहेतां पोतानी संपत्ति जे स्वक्षेत्र असंख्यात ■ प्रदेश-विषे व्यापकपणे रह्या जे अनंतज्ञानादिक गुण, ते संपदामयी छे, शुद्ध स्वरूपनो नाथ कहेतां धणी छे, माटे निष्पन्नपरमानंदभोगी शुद्ध स्वरूपी ते कोइथी मले नहीं ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

परपरिणामिकता अछे, जे तुझ पुद्गलयोग हो मित्त ॥
जड चल जगनी एंठनो, न घटे तुझने भोग हो मित्त ॥
क्युं० ॥ ५ ॥

अर्थः—हवे कोई पुछशे जे सर्वद्रव्यमांहे परथी मलवानी शक्ति नथी, तो साधकलुं जीवद्रव्य पण, वस्तुधर्मे शुद्ध छे, तेने प्रभुथी मलवुं, ते पण तेनी सत्तामां तो नथी, तो हवे केवी रीतें मिले? त्यां कहे छे. जे अनादि अतीतकाल ए संसारी जीवनुं आत्मिक सुख सर्व अवराणुं अने भोगधर्म, क्षयोपशमी छे, ते कांईक भोगव्यो जोईयें, ते स्वरूपने अण पामवे, पुद्गलना वर्ण, गंध, रस, फरस, जे अभोग्य छे, तेने भोगवतो थको परभोगी थयो, परपरिणामी थयो, ए परपरिणामिकतानी चाल ते अनादिनी टेव छे, एटले कर्त्ता परनो, भोक्ता परनो, रमण परने विषे, ग्राहक परनो, एम सर्व, पर-

भावमयी थयो छे. इहां कोई पूछशे जे शुद्ध द्रव्यधर्मी, ते परपरिणामी केम थाय ? तेने कहे छे. जे पुद्गलना योगें पुद्गलावलंबी चेतना थइ, एटले कहे छे जे हे जीव ! पुद्गलने योगें जे तारी परपरिणामिकता ते अनादिनी अशुद्धता विजातीयपणे छे, दोषरूप छे, अने आत्माने सर्व अवहित छे, केम जे पुद्गल ते जड छे, तथा चल कहेतां विनाशी छे जगन्नी एंठ छे, ते पुद्गल द्रव्य द्रव्यें ध्रुव छे, अने पर्यायें अध्रुव छे, वर्णादिक, स्कंधादिक पर्याय सर्व पलटे छे, अने सर्व संसारी एकेका जीवें एकेको पुद्गलपरमाणु, तेने शरीरपणे, भाषापणे, मनपणे, आहारपणे, अनंती वार लइ लइने मूक्यो छे, ते माटे ए पुद्गल ते सर्व, जीवोनी एंठ छे अने जीवद्रव्य ते स्वरूपभोगी छे, माटे हे चेतन ! तुने ए पुद्गलनो भोग घटतो नथी, केम जे हंस केवारें कचरामां चांच घाले नहीं ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

शुद्धनिमित्ती प्रभु ग्रहो, करी अशुद्ध पर हेय हो मित्त॥
आत्मालंबी गुण लयी, सहु साधकनो ध्येय हो मित्त॥
क्युं० ॥ ६ ॥

अर्थः—माटे परभोगीपणुं अशुद्ध निमित्त जे पुद्गलादिक, तेने तजीने शुद्ध, निःकर्मा, पूर्णानंदरूप प्रभुने अवलंबो, एटले ए आत्माने विषे परानुयायितापणुं छे, ते टालवाने माटे प्रथम अशुद्धालंबन तजीने अरिहंतालंबनी थवुं, तेथी शुद्धनिमित्ती जे निमित्त नियामक कारण छे, ते प्रभुने भजो, सेवो, पण सर्व परवस्तु अशुद्ध ते हेय कहेतां तजवारूप करीने एटले

सर्व परभाव त्याग करीने प्रभुने भजो. ते प्रभु केहेवा छे ? जे आत्मालंबी. केहेतां सर्वपणे पोतानी आत्माने अवलंब्या छे, एटले पोताना आत्माने विषेज तन्मय थया छे, तथा गुणलयी कहेतां गुणने विषे लय कहेतां विश्राम जेहनो छे एवो श्रीवीतरागतत्त्व केहेवुं छे ? सर्वमोक्षने निपजावनारा साधक एहवा जे सम्यग्दृष्टि, देशविरति, सर्व विरति, श्रेणिना वासी, ध्यानारूढ जीवो तेने ध्येय छे, एटले सर्व आत्माने श्री सिद्ध परमात्मा ध्येय छे. ध्यान वे प्रकारनुं छे, एक सालंबन, बीजुं निरालंबन. तेमां जे अरिहंतसिद्धनुं तत्त्व स्वरूप अवलंबीनें ध्यान करवुं, ते सालंबन ध्यान छे तेणे श्रीअभिनंदन प्रभु सर्वने ध्यावबा योग्य छे ॥ ६ ॥ इति षष्ठ गाथार्थः ॥

जिम जिनवर आलंबनें, वधे वधे एकतान हो मित्त॥
तेम तेम आत्मालंबनी, ग्रहे स्वरूप निदान हो मित्त॥
क्युं० ॥ ७ ॥

अर्थः—इम करतां जेम जेम साधक जे आपणो जीव, ते श्रीजिनवरदेवनी तत्त्वप्रभुताने आलंबने वधे, केहेतां सर्वक्षयोपशमी चेतना वीर्य रमण अरिहंतनी शुद्धतामां तन्मयपणे थाय, एकतान केहेतां एकत्वपणुं सवे निपजे, एटले सकलपरभावथी टलीने एक निष्पन्न परमात्माने स्वरूपें चेतना व्याप्त थाय, तेम तेम ए साधक जीव, पोतानो आत्मा कार्यरूप तेहेनें स्वरूपनें आलंबे, उपादानस्मरण चिंतन ध्यानरूप थाय, तेवारें एक स्वरूपनुं निदान कहेतां मूलकारण ग्रहे, अंगीकार करे ॥ इति ॥ ७ ॥

स्वस्वरूप एकत्वता, साधे पूर्णानंद हो मित्त ॥
रमे भोगवे आतमा, रत्नत्रयी गुणवृंद हो मित्त ॥
क्युं० ॥ ८ ॥

अर्थः—ते जेवारें स्वस्वरूपएकाग्रता ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप ग्रहे, तेवारें परिणामिक परमतत्त्वने विषे एकत्वता शुद्धस्वरूपरमण, शुद्धस्वरूपभोगी थाय, तेथी सघे कहेतां निपजे, पूर्णानंद कहेतां संपूर्ण, आत्यंतिक, एकांतिक, अनंतातिशय, अबाधक, केवलनिराबाध, स्वाधीन आत्मसुख निपजे, पछी ए आत्मा पोतानी रत्नत्रयी आदिक गुणवृंदने विषे रमे, तेहनेज भोगवे, तन्मय, तद्विलासी, स्वभावआनंदी थको रहे, सादि अनंतोकाल, स्वपरिणामिक प्रगटपणे वर्त्ते ॥ ८ ॥ इति अष्टम गाथार्थः ॥

अभिनंदन अवलंबनें, परमानंद विलास हो मित्त॥
देवचंद्र प्रभु सेवना, करी अनुभव अभ्यास हो मित्त
॥ क्युं० ॥ ९ ॥

अर्थः—ए रीतें श्रीअभिनंदन प्रभुने अवलंबनें परमानंदनो विलास थाय, सर्वदेवमांहे चंद्रमा समान जे अरिहंत देव, तेहनी सेवना, अथवा स्तुतिकर्त्तानुं नाम पण देवचंद्र तेमाटे पोताने संबोधनें हे देवचंद्रप्रभु ! तमारी सेवना करे, पण अनुभवना अभ्यासथी एटले अनुभवयुक्त करे. एहीज आत्मा निपजाववानुं परम कारण छे, माटे एहने सेवो, आदरो ॥९॥ इति ॥

॥ अथ पंचम श्री सुमतिजिन स्तवनं ॥

॥ कडखानी देशी ॥

अहो श्री सुमतिजिन शुद्धता ताहरी,
स्वगुण पर्याय परिणामरामी ॥
नित्यता एकता अस्तिता इतर युत,
भोग्यभोगी थको प्रभु अकामी ॥ अ० ॥१॥

अर्थः—अहो इति आश्चर्ये, हे श्री सुमतिजिन ! पांचमा परमेश्वर ! ताहरी शुद्धता आश्चर्य रूप छे, ते शुद्धता कहेवी छे ? तुं पोतानां पोताना गुण ज्ञानादिक तथा पर्याय ते १ द्रव्यपर्याय, २ गुणपर्याय, ३ द्रव्यव्यंजनपर्याय, ४ गुणव्यंजन पर्याय, ५ स्वभावपर्याय. त्यां सहभाविधर्म ते गुण कहिये अने क्रमभावि ते पर्याय कहिये, तथा श्री उत्तराध्ययन सूत्रे ॥ गाथा ॥ गुणाणमासओ दव्वं, एगदव्वस्सिया गुणा ॥ लक्खणं पज्जवाणं तु, उभओ निस्सिया भवे ॥ १ ॥ एहवी स्वगुण पर्यायरूप भेदज्ञानदे रमी रह्या छो, परभावथी निवर्तीने पोतानां धर्मे रम्या छो. वली ते शुद्धता केहवी छे ? ते नित्य सहभावपणे लिये छे नित्यता, तथा एकता, तथा अस्तिता इतर कहेतां बीजा भेद अनित्यता, अनेकता, नास्तिता, एहवा धर्मवन्त छे. ते नित्य छेहिज अनित्य, ते एक छेहिज अनेक, ते अस्ति छेहिज नास्ति. माटे आश्चर्य रूप छे. वली केहवा छे ? भोग्य जे पोताना गुण पर्याय. तेहना भोगी छे, एम आत्मा एहवे स्वरूपने भोगी सदा परमानन्द ([illegible]

विना भोगवे छे, माटे अकामी छे, एटले स्वक्षेत्रथी वेगळो जे पुद्गलना वर्ण, गंध, रस, फरसनो भोग, ते वांछवो पडे, तेने कामना कहियें, पण तेनो भोगी आत्मा नथी, आत्मा तो ज्ञानादिक गुण जे स्वक्षेत्रव्यापकपणे प्रगटभोग तेहनो भोगी छे, ते भोगवनां कामना न जोइयें, माटे कामना विना भोगी छे, ए अचरज जाणवुं ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

> ऊपजे व्यय लहे तहवि तेहवो रहे,
> गुण प्रमुख वहुलता तहवि पिंडी ॥
> आत्मभावें रहे अपरता नवि ग्रहे,
> लोक प्रदेश मिन पण अखंडी ॥ अ० ॥२॥

अर्थः—हवे नित्यनादिक धर्म कहि समजावे छे. सर्वद्रव्य छ छे, तेमध्ये काळ ते उपचार द्रव्य छे, तथा धर्मास्तिकायादि पांच द्रव्य अस्तिकाय छे, तेमां १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय. ए त्रण एकेक द्रव्य छे, जीव अनंता द्रव्य छे, पुद्गल अनंता द्रव्य छे, द्रव्यनुं अगुरुलघुपर्यायनुं षट्गुण हानि वृद्धिरूप चक्र एकठुं जलावर्त्तनी परें वर्त्ते, ते एकद्रव्य, जेनुं चक्र भिन्न वरतुं ते भिन्नद्रव्य, ते सर्व द्रव्य, उत्पाद, व्यय, ध्रुवयुक्त छे, तेमाटे नित्यानित्य छे ॥ उक्तं च विशेषावश्यकभाष्ये ॥ नं जह भंगो नासो, तं नासो होइ सव्वसो नत्थि ॥ जं सो उप्पायवय, धुव धम्माणंत पज्जाओ ॥ १ ॥ पुनः ॥ सव्वंति य पद्धमययं, उप्पज्जइ नासएय निच्चं च ॥ एवं चेव य सुहदुःखस बंध मोक्खाइ सब्भावो ॥२॥ इहां युक्तिनो समूह, भाष्यभाष्यथी जाणवो. एम जीवनो

नित्यानित्य स्वभाव छे, ते कहे छे, अभिनवपर्याय उपजे छे, पूर्वपर्याय व्यय थाय छे, यथा एक प्रदेशें अगुरुलघुपर्याय अनंत गुणो छे, बीजे प्रदेशें तेथी अनंतभागहीन छे, त्रीजे प्रदेशें असंख्यात गुण वधतो छे, चोथे प्रदेशें संख्यात गुण वृद्धि छे, एम असंख्यात विभाग छे, ते प्रतिसमय परावर्त्तरूप छे, ते जिहां अनंतगुण तिहां असंख्यात गुण थाय, तेथी जे प्रदेशें अनंत गुणपणुं टल्युं, ते व्यय थयो, अने असंख्यातपणानुं उपजवुं थयुं, ते उत्पाद थयो, तथा अगुरुलघु सत्तपणे छतो, ते ध्रुव जाणवो, तथा ज्ञेयनुं जाणवुं, ए ज्ञानमो धर्म छे, ते ज्ञेयने पल्टवे जो ज्ञान नित्य होय, तो जणाय नही. जेमाटे विवक्षित समयने विषे केवलज्ञान अनंता अतीत धर्म थया, तेने जाणे, वर्त्तमानें अनंता धर्म छे तेने जाणे, तथा अनागत अनंता थाशे ते पण जाणे; यद्यपि थया छे थशे ए धर्म, ज्ञेयना छे, पण ते सर्वने जाणवानो धर्म, ज्ञानमांहे छे. अने परज्ञेयने जाणंगपणे ज्ञान परानुयायी थातुं नथी " विषयभेदात् विषयिणोऽपि भेदः ज्ञेयभेदात् ज्ञानभेदः, पुनः ज्ञानं यावंतोहि ज्ञेयस्य पर्यायास्तावंतस्तदेवभासकत्वेनाप्यन्येत्याइति बृहद्भाष्ये " तथा जे ज्ञान वर्त्तमानपणे जाणतो, तेहने अतीतपणे जाणे, अने जे अनागत तेहने वर्त्तमानपणे जाणे, ए ज्ञानना पर्याय भासनवेत्तादिक ते सर्व एवी रीतें पलटे, तेथी पूर्वपर्यायनो व्यय, उत्तरपर्यायनो उत्पाद, अने ज्ञानपणे ध्रुव, एम दर्शन, चारित्र, सर्व गुण जाणवा, माटे हे श्रीसुमतिनाथ प्रभु ! तमारी शुद्धता केहवी छे ? जे समय उपजे, ते समयेंज व्यय पामे छे, अने तद्यपि कहेतां तो पण तेहवो रहे केतां मृत्युत्वधर्म न मूकें, एटले उपजे, विणसे, ते अनित्यता. अने ध्रुव रहे,

ते नित्यता. ए बे स्वभाव कह्या. तथा एक आत्माने विषे ज्ञानगुण, दर्शनगुण, चारित्रगुण, वीर्यगुण, दानगुण, लाभगुण, भोगगुण, अरूपीगुण, अगुरुलघुगुण, अव्याबाधगुण. इत्यादिक अनंता गुण छे, ते सर्व गुण भिन्न भिन्न छे, तेथी अनेकता छे, तथा ते सर्वगुण समुदायरूप छे, पण केवारें भिन्नतेवी न थाय, ते अनंत गुणपर्यायनो एकपिंड एहवो आत्मा छे, माटे एकरूपनो, वली प्रभुजी तमे केहवा छो ? जे स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभावपणे अस्ति छो, ते अस्तिभाव कोइ वारें टलतो नथी, तेणें हे प्रभु ! तमें आत्मभावें रह्यो छो, पण कोइ वारें अपर केतां बीजा द्रव्यनो भाव केतां धर्म लेता नथी, माटे स्यात्अस्तिपणे छो, पोताना धर्मे रह्यो छो, पर द्रव्यनो धर्म स्यात्नास्तिपणे छे, ते कोइवारें तेमें (तेमां) ते पणे परिणमता नथी, माटे स्यात्अस्तिनास्तिरूप छो. हवे इहां सप्तभंगी उपजे, ते कहे छे. १ स्वद्रव्य ते पोताना गुण अने पर्यायनो समुदाय तथा स्वक्षेत्र, ते पोतानो अगरुलघु स्वभाव, विभागीकृत असंख्यातप्रदेशें, स्वकाल ते उत्पाद व्ययरूप प्रवर्त्तना स्वभाव ते अनंता ज्ञानना पर्याय, अनंता दर्शनना पर्याय, अनंता चारित्रना पर्याय, अनंता अगरुलघु पर्याय, तेणें स्यात्अस्ति ए पहेलो भांगो थयो. २ परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभावपणे स्यात्नास्ति ए बीजो भांगो. ३ तथा अस्ति, नास्ति, ए बे वस्तुधर्म रह्या छे, माटे स्यात्अस्ति, स्यात्नास्ति, ए त्रीजो भांगो थयो. ४ एहवो धर्म एक वस्तुमां एक समयें छे, अथवा वस्तुमध्ये अनंता धर्म, वचनें गोचर नही एहवा अवक्तव्य छे, तेथी स्यात् कथंचित्पणे अवक्तव्यं ए चोथो भांगो थयो. ५ ते अवक्तव्यपणं अस्ति-

धर्मनुं पण छे, माटे स्यात्‌अस्ति अवक्तव्यं ए पांचमो भांगो थयो. ६ ते अवक्तव्यपणुं नास्तिधर्मनुं पण छे, ते माटे स्यात्‌नास्ति अवक्तव्यं ए छठो भांगो. ७ एहवो वस्तुधर्म समुदाय पर्यायपणे स्यात्‌अस्ति नास्ति युगपत्‌ अवक्तव्य ए पदार्थ धर्म छे, ए सातमो भांगो थयो. ए सामान्ये सप्तभंगी कही, तेमज नित्य तथा अनित्यनी सप्तभंगी, एक अनेकनी सप्तभंगी, वक्तव्य तथा अवक्तव्यनी सप्तभंगी तथा गुणपर्यायनी सप्तभंगी, तथा द्रव्यास्तिक पर्यायास्तिकनी सप्तभंगी, एम अनंती सप्तभंगी वस्तुधर्मे छे, ते सप्तभंगीये सर्व पदार्थ पोताना स्वभावने पलटता नथी, ते कारणे हे प्रभुजी ! तुमे अस्तिनास्तिपणे छो, स्वधर्मपणे रह्या छो, परधर्म ग्रहण करता नथी. वली हे प्रभु ! तमे केहेवा छो ? तोके चउद राजलोकना जेटला आकाशप्रदेश छे, तेटला तमारा आत्मप्रदेश छे, पण ते असंख्यातप्रदेशनुं जे स्वरूप, षट्‌गुण हानिवृद्धिरूप, अगुरुलघुपर्यायनो तरतमयोग, विभागपने रहेवुं. शृंखलाअवयवनी परें ज्ञानादि गुणोनुं अवस्थान क्षेत्र, क्षयोपशम काले कार्याभ्यासे तरतमता, तेहनुं स्वरूप कम्मपयडी विषे योगस्थान अधिकारें तथा बृहत्‌कल्पभाष्यमध्ये संयमश्रेणिअधिकारथी जाणजो, तथा क्षायिकभावे सर्वगुणनी सामान्यता, परंतु अगुरुलघुपर्यायनुं तारतम्य सदा छे, तेथी प्रदेशधर्म छे, अथवा सर्वगुण पर्याय तुल्यविभागे असंख्यातप्रदेशपने वेहेंचाय पण कोइ वारें जुदा खंडाता नथी, माटे अखंडरूप छो, एटले असंख्याता प्रदेशरूप अवयवता छे, पण भिन्न थाय नही, ते आश्चर्य जाणवुं॥२॥
॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

कार्यकारणपणे प्रणमे तहवो ध्रुव,
कार्यभेदें करे पण अभेदी ॥
कर्तृता परिणमे नव्यता नवि रमे,
सकल वेत्ता थको पण अवेदी ॥ ३ ॥

अर्थः--वली उत्पादव्ययरूप धर्म कहे छे. जीवद्रव्यने विषे जेटला गुण छे, ते सर्व पोतानुं कार्य करे छे, अने उपादानरूप कारण तेहीज कार्य थाय छे. इहां कोइ कहेशे जे पूर्वकालें कारण, पश्चात्कालें कार्य, एतो जमालीनो मत छे, जो कारणकाल, कार्यकाल भिन्न होय, तो कारणकाल विनाशें तदनंतर कार्यकालें कारण विना कार्योत्पत्ति थाय, अने कारण विना कार्य मानतां अनेक दोष थाय, तेवारें घटें पट कार्य थाय, पटें घटकार्य थाय, माटे कारण विना कार्य नथी, एटले कारणभाव, तथा कार्यभाव, ए बे एक समयें छे, ए जैननी श्रद्धा छे, श्रीविशेषावश्यकमध्ये घणुं वखाण्युं छे, जो बाह्य उत्पन्न कारण कार्यविषे एक कालता छे, तो सहज अकृत्रिम कारण कार्यता एकसमयेंज होय, तेमाटे जीवनो केवलज्ञानगुण, ते विशेषभाव सर्व जाणे छे, तिहां सर्वनुं जाणवुं, ते कार्य छे, अने ज्ञानगुण, जाणवा रीतें प्रवर्त्ते, ते कारण छे, तेहज समयें कारण कार्यपणे परिणमे छे. अने ज्ञानगुण पणे सदा ध्रुव छे, तेम केवल दर्शनादि गुण अनंता छे, ते सर्व ए रीतें परिणमे छे, कारणता व्यय, तिहांज कार्यता उत्पाद, कार्यताव्यय, तिहांज कारणता उत्पाद, इम सर्व द्रव्यने विषे, उत्पादव्यय धर्म छे. इहां कोइ कहे छे जें उत्पादव्यय स्वतः

नथी, परमतपणी छे, एम कहे छे तेनी भूल छे, जे परम-
तपणी धर्म, ते लक्षण न थाय, लक्षण ते स्वधर्मनुंज थाय,
तिहां श्रीश्वेतांबर गनी तत्त्वार्थटीकाकारनी साख लखे छे ॥
अथ ये व्याचक्षते व्ययोत्पादौ न स्वतो व्योम्नः किंतु परम-
त्ययाज्जायेतेऽवगाहकसन्निधानात्तदुत्पादव्ययाविति तेषां कथम-
लोकाकाशेऽवगाहकाभावात् अर्हद्वचनं च सतोलक्षणं लक्षणस्य
चाव्याप्तिमितं नेष्यते स्थित्युत्पादव्ययलक्षिणि. अत्रोच्यते य
एवं महात्मानस्तर्कयंति स्वबुद्धिबलेन पदार्थस्वरूप तेऽत्र निपु-
णतरमनुयोक्तव्याः कथमेनत् वयं तु विस्रसापरिणामेन सर्वव-
स्तूनामुत्पादादित्रयमिच्छामः प्रयोगपरिणत्या जीवपुद्गलानामित्थं
तावदस्मद्दर्शनमविरुद्धसिद्धांतसद्भावं अस्मदुक्तार्थानुगुणमेव च
भाष्यकारेणाप्युच्यते ॥ ए वचन जोइ श्रद्धा यथार्थ करवी,
माटे हे प्रभुजी ! तमारा गुण, कार्यपणे परिणमे छे, तेथी
तेनी उत्पाद व्यय छे, अने गुणनो अभाव थतो नथी, ते ध्रुव-
धर्म छे, तेथी स्यात्नित्यं, स्यात्अनित्यं, ए स्वरूप छे, ते अ-
चरिज जेहवुं छे. कालनी अपेक्षाये परपणो कहे तेहनें कहीयें
जे कालतो पंचास्तिकायथी भिन्न नथी ते माटे परपणो स्याने
कहो छो. वली जीवद्रव्यमध्ये जेटला गुण छे, ते सर्व भिन्नपणे
पोतानुं कार्य करे छे, दर्शन ते देखवारूप कार्य करे छे, सम-
कित ते निर्धारकार्य करे छे, चारित्र ते थिरतारूप कार्य करे
छे, अमूर्त्तगुण, अरूपीपणे कार्य करे छे, एम सर्व गुणपोताना
कार्यना कर्त्ता छे, एनो कार्यभेदे कहेतां जुदा जुदा पणे करे,
ते वस्तुमां अनेकता स्वभाव छे, तेथी भेद स्वभाव छे, पण
ते कार्यधर्मनुं कारण कोइ द्रव्यें तथा क्षेत्रे जुदुं थतुं नथी,
तेथी अभेदरूप छे. जेम सुवर्णमध्ये पीतता, गुरुता, स्निग्धता

ए कार्यभेदें त्रण धर्म पामीयें छेयें, परंतु केवारें भिन्न थाता नयी, तिम जीवना अनंतगुण भिन्न भिन्न कार्य करे छे, परंतु वस्तुधर्मे भिन्न नथी. कार्य तो सर्व भेदें कहेतां भिन्नपणे करे छे, पण अभेदी कहेतां भेदरहित छे. वळी प्रतिसमय कर्तृतापणे छे, एटले पंचास्तिकायमध्ये चार अस्तिकाय ते अकर्त्ता छे, अने एक जीवास्तिकाय स्वतंत्रकर्त्ता छे, ते स्वात्रीनपणे कारणावलंबी थइ कार्यने निपजावे, ते कर्त्ता, तथा जेम परकार्य घट, तेनो कर्त्ता कुंभकार तेम ज्ञानादि कार्यनो कर्त्ता जीव छे, माटे कर्तृतापणे परिणमे छे. पण कांइ नव्यपणे नथी रमतो, एटले जे प्रतिसमयें पर्यायने करे, पण कांइ नवो नथी करतो, अस्तिधर्म छे, तेमज रहे छे, वळी सकल कहेतां सर्व द्रव्य छ तेहना गुणपर्याय स्वभाव, तेना उत्पादरूप, व्ययरूप, ध्रुवरूप, अतीत अनागत वर्त्तमानकाल सर्व त्रणे कालना वेत्ता कहेतां जाण छो, ए सर्वने जाणो छो, पण अवेदी कहेतां पुरुष, स्त्री, नपुंसकरूप वेद रहित छो, माटे वेत्ता थका पण वचनधर्में अवेदी छो, ए अचरिज जाणवुं ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

> शुद्धता बुद्धता देवपरमात्मता,
> सहज निज भावभोगी अयोगी ॥
> स्वपर उपयोगी तादात्म्यसत्ता रसी,
> शक्ति प्रयुंजतो न प्रयोगी ॥ अ० ॥ ४ ॥

अर्थः—वळी शुद्धता ते सकलपुद्गलरूप संकरता रहित, शुद्धता कहेतां केवल ज्ञानदर्शनरूप संपूर्णत्रोधरूप छो, देव

तां पोतानुं स्वरुप तेणें दिप्पति कहेतां रमणशील ते देव
हियें, परमात्मता कहेतां पोतानो आत्मा ज्ञानावर्णादिकर्मथी
त छे, माटे परमात्मापणुं संपूर्ण भोगवो छो, परमात्मनिष्पन्न
आत्मा, ते भाव पाम्या छो, वली सहुज कहेतां स्वभावना
कृत्रिम पुना निज कहेतां पोताना भाव ते ज्ञानादिक अनं-
धर्म तेहना भोगी केहेतां भोग आस्वादनवंत छो, वली कहेवा
। ? के अयोगी कहेतां मन वचन कायारूप योग तेथी रहित
, अने क्षयोपशमी वीर्य, तेहने चलनपणे वर्त्ते, ते योग
हियें, तिहां भाषवर्गणा, शरीरवर्गणा, तथा मनोवर्गणा, ते
तहां अवष्टंभहेतु छे, ते द्रव्ययोग कहियें, अने ते अवष्टंभ
ग्रहक वीर्यपरिणाम ते पहेलो परिणमन, बीजो अवलंबन, त्रीजो
हणरूप, ए त्रण शक्तिने भावयोग कहियें, एहवुं जे योग-
रिणमन, तेथी रहित छो, कारण के योग जे छे ते आश्रव
, अने सिद्ध आत्मा तो संपूर्ण संवरमयी छे, वली प्रभुजी
में केहेवा छो ? जे स्व कहेतां पोतानुं आत्मतत्त्व तेहना
पयोगी कहेतां जाण तथा पर आत्मा ते बीजा अनंता
जीव तथा सर्व पुद्गल, तथा धर्म, अधर्म, आकाश अने काल,
। सर्वना जाण छो एटले स्व तथा पर ए बेना जाण पण
तादात्म्य कहेतां तन्मयपणे ग्रह्यो जे पोतानो सत्ताधर्म, तेहना
सी कहेतां रसीया छो. आस्वादी छो, एटले जाण स्व पर
बेना छो, पण भोगी एक आत्मधर्मनाज छो, इहां कोइ
कहेशे जे जाण बेना छे तो भोगी बेना केम नथी ?
तेने कहेवुं जे परभावमध्ये भोगवनं नथी, माटे आत्मा
परभावनो भोगी नथी स्वभोगीज छे, परक्षेत्रें रह्यो जे धर्म,
ते भोगवाय नहीं, स्वक्षेत्री धर्म भोगवाय. वली प्रभु तमारी

अनंती शक्ति छे, ते सकर्मा जीवनी सर्व शक्ति दबाणी छे, अने तेमें साध्य साधक भाव करीने सर्व कर्मपडलने दलवे करीने सर्व शक्ति प्रगट करी छे अने ते सर्व शक्तिनी भिन्न भिन्न प्रवृत्ति छे, ते सर्व शक्तिने प्रयुंजता छो एटले सर्व कर्तृत्व, भोक्तृत्व, ज्ञायकत्व, पारिणामिकत्व, ग्राहकत्व, आधारत्वादि शक्ति प्रवर्त्ते छे, पण कोई शक्ति अण प्रवर्त्ती रहेती नथी, तथापि न प्रयोगी कहेतां शक्ति प्रवर्तावतां कोई जातिनो प्रयोग कहेतां प्रयास उद्यम विकल्प करवो पडतो नथी, एटले सर्व शक्ति सहेजें प्रवर्त्ते छे ॥४॥ इति चतुर्थगाथार्थः ॥

> वस्तु निज परिणतें सर्व परिणामिको,
> एटले कोई प्रभुता न पामे ॥
> करे जाणे रमे अनुभवे ते प्रभु,
> तत्त्वसामित्व शुचि तत्त्व धामें ॥ अ० ॥५॥

अर्थः—हवे १ नित्य, २ अनित्य, ३ एक, ४ अनेक, ५ अस्ति, ६ नास्ति, ७ भेद, ८ अभेद, इत्यादिक, अनंतधर्म प्रभुमां छे ते माटे परमेश्वरपणुं छे तेनी ओलखाण करवाने कहे छे. जे नित्यानित्यादिक धर्म तो सर्व द्रव्यमां छे. एटले वस्तु केतां जीवादि पदार्थ ते निज परिणतियें केतां पोतानी स्याद्वाद परिणतियें सर्व केतां समस्त द्रव्य परिणामिकी केतां परिणामी छे. एटले नित्यानित्यादिक धर्मपणे सर्व द्रव्य परिणामी छे, पण तेथी कोइ परमेश्वरपणुं न पामे, सर्व द्रव्य साधारणधर्मी माटे एमां शी अधिकाइ ? एटले केतां

एवी, कोइ केनां हरेक द्रव्य, ते प्रभुना केतां मोटाइपणुं, न पामे केतां पामे नही, तो केम पामे ? ते कहे छे. करे केतां पोताना धर्मने कर्त्तापणे करे, एटले बीजा अजीवादि पांच द्रव्य ते सर्व उत्पाद व्यय ध्रुवपणे परिणमे छे, पण ते कर्त्ता नथी, अने जीवद्रव्य ते कर्त्ता छे, ते शा माटे ? जे बीजा सर्व द्रव्यना धर्म प्रतिप्रदेशें छे, अने ते प्रदेशें प्रदेशें प्रवर्त्ते छे, पण एक प्रदेशने बीजा प्रदेशनुं सहाय एम एकनुं प्रवर्त्तन नथी, अने जीवद्रव्यने प्रदेशें प्रदेशें धर्म अनंता छे, अने ते ते प्रदेशें रह्या प्रवृत्ति करे छे, पण ते सर्व प्रदेशें समुदाय मलीने एकठी प्रवृत्ति छे. माटे जीवद्रव्य कर्त्ता छे, तेथी स्वस्वधर्मने करे छे, ए कर्त्तापणुं ते ईश्वरना छे, तथा अजीवद्रव्यमध्ये पण अनंता गुण अनंता पर्याय छे, पण ते द्रव्य पोताना गुणने जाणता नथी, अने आत्मा ज्ञानादिक अनंता आत्मगुण तथा अनंता परद्रव्य तेथी अनंतगुणा परगुण, ते सर्वने जाणे छे, माटे जाणपणुं ते असाधारण धर्म छे, तथा स्वचारित्रगुणें करी आत्मा पोताना गुणनेविषे रमे छे, अने अजीवद्रव्य ते स्वधर्मे रमी शकता नथी, तथा आत्मा स्वभाव धर्मने भोगवे छे, तेथी स्वरूपानुभवी छे, माटे जे कर्त्ता होय ते भोक्ता होय, पण जे कर्त्ता नथी, ते भोक्ता नथी, तेथी अनुभवधर्म, ते आत्माने विशेज छे, माटे जे कर्त्ता ते ज्ञाता जे चारित्री, जे भोक्ता, ते प्रभु केतां तेने परमेश्वर जाणवो, एटले दर्शनांतरी परमेश्वरने अकर्त्ता कहे छे ते पण मिथ्या छे, अथवा परभावना कर्त्ता कहे ते पण मिथ्या, केम जे परमेश्वर निःकर्मा ते स्वभावना कर्त्ता स्वभावना भोक्ता छे. हवे एम केहेनां संसारी तथा सिद्ध सर्व परमेश्वरपणुं पामे ? ते उपर

कहे छे. तत्त्व केतां वस्तुनो मूलधर्म, स्वामित्व केहेतां तेनुं स्वामिपणुं ते परमेश्वर पणुं शुचि कहेतां पवित्र कर्म रहित निर्मल तत्त्व सिद्धतानुं धाम कहेतां घर ते निष्पन्न सिद्धावस्था तेज परमेश्वर पणुं छे, बाकी सर्वसंसारी जीव, सत्तायें परमगुणी छे, पण जेना गुण प्रगट थया, ते पूज्य जाणवा. माटे श्रीयशोविजयजी उपाध्यायें कयुं छे ॥ गाथा ॥ जे जे अंशे रे निरुपाधिकपणुं, ते ते कहीयें रे धर्म ॥ सम्यग्दृष्टि रे गुणठाणा थकी, जाव लहे शिवशर्म ॥ १ ॥ माटे जे परम पूज्य ते सिद्ध छे ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

जीव नवि पुग्गली नैवपुग्गल कदा,
पुग्गलाधार नाहीं तास रंगी ॥
परतणो ईश नहिं अपर ऐश्वर्यता,
वस्तुधर्मे कदा न परसंगी ॥ अ० ॥ ६ ॥

अर्थः—हवे जीवनो जे मूल धर्म छे, ते श्रीसुमतिनाथ अरिहंतने निपज्यो छे, ते कहे छे. जे जीव नवि पुग्गली कहेतां जीव ते कोइ वारें पुद्गली नथी अनंतो काल संसारावस्थायें पुद्गलथी एकठो रह्यो, पण केवारें पुद्गलरुप थयो नहीं, तथा जीव ते पुद्गलनो आधार नथी, कारण जे क्षेत्रीद्रव्य तो आकाश छे, धर्म, अधर्म, जीव, पुद्गल, ए सर्व आकाशद्रव्य मध्ये रह्यां छे, पण जीवना प्रदेशें पुद्गलनुं रहेवुं, ते जीवनी भावअशुद्धतायी थयुं छे, केम जे सर्व संसारी जीवोने भोग तथा उपभोग गुणनो सदाकाल क्षयोपशम पामीयें पण स्वभोगनी प्रगटता नथी, तेथी परभोगी थयो छे, वीर्यांतरायनो

क्षयोपशम पामीयें ते वीर्य पण परानुयायी थयुं, तथा कर्त्ता, ग्राहकता, व्यापकता, भोक्तापणुं सदा निरावरण छे, अने कार्य, ग्राह्य, व्याप्य, भोग, आवरणां छे, तेथी पुद्गलग्राह्य, पुद्गलानुयायी प्रवृत्ति ते कार्य, पुद्गलभोगपणें तेहना वर्णादिकमां व्यापक थयो, पुद्गलने ग्रहे छे, वळी जेमे भोगव्यो, तेनीज होंश उपजे, एटले पुद्गलनो रुचि ते फरी पुद्गलने ग्रहे, तथा भोगवे, तेथी आत्मप्रदेशें पुद्गल रह्या छे, आत्मप्रदेश ते स्वगुणपर्यायनुं क्षेत्र छे, पण परपुद्गलद्रव्यनुं क्षेत्र नथी, तथा मूलवस्तुधर्मे पुद्गलनो रंगी नथी, स्वधर्मना आस्वादन विना ए पुद्गलनो रंगी थयो छे, पण वस्तुरीतें विचारतां एने पुद्गलथी श्यो संबंध छे? वळी आत्मा परभावनो स्वामी नथी, परभावें एनी ऐश्वर्यता कहेतां ठकुराई नथी, एटले वस्तुधर्मे कदा कहेतां कोइ वेळा परवस्तुनो संगी नथी, जीवद्रव्यनो सत्ताधर्म एहवो छे, माटे माहारो सुमतिनाथ परमेश्वर शुद्धदेव, ते पुद्गलनो आधार तथा रागी केम होय? सर्व पुद्गलातीत छे ॥ ६ ॥

संग्रहे नहीं आपे नहीं परभणी,
नवि करे आदरे न पर राखे ॥
शुद्धस्याद्वाद निजभाव भोगी जिके,
तेह परभावने केम चाखे ॥ अ० ॥ ७ ॥

अर्थः—वळी सुमतिनाथ परमात्मा केहेवा छे? जे परभणी कहेतां परवस्तु भणी माहारापने संग्रहे नहीं, ते परवस्तु कोइ बीजाने आपे नहीं, परवस्तुने करे नहीं, परवस्तुने आदरे नहीं, परवस्तुने परिग्रह धनपने राखे नहीं, ए शुद्धद्रव्य-

नो धर्म छे, तथा शुद्ध कहेतां निर्दोष स्याद्वाद कहेतां अनंतधर्मात्मक निज कहेतां पोतानो, भाव कहेतां धर्म, अनंत ज्ञान दर्शनादिक, तेहना जे भोगी आस्वादी पूरे स्वभोग्यना जे भोगी थया, ते परभाव जे रागद्वेषादिक अथवा पुद्गलवर्णादिक, तेहने निष्पन्नपरमात्मा केम चाखे कहेतां आस्वादे ? माटे परमात्मा ते परभावने चाखे नहीं, स्वरूपभोगीज होय ॥ ७ ॥ इति

> ताहरी शुद्धता भास आश्चर्यथी,
> उपजे रुचि तेणें तत्त्व ईहे ॥
> रंगी थयो दोषथी उभग्यो,
> दोषत्यागे ढलें तत्त्व लीहे ॥ अ० ॥ ८ ॥

अर्थः—हवे साधन धर्म कहे छे. जिहां श्रीसुमतिनाथ पोतें मुक्त थइ कृत कृत्य थया, ते परजननी मुक्तिना कर्ता नहीं, तो शा माटे स्तवो छो ? नमो छो ? त्यां कहे छे, जे ताहरी कहेतां हे प्रभु ! तुमारी शुद्धता, निःकर्मता, अनंतगुण प्रगटता, तेहनुं जेवारें भासन कहेतां ओळखाण थाय, ते जेम जेम गुणनी ओळखाण करे, तेम तेम गुणनुं भासन थाय, तेवारें आश्चर्यता उपजे, जे अहो प्रभुनुं ज्ञान ! सर्व लोकालोक षड्द्रव्य त्रण काल पर्याय सहित एक समयें जाणे, तेमज अहो प्रभुनुं दर्शन ! अहो प्रभुनुं चारित्र ! स्वरूप पुद्गल अभोगी ! अहो परमानंद ! इत्यादिक आश्चर्यथी आनंद उपजे, तेवारें तेहनी परमात्मा दशा निपजाववानी रुचि उपजे, तेहा उपजे. पछी ते मोक्षरूपि [illegible] जे केवारें माहरो

आत्मा कर्मरहित थाय ? केवारें माह्वारो शुद्ध पारिणामिकभाव प्रगटे ? केवारें माहरा गुण हुं भोगवुं ? अने अनंता जीवोनी एंठ जे पुद्गल तेने तजी पोतानो धर्म हुं केवारें भोगवीश ? एहवी रुचि उपजे पछी ते रुचिवंत जीव तत्त्वनी ईहा करतां काल गमाडे, ते जेम जेम तत्त्वनी ईहा करे, तेम तेम तत्त्व-नो रंग प्रगटे, जेम जेम तत्त्वनो रंगी थाय, तेम तेम राग, द्वेष, अढार पापस्थानादि दोषथी उभगे, कहेतां निवृत्ते, तेम तेम केहेतां ते पने परिणमे, तत्त्व ईहे, कहेतां तत्त्व मार्गे एटले स्वभावपरिणामी थाय. ए सर्व कार्य प्रभुमर्ये अवलंब्यां थाय ॥ ८ ॥

शुद्धमार्गे वध्यो साध्यसाधन सध्यो,
स्वामिप्रतिछंदें सत्ता आराधे ॥
आत्मनिष्पत्ति तेम साधना नवि टके,
वस्तु उत्सर्ग आतम समाधें ॥ अ० ॥ ९ ॥

अर्थः—ए रीतें पारिणामिकपने समर्यो ए आत्मा, शुद्ध मोक्षसाधनमार्गे वध्यो, साध्य जे पोतानो परमात्मभाव, तेहना साधननो उपाय सध्यो थको स्वामी जे श्रीसुमति जिन, तेहने प्रतिछंदें केहेतां तेहना जेवी पोतानी सत्ता छे तेने आराधे, कहेतां निपजावे, प्रभुजी जेवी सत्ता प्रगट करे, निःकर्मी निर्मल शुद्धानंद पद भोगवे, पछी आत्मा जेम जेम निष्पत्ति केहेतां निपजे तेम तेम साधना केहेतां कारणपणुं टके नहीं, एटले जेम कार्य निपजे, तेम कारणता टळे, कार्यान्वयी कारण छे, कारण कांइ वस्तुधर्म नथी, जे वस्तु कार्यने सन्मुख थाय,

स्वरुप निर्धार, स्वरूप रुचिरूप प्रगट्यो, तो आत्मा मोहमल्लथी रहित थाय, माटे परम पवित्र छे ॥ उक्तं च ॥ सम्मत्तेणं सुद्धो, सचसु किचो हवइ सिवहेऊ ॥ संवरवुड्ढी तह निज्जरा य, धम्ममूलं च सम्मत्तं ॥ १ ॥ मूलं दारं पइठाणं, आहारो भायणं निहि ॥ दुसुक्कं साविवम्मरस, सम्मत्तं परिकित्तियं ॥ २ ॥ वली दर्शन कहेतां हे प्रभुजी ! ताहरुं देखवुं अथवा शुद्धश्रद्धा ते जे जीव, शब्दनयें करे, ते जीवनो जे सर्वजीवसंग्रहनयें सिद्ध समान छे, ते जेवारें पोताना सर्व आवरणक्षय करी संपूर्णसिद्ध थाय, तेवारें एवंभूतनय सिद्ध कहियें. ते माटे संग्रह ते एवंभूत थाय, इहां नयनुं स्वरूप संक्षेप कहियें छैयें. " सत्ताग्राही संग्रहः " वस्तुनी सत्ताने ग्रहे, ते संग्रहनय कहियें. अने वस्तुना नामपदनो जे अर्थ, तेपणे परिणम्यो, वेद्य संवेद्यपदें भावनिक्षेपें ते शब्दनय कहियें. वली सकलपर्यायपरिणामिकतारूप प्रगटपणे संपूर्ण वस्तु, ते एवंभूत नय कहियें. एटले ताहरुं दर्शन जे देखवुं, ते अंतरंग अरिहंतना स्वरूपभासन आस्वादन सहित प्रभुतानुं अवलोकन ते शब्दनयें प्रभुनुं देखवुं थयुं. १ योगनी चपलता, तथा उपयोग अन्यकार्यनो, मात्र एकलुं चक्षुइंद्रियें करी प्रभुमुद्रानुं जोवुं, ते नैगमनये प्रभु दीठा. २ वंदन, नमन, आशातना वर्जनपणे जे प्रभुमुद्रा तथा प्रभुना शरीरनुं देखवुं, ते व्यवहारनये प्रभु दीठा. ४ योग तथा विकल्परूप उपयोग प्रभुना गुणनो, अने सर्वइंद्रियें प्रभुने जोवे, स्तवे, एकाग्र करे, चपलता मटावे, तथा हर्ष सहित प्रशस्तरागनी मुख्यतायें जोवे स्तवे, ते ऋजुसूत्रनये प्रभु दीठा. ५ अंतरंग परिणाम परिणति चेतनानुं आकर्षण तथा श्रीवीतरागनी वीतरागताये योग

सर्व प्रभुरूप. तथा प्रभुनुं शरीर तिहां वळगा अंतरंग आत्मगना प्रगट स्वरूप साक्षरचि थयो थको प्रभुनातुं तत्त्वसंपदारूप आलोकन ते शब्दनये प्रभुजी दीठा. ए रीतें श्री प्रभुजीने देखे, ते निजमां प्रभुता प्रगट करे. माटे ए निमित्त कारणरूप प्रभुदर्शन जाणवुं. एम सम्यक्त्वना पण नय वर्तीने शब्दनयें जे शुद्ध श्रद्धारूप समकित ते संसारी जीवनी सत्ता प्राग्भावनुं कारण छे ॥ १ ॥ २ ॥

बीजें वृक्ष अनंतता रे लाल,
पसरे भूजल योग रे ॥ वा० ॥
तिम मूळ आतम संपदा रे लाल,
प्रगटे प्रभु संयोग रे ॥ वा० ॥ तु० ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे कारणकार्य भाव कहे छे. जेम बीज होय तेमां अनंता वृक्ष उपजवानी छती छे, पण मू. करेनां माटीमां नाखे, तथा अव करेनां पाणी सींचे, एवो संयोग मळे, तेवारें उगे, एटले माटी तथा पाणीना संयोगें थवे, ए रीत छे, जेम उपादानधर्म ते निमित्तकारण विना प्रगटे नहीं. ए रीतें माहारी आत्मसंपदा यद्यपि सत्तारूपें छती छे पण जेवारें प्रभु श्रीवीतराग देव शुद्धस्वरूपीनो योग मळे, तेवारे प्रगटे ते आलंबी तत्त्वने आलंबने वर्ते, तो ते निपजे, एम महारे आत्माविषे सत्ता सर्व छे पण श्री अरिहंतरूप निमित्त मळे, तेवारें सिद्धि नीपजे ॥३॥ इति तृतीय गाथार्थः॥

जगतजंतु कारज रुचि रे लाल,
साधे उदयें भाण रे ॥ वा० ॥

चिदानंद सुविलासता रे लाल,
वाधे जिनवर जाण रे ॥ वा० ॥ तु० ॥४॥

अर्थः—सर्व जगत्‌वासी जीव आहार, विषय, परिग्रह मेलववारूप कार्यना रुचि कहेतां अभिलाषी छे, एटले पोत पोताना कार्य करवा रूप परिणाम सर्व जीवोने छे, पण सूर्य उद्योतरूप निमित्त पाम्या विना कार्य करी शके नहीं. सूर्य उद्योतरूप निमित्तकारण पामे. तेवारें सर्वलोक कार्य करवा लागे, ए रीत प्रगट देखाय छे, तेम माहारी आत्मा चिद्‌ कहेतां ज्ञान, आनंद कहेतां अव्याबाधसुख अथवा सकलज्ञेय ज्ञायकता रूप जे ज्ञान तेहनो जे आनंद, तेने चिदानंद कहियें, तेनी सुविलासता कहेतां शुद्धपणे विलास एटले भोगववुं, ते आत्मानंद भोगीपणुं ते यद्यपि सत्तानेविषे छतुं छे, तो पण जेवारें श्रीजिनराजनो वर कहेतां प्रधान अनुष्ठानदोष, तथा एकांत दोष, तथा अर्थापत्तिदोष रहित ध्यान करियें, तेवारें आत्मानंद प्रगटे, उपादान छे पण हे प्रभु ! तमारा जेवुं निमित्त मले प्रगट थाय. माटे माहारे प्रभुसमान उपकारी कोइ नहीं, ते कारणें हे परमेश्वर ! ताहरुं दर्शन मने व्हालुं छे, जे अनंता भव भमतां न पाम्यो ते जो मले, तो माहरुं अंतरंगनुं अनंतुं अनंतुं अनंता काललगे दरिद्र जाय ॥ उक्तं च ॥ नूनं न मोहतिमिरावृतलोचनेन, पूर्वं विभो सकृदपि प्रविलोकितोऽसि ॥ मर्माविधो विधुरयंति हि मामनर्थाः प्रोद्यत्प्रबंधगतयः कथमन्यथैते ॥ १ ॥ एटले प्रभुनुं दर्शन दुर्लभ छे, ते तेहनी प्राप्तिना अर्थी जे जीव, तेने इष्ट होय ॥४॥

तदपि लिख संज्ञायें है ज्ञान,
उपजे साधन. संग है ॥ दा० ॥
साधक अध्यात्म भावना है ज्ञान,
प्रगटे साधीपन है ॥ दा० ॥१०॥

[illegible]

[illegible] आनंद दुख है [illegible]
[illegible] है ॥ दा० ॥
प्रगटे अध्यात्मसत्ता है [illegible],
[illegible] है ॥ दा० ॥[illegible]॥

[illegible]

करेतां प्रगट कर्मावरण रहित जे गुणी अरिहंत तेहना गुणग्राम करतां, स्मरण करतां, आपणो आत्मा गुणानुयायी थइ, संपूर्ण गुणीपणुं पामे, तेवारें सत्ता प्रगटे. इहां कोई पूछशे जे निमित्त विनाज सिद्धपणुं केम न पामे ? तेने उत्तर कहे छे. जे आत्मा अनादिनो पुद्गलरूप परनिमित्त पामीने बंधपद्धति करे छे, ने जो पुद्गलरूप परनिमित्त मूके, तो मुक्त थाय, ते पुद्गलरूप परनिमित्त तो अरिहंतरूप शुद्ध निमित्तने अवलंब्या विना छूटे नहीं. माटे श्री वीतरागदेवरूप शुद्ध निमित्त पामेथी, आपणुं तत्त्व प्रगटे ॥ ६ ॥

आत्मसिद्धि कारज भणी रे लाल,
सहज नियामक हेतु रे ॥ वा० ॥
नामादिक जिनराजनां रे लाल,
भवसागरमहासेतु रे ॥ वा० तु० ॥७॥

अर्थः—तेमाटे आत्मसिद्धिरूप जे कार्य, ते करवाने सहज अकृत्रिम नियामक केतां निर्धार, हेतु केतां कारण जे श्रीवीतराग देव तेने पामीने निश्चे भव्य जीवने मोक्ष नीपजे, ए निर्धार थयो. नामादि केतां नामनिक्षेपादि ते अरिहंत प्रभुनुं नाम तेने श्रवणें, उच्चारणें, स्मरणें करी पण अनेक जीव गुणावलंबी थइ समकित प्रमुख गुण पामीने सिद्ध थया. तथा श्रीअरिहंतनी स्थापना जे मुद्रा समतानी समुद्र, निरुपचार रहित, अतिशयवंत, एवी जिनप्रतिमा देखी योग थंभे गुणोने आदरें स्मरणावलंबी थइ अनेक जीव सिद्धि पाम्या, तथा श्रीऋषभ प्रभुनो द्रव्य निक्षेपो ते विचरतां दर्शनथी

जिनराज, तेहना विहार उपदेश समवसरण देखी अद्‌भुतताने अवलंबी, गुणावलंबी थइ अनेक जीव स्वधर्मसंपदा वरी सिद्धि पाम्या तथा अरिहंतनो भावनिक्षेपो ते अरिहंत रूपना गुण जे केवलज्ञानादि तथा पर्याय ते अगुरुलघुतादि तेहनी अनंत परिणतिनुं जे भासन, श्रद्धान तथा रमण करतां पोतानुं तत्त्व तेने अवलंबनां अनेक जीव मोक्षरूप लक्ष्मी पाम्या; माटे ए श्री अरिहंतना जे नामादि चार निक्षेपा छे, ते भवरूप महा समुद्रमध्ये सेतु करतां मोहोटी पाज समान छे. माटे प्रभुना नामादि चार निक्षेपाने अवलंबीने आत्मसिद्धि करवी ॥ ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥

> स्थंभन इंद्रिय योगनो रे लाल,
> रक्तवर्ण गुण राय रे ॥ वा० ॥
> देवचंद्र वृंदें स्तव्यो रे लाल,
> आप अवर्ण अकाय रे ॥ वा० ॥तु०॥८॥

अर्थः—वळी श्रीपद्मप्रभ स्वामीनुं रक्तवर्ण शरीर [illegible]
जीवना इंद्रिय तथा योगनुं स्थंभन छे, एटले इंद्रि[illegible]
दिकने अवलंबीने रहे माटे प्रभुजी राते वर्णे छे. [illegible]
र्यादिक तेहना राजा छे, देव जे धर्म देव [illegible]
ते चक्रवर्त्ती, भावदेव ते भवनपति प्रमुख [illegible]
मान, वळी इंद्र गणधरादिक तेहना इंद्र [illegible]
स्तव्या, पण प्रभु केहवा छे? [illegible]
एहवा अकाय छे. शरीर रहित छे. [illegible]
नोकर्मरहित छे. सकल पुद्गलनी [illegible]

ते मने आधारभूत छे, परमशरण छे, एना निमित्तें परमपद नीपजे ॥ ८ ॥ इति अष्टम गाथार्थः ॥ इति षष्ट पद्मप्रभजिन स्तवनं संपूर्ण ॥

॥ अथ सप्तम श्री सुपार्श्वजिन स्तवनं ॥

हवे श्रीसुपार्श्व प्रभुने सहजधर्मरूप तत्त्व संपदापणे स्तवे छे. जगत्ना जीव पुद्गलानंदी छे, ते नवा पुद्गलने लेवे करी आनंद पामे छे, पण ते पुद्गलसंयोगजन्यसुख, तथा दुःख, ते आत्महित नहीं विभाव छे माटे, अने जे आत्मानुं सहज सुख ते आत्मधर्म छे, ए रीतें आगममध्ये उपदेश छे, ते कहे छे जे आत्माना अनंता गुण छे, ते गुणगुणनुं सुख जुदुं जुदुं छे, अने एक अव्याबाध सुखरूप आत्मधर्म जूदो छे, एक एहवी व्याख्या छे तथा आत्माना ज्ञान दर्शनरूप गुण, ते मूलगुण छे, अने वीर्यादिक सर्व ते गुणनी प्रवृत्तिरूप धर्म छे. एक एवी पण व्याख्या छे. अने १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, ४ दान, ५ लाभ, ६ भोग, ७ उपभोग. इत्यादिक अनंतगुण आत्माने विषे छे, तथा विशेषावश्यकमांहे कह्युं छे.

क्षायिक सम्यक्त्व केवलज्ञान केवलदर्शन सिद्धत्वानि पुनः सिद्धावस्थायामपि भवंति । अन्ये तु दानादिलब्धिपंचकं चारित्रंसिद्धस्यापीच्छंति तदावरणस्य तत्राप्यभावात् आवरणाऽभावेपि च तदसत्त्वे क्षीणमोहादिष्वपि तदसत्त्वप्रसंगात् ततस्तन्मते चारित्रादीनां सिद्धावस्थायामपि सद्भावःपुनस्तत्त्वार्थे पुनरप्यादिग्रहणं कुर्वन् ज्ञापयति ॥ अत्राऽनन्तधर्मात्मकतयाऽशक्याः प्रस्तारयितुं सर्वे धर्माः प्रतिपदमप्रवचनज्ञेन तु पुंसा यथा संभ-

वमायोजनीयाः क्रियावत्वं पर्यायोपयोगिता प्रदेशाष्टकनिश्चलता एवं प्रकाराः सन्ति भुयांसः । अपि समुच्चये । एवं प्रकारा अनादिपारिणामिका भवन्ति जीवस्य भावाः । इहां जीवने विषे अनंता धर्म जुदा जुदा कह्या, तथा रत्नाकरावतारिकामध्ये सप्तभंगपविचारे । नन्वेकस्मिन् जीवादौ प्रतिवस्तुन्यनंतधर्मात्मकत्वेनानंतधर्मत्वमेव । स्याद्वादरत्नाकरे । एकत्र वस्तुन्येकैकधर्मपर्यायानुयोगवशादविरोधेन व्यस्तयोः समस्तयोश्चविधिनिषेधयोः स्यात्कारांकितः सप्तधा वाक्प्रयोगः सप्तभंगीति । नन्वेकस्मिन् जीवादिवस्तुन्यनंनाविधीयमाननिषिध्यमानानानाधर्माः स्याद्वादीनां भवेयुः । वाच्येयता यत्तत्वा द्वाचकेयतायाः ततोविरुद्धेव सप्तभंगीति प्रघार्ण निरस्यति । एकत्र वस्तुनि विधीयमाननिषिध्यमानानंतधर्म्माऽभ्युपगमेनानंतभंगी प्रशांतैव सप्तभंगीति न चेतसि निवेषनिति अत्र हेतुमाह ॥ विधिनिषेधप्रकारापेक्षया प्रतिपर्यायवस्तुन्यनंतानामपि सप्तभंगीनामेव संभवादिति तथाप्येकैकपर्यायमाश्रित्य विधिनिषेधविकल्पाभ्यां व्यस्तसमस्ताभ्यां सप्तैव भंग्यः संभवंति न पुनरनंतास्ततकथमनंतभंगीप्रसंगादिसंगतत्वं सप्तभंग्याः समुद्भाव्यते कुतस्त्यैव भंगाः संभवंतीत्यवाहुः । प्रतिपर्यायं प्रतिपद्य तु पर्यनुयोगानां सप्तानामेव संभवादिति अनंतधर्मापेक्षया सप्तभंगीनामानंत्यं यदा याति तदस्मिन्नतमेव ॥

एटले वस्तुविषे धर्म अनंता छे. इहां कोइ कहे जे धर्म तथा गुणवस्तु जुदी छे, ते अजाण छे, केमके नाम भेद अंशभेदपणे तो शब्दादिक नय सर्व माने छे, घटकुंभादिकने विषे एक वस्तुना स्वपर्यायपर्यायमां पण नाममेदें भेद कहे छे, ए रीतें गुणशब्द तथा धर्मशब्दनो भेदार्थ छे, पण विशेष रीतें

गुण अने धर्म ए बेहु एकज छे, श्रीविशेषावश्यके " जह सो विसेस धम्मो, चेयण तह मया किरिया " इहां चेतना-गुणने धर्म कही बोलाव्यो छे.

वली भाष्यने विषे । आह ननु गुणस्वभावयोर्भेदएव तद्भेदनिबंधनधर्मभेदाभावात ।। इत्यादि ।। हवे भेद गुणना भांजीजें, तिहां अस्तिकना नहियें जी ।। ए पाठ द्रव्यगुण-पर्यायना रासमां यशोविजयजी उपाध्यायें पण अस्तिकता धर्मने गुण कही बोलाव्यो छे. वली सिद्धांतमां पण उपयोगादिक अव्याबाध तथा अवगाहआदिक अनेक गुण कह्या छे, तथा तत्त्वार्थमां मुक्त आत्मा निष्क्रियः तथा क्षायिकसम्यक्त्ववीर्य-सिद्धत्वदर्शनज्ञानगत्यतिशेकः संयुक्तोनिर्दिष्टेनापि गुणेन तथाऽ-स्तित्वायत्वगुणवत्त्वानादित्वासंख्येयप्रदेशवत्त्वनित्यत्वादयः संत्येव जीवस्य.

यद्यपि भगवती सूत्रमां सिद्धने अवीर्या तथा अचारित्रीया कह्या छे. ततो करणरूप वीर्यनी अपेक्षायें कह्या, पण तेहीज श्रीअनुयोग द्वारमां क्षायिकलब्धि अधिकारें तथा पन्न-वणासूत्रमां वीर्य ते जीवलक्षण छे. एम कह्युं छे. तथा चारित्र प्रवृत्तिरूपनी ना छे, पण स्थिरतारूपचारित्र ते तो जीवनुं स्वलक्षण छे, ते उत्तराध्ययनना अठावीशमा अध्ययनथी जोवुं, तथा वसुदेवहिंडमध्ये, वली श्रीआवश्यकनिर्युक्तिमध्ये सिद्धस्तुति अधि-कारें कह्युं छे ।। गाथा ।। जे पुन गुणा दुगुणा, इगतीस गुणा य अहव अट्ठ गुणा ।। सिद्धाणंत चउक्का, ते सिवा दिंतु मे सिद्धिं ।। १ ।। तथा वृहत्कल्पभाष्ये ।। दव्वेण जीवदव्वं, संसा-रीतरद्दे समोयरइ ।। खेत्ते असंखपदेसा, अणंतगाएदुवा कंला ।। १ ।।

एम द्रव्यार्णव तथा आप्तमीमांसादिक अनेक ग्रंथोमां कह्युं छे, माटे आत्मानी जेवारें भेदव्याख्या करियें, तेवारें गुण अनंता, एक एक गुणने विषे अविभाग अनंता, एक एक अविभागने विषे अनंता पर्याय, ए कम्मपयडीने विषे व्याख्या देखाय छे, अने तेज अविभाग तथा पर्यायपणुं एकपणुं पण श्रीभगवतीनी टीकामां देखाय छे, अने संक्षेप व्याख्यायें गुणपर्याय बेहुने एक पर्यायास्तिक कही बोलाव्या छे. एम मतिविभ्रम टालीने श्रद्धा राखवी. इहां श्रीअरिहंत द्रव्यने विशेषें ओलखाववा निमित्तें गुणगुणनी जुदी जुदी व्याख्या जणाववा माटे तथा पोतानी सत्तानी रुचि प्रगट करवा माटे गुणगुणनो जुदो जुदो धर्म कही स्तवना करियें छैयें. ए प्रशस्ति थइ.

॥ हो सुंदर तप सरिखुं जग कोइ नहीं ॥ ए देशी ॥

श्री सुपास आनंदमें,
गुण अनंतनो कंद हो ॥ जिन जी ॥
ज्ञानानंदें पूरणो,
पवित्र चारित्रानंद हो ॥ जि० ॥ श्री०॥१॥

अर्थः—श्री सुपार्श्वप्रभु आनंदमयी छे. शुद्ध आनंद ते एने विषे छे, जेमांहे परनो भेल नथी, स्वरूप सुख छे, वली सुपार्श्वप्रभु केहवा छे ? के गुण जे सहभावी अथवा 'द्रव्याश्रिता गुणाः' एटले द्रव्य जे समुदाय तेहने आश्रि रह्या ते गुण, पण तेमां अन्य गुणपणुं नहीं, गुणमध्ये तो पर्याय छे. ॥सव्वे सपज्जावा गुणा इति कल्पभाष्यवचनात्॥ तथा अपज्जावे

जाणणा नत्थि इति आवश्यकनिर्युक्तिवचनात्॥ माटे गुणने विषे पर्याय छे, पण गुणने विषे अन्य गुण नथी, श्रीनयचक्रमां कहे छे, जे गुणने विषे अन्यगुण पणुं होय तो गुण ते द्रव्यपणुं पामे, तेमाटे गुण ते निर्गुण छे, एटले सुपास प्रभुरूप द्रव्य छे, ते ज्ञानादिक अनंत गुणनो कंद छे एटले मूल छे. तिहां ज्ञान जे आत्मानो विशेषाववोधरूप सकल विशेष धर्म गुण-पर्याय, तेहनी अनंती परिणति तेहनो ज्ञायक नित्यानित्यादिक अनंत धर्मनुं ज्ञायकत्व, वेत्तृत्व, अगुरुलघुत्व, अनंतपर्यायनो पिंड, ते ज्ञानगुण ते लोकालोक सकल प्रत्यक्षरूप सर्वप्रदेश-निरावरणरूप तेहने आनंदें करी पावनो कहेतां पवित्र छे, पूर्ण छे. वली कषाय तथा पुद्गल फल आशारूप दोषरहित एवुं स्वरूप स्थिरतारूप जे चारित्र, अनंतपर्यायात्मक, अक-षायता, अवेदता, असंगता, परमक्षमा, परममार्दव, परमनिर्लो-मतारूप, स्वरूप एकत्वरूप पास प्रभु ! ताहारे विषे छे, एटले चारित्रानंदमयी छो, ते माटे पवित्र निर्मल छो ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

संरक्षण विण नाथ छो,
द्रव्य विना धनवंत हो ॥ जि० ॥
कर्त्ता पद किरिया विना,
संत अजेय अनंत हो ॥ जि० ॥ श्री० ॥२॥

अर्थः—वली हे प्रभु ! तमें संरक्षण विना नाथ कहेतां धणी छो, एटले कोई अन्य जीवनी तथा अन्यद्रव्यनी रख-वाली करता नथी, केम जे संरक्षण पणुं करवुं, ए तमारो

धर्म नथी, माटे कोईना तमें रक्षक नथी, पण शरण त्राण आधाररूप छो, मोक्षना हेतु छो, तेथीं नाथ छो. वळी द्रव्य ते धन, कंचन, परिजन, गण, मंदिरादि, सर्व परिग्रह रहित छो, तो पण ज्ञानादि स्वगुण पर्यायरूप अनंतुं धन, श्रीमुनी पासें छे, माटे धनवंत छो, वळी हे प्रभु ! तमारे विषे कर्त्ता पद, कहेतां कर्त्तापणुं छे. पण गमन परिसर्पणादिक क्रिया विना कर्त्ता छो. एटले बीजाने कर्त्तापणुं ते क्रियायकी होय छे, अने तमें तो अक्रिय छतां गमन परिसर्पणादिक क्रिया विना' पण कर्त्ता छो. मुक्तआत्मानिःक्रिय. एम तत्त्वार्थटीकामां कयुं छे. वळी हे प्रभुजी ! तमें संत छो, उत्तम छो, शांतपरिणाम सहित छो. अजेय कहेतां रागद्वेष परीसह वेरीएं करी अजेय छो. वळी कोई कालें विणसो नहीं, माटे अनंत छो, अथवा अनंतपर्याय माटे अनंत छो ॥२॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

> अगम अगोचर अमर तुं,
> अन्वय ऋद्धि समूह हो ॥ जि० ॥
> वर्ण गंध रस फरस विण,
> निजभोक्ता गुणव्यूह हो ॥ जि० ॥ ३ ॥

अर्थः—वळी हे प्रभु ! तमारुं स्वरूप तुच्छ ज्ञानी जाणी शके नहीं, माटे अगम छो. वळी हे प्रभु ! तमें इंद्रियगोचर छो. वळी आयुःकर्मना क्षयथकी प्राणवियोग थाय, तेने मरण कहियें, ते तमें प्राण तथा मरण रहित छो, माटे हे प्रभु ! तमें अमर छो, वळी हे प्रभु ! तमें अन्वय कहेतां जे सद्-

जना व्यापक पोताना ज्ञायकादिक गुण, तेनी प्रवृत्ति सहित जे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्यादिक गुण, अन्वयी गुण कहियें, तेहीज ऋद्धि कहेतां संपदा तेहना समूह छो, अने कषायादि दोषने टाळे करी जे अकषायादिक गुण उपना, ते व्यतिरेक गुण कहियें, तथा सति सद्भावो एटले जे छते पामियें, ते अन्वयी गुण कहियें, तेहना समूह छो. वळी वर्ण, गंध, रस, फरस, ते पुद्गलधर्म छे, तेथी तमें रहित छो, अने निज कहेतां पोतानो जे स्वरूपधर्म, तेहना भोक्ता छो, गुणना व्यूह कहेतां समूह छो ॥ ३ ॥ इति ॥

> **अक्षय दान अचिंतना,**
> **लाभ अयत्नें भोग हो ॥ जिन० ॥**
> **वीर्य शक्ति अप्रयासता,**
> **शुद्ध स्वगुण उपभोग हो ॥जि०॥श्री०॥४॥**

अर्थः—वळी हे प्रभुजी ! तमारा अनंता गुणनी प्रवृत्ति केवी रीते छे ? ते कहे छे. वीर्यगुण ते सर्वगुणने सहकार करे छे, जेम ज्ञान गुणना उपयोग विना वीर्य फरी शके नहीं, तथी वीर्यने सहाय ज्ञानगुणनुं छे, तथा ज्ञानमां रमण ते चारित्रनुं सहाय छे, अने परमण न करे, ते चारित्रने ज्ञाननुं सहाय छे. एम एक गुणने अनंत गुणनुं सहाय छे. हवे जे गुण सहाय करे छे, ते तो आत्माना गुणमां दान-धर्म छे, एम हे प्रभुजी ! तमें प्रतिसमय अनंत स्वगुणसहाय-रूप दान ते अनंतुं द्यो छो, पण तेथी क्षय पामो नहीं. बीजा जगतमां दानना आपनार तेटले करीने घटु जाय अने

तमें सादि अनंत काल स्वाधीन पणे स्वगुणरूप पात्रने अनंतुं दान अक्षयपणे यो छो, पण केवारें क्षीण न थाओ माटे अक्षय थका दान आपो छो. एहवो दानगुण तमारे विषे छे, अने जे गुणनी सहायरूप शक्तिनी प्राप्ति, ते लाभ छे, बीजाने जे चिंतवे, ते लाभ थाय ते पण निर्धार नहीं, अने हे प्रभुजी ! तमारे विषे चित्तना विकल्परूप जे लाभार्थीपणुं ते नथी, तोपण लाभ अनंतो छे, माटे अणचिंत्या लाभना धणी छो, एहवो लाभगुण छे. वली हे प्रभुजी! तमें पोताना पर्यायने प्रतिसमयें भोगवो छो, पण प्रयास विना भोगवो छो, माटे तमें यत्नविना प्रयत्नविना भोगमयी छो, जीवना सर्व गुणनी जे प्रवृत्ति तेहुं सहाय जे वीर्य, ते अनंतुं अन्यसहाय विना फुर्ती रह्युं छे, पण ते वीर्यनी फुरणा, विना प्रयासें एटले उद्यम विना वीर्य फुरे छे, वली शुद्ध स्वगुण तेनां स्वाभाविक जे स्वगुण तेहनो उपभोग छे, ए पांच अंतरायनी प्रकृतिना क्षय थवाथी पांच गुण प्रगट्या छे, एटले हे प्रभुजी ! तमने स्वरूपनुं दान, स्वरूपनो लाभ, स्वपर्यायनो भोग, स्वगुणनो उपभोग, स्वस्वरूपरिणतिने सहकार शक्ति, ते वीर्य, ए रीतें धर्म प्रगट थया छे ॥४॥इति॥

एकांतिक आत्यंतिको,
सहज अकृत स्वाधीन हो ॥ जि० ॥
निरुपचरित निर्द्वंद्व सुख,
अन्य अहेतुक पीन हो ॥ जि० ॥श्री०॥५॥

अर्थः—वली हे प्रभुजी ! तमने जे सुख प्रगट्यां छे, ते सुख केहवां छे ? जे एकांतिक केतां एकलुं सुख, जे

जना व्यापक पोताना ज्ञायकादिक गुण, तेनी प्रवृति सहित जे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्यादिक गुण, अन्वयी गुण कहियें, तेहीज ऋद्धि कहेतां संपदा तेहना समूह छो, अने कषायादि दोषने टलवे करी जे अकषायादिक गुण उपना, ते व्यतिरेक गुण कहियें, तथा सति सद्भावो एटले जे छते पामियें, ते अन्वयी गुण कहियें, तेहना समूह छो. वली वर्ण, गंध, रस, फरस, ते पुद्गलधर्म छे, तेथी तमें रहित छो, अने निज कहेतां पोतानो जे स्वरुपधर्म, तेहना भोक्ता छो, गुणना व्यूह कहेतां समूह छो ॥ ३ ॥ इति ॥

अक्षय दान अचिंतना,
लाभ अयत्नें भोग हो ॥ जिन० ॥
वीर्य शक्ति अप्रयासता,
शुद्ध स्वगुण उपभोग हो ॥जि०॥श्री०॥४॥

अर्थः—वली हे प्रभुजी ! तमारा अनंता गुणनी प्रवृत्ति केवी रीतें छे ? ते कहे छे. वीर्यगुण ते सर्वगुणने सहकार दिये छे, तेम ज्ञान गुणना उपयोग विना वीर्य फूरी शके नहीं, तेथी वीर्यने सहाय ज्ञानगुणनुं छे, तथा ज्ञानमां रमण ते चारित्रनुं सहाय छे, अने पररमण न करे, ते चारित्रने ज्ञाननुं सहाय छे. एम एक गुणने अनंत गुणनुं सहाय छे. हवे ते गुण सहाय दिये छे, ते तो आत्माना गुणमां दान-धर्म छे, एम हे प्रभुजी ! तमें प्रतिसमय अनंत स्वगुणसहाय-रूप दान ते अनंतुं द्यो छो, पण केवारें क्षय पामे नहीं. बीजा जगत्मां दानना आपनार केटले कालें थइ जाय अने

तमें सादि अनंत काल स्वाधीन पणे स्वगुणरूप पात्रने अनंतुं दान अक्षयपणे द्यो छो, पण केवारें क्षीण न थाओ माटे अक्षय थका दान आपो छो. एहवो दानगुण तमारे विषे छे, अने ते गुणनी सहायरूप शक्तिनी प्राप्ति, ते लाभ छे, बीजाने जे चिंतवे, ते लाभ थाय ते पण निर्धार नहीं, अने हे प्रभुजी ! तमारे विषे चिंतना विकल्परूप जे लाभार्थीपणुं ते नथी, तोपण लाभ अनंतो छे, माटे अणचिंत्या लाभना धणी छो, एहवो लाभगुण छे. वळी हे प्रभुजी! तमें पोताना पर्यायने प्रतिसमयें भोगवो छो, पण प्रयास विना भोगवो छो, माटे तमें यत्नविना प्रयत्नविना भोगमयी छो, जीवना सर्व गुणनी जे प्रवृत्ति तेनुं सहाय जे वीर्य, ते अनंतुं अन्यसहाय विना फुरी रह्युं छे, पण ते वीर्यनी फुरणा, विना प्रयासें एटले उद्यम विना वीर्य फुरे छे, वळी शुद्ध स्वगुण केतां स्वाभाविक जे स्वगुण तेहनो उपभोग छे, ए पांच अंतरायनी प्रकृतिना क्षय थयाथी पांच गुण प्रगट्या छे, एटले हे प्रभुजी ! तमने स्वरूपनुं दान, स्वरूपनो लाभ, स्वपर्यायनो भोग, स्वगुणनो उपभोग, स्वसर्वपरिणति सहकार शक्ति, ते वीर्य, ए रीतें धर्म प्रगट थया छे ॥४॥इति॥

एकांतिक आत्यंतिको,

सहज अकृत स्वाधीन हो ॥ जि० ॥

निरुपचरित निर्द्वंद्व सुख,

अन्य अहेतुक पीन हो ॥ जि० ॥श्री०॥५॥

अर्थः—वळी हे प्रभुजी ! तमने जे सुख प्रगट्यां छे, ते सुख केहवां छे ? जे एकांतिक केतां एकलुं सुख, जे

पाछो दुःख पामे नहीं, वळी आत्यंतिको केतां जेथी बीजुं वधारे सुख कोइ नथी, एटले सर्वथी अधिक ते पण सहज केतां स्वभावनुं अकृत केतां अणकीधुं पण कोइनुं करेलुं नहीं, वळी ते पोताने स्वाधीन पोताने वश पण पराधीन नहीं. वळी निरुपचरित केतां जे उपचाररूप नहीं, अछता आरोपने उपचार कहियें, ते ए सुखमां कांइ उपचारपणुं नथी, संसारमां शातावेदनीनुं सुख, ते उपचरित सुख छे, केमके शातामध्ये सुखधर्म नथी, पण अज्ञान मूर्ले, संसारी आत्मा, सुख मानें छे, पण वडेरा एने सुख कहेता नथी, जे संसाराभिनंदी मोहें मूढ परमार्थने अजाणता विषयगृद्ध थका इंद्रियदेहजनित विषयसुखने सुख माने छे, ते जातें सुख नहीं ॥ यतः ॥ विसयसुहं दुखं चिय, दुःख पडियारओ तिगिच्छंव्व ॥ तं सुहमुवयाराओ, न उवयारो विणा तचं ॥ १ ॥ इति विशेषावश्यके ॥ तथा शातानो उदय, ते पण स्वधर्मरोधक छे, अने पुद्गल कर्मनो विपाक छे माटे ते सुख नहीं ॥ सायासायं दुःखं, तव्विरहंमि य सुहं जउत्तेणं ॥ देहिंदियेसु दुख्खं, सुखं देहिंदिया भावो ॥ इति ॥ १ ॥ एम औदयिक सुख, ते सुख नहीं, अने जे सिद्धनिरुपम अनंत आत्मस्वभाव प्राग्भाव भोक्तापणे तेज सुख जाणवुं. वळी निर्द्वंद्व कहेतां जेमांहे अन्य जीव तथा अजीव द्रव्यनो संयोग नहीं, एटले परवस्तुनो मेळ नथी. कदापि परवस्तुनुं कारण पामीने उपजतुं होय ? तिहां कहे छे. जे ते सिद्धसुख कहेवुं छे, के अन्य केतां बीजां द्रव्यनुं हेतुपणुं जेमां नथी. वळी पीन केतां पुष्ट छे, प्रबळ छे, माटे श्रीसुपार्श्वजिननुं जे आत्मिक सुख ते महानंद छे. ॥ ५ ॥ इति पंचम० ॥

एक प्रदेशें ताहरे,
अव्याबाध समाय हो ॥ जि० ॥
तसु पर्याय अविभागता,
सर्वाकाश न माय हो ॥ जि० ॥श्री०॥६॥

अर्थः—वली हे प्रभु ! तमारा आत्माना एक प्रदेशने विषे अनंत गुण, अनंत पर्याय छे, तेमांहे हे प्रभुजी ! ताहारे एक प्रदेशें जे अव्याबाध गुण समाइ रह्यो छे, ते अनंतो छे, ते अव्याबाध सुखना पर्याय तेना अविभाग ते केवलीनी प्रज्ञायें जेहना एक खंडना बे खंड न थाय, तेने अविभाग कहियें, ते अविभाग लोक तथा अलोकाकाशना एकेका प्रदेशें एकेको सुखनो अविभाग राखियें, तोपण सर्वाकाश कहेतां लोक अलोक रूप सर्व आकाशमां समाय नहीं, एटले आकाशना प्रदेशथी पण तमारे एक प्रदेशें रह्युं जे अव्याबाध सुख, तेना अविभागें अनंत गुणा छे ॥ यतः ॥ खित्ताओ भावधम्मा अणंतगुणा ॥ इति ॥ तदा क्षेत्रधर्मथी भावधर्म अनंत गुणा छे ॥ ६ ॥ इति ॥

एम अनंत गुणनो धणी,
गुण गुणनो आनंद हो ॥ जि० ॥
भोग रमण आस्वादयुत,
प्रभु तुं परमानंद हो ॥ जि० ॥श्री०॥७॥

अर्थः—एम केतां ए रीतें हे प्रभुजी ! तमें अनंत गुणना धणी छो, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य, अव्याबाध, अमू-

र्त्तता, अगुरुलघु, दान, लाभ, भोग, उपभोग, कर्त्ता, भोक्ता, पारिणामिकता, अचल, अविनाशी, अनंत, अज, अनाश्रयी, अशरीरी, अणाहारी, अयोगी, अलेशी, अवेदी, अकषायी, असंख्यप्रदेशी, अचल, अक्रिय, शुद्धसत्ताप्राग्भावरूप, नित्य, अनित्य. एक, अनेक, सत्, असत्, भेद, अभेद, भव्यत्व, अभव्यत्व, सामान्य, विशेष, इत्यादि अनंत गुण पर्यायरूप धर्मना धणी छो. ते गुणनो जुदो जुदो आनंद छे, तिहां दृष्टांत कहे छे. जेम संसारी जीवने धननुं सुख भिन्न छे, रूपनुं सुख भिन्न, भोजननुं सुख भिन्न, देखवानुं सुख भिन्न, स्थानकनुं सुख भिन्न छे, तेम सिद्ध आत्माने पण गुण गुणनुं सुख भिन्न भिन्न छे, तेथी अनंतो अनंत रीतें आनंद छे, एटला सर्व गुणनो आनंद छे, ते सर्वनो भोग पण छे, केम के भोगव्या विना आनंद थतो नथी, एटले अनंता गुणना आनंदनो भोग अनंतो छे, तेमज ते सर्वे गुणने विषे अनंतुं रमण पण छे, तेम अनंतो आस्वाद पण छे, केम के अनंता गुणने आस्वादीने भोगी थयो थको आनंदने विलसे छे, माटे अनंतो आस्वाद पण छे, तेथी हे प्रभु ! तमें परमानंद छो. इहां गुणगुणीनो अभेद उपचार बोलाव्यो, जे परमानंदमयी तेहीज परमानंद, एहवा परम देव छो ॥ ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥

अव्याबाध रुचि थई,
साधे अव्याबाध हो ॥ जि० ॥
देवचंद्र पद ते लहे,
परमानंद समाध हो ॥ जि० ॥श्री०॥८॥

अर्थः—एहवुं परमानंदरूप अव्याबाध सुख श्रीपरमात्मप्रभुने विषे छे, ते में निर्धार करयो, तेवारें जाण्युं के जेवुं अव्याबाध सुख श्री सुपार्श्व प्रभुने विषे छे, एहवुंज सुख माहारे विषे पण छे, एहवुं जाणपणुं प्रगटयुं. तेथी भव्य जीवने उपयोग आव्यो, जे हुं पण ज्ञानादि अनंत गुणी छुं, हवे माहारो शुद्धानंद भोग केवारें प्रगटे ? एहवा उपयोगें जे जीव ज्येष्ठ महिनामां जेम बंपयो तृषातुर थइने वरसादने अभिलाषे वरते, तेनी परें जे जीव, अव्याबाध सुखनो रुचि अभिलाषी थइने पुद्गलसंयोगजन्य जे सुख तेनो विषभक्षण समान आत्मस्वरूपनां घातक जाणीने तेथी उभग्यो थको एक आत्मानंद केवारें प्रगटे ? एवो थको वर्ते, पछी तेहना साधक जे मुनिराज तेनां चरण सेवनां उदासीन थइने साधे, केनां निपजावे, आत्मिक अव्याबाध सुख प्रत्यें. एटले उत्तम जीव स्याद्वाद आगम श्रवण करी, पांच आश्रवथी विरमी शुद्धसंयमी थइ, देहनिस्पृही थको मोक्षने साधे ॥ उक्तं च ॥ यतः ॥ पंचासव विरत्ता, विसय विरत्ता समाहि संपत्ता ॥ राग दोस विमुत्ता, मुणिणो साहंति परमत्थं ॥ १ ॥ आउस्स खीणमाण, सुप्पाणवियोगेवि जे समाहिपया ॥ सावय दइढवयावि हु, मुणिणो साहंति परमत्थं ॥ २ ॥ एहवा मुनिराज त्रिकाल विपयना अवांछक, तत्त्वगवेषी, तत्त्वरसिया, तत्त्वानंदरुचि, पोतानुं तत्त्व, अनादिनुं कर्मसंगें दबाणुं ते प्रगट करवा माटे सकल पुद्गलभावथी विरक्त थइने जे आत्मा निपजावे छे ते जीव, निमित्तावलंबनी थइ स्वरूपावलंबन करतां स्वरूपमध्यें एकत्व पामीने क्षपकश्रेणि आरोहण करी घनघाति कर्म खपावीने सयोगी केवली थइ, पछी शैलेशीकरण करी निःकर्मा थइने

थया छे, तेज जीव भव केतां चार गतिरूप संसार तेहनो जे भय, जन्म मरण स्वरूपरोधक कर्माधीनतारूप, तेहथी टल्या छे, एटले यथार्थ रीतें जे परमात्माने सेवे, ते अवश्य असंसारी थाय. तेमाटे टलवा योग्य थया ते टल्या. ए न्यायें, हर्षनुं वचन छे, जो कारण मले, तो कार्य नीपजे. तेम उत्तम जीव अरिहंत सेवन परिणम्या प्रभु मलवाना हर्षे संसार समुद्रने गोपदसमान माने छे ॥ १ ॥ इति प्रथम० ॥

द्रव्यसेव वंदन नमनादिक,
अर्चन वली गुणग्रामो जी ॥
भाव अभेद थावानी ईहा,
परभावें निःकामो जी ॥श्री०॥२॥

अर्थः—ते सेवना चार प्रकारनी छे. १ नामसेवना, २ स्थापनासेवना, ३ द्रव्यसेवना, ४ भावसेवना. तेमां नाम तथा स्थापना, ए बे सेवना तो सुगम छे, अने द्रव्य निक्षेपाना बे भेद छे. एक आगमथी द्रव्यनिक्षेपो, अने बीजो नोआगमथी द्रव्यनिक्षेपो, तिहां जे आगमथी द्रव्यनिक्षेपो, तेतो जे सेवनापदनो अर्थ विधि जाणे, पण ते काले ते अर्थनो उपयोग नथी, ते आगमथी द्रव्यनिक्षेपो कहियें। अणुवओगो दव्वं । इति अनुयोगद्वारवचनात्" हवे बीजो नोआगमथी द्रव्यनिक्षेपो, तेहना वली त्रण भेद छे. एक ज्ञशरीर, बीजुं भव्यशरीर, त्रीजुं तद्व्यतिरिक्त शरीर. तिहां जे जे सेवना भावरूपें परिणम्या हता, पण प्राग्मुक्त थया, तेहनां शरीर, ते ज्ञशरीर द्रव्यनिक्षेपे छे, ए पहेलो भेद. तथा जे जीव हमणां तो सेवना-

पणे परिणम्या नथी, पण अनागतकाळे भावसेवनापणे परिण-
मशे, ते भव्यशरीर द्रव्यनिक्षेपो कहियें, ए सर्व द्रव्यनिक्षेपो ते
नैगमनयने मते छे, ते बीजो भेद. तथा जे सेवनानी प्रवृत्ति
अंतरंग भावसेवनाने कारणपणे वर्ते, ते तद्व्यतिरिक्त द्रव्य-
निक्षेपे सेवना कहियें ए त्रीजो भेद कह्यो.

तेमाटे जे योगनी वंदन नमनादिक प्रवृत्ति, ते व्यवहार-
नये द्रव्यसेवना अने जे अनुगत विकल्पें बहुमानादिक, ते
ऋजुसूत्रनये द्रव्यसेवना. ए बीजें द्रव्यसेवनानुं स्वरूप कह्युं,
एटले जे अरिहंतना चार निक्षेपरूप कारण दृष्टिगोचर, श्रवण-
गोचर, स्मरणगोचरपणे पामीने जे शीश, वंदन, करजोडन,
नमन [illegible] नमस्कार इत्यादिक अभ्युत्थान अंजलि, आलि-
गनादिक [illegible], वंदन पुष्पादिकें करीने अर्चन, वळी गुणग्राम जे
मुखथी [illegible] अरिहंतना गुण कहेवा, ते द्रव्यसेवा जाणवी, अने
जे [illegible] अरिहंतना गुणनुं अत्यंत बहुमान,
अवलंबन करवुं अरिहंतनी अरिहंतनानी आशातना, अबहुमा-
नता, तथा अरिहंतनिमित्तना विघ्ने अक्षमता, अने अरिहंत
इत्यादि परिणाम तेथी अभेदपणे थवानी भावना निरंतर
वर्ती इहा, ते द्रव्यसेवा कहेवाय छे, परन्तु भावरुचिपणा विना
द्रव्यप्रवृत्ति ते [illegible] समान छे, तेमाटे इहां कह्यो जे भाव
तेथी अभेद थवानी इहा सहित जे सेवा ते द्रव्यसेवा जाणवी,*
द्रव्यप्रवृत्ति विना एकला भावधर्मने पण नयार्थदीपकमां आ-
[illegible] कर्युं छे. तथा सम्मतिग्रंथे । चरण करण पहाणा,
[illegible] मुक्कवावारा ॥ चरणकरणस्स सारं, निच्छय सु

* [illegible] द्रव्यप्रवृत्ति मात्र [illegible] छे.

सुद्धं न याणंति ॥ १ ॥ नाणाहिओवरतरं, हीणोवि हु पवयणं पभावंतो ॥ नयदुक्करं करंतो, सुट्ठुवि अप्पागमो पुरिसो ॥२॥ इत्यादिक वचनें भावधर्म ते मुख्य छे. द्रव्य विना भाव ते गुणकारि छे, पण भाव साध्यरुचि विना एकलुं द्रव्य ते काम नुं नथी, ए परंपरा छे, वली परभाव जे आत्मधर्मथी अन्य पुण्यबंध शुभकर्मनो विपाक तेहनी कामना अभिलाषा विना जे द्रव्यसेवना, ते कामनी जाणवी. ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

भावसेव अपवादें नैगम, प्रभुगुणने संकल्पें जी ॥
संग्रह सत्ता तुल्यारोपें, भेदाभेद विकल्पें जी ॥
श्री० ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे भावनिक्षेपाना बे भेद छे, ते कहे छे. एक आगम भावनिक्षेपो, बीजो नोआगम भावनिक्षेपो. तिहां भावसेवनाना पदना अर्थने जाणतो थको तेवा उपयोगें प्रवर्त्ते, ते पुरुषने आगमथी भावसेवना कहिएं, ए आधाराधेयनो अभेद ग्रही, निक्षेपो कह्यो, तथा जे जीव भावसेवनायें परिणम्या, तेहनी भक्ति, साधना, परिणति, ते नोआगमथी भावसेवना कहियें. इहां मूल वस्तुधर्मे विचारतां आत्मद्रव्यने विषे सेव्यसेवक भाव नथी, सत्तायें सर्व द्रव्य समान छे, अने कोइ द्रव्य कोईनो धर्म लेतां देतां नथी, पण जे संसारी जीव ते ते अनादिनो अज्ञान पापस्थानके परिणम्यो, विभावभावित थको कर्ममयी थईने संसारी पुद्गलनो भिखारी, तत्त्वनो चूक्यो, मोहने वैरीयाने दुःखमयी थयो छे, ते जेवारें स्वरूपने पामे, तेवारें सिद्ध परमेश्वर थाय. तेतो श्री अरिहंत निःकर्मा तत्त्व-

भोगीने पूज्यपणे अविलंवतां नीपजे, माटे स्वकार्य करवाने जे परमात्मा निष्पन्न सिद्ध तेहने निमित्त कारणपणे अवलंबीने अंतरंगपरिणतियी सेवे, ते जिहां सुधी एनी शुद्धसत्ता संपूर्ण पदें न थाय, तिहां सुधी ए सेवक अने संपूर्ण शुद्धानंदमयी थया, ते सेव्य जाणवा, ए निमित्तावलंबी सेवा, ते अपवाद सेवा, अने ते सेवा करतां पोतानु साध्य निपजाववुं, ते उत्सर्ग सेवा कहियें ॥ उक्तं च ॥ उक्कोसो उस्सग्गो, जस्स संपुण मम-लसप्भावो ॥ अववाओ तस्साहण, तग्घुड्ढिकरो अणेगविहो ॥ इति ॥ १ ॥

जे जेहनो उत्कृष्टो संपूर्ण निर्मल निर्दोष स्वभाव थयो, जेथी आगल बीजी अवस्था कांहिं नहीं, ते उत्सर्ग कहियें, अने ए उत्सर्गने निपजाववा माटे कारणरूप जे मार्ग अंगीकार करवो, ते अपवाद कहियें. इहां सेवा मध्ये जे आत्मसाधन थयुं, ते उत्कृष्ट अने ते आत्मसाधन निपजाववाने जे कारण अविलंब्यां जोइए, ते सर्व अपवादें जाणवुं. तेमां अरिहंतनी सेवना ते आत्मसाधननुं कारण छे, तेथी ए अपवाद सेवना छे, ते सात नयें करी सात भेदें छे, ते सात नयनुं संक्षेपें स्वरूप बतावे छे.

१ अनेके गमाः संकल्पारोपांशाश्रयाद्वा यत्र स नैगमः । जिहां अनेक नामादिक गमा ग्रहवाये तथा संकल्पे, आरोपे, अने अंशेपण वस्तुने माने, ते नैगमनय कहियें.

२ संगृह्णाति वस्तुसत्तात्मकं सामान्यं स संग्रहः । जे सर्वने संग्रहे, सर्वनुं ग्रहण करे, वस्तुनी छती सामान्यपणे ग्रहे, ते संग्रहनय कहियें.

३ संग्रहगृहीतं अर्थविशेषेण विभजतीति व्यवहारः। संग्रह-नयें ग्रह्यु जे सामान्य, तेहने अंश अंशभेदें जुदुं जुदुं वेहेंचे, ते व्यवहारनय कहियें.

४ ऋजु अतीतानागतवक्रत्वपरिहारेण ऋजु सरलं वर्तमानं सूत्रयतीति ऋजुसूत्रः। जे ऋजु सरल वर्त्तमान अवस्थानें ग्रहे, अतीत अनागतनी वक्रत्वताने हेरे नहिं, ते ऋजु सूत्रनय कहियें.

५ शब्दार्थरूपं तद्धर्मरूपपरिणतिः इति शब्दः। प्रकृति प्रत्ययादिक व्याकरण व्युत्पत्तिए सिद्ध थयेलो शब्द, तेहमां जे पर्यायार्थ बोले, ते पणे परिणमे, वस्तुने वस्तु माने. तथार्थ-वृत्तौ शब्दवशादर्थप्रतिपत्तिरिति शब्दनयश्च शब्दानुरूपं अर्थ-मिच्छति। ते शब्दनय कहियें.

६ सम्यक् प्रकारेणार्थपर्यायवचनपर्यायतः सकलभिन्न व-चन भिन्नभिन्नार्थत्वेन तत्समूहग्रहयुक्ते ग्राहक इति समभिरूढ-नयः। जे वस्तुना विद्यमान पर्याय तथा जे नामना यावत् वचनपर्याय छे, ते सर्व शब्दें भिन्न छे. यथा घट कुंभ इत्यादि. जे शब्दें भिन्न तेहनो अर्थ पण तद्भावरूपपणे भिन्न छे, ते सर्व वचनपर्यायरूपपरिणमती वस्तुने वस्तुपणे ग्रहे, ते समभि-रूढनय कहियें.

७ सर्वे अर्थपर्यायें स्वक्रियाकार्यपूर्णत्वेन एवं यथार्थतया भूतः एवंभूतः॥ सर्व अर्थपर्याय अनंता ते स्वधर्मे संपूर्ण पोतानी क्रिया कार्यपूर्ण जे वस्तुनो धर्म छे, ते तेम संपूर्णपणे थयो, ते एवंभूत नय कहियें.

इहां श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणें १ नैगम, २ संग्रह, ३

व्यवहार, ४ ऋजुसूत्र. ए चार नयने द्रव्यार्थिकपणे द्रव्यनिक्षेपे मान्या छे, अने शब्दादिक त्रण नयने पर्यायार्थिकपणे भावनिक्षेपें मान्या छे, तथा ऋजुसूत्रादिक चार नयने भावपणे कह्या छे, तेनो आशय कहे छे जे वस्तुनी अवस्था त्रण छे, १ प्रवृत्ति, २ संकल्प, ३ परिणति, ए त्रण भेद छे. तेमां जे योगव्यापार संकल्प, ते चेतनाना योग सहित मनना विकल्प, तेने श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमण प्रवृत्तिधर्म कहे छे. तथा संकल्पधर्मने उद्रेक मिश्रपणा माटे द्रव्य निक्षेपें कहे छे, मात्र एक परिणति धर्मने भावनिक्षेपो कह्यो छे.

अने सिद्धसेनदिवाकरें विकल्प ते चेतना माटे भावनय गवेष्यो छे, अने प्रवृत्तिनी सीम, व्यवहारनय छे, अने संकल्प ते ऋजुसूत्रनय छे, तथा एक वचनपर्यायरूप परिणति ते शब्दनय छे, अने सकल वचन पर्यायरूप परिणति ते समभिरूढनय छे, तथा वचन पर्याय अर्थ पर्याय रूप संपूर्ण ते एवंभूत नय छे, माटे ए शब्दादिक त्रण ते विशुद्धनय छे, भावधर्ममव्यें मुख्यभावने उत्तर उत्तर सूक्ष्मनाना ग्राहक छे, ए रीतें नयनो अधिकार संक्षेपें कह्यो. हवे ए साते नयें करी अपवाद भावसेवनाना सात भेद कहे छे.

१ श्रीअरिहंतरूप स्वजाति अन्यद्रव्य तेहना स्वरूपने चिंतववे जे चेतनानो अंश प्रभुना गुणने अनुयायी संकल्प पहेलां केवारें न थयो हतो, ते संकल्पविषयादिकथी निवारीने प्रभुगुणे जोड्यो, ए निमित्तावलंबीपणा माटे अपवाद अंतरंग परिणाम ते भावसेवना संकल्परूप एक गमे माटे नैगमनयें अपवाद भावसेवना जाणवी. ए आत्मसिद्धि नीपजाववानुं कारण छे.

२ श्री अरिहंतदेवनी निर्मल असंख्यात प्रदेशें निरावरण सर्व स्वशक्तिने चितवरे पोतानी सत्ता पण तेहवी विचारे, उभयनो तुल्यारोप करे, अने अप्रगटपनानो पश्चात्ताप करे, निपनातुं परमात्मधर्मनुं बहुमान करे, तथा भेद करतां द्रव्यथी क्षेत्रथी, कालथी, भावथी, श्रीप्रभुजी तथा मारुं द्रव्य भिन्न छे, अने सत्तासाधर्मे अभेद छे, एहवा सापेक्षपने जे बहुमान युक्त सत्ता प्रगट करवानी रुचिवंत एवो विकल्प ते संग्रहनये अपवाद भावसेवना कहियें ॥ ३ ॥ इति गाथार्थः

व्यवहारें बहुमान ज्ञान निज,
चरणें जिनगुण रमणा जी ॥
प्रभुगुण आलंबी परिणामें,
ऋजुपद ध्यान स्मरणा जी ॥ श्री० ॥४॥

३ अर्थः—पोताना क्षयोपशमभावि जे ज्ञान, दर्शन, वीर्य, तेमध्यें प्रतिसमयें भासन श्रीअरिहंतनी शुद्ध स्वरूप संपदा, केवल ज्ञानादिक. अने उपकारसंपदा जे देशना धर्मकथन, ते शुद्धउपकारीपणुं छे. तथा चोत्रीश अतिशय, पांत्रीश वचनातिशय, आठ प्रातिहार्यरूप संपदा, तिहांज उपयोग राखे, अने केवारें श्रीप्रभुजीनी प्रभुता विसारे नहीं. बहुमानमध्यें श्रीवीतराग ते सर्वथी अधिक मोटापणे सद्दहे, वीर्य ते जिनभक्तिने विषे फोरवे, तथा चरण कहेतां चारित्रने श्रीअरिहंतना गुणने विषे रमण एकत्व तन्मयतापणुं पामीने रहे, इहां जे क्षायोपशमी आत्मगुणनी प्रवृत्ति भासनादिक. ते सर्व श्रीअरिहंत अनुयायी थइ, ते माटे ए व्यवहारनयें अपवाद भावसेवना कहियें.

४ प्रभु श्रीपरमात्मा अयोगी अलेशी, तेना गुणने अवलंबीने आदरीने परिणाम जे अंतरंग आत्मद्रव्यनी क्षयोपशमी परिणति सामान्यचक्रभावरूप, तेमध्यें तन्मयपणे जे नहीं वीसरे एवा स्मरणपणे नउपयोगें रहे, ते जिहां सुधी धर्मध्यानरूपें आलंबी साधे, तिहां सुधी, रुजुसूत्रनयें अपवादभावसेवना कहियें. ए पण आत्ममाननरूप उत्सर्गभावसेवा तेनुं कारणपणुं छे, तेथी ए अपवादसेवा कही ॥४॥ इति चतुर्थ गाथार्थः॥

शब्दें शुक्ल ध्यानारोहण,
समभिरूढ गुणदशमे जी ॥
बीय शुक्ल अविकल्प एकत्वें,
एवंभूत ते अममे जी ॥ श्री० ॥ ५ ॥

५ अर्थः—हवे श्रीप्रभुरूप शुद्धद्रव्यने आलंबीने जे जीव भावमुनिनत्वरुचि थइ दर्शन, ज्ञान, चारित्र, ए रत्नत्रीमयी परिणमीने जे प्रथक्त्ववितर्क सप्रविचाररूप शुक्ल ध्याननपणे परिणम्यो, तेवारें ए जीव शब्दनयें भावसेवनावंत थयो, एटले रुजुसूत्रनयमां तो प्रशस्तउदेक सहित अरिहंत गुणनी इष्टतादिक परिणामने सहकारें हतो, अने जिहां शब्दनय थयो, तिहां प्रशस्तालंबननुं कार्य पडे नहीं. साधक जे भव्यजीव, तेहना गुण ते सर्वप्रभुगुणथी एकत्व थइ स्वरूप एकत्वना पाम्या शुक्लध्याननी शुद्धताने परिणम्या, तेवारें शब्दनय, अपवादभाव सेवना कहियें. इहां पण निमित्तपूर्वक मंडाण छे, तेमाटे अपवादें भावसेवना कही, अथवा साधनपणा माटे अपवाद कहि बोलाव्यो.

६ जेवारें साधक जीव दशमे सूक्ष्मसंपराय गुणठाणे चड्यो शुक्लध्यानना प्रथम पायाने अंतें आव्यो, परमनिर्मल-भाव वर्यो, ते वेलाए जेटली आत्मगुणनी साधना करतां योगवीर्यनी सहायें साधकता थाय, ते सर्व अपवादें छे, अने उत्सर्गमार्गे तो योगधर्म पण आत्माने तजवा योग्य छे, ते पण तेकालें साधनारूप छे, तेमाटे इहां कारणिक ग्रह्यो, पण स्वरूपमत्यें नही. अने जेटलुं कारणरूप रहियें, ते सर्व अप-वाद छे, माटे दशमे गुणठाणे समभिरूढनयें अपवाद भावसे-वना छे, ए पण साधकनां आसन छे.

७ जेवारें शुक्लध्यानने बीजे पाये एकत्ववितर्क अप्रवि-चाररूपें चड्यो भावमुनि निर्विकल्प समाधि वरयो, स्वरूपए-कत्वें परिणम्यो, तेवारें साधनानुं पूर्णपणुं थयुं. ते माटे एवंभू-तनय सेवना थइ. तो कोइ पूछे जे अयोगी गुणठाणा सुधी साधना छे, तो इहां क्षीणमोहगुणठाणे सेवनानो एवंभूत केम कह्यो छो ? तेने उत्तर कहे छे जे अयोगी सुधी तो उत्स-र्गसाधना छे, अने इहां तो अपवादसाधनानो अधिकार छे, तेथी अपवादसाधना इहां पूरी थइ. वली कोइ पूछे जे अमम निर्मोह अवस्थामां शुं अपवादपणुं छे ? तेहने उत्तर. जे शुक्ल ध्यानना बीजो पायो पण हवी सचेतनानुं एक आत्म-धर्म रावतुं, ते प्रयोग छे. हवी सयोगवीर्य उदयानुगतनुं सहाय छे, तथा श्रुतज्ञाननुं आलंबन छे, अने क्षयोपशमी श्रुत ते उत्कृष्ट उत्सर्गे मूल आत्मिक वस्तुधर्म नथी अने तेहनुं आलंबन छे, तिहां सुधी अपवाद छे. ते माटे निर्मोही बारमे गुणस्थानके एवंभूतनयें अपवादें भावसेवा जाणवी. ए

आगार भाव सेवनाना सात नयें करी सात भेद कह्या ॥५॥
इति पंचम ॥

> उत्सर्गे समकितगुण प्रगट्यो,
> नैगमप्रभुता अंशे जी ॥
> संग्रह आतम सत्तालंबी,
> मुनिपद भाव प्रशंसे जी ॥ श्री० ॥ ६ ॥

अर्थः—हवे उत्सर्गमार्गे भावसेवनाना सातनयें करी सात भेद कहे छे. इहां संपूर्ण आत्मधर्मरूप स्वकार्य नीपजे छे, ते उत्सर्गसेवा कहिये, पूर्ण करवा योग्य जे कार्य ते उत्कृष्ट करवुं, पण तेमां मंदता ऊणता होय, तेमाटे नयकल्पना ओळखवी, ते कहेवानी इच्छाए छे.

१ जेवारें आत्माना शंकादिपांच अतिचार रहित क्षायिक आत्मिक तत्त्व निःशंकरूप शुद्धसमकितरूप गुण प्रगट्यो, तेवारें ए साधकआत्मानो एक अंश प्रभुतानो गुण प्रगट्यो, तेथी आत्मानुं एक अंशे कार्य थयुं, तेमाटे नैगमनय उत्सर्ग भावसेवा थई. इहां कोई पूछे जे गुण निपज्यो तेने सेवा केम कहो छो? तेने उत्तर जे, समकित, ए देशथी पूर्ण सेवनानो अंश छे. ते इहां समकितगुण थयो छे, अनंता जो पण गुण नथी प्रगट्या पण इहां आत्माना अनंता गुणनो [illegible] छे माटे एने सेवना कही छे. बीजुं उत्सर्गसंग्रह-नयें बीजुं उत्सर्गसंग्रह छे, तेमाटे एने उत्सर्गभावसेवा कहीये छे. [illegible] ॥ आत्मसत्तालंबनपणुं ॥ [illegible] ग्रहवो । निर्वि-

समवताय सुद्धदेवोत्ति ॥ ए टीकामध्यें छे, तेथी उपादाननिष्पत्ति ते उत्सर्गसेवा जाणवी. इहां आत्माना अनंत गुण छे, तेमांथी एक समकित गुण प्रगट्यो, ते आत्मानो एक अंश प्रगट्यो, तेथीज ए नैगमनयें उत्सर्गभावसेवा थइ, अने एहीज उत्सर्ग आत्मगुणप्रभुता पण प्रगटी.

२ जेवारें ते भावमुनियें यद्यपि पोतानी आत्मसत्ता आवरी छे, तो पण जे छती हती तेने निर्धार करीने भासनगत करी, ते हवे स्वसत्तालंबी शुद्ध धर्ममयी थयो, तेहीज आत्मसत्ताभासन रमण, एकत्वसत्तासन्मुख थको रहे. एटले ए जीव आज सुधी स्वसत्तालंबी थयो हतो नहीं, ते थयो. एटलुं उपादान समर्थ, माटे संग्रहनय उत्सर्गभाव सेवा कहियें.

३ जेवारें ते साधक जीव, अप्रमत्तमुनिराज अवस्था पामीने उपादान कारणता सर्वस्वरूपालंबी करी, ते अवस्था आत्मानी परिणामप्रवृत्ति ग्राहकता, व्यापकता, भोक्तृता, कर्तृता आदिक सर्व स्वरूपें वरती, तेवारें अंतरंग वस्तुगत जे व्यवहार, ते वस्तुस्वरूपें थयो, ते व्यवहारनय उत्सर्ग भावसेवना कहियें. ए मुनिपदनो जे भाव, तेहने प्रशंसे कहेतां वखाणे ॥ ६ ॥

ऋजुसूत्रें जे श्रेणिपदस्थें, आत्मशक्ति प्रकासे जी ॥
यथाख्यात पद शब्दस्वरूपें, शुद्धधर्म उल्लासें जी॥
श्री० ॥ ७ ॥

४ अर्थः—जे आत्मा क्षपकश्रेणिपदें रह्यो थको पोतानी

आत्मिक शक्ति प्रकासे केतां प्रगट करे, तेने ऋजुसूत्रनय उत्सर्ग भावसेवना कहियें.

५ जेवारें आत्मानें यथाख्यात क्षायिकचारित्र प्रगट थयुं, तेवारें जे चारित्र सहकारी आत्मशक्ति प्रगटे, शुद्ध अकषायी, असंगी, निरपृहरूप शुद्ध धर्म उल्लास पामे, चारित्र सहकारी जे वीर्यादिक तेपण जे कषायानुयायी फरता हता, ते सर्व आत्मरमणी थया, ए धर्म जेटलो उल्लास पामे, ते सर्वशब्दनयें उत्सर्गे भावसेवना जाणवी. इहां स्वरूपरमणी असहायी थयो, ते जेटलुं अन्य असहायीपणुं नीपन्युं, तेटलुं उत्सर्गसेवन जाणवुं ॥ ७ ॥ इति

> भाव सयोगी अयोगीशैलेसे,
> अंतिम दुग नय जाणो जी ॥
> साधनताए निजगुण व्यक्ति,
> तेह सेवना वखाणो जी ॥ श्री० ॥ ८ ॥

६ अर्थः—जेवारें ए आत्मायें सर्व घनघातिकर्म क्षय करीने अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत वीर्य, ए चार मोटां अनंतक प्रगट कर्यां, ए चार गुणने संकर तथा सहकारें जे बीजा वक्तव्य तथा अवक्तव्य अनंता स्वधर्मीगुण प्रगट थया, आत्मिक आनंदी थया, तेवारें समभिरूढनयें उत्सर्ग भावसेवा थई.

७ जे कालें शैलेशीकरण करे, आत्मप्रदेशनो घन करे, अयोगीकेवलीपणुं थाय, तेवारें एवंभूतनयें उत्सर्ग भावसेवना

जाणवी. इहां कोइ पूछशे जे एवंभूत मोक्षने विषे केम कहेता नथी? तेने उत्तर. जे मुक्त आत्मा तो सिद्ध छे, तेने नवुं कांइ नीपजाववुं नथी, अने अयोगिने तो सिद्धता निपजाववी छे, माटे जेटलुं कार्य अधुरुं, तेटलुं साधन कहीयें. अने जे साधना ते सेवा छे, माटे साधनानो अंत अयोगीकेवली गुणठाणे छे, एटले साधनानो एवंभूत अयोगीकेवली छे, तेथी उत्सर्ग भावसाधना ते अयोगीकेवली गुणठाणे कही, अने सिद्धनो एवंभूत ते मुक्त आत्मा छे. ए रीतें साधना ओळखावी. ए उत्सर्ग सेवनाना सात नय कह्या.

हवे एहुं स्वरूप बनावे छे, जे ए साधनता कहेतां साधना करतां जे निजगुण केतां पोताना आत्माना गुण तेहुं व्यक्ति केतां प्रगटपणुं, तेह सेवना कहेतां आत्मसेवना, वखाणो केतां कहो, एटले जेटली साधना तेटली अपवादसेवा, जाणवी, अने ते साधना करतां करतां जेटली जेटली नवी आत्मशक्ति प्रगटवानी कारणता सहित जे आत्मशक्ति प्रगटे, ते उत्सर्गभावसेवा जाणवी, अने शुद्धनिष्पन्न सिद्ध अवस्था ते साध्य छे, अने जे प्रगटशुद्ध आत्मधर्मपणे आत्मसंपूर्णताने कारणपने थती सेवा, ते उत्सर्गभावसाधना जाणवी. जे उत्सर्गभावसाधना ते कार्य छे, अने निमित्तालंबी अपवाद भावसेवा ते कारण छे, शेष सर्व द्रव्यसेवनानुं कारण छे. ए रीतें कारण' कार्यभाव जोडवो ॥ ८ ॥ इति अष्टम गाथार्थः ॥

कारणभाव तेह अपवादें,
कार्यरूप उत्सर्गे जी ॥

आरणभाव ते भावद्रव्य पद,
बाह्यप्रवृत्ति निःसर्ग जो ॥ श्री० ॥ ९ ॥

अर्थः—इहां जेटलो कारणभाव, ते सर्व अपवादें जाणवो, अने जेटलुं कार्य जे स्वगुणनिष्पत्ति, तेटलो उत्सर्ग जाणवो. ए उत्सर्ग तथा अपवादनां लक्षण तथा फलावणी सर्व बृहत्कल्पभाष्यमांथी तथा तेनी टीकाथी विस्तारपणे जोइ लेजो, अने जेटलुं बाह्यप्रवर्त्तन ते द्रव्यनिक्षेपो जाणवो. एहवी श्री चंद्रप्रभस्वामीनी सेवायें जे हलिया, ते आत्मधर्म संपूर्ण वरे ॥ ९ ॥ इति नवम गाथार्थः ॥

कारणभाव परंपर सेवन,
प्रगटे कारजभावो जी ॥
कारज सिद्धे कारणना व्यय,
शुचि परिणामिक भावो जी ॥ श्री० ॥१०॥

अर्थः—हवे कारणभाव जे श्री अरिहंतदेव तेहनी परंपरायें द्रव्यभावना करतां थकां भावसेवा प्रगटे, अने भावसेवाथी उत्सर्ग धर्म प्रगट, अने उत्सर्ग धर्म प्रगट्यो, तेवारें पोतानुं कार्य शुद्धस्वरूप अनुभवरूप प्रगटे, अने कार्य जे शुद्ध सिद्धतारूप ते सर्व केवारे नीपजे, ते कार्य नीपजे थकेथी कारणता जे हती तेहनो व्यय केवां नाश थाय, केमके कार्यनी उत्पत्तिनायें कारणता छे, परंतु कार्य नीपजे कारणधर्म रहे नहीं, तेवारें शुं रहे ? ते कहे छे. जे शुचि केवां पवित्र भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म रूप हेतुसद्भावरूप मल रहित जे आत्मानो

पारिणामिक भाव छे, जेपने एनुं मूल लक्षण छे, स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभावरूप तेपत्नुं रहे, परमानंद अविनाशी अवस्था थरे ॥ १० ॥ इति ॥

> परमगुणी सेवन तन्मयता,
> निश्चय ध्यानें ध्यावे जी ॥
> शुद्धातम अनुभव आस्वादि,
> देवचंद्र पद पावे जी ॥ श्री० ॥ ११ ॥

अर्थः—ए रीते परम केतां उत्कृष्ट गुणी जे श्री अरिहंत शुद्धदेव तेहनी सेवा अति दुर्लभ छे. ते पामीने तेहमांहे तन्मय थईने जे जीव निश्चय केतां निर्धारे. अथवा निश्चय केतां पोताने स्वरूपध्यानें एकत्वना रूपें जे ध्यावे, ते जीव, शुद्ध निष्कलंक जे आत्मा चिदानंद घन, तेहनो जे अनुभव केतां यथार्थ ज्ञान वेद्य संवेद्य पद सहित तेहने आस्वादिने देव जे निर्ग्रंथ अथवा भुवनपति प्रमुख चार निकायना, तेहमां चंद्रमा समान भाव उद्योत समता शीतलताना कारण जे अरिहंत ते रूप पद-स्थानक ते प्रत्यें पामे, एटले अहो भव्य जीवो ! जो तमें पोताना आत्मसुखना इच्छुक थया हो, अने शुद्धानंदने वि-लसो, एवी अभिलाषा तमने छे, तो श्रीचंद्रप्रभस्वामी शुद्ध-देव, अशरणना शरण, जगदाधार, जगत्जीवना परोपकारी, मोह तिमिरनो ध्वंस करवाने भानमूर्य जेहवा, कर्मरोगना परम वैद्य, महा माहण, महा गोप, महानिर्यामक, महासार्थवाह, सम्यक्दृष्टि जीवना जीवनप्राण, देशविरतिने तो महामंत्रनी पेरें अथवा योग्य, साधु निर्ग्रंथ जेहनी आज्ञायें चाले छे, उत्कृष्टा-

 ८३

यना हृदयरूप सरोवरना हंस, आचार्यजीना नाथ, गणधरनां साक्षात् मोक्षहेतु अने स्याद्वादधर्मना उपदेशक, एहवा श्री अरिहंतदेव तेनी सेवा करो, एहज आधार छे, ए श्रीचंद्रप्रभनी सेवा जिहां सुधि तमारी संपूर्ण सिद्धता न थाय, तिहां सुधि अखंड रहेजो, एहीज सार छे ॥ ११ ॥

॥ अथ नवम श्री सुविधिनाथजिन स्तवनं ॥

थारा महेला उपर जरुखे वीजली हो लाल ॥ जरुखे ॥ ए देशी

दीठो सुविधि जिणंद, समाधिरसें भर्यो हो लाल ॥ स० ॥
भास्यो आत्मस्वरूप, अनादिनो वीसर्यो हो लाल ॥ अ०
सकल विभाव उपाधि, थकी मन ओसर्यो हो लाल ॥ थ०
सत्तासाधन मार्ग, भणी ए संचर्यो हो लाल ॥ भ० ॥ १ ॥

अर्थः—हवे श्री सुविधिनाथपरमात्मानी स्तुति करे छे. कोइक भव्य जीव अनादिकालनो मिथ्यात्व, असंयम, कषाय-योग रूप द्रव्यभाव हेतुपणे परिणम्यो, एकेंद्रिय सूक्ष्म, बादर, तथा बेंद्री, तेंद्री, चौरिंद्री, पंचेंद्रीपणे अनंता भव सुधी भवचक्रमां फरतो अनेक कुदेवनी वासनायें वासित थको कुदेवने देवबुद्धिए मानतो अथवा सुदेव जे श्रीवीतराग तेहने कर्तृत्व प्रमुख दोष मानतो थको कोइ कालें श्रीवीतराग प्रभुनी प्रभुता दीठी नही, ते केवारेंक भवस्थितिनो परिपाक करी, कोइक पुण्यना उदयें श्रीसुविधिनाथ परमेश्वरनी मुद्रा दीठी, ते पण अरूपी अनंतगुण प्रभुतापणे श्रद्धान भासन गोचर थइ. ते

श्री अरिहंतनी प्रभुता देखीने उल्लसितचित्ते ते भव्य जीव श्री वीतरागनी उपकारता पाम्यो, तेवारें ते प्रीतें हर्षथी बोले छे, जे दीठो केतां भासनपणे प्रतीत सहित सुविधिनाथ प्रभुजी दीठो, पण ते केहवो दीठो ? जे समाधि केतां आत्मगुणनुं विपरीतप्रवर्त्तन ते उपाधि, अथवा विषय कषायने अनुयायि जे प्रवर्त्तन, ते पण उपाधि, तथा जे तत्व उद्धत वक्रता परिणामादिक, सर्वविभाव ते पण उपाधि तेने निवर्त्ते सकलगुण स्वरूप परिणामी थये जे आत्मगुणनी वस्तुगतें स्थिरता ते समाधि तेहनो रस, तेणें करी भरयो केतां संपूर्ण एटले परमसमाधिमयी श्रीसुविधिनाथ दीठो, ते दीठाथी एक मोटो लाभ थयो, ते शुं लाभ थयो ? तोके भास्यो केतां जाणपणामां आव्यो, पोताना आत्मानुं स्वरूप ते शुद्धविज्ञानंदलक्षण जाण्युं, जे अनादि अतीत कालनो विसरयो भूली गयो हतो, ते श्रीप्रभु दीठां भास्युं तेथी सकल केतां सर्व जे विभाव दोष आत्मिक अशुद्धतारूप जे उपाधि तेहथकी मन केतां चित्त ओसरयो केतां पाछो हठ्यो, जे ए विभाव परिणति हुं नहीं तथा विभाव परिणतिनो हुं कर्त्ता पण नहीं, ए [illegible] करवुं भोगववुं परिणमवुं घटे पण नहीं, ते जेथकी [illegible] रामी आत्मपरि[illegible]ति ते सर्व राग द्वेष असंयमथी निवृत्त[illegible] लागी, अने सत्ता केतां जे अनंतगुणरूप आत्मानी स[illegible] तेहना साधननी रीत केतां चाल (मार्ग) ते सम्यग्ज्ञा[illegible], [illegible]दर्शन, सम्यग्चारित्ररूप जे आत्मिक कार्य, ते मा[illegible] [illegible]णी ए भव्यजीव परिणम्यो, एटले जेथी आत्मसत्ता प्रगट [illegible], ते मार्ग भणी ए आत्मा संचरयो केतां प्रवर्त्यो ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

पना इदयरूप महारम्ना हंस, आचार्यजीना नाथ, गणधरना साक्षात् मोक्षहेतु अने स्याद्वादधर्मना उपदेशक, एहवा श्री अरिहंतदेव तेनी सेवा करो, एहज आचार छे, ए श्रीचंद्रप्रभनी सेवा जिहां सुधि नमारी संपूर्ण सिद्धता न थाय, तिहां सुधि अखंड रहेजो, एहीज सार छे ॥ ११ ॥

॥ अथ नवम श्री सुविधिनाथजिन स्तवनं॥

थारा महेला उपर जरुखे वीजली हो लाल ॥ जरुखे ॥ ए देशी

दीठो सुविधि जिणंद, समाधिरसें भर्यो हो लाल ॥स०॥
भास्यो आत्मस्वरूप, अनादिनो वीसर्यो हो लाल ॥अ०
सकल विभाव उपाधि, थकी मन ओसर्यो हो लाल॥थ०
सत्तासाधन मार्ग, भणी ए संचर्यो हो लाल॥स० ॥१॥

अर्थः—हवे श्री सुविधिनाथपरमात्मानी स्तुति करे छे. कोइक भव्य जीव अनादिकालनो मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय, योग रूप द्रव्यभाव हेतुपणे परिणम्यो, एकेंद्रिय सूक्ष्म, बादर, तथा बेंद्री, तेंद्री, चौरिंद्री, पंचेंद्रीपणे अनंता भव सुधी भवभ्रमण करतो अनेक कुदेवनी वासनायें वासित थयो कुदेवने देवबुद्धि, [illegible] अथवा [illegible] श्री जिनराज तेहने रागद्वेष प्रमुख दोष मानतो थको कोइ काले श्री जिनराज प्रभुनी प्रभुता दीठी नहीं, ते केवारेक भवस्थितिनो परिपाक थवे, कोइक पुण्यना उदयें श्री सुविधिनाथ परमेश्वरनी मुद्रा दीठी, ते वखते अनंतगुण प्रभुताये अज्ञान भावना [illegible] थई. ते

श्री अरिहंतनी प्रभुता देखीने उल्लसितचित्तें ते भव्य जीव श्री वीतरागनी उपकारता पाम्यो, तेवारें ते प्रीतें हर्षथी बोले छे, जे दीठो केतां भासनपणे प्रतीत सहित सुविधिनाथ प्रभुजी दीठो, पण ते केहवो दीठो ? जे समाधि केतां आत्मगुणनुं विपरीतप्रवर्त्तन ते उपाधि, अथवा विषय कषायने अनुयायि जे प्रवर्त्तन, ते पण उपाधि, तथा जे तत्व उद्धत वक्रता परिणामादिक, सर्वविभाव ते पण उपाधि तेने निवर्त्ते सकलगुण स्वरूप परिणामी थये जे आत्मगुणनी वस्तुगतें स्थिरता ते समाधि तेहनो रस, तेणें करी भर्यो केतां संपूर्ण एटले परमसमाधिमयी श्रीसुविधिनाथ दीठो, ते दीठाथी एक मोटो लाभ थयो, ते शुं लाभ थयो ? तोके भास्यो केतां जाणपणामां आव्यो, पोताना आत्मानुं स्वरूप ते शुद्धचिदानंदलक्षण जाण्युं, जे अनादि अतीत कालनो विसरयो भूली गयो हतो, ते श्रीप्रभु दीठां भास्युं तेथी सकल केतां सर्व जे विभाव दोष आत्मिक अशुद्धतारूप जे उपाधि तेहथकी मन केतां चित्त ओसरयो केतां पाछो हठ्यो, जे ए विभाव परिणति हुं नहीं तथा विभाव परिणतिनो हुं कर्त्ता पण नहीं, ए [illegible] भोगववुं परिणमवुं घटे पण नहीं, ते जेटली [illegible]स्वामी आत्मपरि[illegible]ति ते सर्व राग द्वेष असंयमथी निवृत्त[illegible] थयो, अने सत्ता केतां जे अनंतगुणरूप आत्मानी स[illegible] तेहना साधननी रीत केतां वाट (मार्ग) ते सम्यग्ज्ञान, [illegible]ग्दर्शन, सम्यक्चारित्ररूप जे आत्मिक कार्य, ते मा[illegible]र्गनी ए भव्यजीव परिणम्यो, एटले जेथी आत्मसत्ता प्रगट [illegible], ते मार्ग भणी ए आत्मा संचर्यो केतां प्रवर्त्यो ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

पना हृदयरूप सरोवरना हंस, आचार्यजीना नाथ, गणधरना साक्षात् मोक्षहेतु अने स्याद्वादधर्मना उपदेशक, एहवा श्री अरिहंतदेव तेनी सेवा करो, एहज आधार छे, ए श्रीचंद्रप्रभनी सेवा जिहां सुधि तमारी संपूर्ण सिद्धता न थाय, तिहां सुधि अखंड रहेजो, एहीज सार छे ॥ ११ ॥

॥अथ नवम श्री सुविधिनाथजिन स्तवनं॥

थारा महेला उपर जरुखे वीजली हो लाल ॥ जरुखे ॥ ए देशी

दीठो सुविधि जिणंद, समाधिरसें भर्यो हो लाल ॥स०॥
भास्यो आत्मस्वरूप, अनादिनो वीसर्यो हो लाल ॥अ०
सकल विभाव उपाधि, थकी मन ओसर्यो हो लाल॥थ०
सत्तासाधन मार्ग, भणी ए संचर्यो हो लाल॥भ० ॥१॥

अर्थः—हवे श्री सुविधिनाथपरमात्मानी स्तुति करे छे. कोइक भव्य जीव अनादिकालनो मिथ्यात्व, असंयम, कषाययोग रूप द्रव्यभाव हेतुपणे परिणम्यो, एकेंद्रिय सूक्ष्म, बादर, तथा बेंद्री, तेंद्री, चौरिंद्री, पंचेंद्रीपणे अनंता भव सुधी भवचक्रमां फरतो अनेक कुदेवनी वासनायें वासित थको कुदेवने देवबुद्धिए मानतो अथवा सुदेव जे श्रीवीतराग तेहने कर्तृत्व प्रमुख दोष मानतो थको कोइ कालें श्रीवीतराग प्रभुनी प्रभुता दीठी नहीं, ते केवारेक भवस्थितिनो परिपाक करी, कोइक पुण्यना उदयें श्रीसुविधिनाथ परमेश्वरनी मुद्रा दीठी, ते पण अरूपी अनंतगुण प्रभुतापणे श्रद्धान भासन गोचर थई. ते

श्री अरिहंतनी प्रभुता देखीने उल्लसितचित्तें ते भव्य जीव श्री वीतरागनी उपकारता पाम्यो, तेवारें ते प्रीतें हर्षथी बोले छे, जे दीठो केतां भासनपणे प्रतीत सहित सुविधिनाथ प्रभुजी दीठो, पण ते केहवो दीठो ? जे समाधि केतां आत्मगुणनुं विपरीतप्रवर्त्तन ते उपाधि, अथवा विषय कषायने अनुयायि जे प्रवर्त्तन, ते पण उपाधि, तथा जे तन्न उद्धत वक्रता परिणामादिक, सर्वविभाव ते पण उपाधि तेने निवर्त्ते सकलगुण स्वरूप परिणामी थये जे आत्मगुणनी वस्तुगतें स्थिरता ते समाधि तेहनो रस, तेणें करी भरयो केतां संपूर्ण एटले परमसमाधिमयी श्रीसुविधिनाथ दीठो, ते दीठाथी एक मोटो लाभ थयो, ते शुं लाभ थयो ? तोके भास्यो केतां जाणपणामां आव्यो, पोताना आत्मानुं स्वरूप ते शुद्धचिदानंदलक्षण जाण्युं, जे अनादि अतीत कालनो विसरयो भूली गयो हतो, ते श्रीप्रभु दीठां भास्युं तेथी सकल केतां सर्व जे विभाव दोष आत्मिक अशुद्धतारूप जे उपाधि तेहथकी मन केतां चित्त ओसरयो केतां पाछो हट्यो, जे ए विभाव परिणति हुं नहीं तथा विभाव परिणतिनो हुं कर्त्ता पण नही, ए हुं न कर्त्ता भोगवनुं परिणमनुं थते पण नहीं, ते जेणें ... आत्मपरि..ति ते सर्व राग द्वेष असंयमथी निवृत्त... लागी, अने सत्ता केतां जे अनंतगुणरूप आत्मानी स... तेहना साधननी रीत केतां चाल (मार्ग) ते सम्यग्ज्ञान, ... दर्शन, सम्यग्चारित्ररूप जे आत्मिक कार्य, ते मा... ...णी ए भव्यजीव परिणम्यो, एटले जेथी आत्मसत्ता प्रगट ..., ते मार्ग भणी ए आत्मा संचरयो केतां प्रवर्त्यो ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

तुम प्रभु जाणग रीति, सर्व जग देखता हो लाल ॥स०॥
निजसत्तायें शुद्ध, सहुने लेखता हो लाल ॥स०॥
परपरिणति अद्वेष, पणे उवेखता हो लाल ॥प०॥
भोग्यपणे निजशक्ति, अनंत गवेखता हो लाल
॥ अ० ॥ २ ॥

अर्थः—वळी हे प्रभुजी ! तुमें जगत्षड्द्रव्यात्मक तेने केवलज्ञान, तथा केवलदर्शनें करी देखो छो, पण जाणंग रीतें एटले राग द्वेष रहित जे एक आत्मानो जाणंग गुण छे, तेथी सर्वभाव जाणो छो, परन्तु तेमां शुभपरिणामी वस्तुना ग्राहक नथी, अने अशुभपरिणामी वस्तुना द्वेषी नथी, यथार्थ रीतें जगत्ना जाण छो, कर्तापणुं, भोक्तापणुं, ग्राहकपणुं स्वामिपणुं एटला वाना अज्ञान अहंबुद्धि रहित सर्वभावना जाणंग छो, वळी हे प्रभुजी ! तमे केहवा छो ? जे सर्वद्रव्यने पोताना सत्तायमें शुद्ध, निर्दोष, निःराग लेखो छो, एटले पंचास्तिकायमां पण अस्तिकाय तो परगुण विना छे, अने पुद्गलनुं संयोगीपणुं ते भेदसंबन्धमें छे, पण कर्तापणे नथी, जाणे स्वगताने छोडतो नथी, अने जीवने यद्यपि अनादि विभाव छे, परंतु सत्तारूपें मूलस्वभाव छे, ते प्रभुजी ! तुमें जीवपणुं मूलसत्तायें करी लेखवो छो, तेमां परपरिणति भावअशुद्धता, ज्ञानावरणादि कर्म, कामक्रोधादिक सर्वने अद्वेषपणे अप्रशस्तपणे भिन्न करी उवेखो छो तेनो अहंकार करता नथी होते जे नाशे, तेने त्याग न कहियें, ममता मटे त्याग कहेवाय छे, केम के ममता मानसिक छे, छेदवानुं तो परसंयोग छे, वळी हे प्रभु !

तुमें भोगपणे पोतानो भोग भोगवो छो, निजशक्ति जे अनंतगुणपर्याय रूप, परमचैतन्यरूप, परमानंदरूप, सहजसुखरूप, एवी जे अनंती तत्त्वविलासता तेने भोग्यपणे गणो छो, स्वधर्मनेज भोग्य जाणो छो, माटे हे सुविधि परमेश्वर ! तमें परमात्मतारूप परम धर्मना भोगी छो जी ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

दानादिक निज भाव, हता जे परवशा हो लाल ॥ह०॥
ते निजसन्मुख भाव, ग्रही लही तुज दशा हो लाल॥ग्र०
प्रभुनो अद्भुत योग, सरूपतणी रसा हो लाल ॥स०॥
भासे वासे तास, जास गुण तुज जिसा हो लाल ॥ जा० ॥ ३ ॥

अर्थः—दानादिक आत्मधर्म जे क्षयोपशमी छे, ते सर्व परानुयायी छे, पुद्गलानुयायी छे, ते अनादिना परवश थई रह्या छे, ते सर्व, हे प्रभु ! ताहरी शुद्ध वीतराग दशा लही एटले पामीने ते क्षयोपशमीभाव सर्व आत्म सत्ताने सन्मुख पणे ग्रहे, आत्मावलंबनी थाय, एटले अरिहंतावलंबनी थया पछी एहीज सर्वगुण ते स्वस्वरूपावलंबनी थाय, शुद्धावलंबनी थाय अने हे प्रभुजी ! ताहरो योग जेनां स्वरूपीना स्वरूपनी रसा जेनां भूमिका ते अद्भुत छे. निर्विकार, निःसहाय निःप्रयत्न, निर्मल, निरंतर, सकलावबोधक आत्मानुं ते ज्ञान अने यथार्थ सर्वज्ञेय अभिन्नपणे सकल पदार्थने निर्धार करवो ते दर्शन तथा निर्मल, निश्चल, निरामय, तत्त्वैकत्वरूप स्थिरतापरिणाम ते चारित्र धर्म, ए त्रयनी जे अनंत स्वभाव

अनंत पर्याय उत्पाद, व्यय, ध्रुव, भेदाभेद, अस्ति नास्तिरूप स्वरूपने लीधे वर्त्ते छे, एहवी रत्नत्रयी, हे परमेश्वर ! ताहारे विषे परिणमी छे, तेहनी प्रतीत ते वासना तथा ओलखाण ते भासन ते तेहने थाय, जेहने तुज केतां तुमारा जेवा गुण प्रगट्या होय, एटले हे नाथ ! हे सर्वज्ञ ! हे त्रैलोक्य-दीपक ! ताहरी रत्नत्रयी ते तुझ समान गुणी होय, तेहनाज भासनमां आवे ॥ ३ ॥

मोहादिकनी घूमि, अनादिनी उतरे हो लाल ॥अ०॥
अमल अखंड अलिप्त, स्वभावज सांभरे हो लाल ॥स्व०
तत्त्वरमणशुचि ध्यान, भणी जे आदरे हो लाल ॥भ०॥
ते समतारस धाम स्वामिमुद्रा वरे हो लाल ॥स्वा०॥४॥

अर्थः—हे प्रभु ! ताहरी मुद्रा ते परम समतानुं धाम छे, एवी बीजी कोइनी न होय, केम के एहवी सकल परभाव रहित परिणति, तो जेणें एम कथुं होय, तेनेज निपजे, ते कहे छे, मोह जे मुंजता परिणाम, तेहनी घूमि जे स्वरूप अग्राहकता, परभावग्राहकता, परभावरमणताहूप विभावता ते अनादि कालनी आत्माने विषे छे,

इहां प्रश्न. जे ए विभावता अनादिनी छे, ते आत्मानो स्वपरिणाम छे किंवा परपरिणाम छे ? जो स्वपरिणाम छे, तो विभाव शा माटे कहो छो ? अने जो परपरिणाम छे तो अनादि केम कहियें ? तेहने उत्तर. जे आदि केतां पहेलो जीव अने पछी कर्म कहियें तो पहेला सिद्ध पछी कर्म लागे, अथवा पेहेला कर्म अने पछी जीव, एम कहियें तो कर्त्ता

विना कर्म केम संभवे ? ए पक्ष उपजे, ते माटे अनादि सहजातसंयोग छे. तिहां कोइ पूछे जे उभय संयोग एकठो कह्यो, तो कारण कार्यनो संबंध केम रहे ? तेहने उत्तर जे, उपादान धर्मे एक समयमां एकठोज कार्यकारणता छे, जेम सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानने छे, तेनी पेरें इहां पण श्री विशेषावश्यकथी जाणवुं,

यदुक्तं ॥ गाथा ॥ नय कम्मस्स य पुव्वं, कत्तुरभावे समुब्भवो जुत्तो ॥ निक्कारणओ सोविय, तह जुगवुप्पत्ति भावे य ॥ १ ॥ इत्यादि गाथायी जाणवो. कोइ पूछशे जे अनादिनो मळेलो तेनो वियोग केम थाय ? तेहनें कहियें ॥ गाथा ॥ जह चेह कंचणोवलं, संयोगो णाइ संनय गओवि ॥ वुच्छइई सोवायं, तह जोगो जीव कम्माणं ॥१॥ इति पूज्यवाक्यात्. एटले ए विभावपरिणाम यद्यपि अनादिनो छे, पण प्रकृतिक छे, स्वरूप नथी, माटे एनो वियोग ते कीयो थाय. तेवारें कोइ कहेशे जे ५ विभावनुं कर्त्तापणुं केम छे ? तेने कहे छे. जे आत्मा स्वरूपकर्त्ता तेहने स्वरूपभावनें परभावसंयोगें परकर्त्तापणुं थयुं छे, ते विभावमोहनी घूमि उतरे, मिथ्यात्वनी मुल टळे, तेवारें अमल थेतां रागद्वेष रहित अखंड थेतां तेवारें खंडाय नहीं, अलिप्त थेतां परसंगना लेपरहित एहवो पोतानो सहजस्वभाव सांभरे, अमन गोचरमां आवे, यद्यपि कर्मे लेपायो छे, तो पण स्वभावें अलिप्त छे, निरामय छे, कर्मसंबंध छे पण कर्मथी न्यारो छे, निःसंग छे, एहवो आत्मा जेवारें ओळखाणमां आवे, पछी तेहज साधक आत्मा पोतानुं तत्त्व जे शुद्धनिश्चयनयथी वस्तुस्वभाव तेहमां रमे, अनादि पौद्गलिक अशुद्धवर्णादिरमण तजिने, पोताना

ज्ञानादि अनन्तगुणमा रमे, सहज तत्त्व चारित्रना प्रगटे, पछी शुचि केवा पवित्र निर्मल ध्यानने प्रथम अरिहंतादि गुणीना गुण [illegible] [illegible] [illegible] ध्यायीने पोताना अनंता [illegible] [illegible] [illegible] अनभोक्ता सत्तागत तिरोभावानुं [illegible] [illegible] [illegible] भणी ते पूर्ण आवे, केवा [illegible] छे, ते [illegible] [illegible] [illegible] क्षय करीने परम समतारसना [illegible] [illegible] [illegible] श्री जिनराज छे, तेहनी मुद्रा [illegible], [illegible] श्री [illegible] [illegible] निर्मल [illegible] थाय ॥४॥

प्रभु छो त्रिभुवन नाथ, दास हुं ताहरो लाल ॥ दास०॥
करुणानिधि अभिलाष, अछे मुझ ए खरो हो लाल ।अ०।
आतमवस्तु स्वभाव, सदा मुझ सांभरो हो लाल ॥स०॥
भासन वासन एह चरण ध्याने धरो हो लाल ॥च०॥५॥

अर्थ —हवे प्रभुथी विनति करी पोतानो मनोरथ कहे छे, हे प्रभु ! तमे त्रिभुवनना नाथ छो, सम्यग्दर्शनादि गुण प्रमादवाना तथा [illegible] परम कारण छो, अने हुं तमारो दास छुं, [illegible] श्री वीतरागनुं दासपणुं तो सम्यक्त्वी, देशविरति, तथा सर्वविरति [illegible] छे, पण इहां तो [illegible] [illegible] वचन छे, माटे हे करुणानिधि ! हे करुणाना समुद्र ! मुझने ए [illegible] अभिलाष छे, ते कहुं छुं, जे माहरो आत्मानो [illegible] [illegible] " [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]

पुरिसेण अमहापरिणेसजे उवमाणविज्जति अरूवी सत्ता अपयस्स पयं नत्थी सेणं सद्देणं रूवेणं गंधेणं फासेणं इति आचारांगोक्तं " तथा शुद्धस्वसत्ता स्वरूपी, अनंत ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य, अनंत स्वरूपकर्त्ता, स्वरूपभोक्ता, स्वरूपपरिणामी, असंख्यप्रदेशी, प्रतिप्रदेशें अनंतपर्यायी नित्यानित्यादि अनंतस्वभावी, स्वकीयकारकचक्रपरिणामीरूप माहारो स्वभाव, ते सदा निरंतर मने सांभरो, भासनमां हो, वासना, प्रतीत, भासन, ज्ञान, चरण, तेमांहे रमणध्यान तेहज स्वभावमां तन्मयता थशो. ए मनोरथ सदा माहरे छे, साधकभावें साधक रीतें सिद्धावस्थायें सिद्धरीतें सदा रहेजो ए अभिलाप छे ॥ ५ ॥ इति ॥

प्रभुमुद्रानो योग, प्रभु प्रभुता लखे हो लाल ॥प्र०॥
द्रव्यतणे साधर्म्य स्वसंपत्ति ओलखे हो लाल ॥स्व०॥
ओलखतां बहुमान, सहित रुचि पण वधे हो लाल॥स०
रुचि अनुयायी वीर्य, चरणधारा सधे हो लाल
॥ च० ॥ ६ ॥

अर्थः—इहां कोइ पूछे जे तुं नाहरा आत्मधर्मनो रुचिवंत थयो, तेवारें प्रभुजीनुं शुं काम छे ? तेने उत्तर जे, आत्मस्वभाव विसरी, परभावरंगी थइ, ए माहारो आत्मा शरीरसंगी, ध्यासंगी, अनंगी, कुलिंगी, तथा लिंगीपणें ममतालिंगी थइ रह्यो छे. स्वसत्ता धर्म विसरी गयो छे, ते हवे अनंतज्ञानी, परम अमोही, प्रभुनी मुद्रा, थापनानिक्षेपरूप तेहनो योग मळे, तेवारें अनंतगुण रूप, सकल ज्ञायक, शुद्धात्मरूप एवी श्रीप्रभुनी प्रभुता तेने लखे, केतां ओळखे, ते ओळखतां

पछी जीवद्रव्यपणाना साधर्मे केतां सरखापणे जे सिद्ध थया, ते पण जीव अने हुं पण जीव माटे सत्तायें सरिखा छयें. गुणपर्याय स्वभावें तुल्य छैयें. जो जेवी संपदा श्रीसुविधिनाथ परमेश्वरने प्रगट थइ छे, तेहवीज संपदा माहरी सत्तामां पण छे, तेथी हुं पण ते परमेश्वर जेहवी संपदानो धणी छुं, एम ओळख्या पछी ते संपदा उपर बहुमान आवे, तेथी ते संपदानी रुचि प्रगटे, जे एहवी संपदा माहारे क्यारें नीपजशे ? अने जेवी रुचि होय, तेहनो उद्यम थाय, तेवारें वीर्यगुणनुं स्फुरण ते पण रुचिने अनुयायी छे, अने जे दिशें वीर्य स्फुरे, तेह-मांज रमण थाय. एटले तेहनुंज नीपजवानुं आचरण थाय, एटले प्रभु दीठे प्रभुनी प्रभुता भासे, ते प्रभुता पोतामां जाणे पछी ते ज्ञान स्वरूपनी रुचि उपजे तेथी रुचिनुं वीर्य तथा चारित्र ते रमण, ते पण ते दिशा वले, तेवारें ते सिद्धता प्रगटे, तेवा जिनमुद्राना योग ते वस्तु साधन छे, एम मार्ग कह्यो ॥ ६ ॥ इति षष्ठ गाथार्थ ॥

क्षायोपशमिक गुण सर्व, थया तुज गुणरसी हो लाल ॥ थ० ॥
सत्ता साधन शक्ति, व्यक्तता उल्लसी हो लाल ॥ व्य० ॥
हवे संपूरण सिद्धि, तणी शी वार छे हो लाल ॥ त० ॥
देवचंद्र जिनराज, जगत्र आधार छे हो लाल

॥ ज० ॥ ७ ॥

अर्थ —वळी क्षायोपशमिक जेटला वीर्य, दानादि गुण, जेवी रुचि केवी ज्ञान स्वरूप रसी थया, तेथी ते निरवर-गुण सर्व जेटला सत्तानी अनंतस्वरूप सत्ता तेहनुं साधन,

निपजाववानी आत्मशक्ति ढंकाणी हती, ते व्यक्त केतां प्रगटपणे उल्लसी केतां उल्लास पामी. हवे निमित्त कारण मले उपादान कारण प्रगटे, आत्मा तत्त्वरुचि, तात्त्विक, तत्त्वालंबी थाय, तो संपूर्ण अविनाशी सिद्धता निपजतां शी वार छे ? एटले पुष्टकारणें नियमा कार्य निपजे, तेमाटे देवचंद्र स्तुति कर्त्ता, अथवा सर्वदेवमांहे चंद्रमा समान ते जिनराज, श्रीवीतराग, ते सर्वजीवना आधार छे, एटले जिनमुद्राने आलंबनें अनंत जीव सिद्धि वरया, तेथी अरिहंतालंबने सिद्धता निपजे, ए नियामक छे, वास्ते अरिहंतस्मरण, वंदन, नमन, स्तवन, ध्यान करो. हे भव्य जीवो ! तमने एहीज आधार छे ॥७॥ इति श्रीसुविधिजिनस्त० ॥

॥ अथ दशम श्रीशीतलनाथजिन स्तवनं ॥

॥ आदर जीव क्षमागुण आदर ॥ ए देशी ॥

शीतल जिनपति प्रभुता प्रभुनी,
मुझथी कहोय न जाय जी ॥
अनंतता निर्मलता पूर्णता,
ज्ञान विना न जणाय जी ॥शी०॥ १ ॥

अर्थः—हवे दशमा परमेश्वर श्रीशितलनाथजीनी स्तवना करे छे. श्रीशीतलनाथनी अनंत अविनश्वर आत्मिक प्रभुता ते प्रत्यक्ष तो केवलीने गम्य छे, अने सम्यग्दृष्टि तत्त्वरुचिने तो श्रद्धामां छे, ते कहे छे. हे शीतल जिनपति ! तुमने

कषाय, तृष्णा, नोकषाय, तापरहित परम वीतरागता, निस्पृहता, परम परभाव अभोग्यता रूप, शीतलता प्रगटी छे अने पति केतां क्षीणमोही प्रभुजना पति तेनी प्रभुना ठकुराइ अनंत सहज संपदातेमुज अल्पज्ञानीथी तो कही न जाय, केम जे सिद्धना अभिलाप्य, अनभिलाप्य, सर्वपर्याय निरावरण प्रगट थया छे, तेमां अनभिलाप्य पर्याय श्रीकेवली जाणे, पण वचने अगोचर छे, माटे कहि शके नहीं, अने अभिलाप्य पर्याय अनंता छे, ते पण वचननो क्रम प्रवर्तन छे माटे. मित आउखे कहेवाय नहीं. तिहां अनंता जीवद्रव्य, ते एकेका द्रव्यना प्रदेश असंख्याता छे, ते वली एकेका प्रदेशे ज्ञानादि गुण अनंता छे, ने वली एकेका गुणना पर्याय अनंता छे तेमज स्वभाव अनंता छे ॥ उक्तं च ॥ जीवा-पुग्गल समया, दव्वपएसा य पज्जवा चेव ॥ थोवाणंताणंता विसेसमहिया दुवेणंता ॥ १ ॥ इति वचना निमज्जना ते पण सर्व पर्याय निरावरण, निःसंग निःसहाय छे. अने पूर्णता केतां सर्व शक्ति प्रगटभावे पूर्ण छे, ते सर्व केवल ज्ञान विना जणाय नहीं ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

चरम जलधि जल मिणे अंजलि,
गति झीपे अतिवाय जो ॥
सर्व आकाश आलंघे चरणें,
पण प्रभुता न गणाय जो ॥ शी० ॥ २ ॥

अर्थः—श्री [illegible], जेम चरम केतां छेल्लो जेनी गणित [illegible], सर्व पर्यंत छे, एहवो जलधि केतां स्वयंभूरमण समुद्र तेहनुं प्रगट जल, तेने कोइ अंजलियें मापी;

शके अथवा कोइ एहवो पण होय जे अत्यंत प्रलय काळ ना मोहोटा वायरानी गते चाले, तथा कोइ अनंता लोकालोक मळी सर्व आकाश तेने चरणे केतां पगे करी ओळंघे एहवो तो कोइ होय नहीं, परंतु दृष्टांत मात्र दीधो छे, ते एहवा शक्तिमंतथी पण निष्फल श्रीसिद्धपरमेश्वरनी जे प्रभुता छे क्षायोपशम शक्तिवालाथी गणी जाय नहीं, अने श्रीवीतराग सर्वज्ञनी प्रभुता संपूर्ण ज्ञानी जाणे. परंतु ते पण वचनयोगे कही शके नही, तेमाटे अनंत छे ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

सर्वद्रव्य प्रदेश अनंता,
तेहथी गुणपर्याय जी ॥
तास वर्गथी अनंत गुणुं प्रभु,
केवल ज्ञान कहाय जी ॥ शी० ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे ते अनंतता कहे छे. सर्व जीवद्रव्य तथा अजीवद्रव्य अनंता छे, तेथी सर्वद्रव्यना प्रदेश अनंता छे, तेमां आकाश प्रदेशनी अनंतता अति मोटी छे, तेहथी वळी गुणनी अनंतता घणीज मोटी छे, तेहथी वळी पर्याय अनंत गुणा छे, ए अधिकार अल्प बहुत्वपदथी जोइ लेजो, यद्यपि पर्याय जे छे, ते मूलधर्मे गुणथी भिन्न नथी, वस्तुमां पर्याय परिपाटी छे, ते पर्यायनो समूह मळी एक कार्य करे, ते प्रवृत्तिने गुण कहे छे, परंतु पर्यायनीज प्रवृत्ति छे, अने द्रव्य ते आधार छे, परंतु संज्ञा, संख्या, लक्षण, कार्यभेदे पर्यायथी गुण भिन्न छे, ते माटे गुणनी भिन्न व्याख्या उत्तराध्ययनादि

सूत्रे छे ॥ उक्तं च ॥ दव्वाणय गुणाणय, पज्जवाण नाणेणं ॥ नाणे नाणेहिं दंसियं ॥ इति पुनः गुणाणामासओ दव्वं, एग-दव्वसिया गुणा ॥ लक्कण पज्जवाणंतु, उभओ निस्सिया भवे ॥ १ ॥ इत्यादिकथी भिन्न व्याख्या छे, तिहां पन्नवणा-सूत्रे कयुं छे. ए सेण भंते जावाण पुग्गलाणं सव्वदव्वाणं सव्वपएसाणं सव्वपज्जवाणय कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा सव्व थोवा जीवा पुग्गला अणंतगुणा अद्धा समया अणंतगुणा सव्वदव्वा विसेसाहिया सव्वपएसा अणंत-गुणा सव्वपज्जवा अणंतगुणा ॥ इति गणधरवाक्यात् एटले श्रीप्रभुजीनो केवलज्ञानगुण तेनी अनंतता ते आवी रीतें छे के छ द्रव्यना गुण पर्याय सर्व अस्तिपणे रह्या छे, ते सर्वने जाणे, तथा तेनी परस्परनी अपेक्षाये नास्तिपणुं अनंतुं रह्युं छे, ते सर्वने पण श्रीप्रभुनो केवलज्ञानगुण जाणे, तथा ए सर्वथी अनंत गुणा वळी बीजा भाव होय, तो तेने पण जाणे, एम अनंती शक्ति छे, तेम दर्शननी पण तेटलीज शक्ति छे, तेमाटे द्रव्यना प्रदेश पर्याय तेना वर्ग करिये, वेहने वळी अनंतगुणो गुणाकार करिये एटलुं हे प्रभु ! हे परमेश्वरजी ! तमारुं केवलज्ञान कहेवाय छे. ते श्री भगवती सूत्रे ॥ अमियं नाणं केवलिस्स ॥ एम कयु छे ॥३॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

केवल दर्शन एम अनंतुं,
ग्रहे सामान्य स्वभाव जी ॥
स्वपर अनंतथी चरण अनंतुं,
समरण संवर भाव जी ॥ शी० ॥ ४ ॥

अर्थः—एटला सर्व भाव ते सर्व सामान्य युक्त छे, ते सर्व केवलज्ञानगम्य छे, अथवा सामान्यधर्मी छे, जे विशेष ते सामान्य विना नही, अने सामान्य ते विशेष विना नही. सर्व पदार्थ सामान्यविशेष रूप छे ॥ न सामन्न तओ नत्थि, विसेसो खपुप्फं वा ॥ तथाच ॥ संमतौ ॥ दव्वं पज्जव विउअं, दव्व विउत्ता पज्जवा नत्थि ॥ उप्पायट्ठिइ भंगा, हंदइ दविय लक्खणं एवं ॥ १ ॥ इति ॥ तेमाटे सर्व द्रव्यनेविषे सामान्य धर्म अनंता छे, ते सर्व केवल दर्शनगुणे देखे छे. तेथी पण अनंत गुणा सामान्य धर्मने देखी शके एवी शक्ति छे, तेथी एटला पर्यायमय केवल दर्शन गुण छे.

उक्तं च विशेषावश्यके ॥ यावंतोहि ज्ञेयस्य पर्याया स्ता-वंतस्तदवभासकत्वेन ज्ञानस्याप्येकस्याः ॥ तथा भगवत्यंगे ॥ अणंता दंसणपज्जवा इति ॥ वास्ते केवल दर्शन पण अनंतुं छे, ए दर्शन, सर्व पदार्थना अस्तित्व सत्व वस्तुत्व प्रमेय-त्वादि सामान्य स्वभावात्मकने देखे छे. एम चारित्र गुण ते पण अनंतपर्यायी छे, पोताना आत्माना सर्व पर्याय ते स्वकीय धर्म छे तथा पोताथी भिन्न अनंता जीव द्रव्य तथा सर्व अजीव द्रव्य तेहना धर्म ते परधर्म छे, एटले सर्वस्वधर्ममां रमण, पर-धर्ममां अरमण, ए सर्व पर्याय चारित्रना छे, एटले स्वरूपरमण, परभावनिवृत्ति, ए चारित्रनी परिणति छे, अने अनादिनुं जे पररमणीयपणुं मूल्थी थयुं हतुं, ते निवारीने स्वशक्ति चेतना-वीर्यादिकनी परिणति, ते परभावथी रोकीने स्वरूप विषे राखवी ए संवरभाव ते चारित्रनी अनंतता छे. ते संयमश्रेणी श्री व्य-वहारभाष्ये कही छे. जे सर्व जीवथी अनंतगुणा चारित्रना

मूलवर्ने ते मात्र, ए रीतें सर्वपरिणमन छे, ए श्री वीतराग निष्पन्नतत्त्वी प्रभुनी राजनीति चार प्रकारनी छे, वळी श्रीप्रभुनी आज्ञा सर्व द्रव्य माने छे, एटले स्तवनापदें आरोप माटे कहे छे. जे अन्य राजानी आणा कोईक माने. कोइ न माने. पण हे प्रभु ! जे रीतें तमो तमारा ज्ञानमां जाणो छो ते रीतें तमारुं ज्ञान परिणमे छे, ते रीतें सर्व द्रव्य परिणमे छे, जे रीतें तमें प्ररूपणा करो छो, तेज रीतें सर्व द्रव्यनी परिणति छे, माटे तमें कोइने कहेता नथी, तथा कोइने त्रास करता नथी, भय पमाडता नथी, परंतु ते तमारा ज्ञाननी परिणति लोपी चालता नथी, आज्ञा लोपता नथी, एहवी सहज आणा सम्यग्दृष्टि, देशविरति, सर्वविरतिने इष्ट छे, माटे निःप्रयास अखंड आणा छे ॥ इति ॥ ५ ॥

शुद्धाशय थिर प्रभु उपयोगें,
जे समरे तुझ नाम जी ॥
अव्याबाध अनंतु पामे,
परम अमृतसुख धाम जी ॥ शी० ॥ ६ ॥

अर्थः—हवे प्रभुसेवानुं फल कहे छे. जे साधक जीव, शुद्ध निर्दूषण आशय करीने क्षुद्रादिक आठ दोषने टाळीने एटले क्षुद्रादिक दोष रहित जे करे, ते कार्यनो साधक थाय श्रीहरिभद्रसूरियें कह्युं छे ॥श्लोक॥ क्षुद्रो लोभरतिर्दीनो, मत्सरी भयवान् शठः ॥ अज्ञो भवाभिनंदी च, निष्फलारंभसाधकः ॥ १ ॥ तथा दग्धादिक दोष रहित तथा विषअनुष्ठान जे इह लोक फळनी आशा, अने गरलानुष्ठान जे परभवें इंद्रियसुखनी वांछा, वळी अन्योऽन्य

बीजानी आज्ञा तो स्वार्थे तथा भयथी कोइ माने, अने प्रभु श्रीअरिहंतनी आज्ञा तो सर्वेने कोइ द्रव्य लोपतुं नथी, तथा जे लौकिक प्रभुनाना धनी, तेनो पौद्गलिक मानोपेत संपदाना धनी छे, अने श्रीतीर्थंकर तो जगदुपकारी अनंत सहज संपदाना ईश्वर छे, तेथी ईश्वरना अद्भुत छे. बीजा राजादिक तो मात्र पोताना सेवकोनेज भय पामे नहीं, परंतु पापक तथा मरणादि भय सहित छे. अने म्हारो परमेश्वर निर्मलानंद कारण शुद्ध देव तो सर्वकाल सर्वभय रहित छे, स्व अखंड अविनाशी संपदा परमनिर्भयतावंत छे, तथा जगत्मां इंद्र, चंद्र, चक्रवर्ति, ते तृष्णाने उदये इच्छारोपमयी छे, इच्छादी संपदा अपूर्ण छे, अने श्रीवीतराग तो स्वसंपदापूर्ण प्रागभावना भोगी छे, तेथी समस्त परसंपदाने अवांछे, माटे निर्वांछकतामयी छे. वळी श्रीप्रभु परमात्मा तेहना जे भाव केतां भावधर्म शुद्धचिदानंदादिक, ते सर्वस्वाधीन छे. पराधीन नथी. वळी ते अव्यय केतां अविनाशीपने ध्वंसरहित छे. ए रीते अनंतगुण जे पूर्वे कह्या तेना राजा छे ॥इति सप्तम गाथार्थः॥

अव्याबाध सुख निर्मल ते तो,
करणज्ञानें न जणाय जी॥
तेहज एहनो जाणंग भोक्ता,
जे तुम समगुण रायजो ॥ शी० ॥ ८ ॥

अर्थः—हे प्रभुजी ! जे अव्याबाध अतींद्रिय सुख ते अनंतुं स्वभोगीपने तमे भोगवो छो, ते अव्याबाध सुखनुं ज्ञान केतां जाणपणुं ते करण केतां इंद्रियोने आधीन जे

मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान छे, तेणें करी जणाय नहीं, तथा अवधि मनःपर्यवज्ञान ते यद्यपि इंद्रियोने आधीन नथी, तो पण ते रूपीभावना जाणंग छे, पण जीवस्वरूपने जाणी शके नहीं, जे माटे क्षयोपशमज्ञानें अव्याबाधनुं स्वरुप जाण्युं न जाय, पण जे जीव तुझ समान गुणना राय केतां स्वामी थया, तेहज परमात्मा, ए अव्याबाध गुणनुं स्वरुप जाणे, तथा भोगवे, बीजाने प्रगट नथी, केम के आत्मधर्म अतींद्रिय छे माटे तेहना भोगी सिद्ध भगवंत छे, बीजाथी ए भोगवाय नहीं ॥ ८ ॥ इति ॥

एम अनंत दानादिक निजगुण,
वचनातीत पंडूर जी ॥
वासन भासन भावें दुर्लभ,
प्रापति तो अति दूर जी ॥ शी० ॥ ९ ॥

अर्थः—एम अनंतादानादिक केतां दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, सिद्धत्व प्रमुखगुण, हे प्रभुजी ! ताहरे प्रगट छे, ते वचनने गम्य नथी, पंडूर केतां मोहोटा छे, एहवा आत्मगुणनी वासन केतां श्रद्धा, भासन केतां जाणपणुं, ते पामवुं दुर्लभ छे, तो प्रगटपणे एहवी सिद्धता पामवी सिद्धतानी प्राप्ति थवी तेतो घणीज वेगळी छे ॥ इति नवम गाथार्थः ॥

सकल प्रत्यक्षपणे त्रिभुवनगुरु,
जाणुं तुझ गुण ग्राम जो ॥

वीजुं कांहिं न मागुं स्वामी,
एहि करो मुज काम जो ॥ शी० ॥ १० ॥

अर्थः—हे त्रिभुवनगुरो ! ताहरी गुणसंपदा अनंती ते सर्वे हुं प्रत्यक्षपणे जाणुं एहीज मागुं छुं, एहीज इच्छा छे, माहरे एहीज काम छे, जे ताहरी संपदा ते केवलीने प्रत्यक्ष छे, माटे केवल ज्ञान मागुं छुं. परंतु हे प्रभुजी ! हुं बीजुं कांहिं पण मागतो नथी ॥ १० ॥ इति दशम गाथार्थः ॥

एम अनंत प्रभुता सद्दहतां,
अर्चे जे प्रभु रूप जो ॥
देवचंद्र प्रभुता ते पामे,
परमानंद स्वरूप जो ॥ शी० ॥ ११ ॥

अर्थः—एम अनंती प्रभुनी प्रभुता, परमात्मता, सर्वप्रदेश निरावरणता अनंत पर्याय, निरावरणता सकलज्ञानादि गुण निरावरणता, तेने सद्दहतां समकित गुण प्रगटे, ते प्रभुना गुणनी बहु मान सहित प्रतीत करतां जे जीव श्रीशीतलनाथ प्रभुना योगें प्रभुने अर्चे, ते प्रभुने अर्चनानो अधिकार श्रीरायप्पसेणी सूत्रमध्यें कह्युं छे.

॥ अत्थेगइया वंदणवत्तियाए पूयणवत्तियाए सक्कारवत्तियाए सम्माणवत्तियाए सुअं सुणिस्सामो वागरणं पुच्छिस्सामो अच्छे गइया जिणभत्तिए धम्मोत्ति अत्थेगइया जीय मेयंति ॥ ए आचारांगनी टीकामां अर्थ कर्यो छे, तथा प्रभुजीनो योग न मळे तो प्रभुनी स्थापना ते पण प्रभु समान छे. जे

मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान छे, तेणें करी जणाय नहीं, तथा अवधि मनःपर्यवज्ञान ते यद्यपि इंद्रियोने आधीन नथी, तो पण ते रूपीभावना जाणंग छे, पण जीवस्वरूपने जाणी शके नहीं, जे माटें क्षयोपशमज्ञानें अव्याबाधनुं स्वरूप जाण्युं न जाय, पण जे जीव तुझ समान गुणना राय केतां स्वामी थया, तेहज परमात्मा, ए अव्याबाध गुणनुं स्वरूप जाणे, तथा भोगवे, बीजाने प्रगट नथी, केम के आत्मधर्म अतींद्रिय छे माटे तेहना भोगी सिद्ध भगवंत छे, बीजाथी ए भोगवाय नहीं ॥ ८ ॥ इति ॥

एम अनंत दानादिक निजगुण,
वचनातीत पंडूर जी ॥
वासन भासन भावें दुर्लभ,
प्रापति तो अति दूर जी ॥ शीo ॥ ९ ॥

अर्थः—एम अनंतादानादिक केतां दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, सिद्धत्व प्रमुखगुण, हे प्रभुजी ! ताहरे प्रगट छे, ते वचनने गम्य नथी, पंडूर केतां मोहोटा छे, एहवा आत्मगुणनी वासन केतां श्रद्धा, भासन केतां जाणपणुं, ते पामवुं दुर्लभ छे, तो प्रगटपणे एहवी सिद्धता पामवी सिद्धतानी प्राप्ति थवी तेतो घणीज वेगली छे ॥ इति नवम गाथार्थः ॥

सकल प्रत्यक्षपणे त्रिभुवनगुरु,
जाणुं तुझ गुण ग्राम जो ॥

बीजुं कांहिं न मागुं स्वामी,
एहि करो मुज काम जो ॥ शी० ॥ १० ॥

अर्थः—हे त्रिभुवनगुरो ! ताहरी गुणसंपदा अनंती ते सर्व हुं प्रत्यक्षपणे जाणुं एहीज मागुं छुं, एहीज इच्छा छे, माहरे एहीज काम छे, जे ताहरी संपदा ते केवलीने प्रत्यक्ष छे, माटे केवल ज्ञान मागुं छुं. परंतु हे प्रभुजी ! हुं बीजुं कांहिं पण मागनो नथी ॥ १० ॥ इति दशम गाथार्थः ॥

एम अनंत प्रभुता सद्दहतां,
अर्चे जे प्रभु रूप जो ॥
देवचंद्र प्रभुता ते पामे,
परमानंद स्वरूप जो ॥ शी० ॥ ११ ॥

अर्थः—एम अनंती प्रभुनी प्रभुता, परमात्मता, सर्वप्रदेश निरावरणता अनंत पर्याय, निरावरणता सकलज्ञानादि गुण निरावरणता, तेने सद्दहतां समकित गुण प्रगटे, ते प्रभुना गुणनी बहु मान सहित प्रतीत करतां जे जीव श्रीशीतलनाथ प्रभुना योगें प्रभुने अर्चे, ते प्रभुने अर्चवानो अधिकार श्रीरायप्पसेणी सूत्रमध्ये कयुं छे.

॥ अत्थेगइया वंदणवत्तियाए पूयणवत्तियाए सक्कारवत्तियाए सम्माणवत्तियाए गुज्झं सुणिस्सामो वागरणं पुच्छिस्सामो अच्छे गइणा जिणभत्तिए धम्मोत्ति अत्थेगइया जीय मेयंति ॥ ए आलावानी टीकामां अर्थ कर्यो छे, तथा प्रभुजीनो योग न मळे तो प्रभुनी स्थापना ते पण प्रभु समान छे. जे

[illegible] अरिहंतने [illegible] ॥ हियाए सुहाए निस्सेसाए [illegible] तेमाने वांदवानुं फल [illegible] अधिकारें महाव्रत [illegible] अनेक अधि- [illegible] मानो मोटो लाभ छे, [illegible] उपयोग देवो जे सूत्रें [illegible] छे. अने आपणो [illegible] थाय ते मोक्षहेतु छे. अने भावहिंसा ते हिंसा छे, तथा द्रव्यहिंसा ते भाव- हिंसान कारण छे, परन्तु हिंसा नहीं इहा श्रीभाष्यकारनुं वचन लखे छे ॥

[illegible] नयनजिओसिद्दियं ॥ तत्यो- [illegible] हिंसा ॥ १ ॥ नन्वेवं सति लोकस्यानन्त [illegible] हिंसाऽभावः संयतैरपि अहिंसाव्रतमिति [illegible]. माटे पांच थावर बाद- रना वहुलनाय मानुने पण आहार, विहार, वंदन, विनय, वैया वच्चादिक करता, अहिंसाव्रत केम रहे ? त्यां कहे छे. जीवा- कुले लोके अवश्यमेव [illegible] जीवांश्च घ्नन् कथं- हिंसको न स्यादिति [illegible] हिंसो, घायतोत्ति निच्छय साहुणो ॥ [illegible], नय जीव घणंति तो हिंसो ॥ १ ॥ [illegible] हिंसो, [illegible]ओ मओ अहिंस- रोव्व ॥ बाहिंतो नवि हिंसो, [illegible] जहा विज्जो ॥२॥ नहि [illegible] निश्चयमतेन हिंस्रः, न पि [illegible] हिंस्र [illegible] ॥ असुभो जो परिणामो, [illegible] हिंसा साओ [illegible] ॥ कोवि अवेक्खि

जनवा, जम्हाणे निसिया बज्जे ॥ १ ॥ असुभ परिणाम हेऊ, जीवाबाहो त्तितो मया हिंसा ॥ जस्स उ नसो निमित्तं, संतोविन तस्स सा हिंसा ॥ २ ॥ जीव वधो अशुभपरिणाम हेतुः तदा हिंसा यदि अशुभपरिणामहेतुर्न तदा हिंसा न इति ॥ सद्दाओ रइफला, नविय मोहस्स भावसुद्धाओ ॥ जह तह जीवाभावो, न सुद्धमणसोविहिंसाए ॥ इति ॥

आगमप्रमाणे द्रव्यहिंसा ते कारणरूप छे, ते विषयकषायना अर्थीने हिंसा छे, परंतु जिन गुणनुं बहुमान करनारने जिनपूजा काळे पुष्पादिकनी हिंसा ते हिंसानुं कारण नथी, श्रीभगवतीसूत्रे पण क्रियाने अधिकारें एमज कह्युं छे, वनस्पति हणवाना पच्चक्खाणीने पृथ्वी खोदतां थकां वनस्पति हणाय तो पच्चक्खाण भांगे नहीं, तो जिनपूजाएं जिनस्वरूप अवलंबन करतां [illegible] गुण निर्मल करे, गुणीने स्मरणें अनेक गुणी थया छे, [illegible] अनुमोदवा योग्य जिनभक्ति, रायप्पसेणीसूत्रे सूर्याभे [illegible] परंतु गौतमादिक श्रमणगणें दीठुं ते सज्झाय जेटलो लाभ हतो, तो ते स्थानकें बेठा रह्या, तेथी जिनभक्ति ते मोक्षसाधन छे, एम जे प्राणी जिनना रूपने अर्चे, पूजे, ते सर्वदेवमां चंद्रमा समान श्रीअरिहंत देव तेहनी प्रभुता पूर्णानंदमय संपदा पामे, एवुं परमानंदनुं [illegible] श्रीशीतलनाथ प्रभुनुं सेवन छे, ते सर्वजीव करो, [illegible] कर्त्ता पण देवचंद्र छे, तेणें पोतानुं नाम पण [illegible] शीतल प्रभु अनंत गुणी छे, परंतु [illegible] जाण्या, ते ते गुणनी स्तवना कर्त्ती ॥११॥ इति [illegible]

॥ अथ एकादश श्री श्रेयांसजिनस्तवनं ॥

॥प्राणी वाणी जिनतणी, तुमें धारो चित्त मझार रे॥ ए देशी॥

श्री श्रेयांस प्रभुतणो,
अति अद्भुत सहजानंद रे ॥
गुण एक विध त्रिक परिणम्यां,
एम गुण अनंतनो वृंद रे ॥
मुनि चंदजिणंद अमंद दिणंद परें,
नित्य दीपतां सुखकंद रे ॥१॥

अर्थः—श्रीश्रेयांस प्रभु परमेश्वर निष्पन्न निरावरण स्वस्वरूपभोगीनो अति केतां अत्यंत उत्कृष्ट अद्भुत केतां आश्चर्यकारी सहजानंद केतां अकृत्रिम सहज स्वभावनो आनंद छे. श्रीश्रेयांसप्रभुजी ते जीवद्रव्य छे, साधनरत्नत्रयी परिणमीने सिद्ध थया छे, ते सिद्धपणे असंख्यात प्रदेशी छे, अनंतगुणी छे, अनंतपर्यायी छे, ते प्रभुनो एक एक गुण ते त्रण त्रण परिणतिरूप छे, सर्वद्रव्यनं अर्थ क्रियाकारीपणुं ते गुणपरिणतियी छे, तेमध्यें असाधारणपणुं विशेषगुणनी मुख्यतायें छे, अने साधारण गुणनी परिणति पण कर्त्ताद्रव्य कर्त्ताने हाथ छे, कर्त्ता करे तो प्रवृत्ते, कर्त्ता न करे, तो न प्रवृत्ते पांच अकर्त्ता द्रव्यनी गुणपरिणति सदा परिणमे छे, ए रीत छे, अने जीव द्रव्यनी गुणपरिणति, सिद्ध अवस्थायें सदा प्रवर्त्ते छे, पण कारक चक्रना वर्त्तनयी प्रवृत्ते छे, तेमाटे आत्मद्रव्यना ज्ञाना-

दिक जे गुण छे, ते त्रिविधें परिणमे छे. ए रीतें त्रिविधता ते करण, कार्य, अने क्रिया, ते गुणनी तेहीज गुणमां छे, ए गुण परिणामनो कर्त्ता ते आत्मा छे, तिहां उपादानपणे प्रकृष्ट कारण ते करण अने ते करणनुं फल साध्य ते कार्य तथा ते करतारूप प्रवृत्ति ते क्रिया, कर्त्तानो व्यापार ते सिद्धअवस्थायें अभेदरूप छे, जेम ज्ञानगुण ते करण जाणवुं, अने ते ज्ञानगुणथी जे ज्ञेय पदार्थोनुं ज्ञान थाय ते एवुं साध्य फल छे माटे ए कार्य जाणवुं, तथा ते कार्य जाणवाने जे ज्ञाननी स्फुरणा एटले प्रवृत्ति ते क्रिया जाणवी, ए त्रणे अभेद छे, ए त्रिविधपरिणामें परिणम्या, एवा अनंतगुणना वृंद छे, ए श्रीश्रेयांस प्रभुना सर्वगुण व्यक्तपणे स्वकार्यताने करे छे ॥ उक्तं च विशेषावश्यके ॥ जं कज्ज कारणाइं, पज्जाया वत्थुणो जओ तेण ॥ अजेगलेग मया, तो कारण कज्ज भय-णेज्ज ॥ १ ॥ इति वचनात् ॥

एम कारण कार्य क्रियानी अभेदता पण छे, तथा भेदता पण छे, काळें अभेदता छे, सत्व, प्रमेयत्वें अभेदता छे, अने संज्ञा संख्या लक्षणें भेदता छे, माटे एवी व्याख्या छे ॥ मुनिचंद केतां मुनि जे त्रिकाल अविषमी तत्त्वरमणी तेमांहे चंद्रमासमान अथवा मुनिचंद जिणंद ते जिन सामान्यकेवळीमां चंद्रमा समान, वळी अमंद केतां देदीप्यमान दिणंद केतां सूर्य तेनी परें दीपतुं छे, तेज जेनुं तथा गुणवृंद केतां गुणनो समूह छे जेने एहवा श्री श्रेयांस प्रभु तेहना सर्व गुण व्यक्तपणे स्वकार्यने करे छे ॥ १ ॥

हवे आत्माना अनंता गुण छे, तेमांहें मुख्य गुण ते

पोताना दर्शनगुणें करीने निज केतां पोताना दरप केतां देखवा योग्य जे सर्व अस्तिकायनी सामान्यता, अस्तित्वं, वस्तुत्वं, द्रव्यत्वं, प्रमेयत्वादि, नित्यत्वाऽनित्यत्वादि, सामान्यपणे जे जगीश केतां संपदा एटले आत्माने विषे अनंती सत्त्व द्रव्यत्वादि सामान्यसंपदा छे, तेने दर्शनगुणें देखे, ते " दर्शनेन दरपभावानां दर्शनं करोति आत्मा " इहां आत्मा ते देखणहारो दर्शनगुणें करणभूतें देखवा योग्य जे पदार्थ, ते सर्वने देखे छे, एटले देखवुं ते कार्य, दर्शनगुण ते कारण, दर्शनगुणनी प्रवृत्ति ते क्रिया, देखणहारो आत्मा ते कर्त्ता, ए दर्शनगुणनुं त्रिविध परिणमन जाणवुं ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

> निजरम्यें रमण करो,
> प्रभु चारित्रें रमता राम रे ॥
> भोग्य अनंतने भोगवो,
> भोगे तेणें भोक्ता स्वाम रे ॥ मु० ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे चारित्रगुणनी त्रिविध परिणति कहे छे. हे प्रभुजी ! हे परमेश्वर ! हे परमानंद पूर्णानंदी ! तादृश अनंत आत्मधर्म ते तमने रम्य छे, रमवा योग्य छे, ते शुद्धात्मपरिणतिरूप निजरम्यविषे तमें रमण करो छो. चारित्रगुणें करीने एटले चारित्र गुण करणें स्वरम्यने विषे जे रमण ते रूपकार्य अने चरणगुण प्रवृत्तिरूप क्रिया तेने करो छो, तेमाटे हे प्रभुजी ! तमें रमता राम छो, पोताना स्वरूपमां रमता छो, तेथी स्वरूपरमणी स्वरूपानुभवी स्वरुपविश्रामी छोजी ॥

हवे भोगगुणनी विवेचना कहे छे. भोग्य कहेतां भोगववा योग्य जे प्रगट आत्मस्वरूप अनंतज्ञानादि गुण, तेहने तमें भोगगुणें करी भोगवो छो, ते केम ? जे भोगांतराय कर्मनो क्षय तमने प्रगट थयो, ते भोगगुण तेणें करीने तमें पोतानी भोग्ययोग्य जे अनंतात्म संपदा तेहने भोगवो छो, माटे हे स्वामिन् ! तमें भोक्ता छो, जे बीजाजीव क्षयोपशम भोगी पुद्गलादि अशुद्ध परिणामने भोगवे छे, तेनो अशुद्धभोक्ता छे, अने तमे शुद्ध भोक्ता छो, एटले भोगगुण करणें करीने निजभोक्तापणारूप कार्यने करो छो. भोगगुणनी प्रवृत्ति, ते क्रियाने कर्त्ते करीने छे. अत्ता सहावभोई, ते असहावाओ अत्तपरिणामा ॥ इति वाक्यात् ॥ माटे भोक्तागुणना स्वामी छो ॥३॥ इति तृतीय॥

देय दान नीत दीजते,
अतिदाता प्रभु स्वयमेव रे ॥
पात्र तुमें निज शक्तिना,
ग्राहक व्यापकमय देव रे ॥ मु० ॥ ४ ॥

अर्थः—हवे दानगुण, जे दानांतराय कर्मना क्षयथी प्रगट्यो छे, माटे ते दान गुण तथा लाभगुणनी विविधपरिणति कहे छे. इहां दान ते सिद्धतामां स्वगुणना प्रवर्तनने स्वकीय क्षायिक वीर्यनी सहकारिताए देवुं ते दान अने सहकारितानी प्राप्ति जे गुणने थई ते लाभ, ए रीतें दान तथा लाभ मानेल छे, देय कहेतां देवा योग्य जे गुण तेहने सहकार ते दान, ते दान नित्य कहेतां सदा दीजते थके हे परमेश्वर ! तुमें अति दाता छो, अनंतगुणने सहकाररूप अनन्त दान दीधो छो, स्वयमेव कहेतां पोतानी

पोताने आपो छो, एटले दानगुण ते कारण, अने दानगुणनी प्रवृत्ति ते क्रिया तथा सहकाररूप दान दीधुं ते कार्य, ए सर्वनो स्वामी आत्मा ते दाता छे, आत्माने ए शुद्ध दान छे, तथा शुद्ध लाभ छे, अने जे परभावनुं देवुं तथा लेवुं तेतो विभाव छे, ते आत्माने घटतो नथी, वळी हे स्वामी ! तुमें निज कहेतां पोतानी शक्ति अनंतगुणपर्यायरूप तेहना पात्र केतां आधार छो, तथा ते आत्मशक्तिना ग्राहक तुमें छो, अने ए आत्मशक्तिना व्यापक तन्मयतारूप अवस्थाने पण तमेंज छो ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

परिणामी कारज तणो,
कर्त्ता गुण करणें नाथ रे ॥
अक्रिय अक्षय स्थितिमयी,
निकलंक अनंती आथ रे ॥ मु० ॥ ५ ॥

अर्थः—वळी हे देव ! हे परमेश्वर ! तमारा अनेक अभिलाप्य तथा अनभिलाप्य गुण सर्व प्रगट्भाव थया, तेहनी त्रण परिणति कहे छे. पारिणामिकपणे जे अव्याबाधादिक अनंतु कार्य, तेहना कर्त्ता छो, गुणरूपकरणें करीने एटले गुण ते कारण अने ते करणनुं जे फल ते कार्य, तथा गुणनी प्रवृत्ति ते क्रिया, ए करण, कार्य, क्रियाना कर्त्ता हे नाथ ! तमें छो, ते तुमारुं सर्व पारिणामिकपणुं तेहना तुमेंज कर्त्ता छो, बीजा द्रव्यमां कर्त्तापणुं नथी. वळी हे प्रभुजी ! तमें अक्रिय छो. क्रिया ते चलयोगीपणे छे, अने सिद्ध तो अचल छे तेथी अक्रिय छो, वळी हे प्रभुजी ! तमें अक्षय स्थितिमयी छो,

सेवक साधनता वरे,
निजसंवर परिणति पाम रे ॥ मु० ॥ ७ ॥

अर्थः—एहवा प्रभुनी सेवनानुं जे फल थाय, ते कहे छे. प्रभु जे श्री श्रेयांसनाथनिष्पन्नतत्त्वी, निरामयी, निराव-रणी, तेहनी प्रभुता अनंतज्ञानमयी, सर्वसंवरी अनंतानंदरूप परमेश्वरता, असहायता, सर्वशक्ति निरावरणता, अनंतपर्याय स्वकीयकार्य कर्त्तापणारूप निःकर्मता, निःसंगता, प्रभुत्व, विभुत्व, ग्राहकत्व, व्यापकत्व, आधारत्व, कारकत्व, कारणत्व, कार्यत्व, इत्यादि प्रभुना एक एक प्रदेशें अनंतगुण पर्याय प्राग्-भाव परिणमन रूप स्वरूपसंपदाने संभारतां, चित्तमां स्मरण करतां, तथा गातां, ध्येनां, ध्यानयोगें ध्यावतां गुणनो ग्राम संग्रह करतां थकां, सेवक तत्त्वरुचि आत्मसिद्धतानो अर्थी ते निष्पन्न पर श्रवन बहुमानथी जीव अनादिनो बाधक, स्वरू-पपराङ्मुख थइ गयो छे, ते जीव साधनता ते आत्मस्वरूप निरावरण करवा रूप साधन अवस्था, उत्सर्ग अपवाद समकि-तथी मांडी अयोगी धर्म समयरूप गुणस्थानारोहण, दोषत्याग, गुणप्रागभाव अधिक गुणनी रुचि, पूर्ण तत्त्वनी ईहारूप साध-नावस्थाने पामे, ते निज कहेतां पोतानी संवरपरिणतिने पामी करीने एटले प्रभुगुणउपयोगें वर्त्ततो थको चेतना गुणीना गुणने अनुयायी थाय, तेवारें स्वरूपईहारूप दर्शनगुण परिणमे, तेथी पोतानी संवरपरिणतिने पामे, ते जीव तत्त्वताने सावे, अने साध्यरसीनी जे साधकता ते परमानंदनुं कारण छे ॥७॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥

प्रभु दीन्हें शुद्ध ज्ञान,
परमानन्द पूर्णानंद है ॥
देवचंद्र जिनराजना,
नित्य वंदो पद अरविंद है ॥ [illegible]

[illegible]

भावनिक्षेपाने अंते तदेवं भिन्नवस्तुषु विशेषतश्चिंत्यमानानां नामादीनां प्रधानेतरभावोदर्शितः सामान्यतः पुनश्चिंत्यमानानां सर्ववस्तुषु प्रत्येकं चतुर्णामप्यमीषां सद्भावः प्राप्यतएवेति दर्शयन्नाह ॥ अहवा वत्थुभिहाणं, नामं ठवणाय जो तयागारो॥ कारणयासेदव्वं, कज्जाय वन्नं तयं भावो ॥ १ ॥ ए गाथायें चार निक्षेपा एक वस्तुमां कह्या, तथा वली नामादि नयनें परस्पर विवादें मिथ्यात्वीपणुं पूज्यें कह्युं छे ॥ एवं विवयंति नया, मिच्छाभिनिवेसओ परोप्परओ ॥ इतिवचनात् ॥ वली पूज्यनुंज वचन छे जे, नानाइमेयसद्दत्थ, बुद्धिपरिणामभावओ नियमं ॥ जं वत्थुअत्थिलोए, त्त उपज्जायं भयं सव्वं ॥ १ ॥ इति ए रीतें नामादिक चारे निक्षेप ते वस्तुना स्वपर्याय छे, एम श्रद्धा करवी, ए निक्षेपानुं स्वरूप विस्तारें श्रीविशेषावश्यकमां कह्युं छे. तिहांथी ए गाथा लखी छे. ॥ इति प्रशस्तिः ॥

॥ पंथडो निहालुं रे बीजा जिन तणो रे ॥ ए देशी ॥

पूजना तो कीजें रे बारमा जिनतणी रे,
जसु प्रगट्यो पूज्य स्वभाव ॥
परकृतपूजा रे जे इच्छे नहीं रे,
साधक कारज दाव ॥ पू० ॥ १ ॥

अर्थः—हवे बारमा श्री वासुपूज्य स्वामीनी स्तवना करे छे. हे भव्य जीवो ! तमारे जो आत्माने सुखी करवानुं मन छे, तो बारमा जिन वीतराग श्रीवासुपूज्य ... पूजना कीजें, एटले सकलगुणनिरावरण, परमशरीरी, पर...

अयोगी, अभोगी, अलेशी, अभेदी, असहायी, अकषायी, अरूपी, शुद्धस्वरूपी जे सिद्ध, सकलपरभाव अभोगी, पुद्गलोपचाररहित एहवो पूज्यस्वभाव जेहनो प्रगट्यो छे, तेहनी पूजा कीजें, जे भक्तिना रागी नहीं, अने अभक्तिना द्वेषी नहीं, एहवा सर्वज्ञ तेहीज पूजवा योग्य छे ॥ उक्तं च आप्तमीमांसाया ॥ देवागमनभोयान, चामरादिविभूतयः ॥ मायाविष्वपि दृश्यते, अत स्त्वमसि नो महान् ॥ १ ॥ सूक्ष्मांतरितदूरार्था, प्रत्यक्षाः कस्यचित् यथा ॥ अनु मे तत्त्वतोज्ञान, मिति सर्वज्ञसंस्थितिः ॥ १ ॥ अइसय पाडिहेरा, सव्व कम्म उदयसंभुआ ॥ तेण न विम्हओ मे, विम्हआ वीयरागत्ते ॥ १ ॥

वली प्रभुनं उत्तमपणं कहे छे, जे एम्कृत देवना मनुष्य गुणरागी थका अनेक प्रकारनी भक्ति करता फरे छे, परंतु परमेश्वर, कोइना करा इच्छता नथी, इच्छादोष रहित छे, माटे परभावना संग, तथा परकृतपूजाने वांछता नथी, ते पूज्य जाणवा. अने साधक जे मोक्षना अर्थी, मार्गानुसारी, समकिती, देशविरति, संवेगपक्षी मुनिराज, तेहनुं कार्य, जे संपूर्णसिद्धता, तेहना हाथ वेनां उपाय छे, तेहीज निमित्त योगें अनंत सिद्ध नीपना, माटे पोतें पूजाना अवांछक, अने पूजे तेहने परमानंद पणानो नीपजे ॥ १ ॥ इति

द्रव्यथी पूजा रे कारण भावनुं रे,
भाव प्रशस्तने शुद्ध ॥
परम इष्ट वल्लभ त्रिभुवन धणी रे,
वासुपूज्य स्वयं बुद्ध ॥ पू० ॥ २ ॥

अर्थः—ते पूजाना बे भेद छे, एक द्रव्यपूजा, बीजी भावपूजा, तिहां न्हवण विलेपनादिक जे बाह्य उपचार, योग समारवाने करियें, ते द्रव्य पूजा जाणवी. तिहां अढार पापस्थानक छे, ते सर्व आत्माने दुःखहेतु छे, ते सर्व पलटाववाने पूजामां प्रशस्त राग करियें, ते आत्माने तज्जातीय तजवा योग्य जे कर्म ते कर्म निर्ज्जरवानी नीति छे, माटे जिनपूजा ते संवर छे, तेथी अवश्य करवा योग्य छे, तेमां बाह्यथी जे फूल, केसर प्रमुखनी पूजा ते द्रव्यरूप छे, ते भावपूजा जे गुणगुणी एकत्वता रूप तेहनुं कारण छे, माटे द्रव्यनिक्षेपो ते तेहनेज कहियें, के जे भावनुं कारण होय. हवे भावनिक्षेपें पूजा ते बे प्रकारनी छे. प्रथम प्रशस्तभावनिक्षेपें पूजन, बीजुं शुद्धभावनिक्षेपे पूजन तेहमां भाव ते आत्मानी परिणति, अने प्रशस्त ते गुणी ऊपर राग जाणवो ॥ उक्तं च ॥ गाथा ॥ अरिहंते सुपरागो, रागो सुमुणीसु पवयणेसु य ॥ ए सुपसत्थो रागो, इति वचनात् ॥ तथा चउसरणपयन्नामां कयुं छे ॥ सुकयाण राय समुप्पन्न, पुन्न पुलयं कुरु करालो ॥ इति वचनात् ॥ हवे प्रशस्तनुं स्वरूप लिखे छे. तेमां जे विषय परिग्रह उपर राग छे, तेथी तो कर्मबंध उपजे, अने अनुकंपा ते शातावेदनीनी हेतु छे, वेतो सर्वनिर्गुणी जीव उपर पण छे, तथा गुणी उपर अनुकंपा करवी, ते निंदवा गरहवा योग्य छे ॥ उक्तं च आवश्यके ॥ सुहिएसु अ दुहिएसु अ,जा मे असंजएसु अणुकंपा॥ रागेण व दोसेण व, तं निंदे तं च गरिहामि ॥ १ ॥ इति वाक्यात् ॥ तथा जे अरिहंतादि पंच परमेष्टी अने आगम, साधर्मिक उपर पक्षपात विना गुणीपणा माटे जे राग, ते प्रशस्त राग जाणवो. ते यद्यपि पुण्यबंधनो हेतु छे, तथापि

वचनाप ते परम केतां अत्यंत इष्ट केतां रलियामणा वल्लभ केतां वाल्हा लागे, ते प्रशस्तरागरूप भाव पूजा जाणवी ॥२॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

> अतिशय महिमा रे अति उपगारता रे,
> निर्मल प्रभु गुणराग ॥
> सुरमणि सुरघट सुरतरु तुच्छ ते रे,
> जिनरागी महाभाग ॥ पू० ॥ ३ ॥

अर्थः—वळी प्रशस्तरागीपणुं ओलखावे छे. जे श्री अरिहंत अतिशयना महिमा उपर अद्भुतता आश्चर्यता तथा आठ प्रातिहार्यनी विस्मयता इत्यादि देखीने अथवा सांभळीने जे राग उपजे, ते सर्व प्रशस्तराग जाणवो, तथा जगत्‌ना जीवोने महामोहां[illegible] [illegible] धर्मदेशना देईने विसरी गएलो जे आत्मधर्म, तेने [illegible] सर्व संदेह टाळे ए उपगार, भाव-आजीविकाना दातार, तत्त्वथी भूलें पड्या जीवोने तत्त्वना देखाडनार, एहवुं उपकारीपणुं श्रीअरिहंतनुं छे, ते उपकारीपणा उपर जे इच्छा, तथा निर्मल कर्म आवरणें रहित केवल ज्ञान, केवल दर्शन, वीतरागता, असंगता, स्वरूप भोगी प्रमुख गुण उपर राग ते पण प्रशस्त राग कहियें. वळी सुरमणि केतां कामकुंभ तथा सुरतरु केतां कल्पवृक्ष ते [illegible] तुच्छ भासे, केमके एनो इहलोकसुखना हेतु, तथा भावअशुद्धताना वधारवा वाळा छे, तेहने असार जाणीने तुच्छ गणे, अने श्रीअरिहंतनो राग ते परंपरायें आत्मसुखनो हेतु छे, आत्माना गुणनी वृद्धि करवानुं पुष्ट निमित्त छे, ते माटे श्री जिनराज, परमदयाल,

स्वगुणभोगी, माहागोप, परमोपकारी, माहारी तत्त्व संपादना उपदेशक, ते उपर जे जीवने साची ओलखाणें राग प्रगटे, ते जीव महाभाग्यवान्, तथा पवित्र जाणवा, जे जीव कामराग, दृष्टिराग, स्नेहरागनी भीड टालीने, श्रीपुरुषोत्तम, परमानंदी श्रीवासुपूज्य प्रभु उपर रागी थयो, तेने धन्य छे. ते महंत जीव, मोहोटा भाग्यनो धणी जाणवो, ए सर्व प्रशस्त रागभाव पूजा कही ॥ इति तृतीयगाथार्थः ॥ ३ ॥

> दर्शन ज्ञानादिकगुण आत्मना रे,
> प्रभु प्रभुता लयलीन ॥
> शुद्ध स्वरूपी रूपें तन्मयो रे,
> तसु आस्वादन पीन ॥ पू० ॥ ४ ॥

अर्थः—हवे शुद्धभावपूजा कहे छे, तिहां जे आत्माना क्षयोपशमभावी दर्शनगुण, तथा ज्ञानादिगुण, ते सर्व प्रभुनी प्रभुतायी लयलीन थया छे, वद्धमान श्रीअरिहंततुं छे, भासन पण अरिहंत गुणनी अनंततातुं छे, रमण श्री अरिहंत गुणना स्वरूप भासनतुं छे. अनुभव पण अरिहंत गुणना भासननो छे, एम जेटली आत्मशक्ति प्रगटी छे, ते सर्वअरिहंत गुणने अनुयायी करीने, तन्मयतारूप करे, ते शुद्धभाव पूजा जाणवी ते आवी रीतेः—प्रभु तनो निरवारभासनतुं आस्वादन, ते आनंदतायें मग्न रहेवुं, शुद्धस्वरूपी परमात्मा तेहनुंस्वरूप जे छे वस्तुधर्म, तेमध्ये तन्मयी थईने, तेना आस्वादने अनुभवें, पीन केतां पुष्ट रहे, ते भावथी भक्ति जाणवी, तथा वंदन नमनादिकते योग भक्ति जाणवी तथा प्रभु उपर इष्टना ते

राग भक्ति जाणवी. तथा हुं सहुथी मोटो माहरे अरिहंत परमेश्वर जेवो धणी छे, हुं मोक्षना मार्गने पाम्यो, अने पोताना आत्मगुणने प्रभुनी प्रभुताने अव्यापीपने वर्त्तावे, एहवो लीन थयो रहे, तेहने तत्त्वभक्तिवंत कहिएं. एहवा समकिति, देशविरति, सर्वविरति, जेपें गेनानी मूलपरिणति प्रभुतामां मेलवी छे. आत्मपरिणतिरूपजलसंगें प्रभुनी प्रभुताने रमावी रह्या छे, महानुभाव छे, ते शुद्धभावपूजा जाणवी ॥४॥ इति चतुर्थ गाथार्थ ॥

> शुद्धतत्त्व रस रंगी चेतना रे,
> पामे आत्मस्वभाव ॥
> आत्मालंबी निजगुण साधतो रे,
> प्रगटे पूज्यस्वभाव ॥ पू० ॥ ५ ॥

अर्थः—एम शुद्धनिर्मल तत्त्वी श्रीअरिहंतदेव सिद्ध भगवान् तेहनारसें रंगाणी थकी तेहना गुणनी भोगी जेवारे चेतना थयी, अन्य विकल्प टाळी अनुभवभावना सहित प्रभुस्वरूपे रसीली थइ तेवारे ते चेतना पोताना आत्मस्वभावने पामे, आत्मस्वभावरुचि, आत्मस्वभावोपयोगी, आत्मस्वभावरमनी, आत्मानुभवी थयो, एटले उपादानावलंबी अवस्था पामे; अने जेवारें ए भव्यजीव आत्मावलंबी थाय, तेवारें पोताना गुणने साधतो निपजावतो, सम्यक् दर्शनादिक गुणने प्रगट करतो, गुणस्थान क्रमें दोषनी हानी गुणप्राग्भाव स्वरूपएकत्व स्वरूपानुभवी थतो थको तल्लीनताने निपजावे पोतानो अनादिकालनो सत्तागतपूज्य स्वभावने प्रगट

राग भक्ति जाणवी. तथा हुं सदैवी मोटो माहरे अरिहंत परमेश्वर जेवो धणी छे, हुं मोक्षना मार्गने पाम्यो, अने पोताना आत्मगुणने प्रभुनी प्रभुताने अनुयायीपणे वर्त्तावे, एहवो लीन थयो रहे, तेहने तत्त्वभक्तिवंत कहिएं. एहवा समकिति, देशविरति, सर्वविरति, जेणें पोतानी मूलपरिणति प्रभुतामां मेलवी छे. आत्मपरिणतिरूपउत्संगे प्रभुनी प्रभुताने रमावी रह्या छे, महानुभाव छे, ते शुद्धभावपूजा जाणवी ॥४॥ इति चतुर्थ गाथार्थ ॥

शुद्धतत्त्व रस रंगी चेतना रे,
पामे आत्मस्वभाव ॥
आत्मालंबी निजगुण साधतो रे,
प्रगटे पूज्यस्वभाव ॥ पू० ॥ ५ ॥

अर्थः—एम शुद्धनिर्मल तत्त्वी श्रीअरिहंतदेव सिद्ध भगवान् तेहनासें रंगानी थकी तेहना गुणनी भोगी जेवारे चेतना थई, अने निर्विकल्प दशाई अनुभवभावना सहित प्रभुस्वरूपे रंगीली थई तेवारे ते चेतना पोताना आत्मस्वभावने पामे, आत्मस्वभावरुचि, आत्मस्वभावोपयोगी, आत्मस्वभावरमणी, आत्मानुभवी थयो, एहवे उपादानावलंबी अवस्था पामे; अने जेवारें ए उपादान आत्मावलंबी थाय, तेवारें पोताना गुणने साधतो निरावरणने, सम्यग् दर्शनादिक गुणने प्रगट करतो, शुक्लध्यान श्रेणें दोषनी हानी गुणनानुभाव स्वरूपस्वरूप स्वरूपानुभवी थतो थको सर्वसंवरने निरावादे पोतानो ज्ञानादिकगुणनो सहजानन्द स्वभावने प्रगट

भक्ति तेहीज सिद्धता नीपजाववानो पूर्ण उपाय छे ॥ ६ ॥
इति षष्ठ गाथार्थः ॥

> जिनवर पूजा रे ते निजपूजना रे,
> प्रगटे अन्वयशक्ति ॥
> परमानंद विलासी अनुभवे रे,
> देवचंद्र पद व्यक्ति ॥ पू० ॥ ७ ॥

अर्थः—जे जिनराजनी पूजा भक्ति करवी ते पोताना आत्मानी पूजना करवी छे, आत्मगुण वधारवा छे, आत्मसंपदानी पुष्टि करवी छे, जेमने जिनसेवनायकी पोताना अन्वयी गुण जे सहजज्ञानानंदिक अनंतशक्ति ते पोषे, प्रगटे, निरावरण थाय ते जीवपरमानंदनो विलासी थई, अनुभवे केतां भोगवे, सर्वदेवमां चंद्रमा समान जे पद परमात्मता, पूर्णता, निरावरणता, निरामयता, तत्त्वभोगता, स्वरूपानंदताख्य, तेहनी व्यक्ति केतां प्रगटता जे कर्मावरणे अनादिनी आवृत छे, ते कर्मक्षय थये अक्रिय, अनवच्छिन्नता, शक्ति प्रगटे, शुद्ध थाये, तेमाटे निश्चय जिननी भक्ति ते परमात्मता रूप आत्मसिद्धतानुं कारण छे, तेमाटे हे मोक्षार्थी जीवो तमे श्रीवीतराग अरिहंतनी पूजना ते विधि सहित निरभिलाषे तत्त्वसाधनार्थे करो, एहज उत्तम उपाय छे ॥ इति श्रीवासुपूज्यजिन० ॥

करे, एटले पहेलां हुं परमपूज्य अनंतगुणी छुं, ए निर्धाररूप सम्यक् दर्शन प्रगटे, स्याद्वादसत्तानुं भासन थाये, पछी जे सत्ता प्रगटी, तेहनो रमण अनुभवरूप चारित्रगुण प्रगटे, पछी निरावरण केवलज्ञान नीपजे, ए परमपूज्य श्रीअरिहंतने पूज-वाथी पोतानो पूज्यस्वभाव प्रगटे ॥ ५ ॥

> **आप अकर्त्ता सेवाथी हुवे रे,**
> **सेवक पूरणसिद्धि ॥**
> **निजधन न दिए पण आश्रित लहे रे,**
> **अक्षय अक्षर ऋद्धि ॥ पू० ॥ ६ ॥**

अर्थ—श्री वीतराग पोते परजीवना मोक्षना अकर्त्ता छे, केम जे परकर्त्तापणुं जीवद्रव्यनो धर्म नथी, तेमाटे पोते पर-जीवनी सिद्धिना अकर्त्ता छे, पण श्रीप्रभुजीनी सेवाथी सेवक जे भक्त, तेहने हुवे केतां थाय शुं थाय तो के संपूर्ण सिद्धता निपजे, निज केतां पोतानो धन जे अनंत ज्ञाना-दिकगुण ते प्रभु कोइ बीजाने आपता नथी, एटले कोइ पोतानो गुण बीजाने आपे नहीं, अने ते गुण पण पोताना द्रव्यने मुकी बीजामां वर्ते नहीं, अने कोइ द्रव्य कोइ द्र-व्यनो गुण ग्रहे पण नहीं, सर्व द्रव्य पोतें पोतानी सत्ताना स्वामी छे, तेमाटे अरिहंत पोते कांइ आपताज नथी परंतु जे अरिहंतने आश्रित सेवे, ते निश्चे अक्षय केतां जेहनो क्षय न थाय तथा जे विनाश न पामे, तथा अक्षर केतां स्वरवु नाशुं जेहमां नथी एवी अविनाशी अक्षर अनंत आत्मसंपदा पूर्णानंदादिक ऋद्धि लहे केतां पामे, माटे जिन-

भक्ति तेहीज सिद्धता नीपजववानो पूर्ण उपाय छे ॥ ६ ॥
इति षष्ठ गाथार्थः ॥

जिनवर पूजा रे ते निजपूजना रे,
प्रगटे अन्वयशक्ति ॥
परमानंद विलासी अनुभवे रे,
देवचंद्र पद व्यक्ति ॥ पू० ॥ ७ ॥

अर्थः—जे जिनराजनी पूजा भक्ति करवी ते पोताना आत्मानी पूजना करवी छे, आत्मगुण वधारवा छे, आत्मसंपदानी पुष्टि करवी छे, केमके जिनसेवनाथकी पोताना अन्वयी गुण जे सहजज्ञानानंदादिक अनंतशक्ति ते पोषे, प्रगटे, निराबाध भाव ते जीवपरमानंदनो विलासी थई, अनुभवे केतां भोगवे, सर्वदेवमां चंद्रमा समान जे पद परमात्मता, पूर्णता, निरावरणता, निरामयता, तत्त्वभोगता, स्वरूपानंदतारूप, तेहनी व्यक्ति केतां प्रगटता ते कर्मरोगे अनादिनी आवृत छे, ते कर्मक्षय थवे अक्रिय, अनवच्छिन्नता, शक्ति प्रगटे, शुद्ध थाये, तेमाटे निश्चय जिननी भक्ति ते परमात्मता रूप आत्मसिद्धतानुं कारण छे, तेमाटे हे मोक्षार्थी जीवो तमे धर्मी सम्यक् अरिहंतनी पूजना ते विधि सहित निरभिलाषे तत्त्वसाधनाये करो, एहज उत्तम उपाय छे ॥ इति श्रीवासुपूज्यजिन० ॥

करे, एटले पहेलां हुं परमपूज्य अनंतगुणी छुं, ए निर्धाररूप सम्यक् दर्शन प्रगटे, स्याद्वादसत्तानुं भासन थाये, पछी जे सत्ता प्रगटी, तेहनो रमण अनुभवरूप चारित्रगुण प्रगटे, पछी निरावरण केवलज्ञान नीपजे, ए परमपूज्य श्रीअरिहंतने पूजवाथी पोतानो पूज्यस्वभाव प्रगटे ॥ ५ ॥

आप अकर्त्ता सेवाथी हुवे रे,
सेवक पूरणसिद्धि ॥
निजधन न दिए पण आश्रित लहे रे,
अक्षय अक्षर ऋद्धि ॥ पू० ॥ ६ ॥

अर्थः—श्री वीतराग पोते परजीवना मोक्षना अकर्त्ता छे, केम जे परकर्त्तापणुं जीवद्रव्यनो धर्म नथी, तेमाटे पोते परजीवनी सिद्धिना अकर्त्ता छे, पण श्रीप्रभुजीनी सेवाथी सेवक जे भक्त, तेहने हुवे केतां थाय शुं थाय तो के संपूर्ण सिद्धता निपजे, निज केतां पोतानो धन जे अनंत ज्ञानादिकगुण ते प्रभु कोइ बीजाने आपता नथी, एटले कोइ पोतानो गुण बीजाने आपे नहीं, अने ते गुण पण पोताना द्रव्यने मुकी बीजांमां वर्त्ते नहीं, अने कोइ द्रव्य कोइ द्रव्यनो गुण ग्रहे पण नहीं, सर्व द्रव्य पोतें पोतानी सत्ताना स्वामी छे, तेमाटे अरिहंत पोते कांइ आपताज नथी परंतु जे अरिहंतने आश्रित सेवे, ते निश्चे अक्षय केतां जेहनो क्षय न थाय तथा जे विनाश न पामे, तथा अक्षर केतां खरवुं जरवुं जेहमां नथी एवी अविनाशी अक्षर अनंत आत्मसंपदा पूर्णानंदादिक ऋद्धि लहे केतां पामे, माटे जिन-

भक्ति तेहीज सिद्धता नीपजाववानो पूर्ण उपाय छे ॥ ६ ॥ इति षष्ठ गाथार्थः ॥

जिनवर पूजा रे ते निजपूजना रे,
प्रगटे अन्वयशक्ति ॥
परमानंद विलासी अनुभवे रे,
देवचंद्र पद व्यक्ति ॥ पू० ॥ ७ ॥

अर्थः—जे जिनराजनी पूजा भक्ति करवी ते पोताना आत्मानी पूजना करवी छे, आत्मगुण वधारवा छे, आत्मसंपदानी पुष्टि करवी छे, केमके जिनसेवनाथकी पोताना अन्वयी गुण जे सहजज्ञानानंदिक अनंतशक्ति ते पोषे, प्रगटे, निरावरण थाय ते जीवपरमानंदनो विलासी थई, अनुभवे केतां भोगवे, सर्वदेवमां चंद्रमा समान जे पद परमात्मता, पूर्णता, निरावरणता, निरामयता, तत्त्वभोगता, स्वरूपानंदतारूप, तेहनी व्यक्ति केतां प्रगटता जे कर्मावरणे अनादिनी आवृत छे, ते धर्मनुं रूप थवे अक्रिय, अनवच्छिन्नता, शक्ति प्रगटे, शुद्ध थावे, तेमाटे निश्चय जिननी भक्ति ते परमात्मता रूप आत्मसिद्धतानुं कारण छे, तेमाटे हे मोक्षार्थी जीवो तमे श्रीवीतराग अरिहंतनीपूजना ते विधि सहित निरभिलाषे तत्त्वसाधनारे करो, एहज उत्तम उपाय छे ॥ इति श्रीवासुपूज्यजिन० ॥

करे, एटले पहेलां हुं परमपूज्य अनंतगुणी छुं, ए निर्धाररूप सम्यक् दर्शन प्रगटे, स्याद्वादसत्तानुं भासन थाये, पछी जे सत्ता प्रगटी, तेहनो रमण अनुभवरूप चारित्रगुण प्रगटे, पछी निरावरण केवलज्ञान नीपजे, ए परमपूज्य श्रीअरिहंतने पूजवाथी पोतानो पूज्यस्वभाव प्रगटे ॥ ५ ॥

> आप अकर्त्ता सेवाथी हुवे रे,
> सेवक पूरणसिद्धि ॥
> निजधन न दिए पण आश्रित लहे रे,
> अक्षय अक्षर ऋद्धि ॥ पू० ॥ ६ ॥

अर्थः—श्री वीतराग पोते परजीवना मोक्षना अकर्त्ता छे, केम जे परकर्त्तापणुं जीवद्रव्यनो धर्म नथी, तेमाटे पोते परजीवनी सिद्धिना अकर्त्ता छे, पण श्रीप्रभुजीनी सेवाथी सेवक जे भक्त, तेहने हुवे केतां थाय शुं थाय तो के संपूर्ण सिद्धता निपजे, निज केतां पोतानो धन जे अनंत ज्ञानादिकगुण ते प्रभु कोइ बीजाने आपता नथी, एटले कोइ पोतानो गुण बीजाने आपे नहीं, अने ते गुण पण पोताना द्रव्यने मुकी बीजीमां वर्त्ते नहीं, अने कोइ द्रव्य कोइ द्रव्यनो गुण ग्रहे पण नहीं, सर्व द्रव्य पोर्ने पोतानी सत्ताना स्वामी छे, तेमाटे अरिहन पोते कांइ आपताज नथी परंतु जे अरिहंतने आश्रित सेवे, ते निश्चे अक्षय केतां जेहनो क्षय न थाय तथा जे विनाश न पामे, तथा अक्षर केतां खरवुं झरवुं जेहमां नथी एवी अविनाशी अक्षर अनंत आत्मसंपदा पूर्णानंदादिक ऋद्धि लहे केतां पामे, माटे जिन-

भक्ति तेहीज सिद्धना नीपजवानो पूर्ण उपाय छे ॥ ६ ॥
इति षष्ठ गाथार्थः ॥

जिनवर पूजा रे ते निजपूजना रे,
प्रगटे अन्वयशक्ति ॥
परमानंद विलासी अनुभवे रे,
देवचंद्र पद व्यक्ति ॥ पू० ॥ ७ ॥

अर्थः—जे जिनराजनी पूजा भक्ति करवी ते पोताना आत्मानी पूजना करवी छे, आत्मगुण वधारवा छे, आत्मसंपदानी पुष्टि करवी छे, एटले जिनसेवनाथकी पोताना अन्वयी गुण जे सहजज्ञानानंदिक अनंतशक्ति ते पोते, प्रगटे, निरावरण थाय ते जीवपरमानंदनो विलासी थई, अनुभवे एटलें भोगवे, सर्वदेवमां चंद्रमा समान जे पद परमात्मता, पूर्णता, निरावरणता, निरामयता, तत्त्वभोगता, स्वरूपानंदतारूप, तेहनी व्यक्ति एटलें प्रगटता जे कर्मावर्णे अनादिनी आवृत छे, ते कर्मक्षय थये अक्रिय, अनवच्छिन्नता, शक्ति प्रगटे, शुद्ध थाये, तेमाटे निष्पन्न जिननी भक्ति ते परमात्मता रूप आत्मसिद्धतानुं कारण छे, तेमाटे हे मोक्षार्थी जीवो तमे श्रीवीतराग अरिहंतनी पूजना ते विधि सहित निरभिलाषे तत्त्वसाधनार्थे करो, एहज उत्तम उपाय छे ॥ इति श्रीवासुपूज्यजिन० ॥

करे, एटले पहेलां हुं परमपूज्य अनंतगुणी छुं, ए निर्धाररूप सम्यक् दर्शन प्रगटे, स्याद्वादसत्तानुं भासन थाये, पछी जे सत्ता प्रगटी, तेहनो रमण अनुभवरूप चारित्रगुण प्रगटे, पछी निरावरण केवलज्ञान नीपजे, ए परमपूज्य श्रीअरिहंतने पूजवाथी पोतानो पूज्यस्वभाव प्रगटे ॥ ५ ॥

> आप अकर्त्ता सेवाथी हूवे रे,
> सेवक पूरणसिद्धि ॥
> निजधन न दिए पण आश्रित लहे रे,
> अक्षय अक्षर ऋद्धि ॥ पू० ॥ ६ ॥

अर्थः—श्री वीतराग पोते परजीवना मोक्षना अकर्त्ता छे, केम जे परकर्त्तापणुं जीवद्रव्यनो धर्म नथी, तेमाटे पोते परजीवनी सिद्धिना अकर्त्ता छे, पण श्रीप्रभुजीनी सेवाथी सेवक जे भक्त, तेहने हुवे केतां थाय शुं थाय तो के संपूर्ण सिद्धता निपजे, निज केतां पोतानो धन जे अनंत ज्ञानादिकगुण ते प्रभु कोइ बीजाने आपता नथी, एटले कोइ पोतानो गुण बीजाने आपे नहीं, अने ते गुण पण पोताना द्रव्यने मुकी बीजीमां वर्त्ते नहीं, अने कोइ द्रव्य कोइ द्रव्यनो गुण ग्रहे पण नहीं, सर्व द्रव्य पोतें पोतानी सत्ताना स्वामी छे, तेमाटे अरिहंत पोते कांइ आपताज नथी परंतु जे अरिहंतने आश्रित सेवे, ते निश्चे अक्षय केतां जेहनो क्षय न थाय तथा जे विनाश न पामे, तथा अक्षर केतां खरवुं जरवुं जेहमां नथी एवी अविनाशी अक्षर अनंत आत्मसंपदा पूर्णानंदादिक ऋद्धि लहे केतां पामे, माटे जिन-

भक्ति तेहीज सिद्धता नीपजववानो पूर्ण उपाय छे ॥ ६ ॥
इति षष्ठ गाथार्थः ॥

जिनवर पूजा रे ते निजपूजना रे,
प्रगटे अन्वयशक्ति ॥
परमानंद विलासी अनुभवे रे,
देवचंद्र पद व्यक्ति ॥ पू० ॥ ७ ॥

अर्थः—जे जिनराजनी पूजा भक्ति करवी ते पोताना आत्मानी पूजना करवी छे, आत्मगुण वधारवा छे, आत्मसंपदानी पुष्टि करवी छे, केमजे जिनसेवनाथकी पोताना अन्वयी गुण जे सहजज्ञानानंदिक अनंतशक्ति ते पोषे, प्रगटे, निरावरण थाय ते जीवपरमानंदनो विलासी थई, अनुभवे वेतां भोगवे, सर्वदेवमां चंद्रमा समान जे पद परमात्मता, पूर्णता, निरावरणता, निरामयता, तत्त्वभोगता, स्वरूपानंदतारूप, तेहनी व्यक्ति येनां प्रगटता जे कर्मावर्णे अनादिनी आवृत छे, ते कर्मक्षय थये अक्रिय, अनवच्छिन्नता, शक्ति प्रगटे, शुद्ध थाये, तेमाटे निश्चय जिननी भक्ति ते परमात्मता रूप आत्मसिद्धतानुं कारण छे, तेमाटे हे मोक्षार्थी जीवो तमे श्रीवीतराग अरिहंतनीपूजना ते विधि सहित निरभिलाषे तत्त्वसाधनार्थे करो, एहज उत्तम उपाय छे ॥ इति श्रीवासुपूज्यजिन० ॥

॥ अथ त्रयोदश श्री विमलजिन स्तवनं ।

॥ दासअरदास सीपरे करे जी ए देशी ॥

विमल जिन विमलता ताहरी जी,
अवर बीजे न कहाय ॥
लघु नदी जिम तिम लंघीयें जी,
स्वयंभुरमण न तराय ॥ वि० ॥ १ ॥

अर्थः—हवे श्री विमलनाथ प्रभुजीनी स्तुति कहे छे हे विमलजिन ! हे परमेश्वर ! ताहरी विमलता केनां तमारी निर्मलता केहेवी छे ? जे समस्तद्रव्यकर्म भावकर्मपराद्युजायीतादि दोष रहित पणे छे एहवी निर्मलता ते अवर केनां बीजा कोइ छद्मस्थ जीवे न कहाय केनां कहि शकाय नहीं, सिद्धस्वरूपस्य अनंतत्वात् वाचःक्रमपरिणतत्वात् आयुष्याल्पत्वात्, वेनवक्तुंनशक्यते केन इतिभाष्यवचनात्, तेमाटे कहेवाय नहीं तेना उपर दृष्टांत कहे छे. जेम लघु नदी केनां नान्ही नदी तेने जेम तेम लंघीयें. केनां उतरियें, पण असख्याता कोडी जोजननो स्वयंभुरमण नामा समुद्र, ते कोइ पामर जनथी तर्यो जाय नहीं, अने प्रभुना गुण तो स्वयंभू रमण समुद्रथी पण अनंतगुणा छे, ते सर्व वचने कह्यो जाय नहीं ॥ १ ॥

सयल पुढवी गिरि जल तरु जी,
कोइ तोले एक हथ्थ ॥

तेह पण तुझ गुणगण भणी जी,
भाखवा नहीं समरथ ॥ वि० ॥ २ ॥

अर्थः—तथा सपल केतां सर्व पृथ्वी, गिरि ते पर्वत, जल ते पाणी, तरु ते वनस्पति, ए सर्वने कोइ एक हाथें तोडे केतां उपाडे एहवो बलवंत पण ते बाल वीर्यवंत होय तेथी तेपण प्रभुजी! ताहरा गुणना गण केतां समूह तेने भाखवा केतां केहवाने समर्थ नहीं, कारण तेहमां बालवीर्यनी शक्ति छे, अने तमारुं निर्मल स्वरूप ते केवलज्ञानी क्षायकवीर्यवंतने गम्य छे, तेने पण सर्ववचनें गोचर थायज नहीं, तो बालवीर्यवंतथी केम केहेवाय! इति द्वितीय गाथार्थः ॥२॥

सर्व पुद्गल नभ धर्मना जी,
तेम अधर्म प्रदेश ॥
तास गुण धर्म पज्जव सहुजी,
तुझ गुण एकतणो लेश ॥ वि० ॥ ३ ॥

अर्थः—सर्व पुद्गल द्रव्य तथा नभ केतां आकाश द्रव्य, धर्म केतां धर्मास्तिकाय द्रव्य, तेमज अधर्मास्तिकायना प्रदेश, एटले ए पंचास्तिकायना प्रदेश अनंता तेहना गुण अनंता ते गुणधर्म नित्यत्वादि ते पण अनंता तेहना पर्याय वली तेहथी अनंतगुणा छे, ते सर्व मली पण हे प्रभुजी! ताहरो एक गुण ते केवलज्ञानरूप तेहनो लेशमात्र छे, केम जे ए सर्व पंचास्तिकायना भाव वर्तमान काले छे, अने केवली तो ए सर्वना अतीत, अनागत, अने वर्तमान, ए त्रणे कालना पर्याय उत्पाद,

अमूर्तत्व, चेतनत्व, सर्ववेत्तृत्वाप्रतिपातित्व निरावरणत्वादयः केवल ज्ञानस्वपर्यायाः एम केवल ज्ञानना स्वपर्याय अस्तिरुप अनंता छे, हवे केवल दर्शनादि अनंत गुणना जे पर्याय छे, ते सर्व केवलज्ञानमां नास्तिपणे रह्या छे, ते जेम केवल ज्ञान अस्तिनास्तिपणे छे, तेमज केवल दर्शन तथा चारित्र सुख, अरूपता, अगुरुलघुता, परमदानादि अनंतगुण, ते सर्व पोताना एक द्रव्य निभिन्न अनंतगुणनी नास्तिताने लीधायका रह्या छे, तेमज बीजा जीवद्रव्य तथा पुद्गलादिक अजीवद्रव्य ते सर्वना गुणपर्यायनी पण नास्तिताने लीधायका रह्या छे, एम स्वपर्दे नास्तिता तथा परपदेपण नास्तिता छे, ते सर्वनास्तितापणुं ते द्रव्यमांहेज अस्तितापणे रह्यो छे, नास्तिधर्मनी अस्तिता ते द्रव्यमांज छे, तिहां भावना कहे छे. जे जीवने विषे ज्ञानादिक गुणनी अस्तिता तेम वर्णादिकनी नास्तिता छे. ते वर्णादिक जीवमां नथी पण तेनी नास्तिता जीवमां रही छे, एम तत्त्वस्थापना कर्युं छे ॥ " यदि परनास्तिताजीवादिषु न स्यात् तदा जीवादीनां परत्वपरिणतिः स्यात् इति" माटे जीवमां अस्तिपणुं तथा नास्तिपणुं ते बेहु अस्तिपणे रह्या छे, उक्तं च विशेषावश्यके.

" द्विविधं हि वस्तुः स्वरूपं अस्तित्वं च नास्तित्वं च ततो ये यदास्तित्वेन प्रतिबद्धा स्ते तस्य स्वपर्यायाः येतु नास्तित्वेन संबद्धास्ते तस्य परपर्यायाः प्रतिपाद्यंते इति विभिन्नभेदस्थापनपरावेव स्वपरशब्दौ नत्वेकेषां तत्र सर्वथा संबंधनिराकरणपरौ अतो अस्तित्वेन संबद्धा इति परपर्याया उच्यंते न पुनः सर्वथा ते तत्र न संबद्धाः नास्तित्वेन तत्र संबद्धा इति वचनात् "

भुना दीहवो स्वभाव निर्मल थाय, माटे हे प्रभो ! ए कोइ अद्भुतता‍न केतां तत्र छे जे अरिहंत प्रभुनुं शुद्धस्वरूप चिंतवतां ध्यान करतां, पोतानुं स्वरूप नीपजे, एहिज आश्चर्य छे ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

तुम प्रभु तुम तारक विभूजी,
तुम समो अवर न कोय ॥
तुम दरिसणथकी हुं तर्योजी,
शुद्ध आलंबन होय ॥ वि ॥ ६ ॥

अर्थः—माटे हे श्रीविमलनाथ ! माहरा प्रभु अधिपति तुमेज छो, वळी मुजने संसारमांथी तारवा वाला परमनिर्यामक परमसामर्थ्यवंत तुमे छो, हे देव ! हे कृपासिंधु ! हे ज्ञानभानु तुम समान माहरे बीजो कोइ नथी त्रिभुवन मांहे तमेज दयाळ छो, हे जगत्‌वत्सल ! ! ताहरो दर्शन केतां देखवुं अथवा दर्शन ते समकित तेने पामे थके हुं तर्यो, संसार समुद्रने ओलंगी पार थयो, ईहां कारण पामे थके भक्तिना हर्षे उपचार वचन कयुं, एम शुद्ध निर्मळ स्वरूपनो आलंबी थयो थको हे नाथ ! ताहरा स्वरूपने अवलंबे, में माहारु स्वरूप ओलख्युं, ते ओलख्याथी स्वरूप रुचिउपनी; पछी स्वरूपविश्रामी अनुभवध्यानी थवे तर्यो ए भावी कार्यनो वर्त्तमानारोप नैगमनयनुं वचन छे ॥ ६ ॥ इति षष्ट गाथार्थः ॥

प्रभुतणी विमलता ओलखी जी,
जे करे थिरमन सेव ॥

अर्थः—हवे चौदमा प्रभु श्री अनंतनाथजीनी स्तवना करे छे, हे अनंतनाथजिनंद ताहरी केतां तुमारी मुरति केतां मुद्रा एटले आकार ते माहारा नयने केतां नेत्रने विषे वसी छे ! ते मुद्रा कहेवी छे तो के समता जे राग द्वेष रहितपणु ते रूप जे रस तेनो कंद छे. वली सहजे प्रयास विना अनुभव स्वभोगीपणुं ज्ञान तेहना रसनी लीन छे तन्मय छे ॥ १ ॥

भवदव हो प्रभु भवदव तापित जीव,
तेहने हो प्रभु तेहने अमृतघन समी जी ॥
मिथ्याविष हो प्रभु मिथ्या विषनीखीव,
हरवा हो प्रभु हरवा जांगुली मनरमी जी ॥२॥

अर्थः—वली भवजे चारगतिरूप संसार, ते रूप दव केतां दावानलना ताने करीने थर्डा रहेला आकुलित जीवोने परम शीतलता करवाने ताहरी मुरति ते अमृतना मेह समान छे, एटले संसारनो ताप तमारा दर्शनथी मटे छे, माटे. वली मिथ्यात्वरूपविष तेहनी खीव केतां धूमि-मुर्छा तेहने हरवाने जांगुली केतां गारुडीना मंत्र समान ताहरी मुर्ति छे ॥ २ ॥ इति० ॥

भाव हो प्रभु भावचिंतामणि एह,
आतम हो प्रभु आतम संपत्ति आपवा जी ॥
एहिज हो प्रभु एहिज शिवसुख गेह.
तत्त्व हो प्रभु तत्त्वालंबन थापवा जी ॥ ३ ॥

॥ अथ पंचदश श्री धर्मनाथजिन स्तवनं ॥

॥ सफल संसार अवतार ए हुं गणुं ए देशी ॥

धर्म जगनाथनो धर्म शुचि गाईयें,
आपणो आतमा तेहवो भावियें ॥
जाति जसु एकता तेह पलटे नहीं,
सुद्ध गुणपज्जवा वस्तु सत्तामयी ॥ १ ॥

अर्थः—हवे श्रीधर्मनाथ भगवाननी स्तुति करे छे अने आत्मद्रव्यने साधकना साधकपणानो उपयोग आपे छे. तिहां धर्म एहवे नामें पन्नरमा तीर्थंकर जगदुपकारी परमतत्त्वी जगत्ना नाथ, तेहने परमहितकारी धर्म प्रगट्यो छे, ते आत्म स्वभावी धर्म छे. ॥ उक्तं च ॥ संग्रहण्यां ॥ जो पुण आय सहावो, धम्मोपगिरस इच्चाति अथवा उभयरूपहेऊ इत्यादि पुनः भावधर्माधिकारे ॥जीवाणं भावधम्मो, कम्माभावेण जो खलु सहावो ॥इत्यादि॥ कम्मविम्मुक्कसरुवो, अगिंदियत्ता अत्थिज्जमेज्जाओ ॥ रुवादि विरहतो वा, अणाइ परिणाम भावाओ ॥ १ ॥ इत्यादिधर्मस्य स्वरूपं उक्तं ॥

एहवो श्रीधर्मनाथ स्वामीनो धर्म शुचि केतां पवित्र निरावरण परानुयायीपणारहित तेने गाइयें, वारंवार संभारीयें, तत्त्वप्रगटरूप ते स्तवियें, अने पोतानो आत्मापण तेहवोज भावीयें, केतां विचारीयें, एटले तेहवो धर्म नाथस्वामीनो धर्म छे, तेहवोज अमारो आत्मानो धर्म छे. तथा च सिद्धमा-

मूनटीकायां ॥ जारिससिद्धसहावो, तारिसभावो हु सव्व जी ॥
तेणं सिद्धंतरूइ, कायवा भवजीवेहिं ॥ १ ॥ नय
र्थटीकायां ॥ जीवोजीवत्वावस्थःसिद्धः इ
ते जीवनी पोतानी अवस्था छे, इहां के
संसारी सकर्मा, समोही, मिथ्यात्वी, अ
छो. तेहने कहे छे. जे वस्तुनी
वारें पलटे नही. माटे जीव द्रव्यत
दिनो कर्मावर्त्त थयो तो पण
तो मारी तथा श्रीधर्मनाथ
श्रीठाणांगमां कह्युं छे, एगेआ
अत्यंत मोहतीव्र अबोधमां
नयें तेवोज छे शुद्ध निर्मल
छे,
" शु
उत्ता प
एयं ॥ १

निल निरवयव वली एक अक्रियपणे,
सर्वगत तेह सामान्यभावे भणे ॥
तेहथी इतर सावयवविशेषता,
व्यक्तिभेदे पडे जेहनी भेदता ॥ २ ॥

अर्थः—हवे सामान्य विना वस्तुनी छती आवारता नहीं, अने विशेषविना कार्य नहीं, पर्यायप्रवृत्ति नहीं, ते माटे पंचास्तिकाय ते सामान्यस्वभाव अने विशेषस्वभावमयी छे, तिहां सामान्य स्वभावनुं लक्षण कहे छे. जे निल अविनाशी तथा निल होय, पण आकाशनी परें निरवयव होय, ते माटे कह्यो जे निरवयव जेहने विभाग अंश नथी, ते पण एकज पण जेमां वेपणो नहीं स्वजातिमां द्विधाभाव नहीं ते एक, पण जाणशरूप अथवा परस्पररूप क्रिया करे नहीं, तेथी अक्रिय, ते पण कोइपर्यायमां व्यापे, कोई पर्यायमां न व्यापे, तेहवा नहीं पण सर्व पर्यायमां व्यापेज ए लक्षण जेहमां छे, तेहने सर्वज्ञ देवें सामान्यस्वभाव कह्यो छे. ए सामान्यलक्षण श्रीविशेषावश्यकें कह्युं छे. एगं निच्चं निरवयव, मक्रियं सव्वगं च सामन्नं ॥ ए गाथाना व्याख्यानथी जाणवो. तिहां भावना जे नित्यपणुं सामान्य धर्म छे ते पदार्थमां नित्यपणुं सदा छे, ते नित्यपणाने पर्यायप्रदेशरूप अवयव नथी, ते नित्यपणुं सर्व एकज छे, अने जाणवादिक कोई क्रिया करतो नथी, तेथी अक्रिय छे, ते नित्यपणुं प्रदेशमां, गुणमां, पर्यायमां, सर्वमां व्यापक छे, तेथी सर्वगत छे, एटला लक्षणने पहोंचे, ते माटे नित्यपणुं ते सामान्य छे, एम अनित्यत्वादिक पण सर्व सा-

नित्य निरवयव वली एक अक्रियपणे,
सर्वगत तेह सामान्यभावे भणे ॥
तेहथी इतर सावयवविशेषता,
व्यक्तिभेदे पडे जेहनी भेदता ॥ २ ॥

अर्थः—हवे सामान्य विना वस्तुनी छती आवाउता नहीं, अने विशेषविना कार्य नहीं, पर्यायप्रवृत्ति नहीं, ते माटे पंचास्तिरूप ते सामान्यस्वभाव अने विशेषस्वभावमयी छे, तिहां सामान्य स्वभावनुं लक्षण कहे छे. जे नित्य अविनाशी तथा नित्य होय, पण आकाशनी परें निरवयव होय, ते माटे कह्यो जे निरवयव जेहने विभाग अंश नथी, ते पण एकत्व पण जेमां भेदपणो नहीं स्वजातिमां द्विधाभाव नहीं ते एक, पण आगमनरूप अथवा परस्पररूप क्रिया करे नहीं, तेथी अक्रिय, ते पण कोइपर्यायमां व्यापे, कोई पर्यायमां न व्यापे, तेहवा नहीं पण सर्व पर्यायमां व्यापेज ए लक्षण जेहमां छे, तेहने सर्वज्ञ देवे सामान्यस्वभाव कह्यो छे. ए सामान्यलक्षण अविशेषावयवकं वस्तु छे. एवं नित्यं निरवयवं, अक्रियं सव्वगं च सामन्नं ॥ ए गाथाना व्याख्यानथी जाणवो. तिहां भावना जे नित्यपणुं सामान्य धर्म छे ते पदार्थनां नित्यपणुं सदा छे, ते नित्यपणाने पर्यायप्रदेशरूप अवयव नथी, ते नित्यपणुं सर्व एकत्र छे, अने आगमनादिक कोइं क्रिया करतो नथी, तेथी अक्रिय छे, ते नित्यपणुं प्रदेशमां, गुणमां, पर्यायमां, सर्वमां व्यापक छे, तेथी सर्वगत छे, एटला लक्षणने पहोंचे, ते माटे नित्यपणुं ते सामान्य छे, एम अनित्यत्वादिक पण सर्व सा-

पोतानी ऋद्धिने मूकता नथी, ते द्रव्यमां पोतानी ऋद्धिथी त्रीजो अस्तिस्वभाव कहियें.

४ चोथो भेदस्वभाव ते कार्यगत छे, एटले जे ज्ञानादिक गुण ते सर्व पोता पोताना कार्यने करे छे. परंतु एकगुण ते बीजा गुणना कार्यने करतो नथी, ज्ञान ते जाणवारूप कार्यने करे छे, दर्शन, ते देखवारूप कार्यने करे छे, तथा चारित्र ते रमणतारूप कार्यने करे छे, भोगगुण ते भोग्यने करे छे, इत्यादिक कार्यना भेदें द्रव्यमां चोथो भेदस्वभावपणुं छे.

५ पांचमो अभिलाप्य स्वभाव छे, ते वचनथी कहि शकाय वेहवा पण आत्मद्रव्यमां अनंता धर्म छे, जे भाव श्रुतज्ञाने करी जणाय माटे श्रुतज्ञाननी शक्तिपण अभिलाप्य भाव हीम छे, ते पांचमो स्वभाव छे.

६ छट्ठो सर्व द्रव्यमां पर्यायनी परावर्त्तिता केतां पलटणता छे, ते भव्य स्वभावकहियें. ए छ स्वभाव, द्रव्यमां, गुणमां, पर्यायमां छे, माटे ए छने सामान्यस्वभाव…नी रे॥ इति ॥ ए ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥ …अथजी स्वकृतद्रव्यगुणपर्यायना क्षेत्र गुणभा… तिहांथी जोई लेवा ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ

नाम…
धर्म प्रागभावता सकल गुण शुद्धता,
भोग्यता कर्तृता रमण परिणामता ॥
शुद्ध स्वप्रदेशता तत्वचैतन्यता,
व्याप्य व्यापक तथा ग्राह्य ग्राहकता ॥ ५ ॥

जइवि पर भावथी हुं भवोदधि वस्यो,
परतणो संग संसारताये ग्रस्यो ॥ ६ ॥

अर्थः—हवे एहवी अनंत गुण निर्मलता प्रभुजीने ले रीतें नीपनी, ते रीत कहे छे, हे देव, हे परमेश्वर ! तुमे पुद्गलादिकनो संग सर्वथा परिहार केतां त्याग कर्यो, तेहथी निज केतां पोतानुं परमपद अव्याबाधानंदरूप चिद्रूपावस्थान-रूप लयुं. केतां पाम्यो माटे तमे शुद्ध केतां निर्मल आत्मिक केतां जे आत्म द्रव्यनो आनंद अव्याबाधादिकजे संपत्तुं केतां लावो अने हे प्रभुजी ! जइवि केतां जो पण हुं परभावथी केतां परभाव निमित्त पामीने परभावरूप परणमीने, वर्त्तमान परानुयायी भवो-दधि केतां भवसमुद्रने विषे वस्यो छुं, भवनिवासी थयो छुं, तेथी पुद्गलादिकने संगे संसारता भावथी नवुं नवुं अव्यवसायीपणुं पामीने द्रव्यथी धारणतिरूप संसारमां संसरवापणे करीने पृ माहारो आत्मा ग्रस्यो छे. एटले ए संसारे मुझने ग्रास करी लीधो छे, माटे हे देव ! तुमे असंगी, हुं संगी, तुमे मुक्त; हुं बद्ध, तुमे अकर्मा, हुं कर्माश्रित तुमे स्वरूपभोगी, हुं पुद्गल-भोगी, तुमे स्वगुणपरिणामि, हुं पुद्गलाश्रित रागद्वेष परिणामि, तेथी हे प्रभु ! माहारे तो माहरी भूलथी कोइक नवुं जे सत्तामां कर्त्तापणामां, परिणामिकतामां न हतो ते नीपनो, ए अशुद्धकर्त्तापणुं में कर्युं, तेहथी स्वगुण आवरी ने पुद्गलनो ग्राहक थयो, ते पुद्गलने लेवाथी माहरो आत्मा पुद्गलभोगी थयो, एटले ताहरे माहरे अंतर पडी गयो, तेथी हुं संसारी छुं अने तमे सिद्ध ध्येय छो, इति षष्ट गाथार्थः ॥ ६ ॥

तेवी एने निवारीयें, तो जावे तेवारे ए माहरो आत्मा स्वरूपावस्थित थाय, एम विचारी तेहनो उपाय चिंतवे छे. जे ए संसारी आत्मा परानुगत थइ रह्यो छे, तेहने जो हमणां स्वरूपथी जोडीए, तो टकी शके नही, अने परविजातिथी जोडयो थको बंधने वधारे छे, माटे परस्वजाति जीव जे अमोही, शुद्धज्ञानी तेथी जोडीयें, तो स्वजाति स्वरूप रंगी थाय. वळी अरिहंतनुं स्वरूप तथा आपणा आत्मानुं स्वरूप तुल्य छे, तेथी तेहना स्वरूपें रसिक थाय, तो पछी कर्मे आवर्यो पण, आत्मस्वरूपनी रुचि उपजे, ते रुचियी पोताना स्वरूपने सर्दहे, जाणे, रमे, उद्यम करे, परभाव तजे ए अनुक्रमथी संपूर्ण स्वरूप पामे, तेमाटे परमात्मा प्रभु श्रीधर्मनाथजीना भक्तिनो रंगी थइने शुद्ध कारणने रंगे आत्मा तत्त्वपरिणतिमां मग्न थाय, पोतानुं आत्मस्वरूप जोवे, ध्यावे, संभारे तथा तेहनेज ग्रहण करवाना यत्न करे, एवी रीतें जेवारें आत्मानो ग्राहक थाय, तेवारें अनादिनी परग्राहकता तजे, केम जे आत्मस्वरूपनो ग्राहक थयो, ते परभावने ग्रहे नहीं, तेहथी आत्मपरिणति आत्मधर्में ग्राहक थइ ते कर्मादिक न ग्रहे तेने संवरपरिणति कहियें, सर्वतत्त्वभोगी थये, परभोगीपणुं टळे, तेवारें आत्माने भोगवे ॥ ८ ॥

शुद्ध निःप्रयास निजभाव भोगी यदा,
आत्मक्षेत्रे नही अन्य रक्षण तदा ।
एक असहाय निस्संग निर्द्वंद्वता,
शक्ति उत्सर्गनी होय सहु व्यक्तता ॥ ९ ॥

अर्थः—ज्यारें शुद्ध पुद्गल संगरहित निःप्रयास निजभाव केतां आत्मभावनो भोगी थयो, त्यारें आत्मप्रदेशें अन्य केतां पुद्गलकर्म तथा रागादिकनुं रक्षण केनां राखवो नथी, एटले स्वरूप ग्राहक चेतनानुं वीर्य थाये, त्यारे पुद्गल कर्म आत्मप्रदेशें संबंधीपणे रहे नहीं, सर्व पुद्गलशरीरने आत्मा निःकर्मा थाय, त्यारे एक सर्वसंग रहित, असहायी, निर्द्वंद्व उत्सर्गनी शक्ति सहित व्यक्तता केतां प्रगटता निरावरणपणुं पामे ॥
॥ इति नवम गाथार्थः ॥ ९ ॥

तेणें मुझ आतमा तुझथकी नीपजे,
माहरी संपदा सकल मुझ संपजे ॥
तेणें मन मंदिरे धर्म प्रभु ध्याइयें,
परमदेवचंद्र निज सिद्धि सुख पाइयें ॥ १० ॥

अर्थः—तेथी हे देव हे श्रीवीतराग ! तुमारें निमित्ते माहारो तत्त्व नीपजे, बीजो कोइ उपाय देखातो नथी, माहरा आत्मानुं सिद्धपणुं ते ताहारा स्वरूपने अवलंबे नीपजे, माहरो अनंतगुणपर्यायरूप स्वकर्त्तापणुं स्वभोक्तापणुं स्वरूप ऐश्वर्य सर्व जे मोहाधीन कर्मावृत्त छे, ते मने संपजे, एटले हु माहारी अरूपी सत्तागत तत्त्वसंपदानो धणी तथा भोगी, अविनाशीपणे थाऊं, ए प्रभुजीनो परम उपकार जाणुं, ते कारणे मनमंदिरने विषे श्रीधर्मनाथ प्रभुने ध्याइएं, क्षण एक बीजी उपाधिचिंतविएं नहीं, ए प्रभुना गुण तथा उपगारनुं बहुमाने ध्यान करियें, तत्त्व साधकने एहिज आधार छे, तेवारे परम उत्कृष्ट देव जे स्वरूपरमणी मुनि तेहमां चंद्रमा समान जे

परमात्मपदरूप निज केतां पोतानुं सिद्धि केतां निष्पन्नसुख, अव्याबाधादिक तेने पाइयें केतां पामियें, एहीज मोक्षनो उपाय छे, तेमाटे श्रीअरिहंतनुं सेवन निरवछिन्नपणे करवुं ॥१०॥
॥ इति श्री धर्मजिन स्तवनं संपूर्णम् ॥

॥ अथ षोडश श्री शांतिजिन स्तवनं ॥

॥ आंखडीयें में आज सेत्रुंजो दीठो रे ॥ ए देशी ॥

जगतदिवाकर जगतकृपानिधि,
वाहाला मारा समवसरणमां बेठा रे ॥
चउमुख चउविह धर्म प्रकाशे,
ते में नयणें दीठा रे ॥
भविक जन हरखो रे ॥
निरखी शांति जिणंद ॥ भ० ॥
उपशम रसनो कंद ॥
नहीं इण सरखो रे ॥ ए आंकणी ॥१॥

अर्थः—हवे सोलमा जिन श्रीशांतिनाथ प्रभुनी स्तवना करे छे. ते प्रभु केहवा छे ? जगत्ने विषे दिवाकर केतां सूर्यनी परें ज्ञानेकरी उद्योतना करनार तथा कृपाना निधि एहवा प्रभुने मुझने परमवल्लभ छे. समवसरणमां विराजमान थका चार मुखे करी चार प्रकारना धर्मने प्रकाशे केतां उपदेश करता थका, एवा तीर्थंकर देव श्रीशांतिनाथ प्रभु ते में

थापना करी छे, तेमाटे ए संग्रहनय अरिहंत सिद्धरूप स्थापना छे.

३ अरिहंतना आकारने वंदन नमनादि सर्व व्यवहार श्री अरिहंतनो थाय छे, तेहनुं कारणपणुं ए थापनामां छे, ते व्यवहारनय थापना कहियें.

४ ए प्रतिमारूप थापना देखी, सर्व भव्यने बुद्धिनो विकल्प एहवो उपजे छे, के ए श्रीअरिहंतजी छे ते विकल्पेंज स्थापना करी छे. ते ऋजुसूत्रनय स्थापना छे.

५ अरिहंतसिद्ध एहवो शब्द "इदंप्रकृतिमत्यपसिद्धं" इहां प्रवर्त्ते छे, ते शब्दनय स्थापना जाणवी.

६ अरिहंतना पर्याय वीतराग सर्वज्ञ तीर्थंकर तारक जिन पारंगत जिन पारंगत इत्यादिक सर्व पर्यायनी प्रवृत्ति पण स्थापना मध्ये छे, ते समभिरूढनय स्थापना थइ परंतु केवलज्ञान केवलदर्शनादि गुण [illegible] ते धर्म, स्थापनामां नथी माटे एवंभूतनयनो धर्म. ते ए स्थापनामां नथी, तेथी ए [illegible] पेनां थापना ते सर्व पेनां निरपराना. अरिहंत, सिद्धारूप ते एह केनां छ नये छे, एक एवंभूतनये नथी. तेमाटे एवंभूतनय ते श्रीअरिहंत सिद्धने विशेष छे. तेमाटे [illegible] अरिहंत मध्ये पण छ नय छे. इहां स्थापना निक्षेपमां श्री [illegible] आदिना सात नय कह्या छे, अने इहां छ नय कह्या ते उपचार भावनाये कह्या छे. समभिरूढनुं लक्षण, [illegible] छे, जे लक्षण इहां घटे छे, तेमाटे ए छ नय कह्या.

हवे ए श्री जिनप्रतिमारूप स्थापना ने व्याख्ये, तेम-

विरति, सर्वविरतिने मोक्षसाधननुं निमित्त कारण छे, ते निमित्त कारण मान नये छे. ने कारणनो धर्म कर्त्ताने वश छे. ते निमित्तकारणपणु मान नय छे, ने कहे छे.

१ पहेलो नगमानयथी जीवने ए जिनप्रतिमा दीठे अरिहंतन स्मरण थाय छे, अथवा जिनवंदने जीवनी सन्मुखता थाय छे. तेथांर सन्मुखतानो ने निमित्त ते नेगमनय निमित्त कारणपणु छे.

२ जिन प्रतिमा दीठे सत्र गुणनो संग्रह थाय छे, साधकतानि चेतनादि सत्तनो संग्रह ने सत्तनी अद्भुततानें सन्मुख थाय छे, ने संग्रहनय निमित्त.

३ वंदन नमनादिक साधक व्यवहारन निमित्त ते व्यवहारनय निमित्त.

४ तत्त्वईहारूप उपयोग समरवाना निमित्त ते ऋजुसूत्रनय निमित्त.

५ संपूर्ण अरिहंतपणाना उपयोगें जे उपादान ए निमित्तें तत्त्वसाधने परिणम्यो, ते शब्दनय, थापनानो निमित्त छे, समकिती प्रमुखने एहवो छे.

६ अनेक रीते चेतनाना वीर्यनी परिणति, सर्वसाधनताने सन्मुख थइ ते समभिरूढनय स्थापनानुं निमित्त कारणपणुं जाणवुं.

७ ए स्थापनानुं कारण पामी, तत्त्वरुचि तत्त्वरमणी थइने जे शुद्ध शुक्लध्यानमां परिणमे ते संपूर्ण निमित्त कारणता पामीने, उपादाननी पूर्ण कारणता नीपनी, ते एवंभूतनय निमित्त

कारणपणुं छे, एटले निमित्त कारणनो ए धर्म छे
दानने कारणपणे पमाडे, अने उपादान कारण
नीपजे. ए रीत छे.

वेली जिनप्रतिमा ते मोक्षनुं निमित्त कारण छे
नित्त सात नये छे. तेहमां शय्यंभवादिकने शब्द
कारण थयुं, अने पुष्पचूलिने व्यवहारनय सीम,
कारणपणुं थाय. तथा मार्गानुसारी मनकेतिनी अ
जे योगदृष्टि समुच्चयमां कही छे. तेमांनी आदिनी
बालने ऋजुसूत्रनय सीम. निमित्त कारणपणुं थाय छे
पुष्पाढ्यादिकने ए जिनप्रतिमा संपूर्ण एवंभूतनये
रूप थइ देखाय छे. तेवारे इहां भावनायें ए थयुं
पणाने विषे संपूर्ण सात नयरूप निमित्त कारणना छे.
कार्यनो कर्त्ता जिहां सुधी एहने नीपजावे, तेटलो
वेली ए स्थापना ते सप्तनय केनां साते नयें करी कारण
केतां निमित्त कारणपणानुं स्थानक छे. ते थापना भीजा
पदना मूल तो द्रव्य अने भाव ए बे निक्षेपावंत छे,
निमित्त कारणना चार निक्षेपा माननय संयुक्त छे. उक्तं
॥ निमित्तस्यापि सप्तकारणत्वनय प्रकारेण निमित्तस्य द्वैवि
उपचारात् ॥ नयोपादानस्यापि सप्तकारणत्वं नयोपदेशा
" नो अमिहाणमयं " इति वचनात् ॥ नाम्निनएहि निह
सुत्तं जन्थोय जिनएइ किंचि ॥ आमज्ज सोयारं, नये नय
विसारओ हुज्ञा ॥ १ ॥ इति ॥ माटे निमित्तपणे स्थापना केना
जिनप्रतिमा अने जिनजी केना श्रीअरिहंत देह समान केनां
तुल्यत्व छे. एटले विचरता अरिहंत तथा तेमनी
ति, ते देह समान केनां बरोबर छे

॥ गाथा ॥ आगारोमिप्पाओ वुद्धिकिरियाफलं
जह विसइ ठवणाए, न तहा नामे न दविहे
आगारोविसयमई, सद्दत्थुकिरियामिहाणाइ ॥ आ
अणगागारा तया नत्थि ॥ २ ॥ इत्यादि तेमाटे
थापना ए बे निक्षेपा उपगारी छे, अने मोक्षसाध
निर्जरा करवाने तो वंदकनो भाव जे छे ते महत्त्वे
श्रीअरिहंतनो भावनिक्षेपो तो श्री अरिहंतने विशे
जो परजीवने तारे तो कोइ जीवने संसारमां रहेवुं
तेनो थातो नथी, परंतु आपणो भाव अरिहंतालंबने
तो मोक्षमार्ग लहियें. तेमाटे प्रभुनी थापना तथा
निमित्तथी पण साधकनो भाव सफरे, तेथी नाम तथा
ए बेउ उपगारी छे, वळीसमवसरणमां विराजमान श्रीज
तेहवुं पण नाम तथा आकार, सर्व जीवने उपगारी प
तेहीज छद्मस्थने ग्राह्य छे, अवलंबियें तेमाटे नाम
थापना प्रमाण छे, निमित्तालंबी रूपी ग्राहकने श्री
थापना ते पुष्ट निमित्त छे ॥ इति षष्ट गाथार्थः ॥ ६

ठवणा समोसरणे जिनसेंति ॥ वा० ॥
जो अभेदता वाधी रे ॥
ए आत्माना स्वस्वभावगुण,
व्यक्तयोग्यता साधी रे ॥ भ० ॥ ७ ॥

अर्थः—ते माटे ठवणा समोसरणें एटले एहवो समोस
रण तो श्री जिनराज विचरता हता ते वारें तो ए वाहो
जीव, कोइ गर्भसंसारमां हतो, ते हवां ...

सार्थकपणुं थयुं एहवा हर्षसहित देवचंद्रनामा मुनि कहे छे, जे माहारा मननो जे मनोरथ हतो, ते सकल केतां संपूर्ण-पणे सीधो केतां सिद्ध थयो ॥ ८ ॥ इति षोडश श्री शांतिजिन स्तवनं संपूर्ण ॥

॥ अथ सप्तदश श्री कुंथुजिन स्तवनं ॥

॥ चरम जिणेसरु ॥ ए देशी ॥

समवसरण बेसी करी रे,
बारह परषद मांहे ॥
वस्तुस्वरूप प्रकाशता रे,
करुणा कर जगनाहो रे, कुंथु जिने सरू ॥१॥
निर्मल तुज मुख वाणी रे,
जे श्रवणें सुणे, तेहिज गुणमणिखाणी रे,
॥ कुं० ॥ २ ॥ ए आंकणी ॥

अर्थः—हवे सतरमा श्रीकुंथुनाथजीनी स्तवना करे छे, जे श्रीकुंथुनाथजी समवसरणमां त्रिगडे बेसीने बारह पर्षदा मध्यें वस्तु जे [illegible] द्रव्य तेहनां मूलस्वरूपने प्रकाशता, एटले जीवस्वरूपने जीवपणे, [illegible] रूपने अजीवपणे, उपादानकारणने उपादानपणे [illegible] मित्तपणे, शुद्धकार्यने शुद्धकार्यपणे, [illegible] ते कारणरूप तथा [illegible] अने भाव साधन परिणति ते [illegible] ते कार्यरूप [illegible] य तेहिज

सार्थकपणुं थयुं एहवा हर्षसहित देवचंद्रनामा मुनि कहे छे, जे माहरा मननो जे मनोरथ हतो, ते सफल केतां संपूर्णपने कीधो केनां सिद्ध थयो ॥ ८ ॥ इति षोडश श्री शांतिजिन स्तवनं संपूर्ण ॥

॥ अथ सप्तदश श्री कुंथुजिन स्तवनं ॥

॥ परम जिणेसरू ॥ ए देशी ॥

समवसरण बेसी करी रे,
बारह परषद मांहे ॥
वस्तुस्वरूप प्रकाशता रे,
करुणा कर जगनाहो रे, कुंथु जिने सरू ॥१॥
निर्मल तुज मुख वाणी रे,
जे श्रवणें सुणे, तेहिज गुणमणिखाणी रे,
॥ कुं० ॥ २ ॥ ए आंकणी ॥

अर्थः—हवे सत्तरमा श्रीकुंथुनाथजीनी स्तवना करे छे, जे श्रीकुंथुनाथजी समवसरणमां विराजे बेसीने बारह पर्षदा मध्ये वस्तु जे छ द्रव्य तेहनां मूलस्वरूपने प्रकाशता, एटले जीवस्वरूपने जीवपने, अजीवस्वरूपने अजीवपने, उपादानकारणने उपादानपने निमित्तकारणने निमित्तपने, शुद्धकार्यने शुद्धकार्यपने, उपदेश देता तथा द्रव्यथी शुभपरिणति ते कारणरूप तथा भावथी शुभपरिणति ते कार्यरूप अने भाव साधन परिणति ते कारणरूप तथा भावसिद्ध परिणति ते कार्यरूप उपादेय तेहिज

करवो. तेहनी रुचिएं रेहेवुं एहज साधन छे, एहवो उपदेश-करता तथा करुणाकर केतां कृपाना करणहार जगत्रयना नाथ, एहवा श्रीकुंथुनाथ स्वामी, तेहना मुखनी निर्मल वाणी, उपदेशध्वनि, ते जे प्राणी श्रवणे सुणे, तेहिज प्राणी, गुणरूप-मणि रत्ननी खाण छे, एहवा कुंथुनाथस्वामीने नमो॥इति॥२॥

गुणपर्याय अनंतता रे,
वलिय स्वभाव अगाह ॥
नयगम भंग निक्षेपना रे,
हेयादेय प्रवाहो रे ॥ कुं० ॥ ३ ॥

अर्थः—गुण ते जे वस्तुना सहभावि धर्म " द्रव्याश्रयनिर्गुणागुणा इतितत्वार्थे उक्तत्वात् " ते तथा क्रमभावि उभयाश्रित ते पर्याय, अने द्रव्य, गुण, पर्याय, ए सर्वमा वर्ते, तेने स्वभाव कहीयें एटले गुणनी अनंतता, तथा पर्यायनी अनंतता, अने स्वभावनी अनंतता, ए सर्व अगाह केतां अगाध छे, जे अवगाहवाने दोहेली छे. वली नय केतां अनेक धर्मात्मक वस्तुने विषे एकधर्मावलंबन ते नय कहियें ॥ उक्तं च तत्वार्थे ॥ अनेकधर्मकवंवक्तोरेनम्य वस्तुनः एकेन धर्मेण उन्नयनं आधारणात्मकं नित्यएव अनित्यएव एवंनिश्चयनयप्रदेशमात्रंइति ॥ एहवा मूल नय सात, अने उत्तर नयमान सय पर्छी त्रिभाग बहुत ते, तथा गमा गम्यते इति गमाः अंशभेदेन अन्यथने-अभेदेन वस्तुनिरूपणात्मकं वाक्यं गमात्मकं उच्यते तथा भंग तथा स्याद्वादोदृष्टा अस्तिनास्त्यादयः भंगःस्याद्वादसप्तभंगी स्यात् ए अस्तिप्रमुख तथा निक्षेपनामादिक तेहनी अनेक प्रकार

अनेक भातिना वस्तुधर्मे, उपचारधर्मे कारणधर्मे स्वरू
ते वली हेय धर्मना, नय निक्षेपा भांगा ते हेयरू
अने उपादेय धर्मना नय निक्षेपा, ते उपादेयरूप
एहवी श्रीकुंथुनाथजीनी देशना छे, वली एक द्रव्य
अनंता, पर्याय अनंता, स्वभाव अनंता, उपदेशे, इहां
जे गुणपर्यायने आवरण छे, स्वभावने आवरण नथी,
नित्यत्वादिक जे छे ते सर्वे विशेषस्वभाव विगडे पण
स्वस्वभाव विगडे नही, तथा सर्वधर्म नय तथा भंगा
निक्षेप सहित उपदेशे छे, एहवी श्रीकुंथुजिननी देशना
॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

कुंथुनाथ प्रभुदेशना रे,
साधन साधक सिद्ध ॥
गौण मुख्यता वचनमां रे,
ज्ञान ते सकल समृद्ध रे ॥ कुं० ॥ ४ ॥

अर्थः—वली श्रीकुंथुनाथ प्रभुनी देशना केहेवी छे.
सर्वे साधन केनां स्वरूपी इगं अनेकतारूप निरावरण
उपाय ते जिनमुद्रावेषन मुनिवंदन अनुकंपादिकथी दृष्टि
ध्यान दर्शन कह्या छे, तथा मार्गानुसारीथी दृष्टि
दर्शन अवराई अने उत्तरो अयोगी लगे साधक जीव जाणवा,
तेहनुं तारतम्य योग करे छे, पहेलो मार्गानुसारी ते समकेतने
साधे, अने समकेति ते विरतिने साधे, विरति ते शुद्धध्यानने
साधे, तथा शुद्धध्यानी क्षपिकश्रेणने साधे, क्षायकगुणी सिद्धने
साधे, ए साधकनो क्रम छे, ते सर्व

करवो. तेहनी रुचिएं रेहेवुं एहज साधन छे, एहवो उपदेश करता तथा करुणाकर केतां कृपाना करणहार जगत्रयना नाथ, एहवा श्रीकुंथुनाथ स्वामी, तेहना मुखनी निर्मळ वाणी, उपदेशध्वनि, ते जे प्राणी श्रवणे सुणे, तेहिज प्राणी, गुणरूप मणि रत्ननी खाण छे, एहवा कुंथुनाथस्वामीने नमो॥इति॥२॥

गुणपर्याय अनंतता रे,
वलिय स्वभाव अगाह ॥
नयगम भंग निक्षेपना रे,
हेयादेय प्रवाहो रे ॥ कुं० ॥ ३ ॥

अर्थः— गुण ते जे वस्तुना सहभावि धर्म “ द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणा इति तत्त्वार्थे उक्तत्वात् ” ते तथा क्रमभावि उभयाश्रित ते पर्याय, अने द्रव्य, गुण, पर्याय, ए सर्वमां वर्त्ते, तेने स्वभाव कहीयें एटले गुणनी अनंतता, तथा पर्यायनी अनंतता, अने स्वभावनी अनंतता, ए सर्व अगाह केतां अगाध छे, जे अवगाहवाने दोहेली छे. वली नय केतां अनेक धर्मात्मक वस्तुने विषे एकधर्मावलंबन ते नय कहियें ॥ उक्तं च तत्त्वार्थे ॥ अनेकधर्मकदंबकोपेतस्य वस्तुनः एकेन धर्मेण उन्नयनं अवधारणात्मकं नित्यएव अनित्यएव एतन्निश्चयस्वप्रदेशमात्मकं ॥ एहवा मूल नय सात, अने उत्तर नयमान सय पच्ची विस्तार बहुल ते, तथा गमा गम्यंते इति गमाः अंशभेदेन अर्थभेदेन वस्तुनिरूपणात्मकंवाक्यं गमात्मकं उच्यते तथा भंग तथा स्याद्वादोपदेशा अस्तिनास्त्यादयः भंगाःस्याद्वादात्मकोपदेशः यथा ए अस्तिनास्ति तथा निक्षेपनामादिक तेहनी अनेक प्रकार

अनेक भातिना वस्तुधर्म, उपचारधर्म कारणधर्म स्वरूपें उपदेशे, ते वली हेय धर्मना, नय निक्षेपा भांगा ते हेयरूप कहेतां अने उपादेय धर्मना नय निक्षेपा, ते उपादेयरूप प्ररूपता, एहवी श्रीकुंथुनाथजीनी देशना छे, वली एक द्रव्यमां गुण अनंता, पर्याय अनंता, स्वभाव अनंता, उपदेशे, इहां भावना जे गुणपर्यायने आवरण छे, स्वभावने आवरण नथी, अस्तित्व नित्यत्वादिक जे छे ते मध्ये विशेषस्वभाव विगडे पण सामान्यस्वभाव विगडे नहीं, तथा सर्वधर्म नय तथा भंगा अने निक्षेप सहित उपदेशे छे, एहवी श्रीकुंथुजिननी देशना छे ॥ ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

कुंथुनाथ प्रभुदेशना रे,
साधन साधक सिद्ध ॥
गौण मुख्यता वचनमां रे,
ज्ञान ते सकल समृद्धो रे ॥ कुं० ॥ ४ ॥

अर्थः—वली श्रीकुंथुनाथ प्रभुनी देशना केहेवी छे. जे मध्ये साधन केतां रत्नत्रयी पूर्ण अभेदतारूप निपजाववाना उपाय ते जिनमुद्रासेवन मुनिवंदन अनुकंपादिकथी लही शुक्लध्यान पर्यंत कह्या छे, तथा मार्गानुसारीथी लही क्षीणमोही पर्यंत अपवादें अने उत्सर्गे अयोगी लगें साधक जीव जाणवा, तेहनुं तारतम्य योग कहे छे, पहेलो मार्गानुसारी ते समकेतने साधे, अने समकेति ते विरतिने साधे, विरति ते शुक्लध्यानने साधे, तथा शुक्लध्यानी क्षायिकगुणने साधे, क्षायकगुणी सिद्धने साधे, ए साधकनो क्रम छे, ते सर्व प्रभु देशनामां कहे, तथा

करवो. तेहनी रुचिएं रेहेवुं एहज साधन छे, एहवो उपदेश-
करता तथा करुणाकर केतां कृपाना करणहार जगत्रयना नाथ,
एहवा श्रीकुंथुनाथ स्वामी, तेहना मुखनी निर्मळ वाणी, उप-
देशध्वनि, ते जे प्राणी श्रवणे सुणे, तेहिज प्राणी, गुणरूप-
मणि रत्ननी खाण छे, एहवा कुंथुनाथस्वामीने नमो॥इति॥२॥

गुणपर्याय अनंतता रे,
वलिय स्वभाव अगाह ॥
नयगम भंग निक्षेपना रे,
हेयादेय प्रवाहो रे ॥ कुंο ॥ ३ ॥

अर्थः-- गुण ते जे वस्तुना सहभावि धर्म " द्रव्याश्रयानया-
निर्गुणागुणा इतितत्त्वार्थे उक्तत्वात् " ते तथा क्रमभावि उभया-
श्रित ते पर्याय, अने द्रव्य, गुण, पर्याय, ए सर्वमां वर्ते, तेने
स्वभाव कहीयें एटले गुणनी अनंतता, तथा पर्यायनी अनंतता,
अने स्वभावनी अनंतता, ए सर्व अगाह केतां अगाध छे,
जे अवगाहवाने दोहेली छे. वळी नय केतां अनेक धर्मात्मक
वस्तुने विषे एकधर्मावलंबन ते नय कहियें ॥ उक्तं च तत्त्वार्थे ॥
अनेकधर्मकदंबकोपेतस्य वस्तुनः एकेन धर्मेण उन्नयनं अव-
धारणात्मकं नित्यएव अनित्यएव एवंविधनयस्यपरदेशमात्मकंइति ॥
एहवा मूळ नय सात, अने उत्तर नयमान सय पछी भिन्नाग
प्रवृत्त ते, तथा गमा गम्यंते इति गमाः अंशभेदेन अल्पार्ह-
अभेदेन वस्तुनिरूपणात्मकतारूपं गमात्मकं उच्यते तथा भंगाः
तथा स्याद्वादोपदेशेन अस्तिनास्त्यादयः भंगाःस्याद्वादस्य भेदाः स्यात्
ए अस्तिसमुच्च तथा निक्षेपनामादिक तेहनी अनेक प्रकार

अनेक भातिना वस्तुधर्मे, उपचारधर्मे कारणधर्मे स्वरूपें उपदेशे, ते वली हेय धर्मना, नय निक्षेपा भांगा ते हेयरूप कहेता अने उपादेय धर्मना नय निक्षेपा, ते उपादेयरूप प्ररूपता, एहवी श्रीकुंथुनाथजीनी देशना छे, वली एक द्रव्यमां गुण अनंता, पर्याय अनंता, स्वभाव अनंता, उपदेशे, इहां भावना जे गुणपर्यायने आवरण छे, स्वभावने आवरण नथी, अस्तित्व नित्यत्वादिक जे छे ते मध्ये विशेषस्वभाव विगडे पण सामान्यस्वभाव विगडे नहीं, तथा सर्वधर्मे नय तथा भंगा अने निक्षेप सहित उपदेशे छे, एहवी श्रीकुंथुजिननी देशना छे ॥ ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

कुंथुनाथ प्रभुदेशना रे,
साधन साधक सिद्ध ॥
गौण मुख्यता वचनमां रे,
ज्ञान ते सकल समृद्धो रे ॥ कुं० ॥ ४ ॥

अर्थः—वली श्रीकुंथुनाथ प्रभुनी देशना केहेवी छे. जे मध्ये साधन केतां रत्नत्रयी पूर्ण अभेदतारूप निपजाववाना उपाय ते जिनमुद्रासेवन मुनिवंदन अनुकंपादिकथी लही शुक्लध्यान पर्यंत कह्या छे, तथा मार्गानुसारीथी लही क्षीणमोही पर्यंत अपवादें अने उत्सर्गे अयोगी लगें साधक जीव जाणवा, वेहनुं तारतम्य योग कहे छे, पहेलो मार्गानुसारी ते समकेतने साधे, अने समकेति ते विरतिने साधे, विरति ते शुक्लध्यानने साधे, तथा शुक्लध्यानी क्षायिकगुणने साधे, क्षायकगुणी सिद्धने साधे, ए साधकनो क्रम छे, ते सर्व प्रभु देशनामां कहे, तथा

अनेक भातिना वस्तुधर्मे, उपचारधर्मे कारणधर्मे स्वरूपे उपदेशे, ते वळी हेय धर्मना, नय निक्षेपा भांगा ते हेयरूप कहेता अने उपादेय धर्मना नय निक्षेपा, ते उपादेयरूप प्ररूपता, एहवी श्रीकुंथुनाथजीनी देशना छे, वळी एक द्रव्यमां गुण अनंता, पर्याय अनंता, स्वभाव अनंता, उपदेशे, इहां भावना ले गुणपर्यायने आवरण छे, स्वभावने आवरण नथी, अस्तित्व नित्यत्वादिक ते छे ते मध्ये विशेषस्वभाव विगडे पण सामान्यस्वभाव विगडे नहीं, तथा सर्वधर्म नय तथा भंगा अने निक्षेप सहित उपदेशे छे, एहवी श्रीकुंथुजिननी देशना छे ॥ ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

> कुंथुनाथ प्रभुदेशना रे,
> साधन साधक सिद्ध ॥
> गौण मुख्यता वचनमां रे,
> ज्ञान ते सकल समृद्ध रे ॥ कुं० ॥ ४ ॥

अर्थः—वळी श्रीकुंथुनाथ प्रभुनी देशना केवी छे. जे मध्ये साधन एटले रत्नत्रयी एवं अभेदरत्नत्रयी निरावरणना उपाय ते जिनकल्पादिक मुनिवंदन अनुष्ठानादिकथी लही शुक्लध्यान पर्यंत कह्या छे, तथा मार्गानुसारीथी लही अयोगी पर्यंत अनुक्रमे अने उत्कृष्टे अयोगी लगे साधक जीव जाणवा, तेहनुं तारतम्य योग करे छे, एटले मार्गानुसारी ते सम्यक्त्वने साधे, अने सम्यक्त्वी ते विरतिने साधे, विरति ते शुक्लध्यानने साधे, तथा शुक्लध्यानी क्षपकश्रेणिने साधे, क्षायकगुणी सिद्धने साधे, ए साधकनो क्रम छे, ते सर्व प्रभु देशनामां कहे, तथा

ते श्रोता तेहनो जेहवो अवसर होवे, तथा श्रोतानो जेहवो बोध केतां जाणपणुं होवे, तेहवो वचनमां अर्पित करीने उपदेशे, एटले ज्ञान तो सर्वने एक समयमां जाणे छे, परंतु उपदेशकाले केवली भगवान् जेहवा श्रोता होय, तेटलो कहे, तेथी केहेवामां अर्पित नय आगल करवानो काम पडे छे, ते अर्पित तथा अनर्पितनुं स्वरूप तत्त्वार्थमां कयुं छे, "अनेकधर्मस्य धर्मांतप्रयोजनवशात्कदाचित् कश्चिद्धर्मोवचनेनार्पिते विवक्षिते तन् अर्पिते संतपि वचनविवक्षिते प्रयोजनाभावात् तत् अनर्पितं इति " जे धर्मीपदार्थ, तेहना अनेक धर्म छे, तेहने विषे अवसरे जे धर्म, कहेवानुं प्रयोजन उपजे, ते अवसरें ते धर्मने वचनने विषे अर्पित करीए, विवक्षा करीने ग्रहियें, ते अर्पित जाणवो, अने जे धर्म सत् केतां छतो छे तो पण प्रयोजन विना तेने ग्रहीये नहीं, श्रद्धामां अपेक्षामां छे ते अनर्पित कहिये, छद्मस्थनुं ज्ञान, तथा बोलवो. ते अर्पित अनर्पित बे मल्याज शुद्ध थाय. अने केवलीनु ज्ञान तो सर्व एक समयें छे, परंतु वचन ते अर्पित अनर्पित मल्या शुद्ध छे ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥ ५ ॥

शेष अनर्पित धर्मने रे.
सापेक्ष श्रद्धा बोध ॥
उभय रहित भासन होवे रे,
प्रगटे केवल बोधो रे ॥ कुं० ॥ ६ ॥

अर्थः—जे वचन बोलवामां शेष रह्या, ते अनर्पित धर्म रह्या, तेहने सापेक्ष श्रद्धा, सम्यक्श्रद्धा, सरदवी, बोधज्ञान पण राखवुं ए उभय सम्यक्त्वी, देशविरति, क्षीणमोहपर्यंत

सुखी छो. वळी हे प्रभु हे सर्वज्ञ ! हे सर्वानंदमयी ! हे नाथ ! हे सुखोपगारी ! तुमे केहेवा छो ? जे रम्य केतां रमवा योग्य जे अनंतात्मस्वरूप तेहमां रमण केतां रमवुं ते गुणना तुमे वृंद केतां समूह छो ॥ ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥

निजभावें सीय अस्तिता रे,
पर नास्तित्व स्वभाव ॥
अस्तिपणे ते नास्तिता रे,
सीय ते उभय स्वभावो रे ॥ कुं० ॥ ८ ॥

अर्थः—हवे सप्तभंगीरूपें प्रभुना कहे छे. तिहां कोइक तो सप्तभंगी एकला पर्यायास्तिक नयनीज कहे छे, तेतो घटे नहीं, द्रव्यास्तिक पर्यायास्तिक नय द्वयमात्र वस्तु छे, तिहां स्यात् अस्ति, स्यात्नास्ति, स्यात्अवक्तव्यं, ए त्रण भांगा सकलादेशी छे, ते द्रव्यास्तिकनयी छे, " एवं एते त्रयः सकलादेशा भाष्यानुसारिणः एवं संग्रहव्यवहारानुसारिणः आरमद्रव्ये विकलादेशा चत्वारः पर्यायनयाश्रया इति तत्वार्थे " शेष चार ते विकलादेशी छे, तेहनो परमार्थ एम छे जे स्यात्अस्ति ए भांगामां अस्तिधर्म वधे अर्पित छे, बीजो नास्तिधर्म, अवक्तव्यधर्म, ते स्यात्पणामां आव्यो, एटले स्यात्अस्ति कह्यामां वधुं द्रव्य ग्रहवाय छे, तेमज स्यात्नास्ति तथा स्यात्-अवक्तव्यं ए भांगामां पण वधुं द्रव्य ग्रहवाय छे, अने १ स्यात्अस्ति नास्ति, २ स्यात्अस्ति अवक्तव्यं, ३ स्यात्नास्ति अवक्तव्यं, ४ स्यात्अस्ति नास्ति युगपत् अवक्तव्यं, ए चार भंगा ते वस्तुना अंशने एटले पर्यायने ग्रहण करे छे. तेहनो

द्रव्यपणे शाश्वतरूप छे, नहीं तो कोइ कालें जीव
ताने पामे, ए स्यात् नास्ति बीजो भंगो थयो.

३ तथा अस्तिधर्म पण वचनें अगोचर छे, अने
धर्म पण वचने अगोचर छे, ते वचनगोचर धर्म
अगोचरधर्म अनंतगुणा छे, ते माटे स्यात्कथंचित्पणे
अवक्तव्यपणुं छे. एटले उभय नय युगपत् अर्पण करत
पदार्थ अवक्तव्यपणे छे, माटे ए त्रण भंगा सकलादे
द्रव्यास्तिक नयपणे जाणवा. ए त्रणे भंगामां संग्रह नय
हारनयनी प्रवृत्ति छे. ए स्यात् अवक्तव्यनामा त्रीजो भांगो

४ तथा चोथो भंग स्यात् अस्तिनास्ति छे. ते स
याश्रयी स्वद्रव्यार्थ पर्यायथना अस्तितापणे तथा तेहिज वि
पर्यायपणे ते अतीत अनागत परिणामिकपणे नास्तिता
ए बे धर्म पोतानाज गवेष्या छे.

५ तथा जे विवक्षित वचनगोचर द्रव्यार्थ मुख्य आ
धर्मने अपेक्षाये अस्ति छे, तेहिज आत्मद्रव्यनो सामान्य
शेषद्रव्यनी भिन्नप्रवृत्ति धर्म समकाले अंगीकार करतां स्यात्
अस्ति अव्यक्तव्यं ए पांचमो भंगो थयो.

६ छट्टो स्यात्नास्तिअव्यक्तव्यं ए एमज पांचमांनी पे
भाववो, ए पर्यायनी सूक्ष्मता अनंततादृष्टीने कर्यो ए छट्टो
भंग थयो.

७ सातमो स्यात्अस्ति स्यात्नास्ति युगपत् अवक्तव्यं
नामे भंगो छे, ते कोइकद्रव्यार्थविशेष आश्री अस्तिपर्याय
विशेषआश्री जे नास्ति तेहीज स्वदेशें भिन्नपणे अवक्तव्यं ए
सर्वपर्याय ते नयनी प्रवृत्ति छे ए सातमो भं

ए सप्तभंगी ते नित्य अनित्य भेद अभेदादिक धर्मनी तथा ज्ञान दर्शनादिक गुणनी सप्तभंगी थाय ते आगे छे. ज्ञान जे छे ते ज्ञायक परिच्छेदकादि स्वपर्यायें अस्ति छे, दर्शनचारित्रादि स्वद्रव्यपर्यायें तथा जडतादि परपर्यायें नास्ति छे, एम अनंती सप्तभंगी समजवे, ते बुद्धिते भाववी, तथा तत्त्वार्थ वृत्तिने विषे वली सम्मतितर्कने विषे विस्तारथी कही छे, अने स्याद्वादरत्नाकर एहनुं स्वरूप तथा उत्पत्ति, प्रवृत्ति, परिणति, नय सर्व वखाण्या छे. तिहांथी जोइ लेजो. हवे गाथानो अर्थ कहे छे.

निज केता पोताने भाव, स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभावपणे सीय केता स्यात् कथंचित्पणे अस्ति छे, अने तेहीज द्रव्य, परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभावपणे नास्ति छे, ते नास्तिपणुं स्वपणा आदि केता अवक्तव्य कह्यो छे. वली सीय केतां स्यात् कथंचित् उभय केता अस्तिनास्ति स्वभाव एवे आदि भांगो तथा अंतनो भांगो समजवा सातो भंगा भेदेकरी, एहवी स्याद्वादपरिणति ते हे परमेश्वर तुमे प्रत्यक्ष ज्ञाने सां-द्रव्यनी जातिने उपदेश कर्यो, एहवी ताहरी वाणी छे, ए रीते शुद्ध अनन्तता, अनेकता, सत्ता, सत्यस्वगुण श्री अरिहंतनो उपदेश छे ॥ ८ ॥

अस्तित्वस्वभाव जे आपणो रे,
रुचि वैराग्यसमेत ॥
प्रभु सन्मुख वंदन करी रे,
मागीश आतम हेत रे ॥ कुं० ॥ ९ ॥

अर्थः—हवे पोतानो मनोरथ कहे छे. एहवो ...
स्वभाव अनंत ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अव्याबाध, पूर्णानंद...
माहरो सत्तागत स्याद्वाद उपयोगें मळो तेहनी रुचि ...
करीने, वैराग्य ते संसारथी उदासीपणुं ए संसारीभाव ...
पाधि माहरे अवटनी छे, तेहने केवारें सर्वथी तजुं, ए...
भस्म तथा तमलोह पत्थरति समान जाणीने उदासीन ...
मोक्षाभिलाषी केवलज्ञानानंदने अभिलाषें हे प्रभुजी !!! ...
सन्मुख उभो रहीने वंदना करीने मागुं छुं, जे हे ना...
मुजने नाथ, नाथ, भवभ्रमणथी उगार, ए संसारजनित ...
मुजथी हवे खमातो नथी. जे माहरो अनंतो स्वाधीन ...
ते पराधीन थयो. अने हुं पुद्गलग्राही थयो तेथी तत्त्व...
छुं, पण तत्त्वने जाणी शकतो नथी. औदयिकभावरूप अ...
पर्यायनी श्रेणिमां पडी रह्यो छु. अने हवे हे नाथ ! ...
ताहरे शरण आव्यो. माटे मुजने माहरो अस्तिस्वभाव प्रग...
एहवो अव्याबाध ... समकित दर्शनयुक्त, चारित्रनो प्रसा...
करो, एहवो ए ... दिन धन्य मानीश...
एहवो मनोरथ करतो ॥ ९ ॥ इति नवम गाथार्थ ॥

अस्ति स्वभावरुचि थयी रे,
ध्यातो अस्तिस्वभाव ॥
देवचंद्र पद ते लहे रे,
परमानंद जमावो रे ॥ कुं० ॥ १० ॥

अर्थः—माहरे अरी भव्यजीवो ...

अर्थः—हवे पोतानो मनोरथ कहे छे. एहवो जे अस्तिस्वभाव अनंत ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अव्याबाध, पूर्णानंदतारूप, जे माहरो सत्तागत स्याद्वाद उपयोगें मह्यो तेहनी रुचि पीपासा करीने, वैराग्य ते संसारथी उदासीपणुं ए संसारीभाव विभावोपाधि माहरे अवश्ली छे, तेहने केवारें सर्वथी तज्जुं, एम विषभक्षण तथा तप्तलोह पदवृति समान जाणीने उदासीन थयो, मोक्षाभिलाषी केवलज्ञानानंदने अभिलषें हे प्रभुजी!!! ताहरा सन्मुख उभो रहीने वंदना करीने मागुं छुं, जे हे तारक! मुजने तार! तार! भवभ्रमणथी उगार, ए संसारजनित दुःख मुजथी हवे खमानो नथी, जे माहरो अनंतो स्वाधीन आनंद ते पराधीन थयो, अने हुं पुद्गलग्राही थयो तेथी तत्त्वभोगी छुं, पण तत्त्वने जाणी शक्तो नथी, औदयिकभावरूप अशुद्धपर्यायनी श्रेणिमां पडी रह्यो छुं, अने हवे हे नाथ!!! ताहरे शरणे आव्यो छं. माटे मुजने माहरो अस्तिस्वभाव प्रगटे एहवो अभ्यासनो हित समकित दर्शनयुक्त, चारित्रनो प्रसाद करो, एहवो हुं तेवारे मागीश तेहीज दिन धन्य मानीश एहवो मनोरथ करवो ॥ ९ ॥ इति नवम गाथार्थः ॥

अस्ति स्वभावरुचि थयी रे,
ध्यातो अस्तिस्वभाव ॥
देवचंद्र पद ते लहे रे,
परमानंद जमावो रे ॥ कुं० ॥ १० ॥

अर्थः—माटे अहो भव्यजीवो तुमें जो सर्व जीव सु-

ए सप्तभंगी ते नित्य अनित्य भेद अभेदादिक धर्मनी तथा ज्ञान दर्शनादिक गुणनी सप्तभंगी थाय ते भावे छे. ज्ञान जे छे ते ज्ञायक परिच्छेदकादि स्वपर्यायें अस्ति छे, दर्शनचारि-त्रादि [illegible] तथा जडतादि परपर्यायें नास्ति छे, एम अनंती सप्तभंगी [illegible], तथा तत्त्वार्थ [illegible] सम्मतितर्क [illegible] विस्तारथी कही छे, अने स्याद्वादरत्नाकर [illegible] लक्षण तथा उत्पत्ति, प्रवृत्ति, परिणति, [illegible] छे. तिहांथी जोइ लेजो. हवे गाथानो अर्थ [illegible] छे.

निज केता पोताने भाव, द्रव्य, क्षेत्र, काल, स्व-भावपणे [illegible] अस्ति छे, अने तेहीज [illegible] नास्ति छे, ते [illegible] छे, वली शेष [illegible] आदि भांगो तथा अनंतो भांगो [illegible], एहवी स्याद्वादपरिणति ते हे परमेश्वर तुमे प्रगटपणे ज्ञाने [illegible] एहवी [illegible] छे, ए [illegible] शुद्ध अनंतता [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] छे । ८ ॥

अस्तिस्वभाव जे आपणो रे,
रुचि वैराग्यसमेत ॥
प्रभु सन्मुख वंदन करी रे,
मागीश आतम हेत रे ॥ कुं० ॥ ९ ॥

अर्थः—हवे पोतानो मनोरथ कहे छे. एहवो जे अस्ति-स्वभाव अनंत ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अव्याबाध, पूर्णानंदतारूप, जे माहरो सत्तागत स्याद्वाद उपयोगें ग्रह्यो तेहनी रुचि पीपासा करीने, वैराग्य जे संसारथी उदासीपणुं ए संसारीभाव विभावो-पाधि माहरे अवश्यकी छे, तेहने केवारें सर्वथी तजुं, एम विष-भक्षण तथा तप्तलोह पदघृति समान जाणीने उदासीन थयो, मोक्षाभिलाषी केवलज्ञानानंदने अभिलषें हे प्रभुजी !!! ताहरा सन्मुख उभो रहीने वंदना करीने मागुं छुं, जे हे तारक ! मुजने तार ! तार ! भवभ्रमणथी उगार, ए संसारजनित दुःख मुजथी हवे खमातो नथी, जे माहरो अनंतो स्वाधीन आनंद ते पराधीन थयो, अने हुं पुद्गलग्राही थयो तेथी तत्त्वभोगी छुं, पण तत्त्वने जाणी शकतो नथी, औदयिकभावरूप अशुद्ध-पर्यायनी श्रेणिमां पडी रह्यो छुं, अने हवे हे नाथ !!! ताहरे शरणे आव्यो छुं, माटे मुजने माहरो अस्तिस्वभाव प्रगटे एहवो आत्मानो निज सम्यक्‌ दर्शनयुक्त, चारित्रनो प्रसाद करो, एहवो हुं जेवारे मागीश तेहीज दिन धन्य मानीश एहवो मनोरथ करतो ॥ ९ ॥ इति नवम गाथार्थः ॥

> अस्ति स्वभावरुचि थयी रे,
> ध्यातो अस्तिस्वभाव ॥
> देवचंद्र पद ते लहे रे,
> परमानंद जमावो रे ॥ कुं० ॥ १० ॥

अर्थः—माटे अहो भव्यजीवो तुमें जो सर्व जीव सु-

रसना अर्थी छो तो जे सत्तागत अभिनवमं, तेहना रुचि अभिलाषी थईने जे आत्मस्वभावनी अनंतता तेहनेज ध्याता ध्यान करतां थकां मन देवमा चंद्रमासमान जे सिद्धपरमात्मपद ते लहे तेना पामे. असंगता, निर्मलानंदता, निःसंगतारूप परमानंद स्वाधीन आत्यंतिक अव्याबाध सुख तेहनोज जेहमा भंडार छे. मनन करो गुणपणु छे. एहवुं पद श्री प्रभुनी सेवाथी पामे, तेमाटे तत्त्वस्वरूपी, अरूपी, ज्ञानस्वरूपी, एहवा श्रीकुंथुनाथना गुणनुं मनन करो, हे भव्यजीवो। एहीज परम सुखनो हेतु छे. ॥ १७ ॥ इति कुंथुनाथ० ॥

॥अथ अष्टादश श्रीअरनाथजिनस्तवनं॥

॥ [illegible] ॥ ए देशी ॥

प्रणमो श्रीअरनाथ, शिवपुर साथ खरो री ॥
त्रिभुवन जन आधार, भवनिस्तार करो री ॥१॥

अर्थः—हवे अढारमा श्रीअरनाथ जिननी स्तवना करवाना पणे कर छे. प्रणमो तेना [illegible] नमस्कार करो, श्रीअरनाथ स्वामीने. एहीज [illegible] करवा योग्य छे, शिव तेनो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तेनो [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] छे, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] छे, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] छे, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] छे, [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] छे. [illegible] [illegible]

केतां संसार देहमांथी द्रव्ये तथा भावे निस्तारना करणहार छे ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

कर्त्ता कारण योग, कारज सिद्धि लहे री ॥
कारण चार अनूप, कार्यार्थी तेह ग्रहे री ॥२॥

अर्थ—हवे मोक्षकार्य नीपजाववा माटे कारण कार्यनी रीति कहे छे. सर्व कार्य छे, ते कर्त्ताना कीधा थाय छे, तेमां भिन्नकार्यनो कर्त्ता पण भिन्न, जेम घटनो कर्त्ता कुंभकार भिन्न छे, अने अभिन्नकार्यनो कर्त्ता पण अभिन्न छे, जेम ज्ञाननो कर्त्ता आत्मा छे, तेम संवर सिद्धत्वनो कर्त्ता पण आत्माज छे, ते कर्त्ता ज्यारे कारणनी योगवाइ पामे, त्यारे कार्यनी सिद्धि नीपजाववापणुं लहे, पण एकलो कर्त्ता ते कारण सा-मग्री विना कार्य करी शके नहीं, कारण सामग्री मळेज, कार्य नीपजावे ते कारणना चार भेद छे, जे कार्य नीपजाववानो अर्थी थाय, ते चार कारणने ग्रहे. इहां घणा शास्त्रोमां तो कारणना बे भेद कह्या छे. एक उपादान कारण, बीजो निमित्त कारण, अने विशेषावश्यकने विषे समवायिकारण, असमवायिकारण ए नाम कह्यां छे, तथा अन्यदर्शनमां त्रण कारण पण कह्यां छे, "समवाय्यसमवायि निमित्तभेदात्" तेमां समवायि कारण ते उपादान कारण अने असमवायि कारण ते नामांतर असाधारण कारण कहेवाय छे. तथा निमित्त कारणना बे भेद कर्या छे तेमां एक तो निमित्त कारण बीजुं अपेक्षा कारण ते तत्त्वार्थ टी-कामां कह्युं छे. तथा अपेक्षाकारणं पृथिव्यादिकेन उच्यते यथा घटस्योत्पत्तावपेक्षाकारणं भूम्यादि उच्यते इति अपेक्षा" तेमाटे

खना अर्थी छो तो जे सतागम अस्तिधर्म, तेहना रुचि अभिलाषी थईने जे अग्निस्वभावनी अनंनता तेहनेज ध्याता ध्यान करतां थकां सर्व देवमां चंद्रमासमान जे सिद्धपरमात्मपद ते लहे केतां पामे, अशरीरता, निर्मलानंदता, निःसंगतारूप परमानंद स्वाधीन आत्यतिक अव्याबाध सुख तेहनोज जेहमां जमाव छे, मयन केता एकीपणुं छे, एहवुं पद श्री प्रभुनी सेवाथी पामे, तेमाटे तत्त्वस्वरूपी, अरूपी, ज्ञानस्वरूपी, एहवा श्रीकुंथुनाथना चरणने सेवन करो, हे भव्यजीवो ! एहीज परम सुखनो हेतु छे. ॥ १० ॥ इति कुंथुनाथ० ॥

॥अथ अष्टादश श्रीअरनाथजिनस्तवनं॥

॥ रामचंदके बाग चांपो मोरी रह्या रे ॥ ए देशी ॥

प्रणमो श्रीअरनाथ, शिवपुर साथ खरोरी ॥
त्रिभुवन जन आधार, भवनिस्तार करोरी ॥१॥

अर्थः—हवे अढारमा श्रीअरनाथ जिननी स्तवना कारणता पणे करे छे. प्रणमो केतां वारंवार नमस्कार करो, श्रीअरनाथ स्वामीने, एहीज अमोही परमेश्वर वांदवा योग्य छे, शिव केतां निरुपद्रव जे सिद्धना, तेहीज उपमाये पुर केतां नगर तिहां पोहोंचाडवाने खरो साथ छे, तेथी साथवाहनी उपमा श्रीअरिहंतनेज छे, जे निःस्वार्थे भवअटवीमांथी पार करीने मोक्षनगरने विषे परमानंदपदें पहोंचाडे एहवा कारणपणें श्रीअरिहंतजी छे, वली पण भुवनना जनने आधार छे, मिथ्यात्व, असंयम ध्यथायें पाडितने आधार ओटंभारूप छे. वली चारगतिरूप भव

केतां संसार देहमांथी द्रव्ये तथा भावे निस्तारना करणहार छे ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

कर्ता कारण योग, कारज सिद्धिलहे री ॥
कारण चार अनूप, कार्यार्थी तेह ग्रहे री ॥२॥

अर्थ—हवे मोक्षकार्य निपजाववा माटे कारण कार्यनी नीति कहे छे. सर्व कार्य छे, ते कर्त्ताना क्रीया थाय छे, तेमां भिन्नकार्यनो कर्त्ता पण भिन्न, जेम घटनो कर्त्ता कुंभकार भिन्न छे, अने अभिन्नकार्यनो कर्त्ता पण अभिन्न छे, जेम ज्ञानना कर्त्ता आत्मा छे, तेम संपूर्ण सिद्धत्वनो कर्त्ता पण आत्माज छे, ते कर्त्ता जेवारें कारणनी योगवायी पामे, तेवारें कार्यनी सिद्धि नीपजाववापणुं लहे, एटले एकलो कर्त्ता ते कारण सामग्री विना कार्य करी शके नहीं, कारण सामग्री मळेज, कार्य नीपजावे ते कारणना चार भेद छे, जे कार्य नीपजाववानो अर्थी थाय, ते चार कारणने ग्रहे. इहां घणा शास्त्रोमां तो कारणना बे भेद कह्या छे, एक उपादान कारण, बीजो निमित्त कारण, अने विशेषावश्यकने विषे समवायिकारण, असमवायिकारण ए नाम कह्यां छे, तथा आप्तमीमांसामां कारण त्रण कह्यां छे, " समवाय्यसमवायि निमित्तभेदात् " तेमां समवायि कारण ते उपादान कारण अने असमवायि कारण ते नामांतर असाधारण कारण कहेवाय छे, तथा निमित्त कारणना बे भेद करीयें तेमां एक तो निमित्त कारण बीजुं अपेक्षा कारण ते तत्त्वार्थ टीकामां वखाण्युं छे, तथा अपेक्षाकारणं पूर्वमित्यनेन उच्यते यथा घटस्योत्पत्तावपेक्षाकारणं व्योमादि उपेक्षते इति अपेक्षा " तेमाटे

माटी एहवुं नाम हतुं पछी घटनाम थयुं, माटी ते मृदुता, द्रव्यनाशपर्यंत हती, घट ते उदाहरण पर्यंत छे, माटे भिन्नता छे, ए प्रथम उपादान कारण बताव्युं. इति तृतीयगाथार्थः॥३॥

उपादानथी भिन्न, जे विणु कार्य न थाये ॥
न हुवे कारजरूप, कर्त्ताने व्यवसायें ॥४॥
कारण तेह निमित्त, चक्रादिक घटभावें ॥
कार्य तथा समवाय, कारण नियतने दावें ॥५॥

अर्थः—हवे निमित्त कारणनुं लक्षण कहे छे. जे कारण उपादान कारणथी भिन्न एटलां जुदुं छे, अने तेना मल्या विना कार्य थाय नहीं, पछी तेहने विषे जे कारणपणुं ते कर्त्ताने व्यवसायें एटलां कर्त्ताने उद्यमे छे. ते निमित्त कारण कहियें, जेम घटभावें घटकार्य छे तेहने चक्र, चीवर, दंडादिक ते निमित्त कारण छे. अने माटी उपादान कारण छे. ते उपादान कारणथी निमित्तकारण जे चक्र चीवरदंडादिक छे ते सर्व भिन्न छे, अने ए निमित्त मल्या विना माटीनो घट थाय नहीं, तेमज ते चक्रादिक कर्त्ता विना पोतानी मेळे कारणपणुं पामे नही, अने ए चक्रादिकने ज्यारें कर्त्ता जे कुंभकार ते घट करवारूप व्यापारें प्रवर्तावे, त्यारें एने कारण कहियें, नही तो कारणता-पणुं कहेवाय नही, ते पण समवायिकारण तेनां उपादानकारण तेहने भिन्नपणे एनां कर्म जेवारें उपादान कारणने कार्य-रूपें करतो होय, तेवारें जे उपकरण करे व्यापार, ते सर्व निमित्तकारण कहियें. अने तेम उपकरण जेवारें कर्त्ता कार्यने करतो न होय, तेवारें तेहने कारण कहियें नही, कारणनुं

प्रवर्त्तन नथी, तथा कर्त्ताने पण ते मेळववानो प्रयास करवो पडतो नथी, अने कार्यथी भिन्न केतां जुदो छे, तथा नियत केतां नियमा निश्चे ते जोइयें, अने बहुभावी केतां अनेक बीजा सर्व कार्यमां भावी छे, ए रीतें कारणीक छे, ते अपेक्षा-कारण कहीयें, जेम भूमी तथा काल तथा आकाश ए विना कोई घटादि कार्य थतुं नथी, अने भूमी मुख्य जेम घटनुं कारण छे, तेम अन्य बीजा कार्योनुं पण कारण छे, पण घटनुं कारणपणुं पण छनुं छे. वली कर्त्ता जेम उपादान तथा नि-मित्त कारणनो व्यापार करे छे, तेम एनुं प्रवर्त्तन करतो नथी ॥ ७ ॥

एह अपेक्षा हेतु, आगम मांहे कह्यो री ॥
कारणपद उत्पन्न, कार्य थये न लह्यो री ॥८॥

अर्थः—तेथी ए अपेक्षा हेतु केतां कारण आगममां तथा तत्त्वार्थादिक ग्रंथोमां कह्युं छे. " यथा घटस्योत्पत्तौ अपेक्षा-कारणं व्योमादि अपेक्षते तेन विना तदभावाभावात् ॥ निर्व्या-पारमपेक्षाकारण मितितत्त्वार्थवृत्तौ " ॥ तथा विशेषावश्यकेआव-श्यकेअवधिज्ञानाधिकारे " इहां द्वारभूत शिलातलादि द्रव्यानु-त्पद्यमानस्यावधेः सहकारकारणानि भवंति अत्र सहकारकारणंत-त्त्वेष्यं इति " ए चार कारणनुं स्वरुप कह्युं. हवे कारणपद केतां जेहमांहे कारणपणुं ते छतो मूळगो धर्म नथी, पण उत्पन्न छे, अने ते जेवारें कर्त्ता ते कार्यनो अर्थी थइने जे उपकरण तथा मृत्पिंड ते रूपें कार्यपणे प्रवर्त्तावे, तेवारें ते तेहनुं कारण कहीयें एटले जेम काष्टमां दंडादिक अनेक पदार्थना छताप-णानी योग्यता छे, पण कोइ कर्त्ता, दंडनुं कारण उत्पन्न करे,

कोइ पुनर्लीनुं कारण उत्पन्न करे, तेमज दंडादिकने कोइ घट-ध्वंसपणे प्रवर्तावे, तो घटध्वंस करे तथा कर्त्ता जो दंडादिकने घट करवापणे प्रवर्तावे तो तेहने कारण थाय, माटे जे कारणपणुं छे ते कर्त्ताने कर्ये थाय छे श्रीविशेषावश्यकें कह्युं छे, "ये कारका कर्तृगतागता इति कारण कार्योत्पादकं तेन कार्योत्पत्तौ कारणत्व नवकारकत्व" ते माटे कारणपणुं ते उत्पन्न छे. हवे कोइ कहशे के तमनमा कोइ कार्यना कारण तो छता छे. तो उत्पन्न छे एम शावास्ते कहो छो? तेहने उत्तर जे विवक्षित कार्यना कारणता उत्पन्न छे, अथवा जे कार्यता जे काले ते कार्यना कर्त्ताना प्रयोगनी छे, तेमाटे उत्पन्नज छे, पण कार्य निपज्या पछी तेमध्ये कारणपणुं न पामीयें, जेम अनादि मिथ्यात्वी जीव यद्यपि सत्तावंत छे, तेमज अभव्य जीव पण सत्तावन्त छे परन्तु तेहनु उपादान सिद्धताना कार्यनुं करणहार नथी. तेथी कार्य नीपजतुं नथी. ज्यारे कोइक जीवनुं उपादान अरिहंतादिक निमित्त पामीने कारणतापणे परिणमे, ते कार्य करे, माटे ते उत्पन्न छे. अने ते कार्य सिद्ध थया पछी ते कारण रहे नहीं, जो सिद्धतामां साधकतानी रुची मानीयें तो, सिद्धावस्थायें पण साधकपणुं रह्युं मानवुं पडे ने सिद्धावस्थामां साधकपणुं तो नथी माटे कार्य नीपजे. कारणता रहे नहीं, तथा निमित्त जे दंडा-दिक ते पण कर्त्ता भिन्न कार्यना व्यवसायें कारणता करे, तो ते भिन्न कार्य थाये. परन्तु तेज कार्यनी ते कारणता रहे नहीं, एम धारवुं ॥ ८ ॥

कर्त्ता आतमद्रव्य, कार्यसिद्धिपणो री ॥
निजसत्तागत धर्म, ने उपादान गणो री ॥३॥

अर्थः—हवे सिद्धतारूप कार्यना चार कारण देखाडे छे. सिद्धतारूप कार्य ते आत्मानुं अभेदस्वरूप छे, माटे एहनो कर्त्ता आत्मा द्रव्य पोतेज छे, अने सिद्धपणुं ते आत्मानुं कार्य छे, जे आत्मा सिद्धताने परमानंदपणे जाणे. तथा एहीज माहरुं हमणां करवानुं कार्य छे, ए कार्य करवानी रुचि विना अनंतो काल संसारमां भम्यो स्वरूपभ्रष्ट थयो, माहामोहें ग्रह्यो. हवे में माहरो मूलधर्म श्रद्धाभासन गोचर कर्यो तेदी ए कार्य करवुं एम निर्धार करी तत्तुगत चेतनावीर्यें करीने स्वस्वरूप करवानो कर्त्ता थयो, तो सिद्धताना कार्यने निपजावे, ते आवी रीतें जे प्रथम तो अंशेकर्त्ता थाय, पछी गुणवृद्धि थवे, संपूर्ण कर्त्तापणुं पामीने कार्य नीपजावे. हवे ए सिद्धतारूप कार्यनो उपादान कारण कहे छे, जे पोताना सत्तागत ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्यादिक, अनंतगुण छे, तेहिज पोतानुं सत्तागत धर्म ते सिद्धिरूप थाय छे, माटे तेहीज उपादान कारण जाणवुं. उपादान ते वस्तुनो मूल धर्म अरूपी सत्ता तेहीज सिद्ध थाय छे, ए सिद्धतारूप कार्यनुं उपादान कारण देखाड्युं ॥९॥ इति नवम गाथार्थः ॥

योग समाधिविधान, असाधारण तेह वदे री ॥
विधि आचरणा भक्ति, जिणें निज कार्य सधे री॥१०॥

अर्थः—हवे सिद्धतारूप कार्यनुं असाधारण कारण कहे छे. मन, वचन अने कायाना योग तेहने द्रव्यथी तथा भावथी स्वगुणरमणतां जागी, अद्वेषीपने प्रवर्त्तावयुं, ते आत्मसमाधि कहीयें तेनो जे विधान केनां करवो एटले थोपा

निमित्त हेतु जिनराज, समता अमृत खाणी ॥
प्रभुअवलंबन सिद्धि, नियमा एह वखाणी ॥१२॥

अर्थः—हवे आत्माने सिद्धतारूप कार्य करतां निमित्त कारण श्रीजिनराज वीतराग छे, ने वीतराग सर्वज्ञ केहवा छे, समतारूप अमृतनी खाण छे, इष्ट अनिष्टना रहित समताना धर्णी छे, शुद्ध चरित्र परिणाम तेहीज अमृत छे, तेहनी खाण छे, एहवा प्रभु परमेश्वर परम दयाल, परमात्मा, शुद्धतत्त्वरूप भोगी, पूर्णानंदी, चिदानंद ते श्रीअरनाथ प्रभु तेहने अवलंबवे पोतानो भासन प्रभुना ते गुण जाणवाने जोडी एम अनंता गुण ते सर्वगुणना भासननी रीझ तथा ते उपर बहुमान एहवे आलंबने रहेवुं, तेथी नियमा सिद्ध निवारण थाय एम आगममां वखाण्यो छे, एहीज मोक्षनो उपाय छे. ए निमित्तकारण कह्युं ॥ १२ ॥ इति ॥

पुष्ट हेतु अरनाथ, तेहने गुणथी हलीयें ॥
रीझ भक्ति बहुमान, भोगध्यानथी मलीयें ॥१३॥

अर्थः—माटे पुष्टकेतां नियामक हेतुकेतां कारण ते जिनराज श्री अरनाथ प्रभु तेहना गुण जे केवल ज्ञान, अनंतानंदरूप तेहथी हलीयें केतां आपणो आत्मा तेदिसें जोडीयें, भगवद्गुणीना गुणथी आपणी चेतना जोडवी, रीझ केतां रागनीमग्नता, भक्तिकेतां सेवना, बहुमान, आदर, मोटाइ, भोगकेतां आस्वादन, ध्यानकेतां चित्तनी एकाग्रता, ए थी अरनाथ प्रभुना गुणनी करीने श्रीप्रभुथी एकत्वपणे

तत्त्वप्रगट कर्युं, ते प्रभुनी प्रभुता, शुद्धज्ञायकता, शुद्धरमणता, शुद्धानुभवता, अपौद्गलिकता, असंगता, अयोगिता, सकल प्रदेश निरावरणता, प्राग्भावी शुद्धसत्ताभोग्यता, तेहने रंगें जे रंगाणा छे, ते साधक सम्यग्दृष्टि, देशविरति, सर्वविरतिनी अंतरंग शक्ति तत्त्वप्राग्भाव करवानी साधक कारकता, साधक कर्त्तापणुं, परमसंवर पूर्वक परम सकामनिर्जरा रूप शक्ति, विकस्वर थवे, प्रगट थवे, ते शक्तिथी सर्वकर्म विगम थवे, सर्व आत्मिक धर्मने प्रगटवे करी, परमात्मा देवमांहे चंद्रमा समान श्रीनिष्पन्न परमेश्वर तेहनो जे आनंद, अव्याबाध, शिव, अचल, अरुज, अविनाशी, तेहवुं जे अक्षय स्वरूप, तेहनो भोग करतां अनुभव तेनो विलासी आत्मा थाय, एटले स्वसंपदा तत्त्वता आत्मशुद्धपरिणति, तेहने सादि अनंतो काल भोगवे, अथवा देवचंद्र जे स्तुति कर्ता ते अक्षय आनंदना भोगनो विलासी थाय, माटे स्वरूपसिद्ध, अरूपी, चिद्रूप, श्रीपरमेश्वर, तेहने सेवो, ध्यावो, नमो, गावो, तेहना गुण संभारो, एहीज मोक्ष साधनतुं पुष्ट निमित छे, ए निमित्ते उपादानकारणरूप थइने असाधारण कारणतापणुं थइनो मनुष्यगत्यादि अपेक्षा कारणपणे करी तत्त्वानंद रूप कार्यने करशे, ते माटे उपादानादिक सर्व कारणनी कारणता निमित्तने अवलंबे प्रगटे, तेथी निर्दोषपणे आशंसादि दोष वर्जीने शुद्धनिमित्त ने सेवे, ते सेवननी कर्त्तापणुं गमे अने कर्त्तापणुं सकलेथी प्रगट करे, माटे श्रीअरनाथजीनी भक्ति ते परमाधार छे ॥ १९ ॥ इति श्री अरजिनस्तवनं ॥ १८ ॥

मलिये, साधकने शुद्धदेव तत्वने अवलंबवुं ते प्रधान छे ॥ इति त्रयोदशगाथार्थः ॥ १३ ॥

मोटाने उत्संग, बेठाने शी चिंता ॥
तिम प्रभु चरण पसाय, सेवक थया निचिंता॥१४॥

अर्थः—तथा लौकिक दृष्टांत कहे छे. जे मोहोटाने उत्संगे केनां खोलामां बेठो तेहने कोइ चिंता नहीं, ते निश्चिंत थयो, तेम सेवक पण प्रभुजी निरामय देव तेहना चरणने सेववे, चिंतारहित थयो, जे परमोत्तम, सर्वगुणभोगी, निरालंबी, चिन्मयी, अनंत दान, लाभ, भोग, उपभोग वीर्यमयी, श्रीजिनेश्वर निःकर्म देवतत्त्व, परभावना अकर्त्ता, परभाव अभोगी, परानुयायीना रहित, एहवो देव जो आदर्यो छे, तो मोहवुं शुं जोर छे ? संसार कोने छे ? कर्मनी बीक कोने छे ? जो परमोत्तम धणी में माहरे माथे कर्यो छे जेहना ध्यानथी माहारो मोक्ष नीपजे, ते देवनो योग मिल्यो छे. ते माटे चिंता नथी ॥ उक्तं च श्रीजिनवल्लभसूरिभिः ॥ पसरेइ तीयलोए, तावमोहंधयारंभमइ जइ ॥ सिन्नमनाय मिच्छंतं सिन्न फुरइ फुइफुरंताणं ॥ १ ॥ नंताणंस पूरो, पयडपजीपसंतीज्झाणसुरो ॥ १४ ॥ इति चतुर्दश गाथार्थः ॥

अर प्रभु प्रभुता रंग, अंतर शक्ति विकासी ॥
देवचंद्रने आणंद, अक्षय भोग विलासी॥१५॥इति॥

अर्थः—माटे श्री अरनाथ प्रभु अहाप्मा परमेश्वर जेणे तत्त्वरुचि थइने तत्त्वाभिलाषि तत्त्वसाधक तत्त्वध्यानी थइने

तत्त्वप्रगट कर्युं, ते प्रभुनी प्रभुता, शुद्धज्ञायकता, शुद्धरमणता, शुद्धानुभवता, अपौद्गलिकता, असंगता, अयोगिता, सकल प्रदेश निरावरणता, भाग्यभावी शुद्धसत्ताभोग्यता, तेहने रंगें जे रंगाणा छे, ते साधक सम्यग्दृष्टि, देशविरति, सर्वविरतिनी अंतरंग शक्ति तत्त्वप्राग्भाव करवानी साधक कारकता, साधक कर्त्तापणुं, परमसंवर पूर्वक परम सकामनिर्जरा रुप शक्ति, विकस्वर थवे, प्रगट थवे, ते शक्तिथी सर्वकर्म विगम थवे, सर्व आत्मिक धर्मने प्रगटवे करी, परमात्मा देवमांहे चंद्रमा समान श्रीनिष्पन्न परमेश्वर तेहनो जे आनंद, अव्याबाध, शिव, अचल, अरुज, अविनाशी, तेहवुं जे अक्षय स्वरुप, तेहनो भोग केतां अनुभव तेनो विलासी आत्मा थाय, एटले स्वसंपदा तत्त्वता आत्मशुद्धपरिणति, तेहने सादि अनंतो काल भोगवे, अथवा देवचंद्र जे स्तुति कर्त्ता ते अक्षय आनंदना भोगनो विलासी थाय, माटे स्वरुपसिद्ध, अरुपी, चिद्रूप, श्रीपरमेश्वर, तेहने सेवो, ध्यावो, नमो, गावो, तेहना गुण संभारो, एहीज मोक्ष साधनतुं पुष्ट निमित्त छे, ए निमित्तें उपादानकारणरुप थइने असाधारण कारणताएं चढनो मनुष्यगत्यादि अपेक्षा कारणपणें करी तत्त्वानंद रुप कार्यने करशे, ते माटे उपादानादिक सर्व कारणनी कारणता निमित्तने अवलंबें प्रगटे, तेथी निर्दोषपणे आशंसादि दोष वर्जिने शुद्धनिमित्त ने सेवे, ते सेवनथी कर्त्तापणुं सभरे अने कर्त्तापणुं समरेथी स्वकार्य करे, माटे श्रीअरनाथजीना भक्ति ते परमाधार छे ॥ १५ ॥ इति श्री अरजिनस्तवनं ॥ १६ ॥

॥ अथ एकोनविंशति श्रीमल्लिनाथ जिन स्तवन ॥

दिक कारण, ४ माटीना पिंडने, नवा पर्यायनी प्राप्ति ते संप्रदान, ५ पिंड स्थासादि पर्यायनो व्यय ते अपादान, ६ घटादि पर्यायनुं आधारपणुं ते आधार, एम घटरूप कार्यमां षट् कारक छे, तेमज आत्माने अनादि काळनां ए छ कारक बाधक रूपें परिणम्यां छे, ते देखाडे छे.

१ आत्मा परविभाव रागादि ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मनो कर्त्ता थयो छे.

२ भावकर्म द्रव्यकर्मने जे आत्मा करे, ते कार्य नामा बीजुं कारक.

३ अशुद्धविभाव परिणतिरूप भावाश्रव अने प्राणातिपातादि द्रव्याश्रव, ए बे कारणथी कर्म बंधाये, माटे ए करण नामा त्रीजुं कारक.

४ अशुद्धतानो तथा द्रव्यकर्मनो लाभ ते संप्रदान नामा चोथुं कारक.

५ स्वरूपरोध, क्षयोपशमनी हानि, तथा परानुयायिता ते अपादान.

६ अनंती अशुद्ध विभावता, तथा ज्ञानावरणादि कर्मने राखवा रूप जे शक्ति ते आधार नामा छट्ठुं कारक जाणवुं छे.

ए रीतें ए छ कारकनुं चक्र अनादिनुं अशुद्धने बाधकताये आत्माने परिणम्युं थयुं छे, ते जेवारें साधक आत्मा, पोताना स्वधर्म गवेषकता पणे परिणमावे, तेवारें ए छ कारक साधक पणे प्रवर्त्ता शुद्धता आत्म धर्मनी साधना करे. ए रीते ए छ कारक साधक पणे परिणम्या कार्य नीपने शुद्ध स्वरूप थाय. ए स्वरूपसिद्धिनिष्पन्न कार्य स्वरूपें कारण

अर्थः—१ पहेलुं कर्त्ता नामा कारक कहे छे. तिहां कर्त्ता आत्मा द्रव्य ते आत्मशुद्धता निपजाववा रूप कार्ये प्रवर्त्तन पाम्युं, पोतानुं कर्त्ता छे.

२ जे आत्मा पोतानी सिद्धना सर्वगुण पूर्णता सर्वस्वभाव स्वरूपास्थानता ते कार्यनामा बीजुं कारक जाणवुं, ते कार्य परिणतिचक्रने प्रवर्त्तवा रूप क्रियायें नीपजे, ते क्रियानुं प्रवर्तावचुं ते कार्य ते कार्यने कारकना, नीपजाववा कालेंज छे, नीपना पछी कार्यमां कारकना नथी, उक्तं च भाष्ये ॥ तस्मात् शुद्धयद्वयावसिनं कार्यं अप्यात्मकारणमेष्टव्यं इति ॥

३ उपादानपरिणाम आत्मा स्वगुणनी परिणति, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप रत्नत्रयीनी जे परिणति, तत्त्वनिर्धार, तत्त्वरुचि, तत्त्वज्ञान, तत्त्वरमणादिक रूप स्वगुण अहिंसकता संवरहेतु अपरिगमन रूप, स्वरूप यथार्थभासनरूप, परभाव अग्रहणरूप, परभाव [illegible] त्तारूप, स्वरूपग्रहण, स्वरूप भोगी, परभाव अरक्षणरूप. [illegible] एकत्वरूप तत्त्वाराधन, चेतनास्वरूप प्रगटनानुयायी वीर्य. ते उपादान कारण अने द्रव्ययोग समारवा रूप अरिहंतालंबनादि, यथार्थ आगमश्रवणादि ते निमित्त कारण तेहनुं प्रयुंजवुं आत्मकार्य करवा पणे आत्मानो प्रयोग करवो, ए उत्कृष्ट कारण माटे करणनामा त्रीजुं कारक जाणवुं, " साधकतमं कारणं करणं " इति वाक्यात् आत्मसिद्धिरूप कार्यनुं उत्कृष्ट कारण अने आत्मशक्तिस्वरूपानुयायी तथा शुद्धदेव प्रमुख ते करण नामा कारक कहिये.

४ आत्मानी संपदा जे ज्ञानपर्याय, दर्शनपर्याय, चारित्रपर्याय, तेहनुं दान आत्माने आत्मगुण प्रगट करवारूप देवुं,

संबंध छे. ग्राह्यग्राहक संबंध छे, आधाराधेय संबंध छे, ए सर्वनुं आराधन जेनां ते कारणरूप क्षेत्र ते आत्मा छे, ते आराधनना माटे आत्मा आधार छे, ए आधारतामा छट्ठुं कारक जाणवुं. ए छ कारक साधकपणाना कह्यां. हवे ए साधकपणुं केम पामे ? ते कहे छे. बाधक जे परभाव तेहने अनुयायी अशुद्ध कर्त्तादि कारकपणुं मिथ्यात्व, असंयम, कषाय रूप भाव अशुद्धतारूप सामान्य पक्ष अशुद्धसाध्यानुगत अशुद्ध-कर्त्तापणुं तेहने निवारवुं, ते पक्ष रोकीने स्वरूपानुगत करवुं, तेमाटे ए अनादिनी मूल भूलवी. जिहां सुधी कर्त्ता परभाव-कारक छे, तिहां सुधी कांइ साधकता नथी. जिहां सुधी कर्त्ता अशुद्धकार्यानुयायी सामान्य पक्ष छे, तिहां सुधी शुद्धसाधकतानो अंश पण उपजे नहीं, अशक्य छे. जे आत्मा तत्त्वकर्त्ता पणे थया विना स्वशुभ प्रवर्त्तन ते बालभावत्व छे, तेमाटे कारकचक्र बाधकताथी वारीने, साधकताने अवलंबीने ते कारक-चक्रने समारवुं स्वरूपानुयायी करवुं अने पोताना आत्माने एम कहेवुं जे हे चेतन ! तुं परभावनो कर्त्ता तथा भोक्ता अने ग्राहक नथी, तुंतो सच्चिदानंदनो शुद्धविलासी छो, अने तुं ते परभावमां रती करी रह्यो छो. तथा परभावनो भोगी थइ रह्यो छो ! ए तुझने घटे नहीं, ताहरूं कार्य तो अनंत गुण पर्यायनिष्पन्न स्वरूपकर्त्ता स्वरूपभोक्तापणुं छे. तेमाटे हे चैतन्यहंस ! हवे तुं यथार्थ जिनशासनीक अनुभव करीने, अनादिविभाव निवर्त्तीने पोताना तत्त्व मध्ये स्वतत्त्व निरे-धनरसी थइने पोतानो जे स्वभाव तेहने कर. एणीज ताहरूं कार्य छे, तुं तेहनुं उपादान कारण निर्मल छो, तेहनो नैरंतर्यो छे. तुं ताहरी गुणसंपदा माहरे करीने प्रगट करवा-

वेतमें चेतनां समवाय संबंधमां छे, एटले आत्मा आत्मभावनो कर्त्ता छे, ए समवायसंबंधें मूलपणे सादि अनंता कालपर्यंत निजक्षेत्रमें चेतनां पोताना असंख्याता प्रदेशरूप क्षेत्रमध्ये आत्मधर्ममां निराबाध सिद्धतापणे रहे, सिद्धिनी आदि छे, परंतु अंत नथी, माटे सादि अनंतो काल स्वक्षेत्र स्वस्वरूपमां आत्मा रहे ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः

परकर्तृत्व स्वभाव, करे तां लगे करे रे ॥ क० ॥
शुद्ध कार्य रुचि भास, थये नवि आदरे रे ॥थ०॥
शुद्धातम निज कार्य, रुचे कारक फिरे रे ॥रु०॥
तेहिज मूल स्वभाव, ग्रहे निज पद वरे रे ॥ग्र० ॥५॥

अर्थः—ए चेतनां जे भावकर्म, द्रव्यकर्म अने नोकर्म, तेहने कर्त्तापणाने स्वभावें करे, जिहां सीम तेहनेज करे, एटले ए परकर्तापणुं अनादिकालनो करे छे, जिहां सुधी चलो लागी, चलो भोगी, तिहां सुधि परकर्तापणुं ए आत्मा करे, पण जेवारें शुद्ध, निर्मल, निराबाध, स्वगुण प्रगट करवा रूप, कार्यनी रुचि थाय, तेवारें परकर्तापणुं आदरे नहीं, शुद्ध आत्मस्वरूप. स्याद्वाद रीतें सप्तभंगीपणे भासन तथा रुचि तेहीज कारण पदार्थनां बीज छे, ते माटे जे सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, ते मोक्षनुं मूल छे, शुद्धात्म अनंतज्ञान, दर्शन, अव्याबाध सुखमयी. अकर्ता, स्वरूपानंदरूप अनंतधर्म समाधानरूप, सहज एकांतस्थितिरूप, अमूर्त्ती, अयोगी, अलेशी, अलेशी, अवेदी, अशरीरी, अणाहारी, इत्यादि स्वरूपानंद स्वरूपें, तेहनी रुचि करे करे कारक पण फिरे, जिहां

गुणने तथा पर्यायने आवरण छे, परंतु स्वभावने आवरण नथी, स्वभाव तेहना कारणभूत गुण चेतना तथा वीर्य तेने अवराये कर्त्तापणानी प्रवृत्ति मंद पडे, परंतु कर्त्तापणुं मूलगुं अवराय नहीं, ते चेतनावीर्य विपरीत परिणमवे, परभाव कर्त्तापणे प्रवर्त्यो, तेहथी पोतानुं स्वरूप अवरायीज गयुं, ते अवरायुं तेहथी स्वस्वभावने करी शके नहीं, अने अक्षरनो अनंतमो भाग, चेतना अने योगस्थानरूप वीर्य, क्षयोपशमी रह्यो, परंतु ते अनादिनी चाल्यी परभावानुयायीज छे, तेहथी स्वरूपकर्त्तापणुं तो थयुं नहीं, तेवारें कर्त्तापणे परभावने करयो, आश्रवबंधरूप कार्यनो कर्त्ता थयो, एटले अशुद्धकार्य कर्युं, परंतु अवरायुं नहीं, तेहथी कर्त्तापणुं अनावृत थके कारक पण अवराणां नहीं, जो कारकनुं चक्र अवराय, तो आश्रवभाव बंधपद्धति कोण करे? तेहनो आदाता अभिनवपर्यायनो त्यागी पूर्वपर्यायनो आधार, अशुद्धतानो कोण थाय? माटे कारक निरावरण छे, परंतु विकारी थयां, तेहथी मूलस्वरूपथी चूकयां एम थयुं. हवे एनुं पलटणपणुं पण आत्मा करे, तो थाय, ते कहे छे. जे चेतन केनां चेतना तेवारें साकार अनाकारने यथार्थ भासन करीने पोताना शुद्धस्वभावने ग्रहे, भासनप्रति रुचिनुं आचरणपणुं अंगीकार करे, तेवारें एहीज सकल केतां छए कारक निज केतां पोतानो साधकभाव जे कर्मविदारण स्वरूप प्रगट करवारूप भाव, तेने रहे केतां पामे, एटले एहीज कारक ते १ स्वधर्मकर्त्ता ते कर्त्ता, २ स्वधर्मपरिणमन ते कार्य, ३ स्वधर्मानुयायी गुणपरिणति, चेतनावीर्य शक्ति, ते करण, ४ साधनगुणशक्तिनुं प्रगटवुं, ते संप्रदान, ५ पूर्वपर्यायनुं निवर्त्तन ते अपादान, ६ स्वगुणनुं

रूप नीपजे, तेथी भव्य जीवने [illegible]
शक्ति, ते श्रीअरिहंतजीनी सेवना [illegible]
कर्यो छे, जे हे प्रभुजी ! [illegible]
नाथ सुख ने प्रगट करवाने [illegible]
आलंबन केवां आधार ने [illegible]
मुनिजनना प्राणाधार. आचार्य [illegible]
भावचिंतामणि समान, [illegible]
स्वरूप. अनंत गुणाकर [illegible]
श्रीजिनराज, महाराज. [illegible]
देवत छे. तेमाटे सर्व देवेंद्रादिक [illegible]
जे जिनचंद्र श्रीवीतराग अरिहा. [illegible]
मानवा रूप. [illegible]
भक्ति मनमा धरो. [illegible]
हे देवचंद्र ! श्रीजिनचंद्रनी [illegible]
धरो, तो अव्याबाध [illegible]
रूप, जेहना अनंत [illegible]
जेहनो छेद नहीं. विनाश नहीं. [illegible]
ते आदरो, एटले पामे, [illegible]
थतामां रमे. सिद्ध थशे, [illegible]
सिद्धऋषि दीशे । [illegible]
निःकलंक, जगदानंद. [illegible]
प्रवचनो सागर [illegible]
॥ ७ ॥ इति मल्लिनाथजिन [illegible]

॥अथ विंशतितम श्रीमुनिसुव्रतजिनस्तवनं॥

॥ओलगडी ओलगडी सुहेली हो श्री श्रेयांसनी रे॥ ए देशी॥

ओलगडी ओलगडी ता कीजें
श्री मुनिसुव्रत स्वामीनी रे ॥
जेहथी निज पद सिद्धि ॥
केवल ज्ञानादिक गुण उलगे रे,
लहिएं सहेज समृद्धि ॥ ओ० ॥ १ ॥

अर्थः—हवे श्रीमुनिसुव्रत परमेश्वर अद्भुत रागना गगनथी, अहिंसकनी स्तवना करे छे, मुनि जे निर्ग्रंथ तेहना गुण केतां भला व्रत एहवा श्रीमुनिसुव्रत प्रभु तेहनी ओलग केतां सेवा एटले गुणग्राम करीयें तेहथी निजपद केतां पोतानुं पद जे परमानंद पद तेहनी सिद्धि केतां निष्पत्ति थाय वळी केवल ज्ञानादिक गुण उलगे केतां प्रगटे, एमनो भोगी थाय, तथा सहज आत्मिक समृद्धि पामे ए प्रभु सेवानुं फळ छे ॥ १ ॥ इति ॥

उपादान उपादान निज परिणति
पण कारण निमित्त आधीन ॥
पुष्ट अपुष्ट दुविध ते उपदिशयो
ग्राहक विधि आधीन ॥ ओ०

अर्थः—हवे इहां आत्मसाधना करवामध्यें उपादान ते निज केतां पोतानी परिणति ने वस्तुनो मूलधर्म छे, एटले जे आत्मसत्ता छती छे, ते उपादान कारण छे, पण ते निमित्त कारणने आधीन छे, निमित्त सेवन कर्त्ता उपादान कारण समरे, ते निमित्त कारणना बे भेद छे. एक पुष्ट निमित्त बीजुं अपुष्ट निमित्त, तेने ग्राहक जे कार्यनो कर्त्ता, ते जे विधें कार्य थाय, ते विधें कार्य ग्रही प्रवर्त्तावे, तो ते निमित्त कारण कार्यनो हेतु थाय, पण अविधें ग्रहण करे, तो निमित्त कारण कार्य करे नहीं. जेम कुंभकार चक्रने फेरवे, तो माटीना पिंडने घटपणे पमाडे, अने नहीं फेरवे तो न पमाडे. एटले श्रीअरिहंतजी मोक्षना निमित्त कारण तो छे, परंतु जे रीतें आगममध्यें कह्युं छे, तेविधें आशातना टाली, पुद्गलाशंसा रहित केवलज्ञानादि गुणनी ओलखाण सहित जो सेवे, तो मोक्षनो निमित्त कारण थाय, पण अविधें सेवना, ते कामनी नहीं, माटे ग्राहकने विधि सहित कारण ग्रहवुं, तो ते कार्यने करे ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

साध्य साध्य धर्म जेमांहे होवे रे,
ते निमित्त अतिपुष्ट ॥
पुष्पमांहे तिलवासक वासना रे,
ते नवि प्रध्वंसक दुष्ट ॥ ओ० ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे पुष्टनिमित्तनुं स्वरूप कहे छे. साध्य केतां करवा योग्य, जे कार्यधर्म, ते जे कारणमां होय, ते तेनुं पुष्ट कारण कहीयें. ते पुष्ट कारण विधियें कार्य करवाने अर्थे ग्रह्यो

॥अथ विंशतितम श्रीमुनिसुव्रतजिनस्तवनं॥

॥ओलगडी ओलगडी सुहेली हो, श्री श्रेयांसनी रे॥ ए देशी॥

ओलंगडी ओलंगडी तो कीजें,
श्री मुनिसुव्रत स्वामीनी रे ॥
जेहथी निज पद सिद्धि ॥
केवल ज्ञानादिक गुण उल्लसे रे,
लहिएं सहेज समृद्धि ॥ ओं० ॥ १ ॥

अर्थः—हवे श्रीमुनिसुव्रत परमेश्वर अद्भुत शक्त्य परमात्मा, अहिंसकनी स्तवना करे छे, मुनि जे निर्ग्रंथ तेहना सुव्रत केतां भला व्रत एहवा श्रीमुनिसुव्रत प्रभु तेहनी ओलग केतां सेवा एटले गुणग्राम करियें जेहथी निजपद केतां पोतानुं पद जे परमानंद पद तेहनी सिद्धि केतां निष्पत्ति थाये, वली केवल ज्ञानादिक गुण उल्लसे केतां प्रगटे, ज्ञानादिक रमणनो भोगी थाय, तथा सहज आत्मिक स्वरूपसमृद्धि पामे, ए प्रभु सेवानुं फल छे ॥ १ ॥ इति ॥

उपादान उपादान निज परिणति वस्तुनी रे,
पण कारण निमित्त आधीन ॥
पुष्ट अपुष्ट दुविध ते उपदिश्यो रे,
ग्राहक विधि आधीन ॥ ओं० ॥ २ ॥

अर्थः—हवे इहां आत्मतत्त्वना कारणमध्ये उपादान
निज केतां पोतानी परिणति ने वस्तुनो मूलधर्म छे, ए
जे आत्मसत्ता रूपी छे. ते उपादान कारण छे, पण ते निमि
कारणने आधीन छे, निमित्त सेवन कर्यां उपादान कार
नीपजे, ने निमित्त कारणना बे भेद छे. एक पुष्ट निमित्त बीजुं
अपुष्ट निमित्त. तेने ग्राहक जे कार्यनो कर्ता, ते जे विधे
कार्य थाय. ते विधे कार्य ग्रहीं प्रवर्तावे. तो ते निमित्त कारण
कार्यनो हेतु थाय. पण अविधे ग्रहण करे, तो निमित्त
कारण कार्य कर नहीं. जेम कुंभकार चक्रने फेरवे, तो मा-
टीना पिंडने घटपणुं पमाडे. अने नहीं फेरवे तो न पमाडे.
एटले श्रीअरिहंतजी मोक्षना निमित्त कारण तो छे, परंतु जे
रीते आगममध्ये कह्युं छे, तेविधे आज्ञानला रुचि, शुद्धासंता
रहित केवलज्ञानादि गुणनी ओलखाण सहित जो सेवे, तो
मोक्षनो निमित्त कारण थाय, पण अविधे सेवना, ते कामनी
नहीं, माटे ग्राहकने विधि सहित कारण ग्रहवुं. तो ते कार्यने
करे ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

साध्य साध्य धर्म जेमांहि होवे रे,
ते निमित्त अतिपुष्ट ॥
पुष्पमांहि तिलवासक वासना रे,
ते नवि प्रध्वंसक दुष्ट ॥ ओ० ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे पुष्टनिमित्तनुं लक्षण कहे छे. साध्य जेनां
करता होय, ते कर्त्तव्यं, ते जे कारणमां होय, ते तेवुं पुष्ट
कारण कहिये. ते पुष्ट कारण विधिये करी करवाने अर्थे ग्रहो

॥अथ विंशतितम श्रीमुनिसुव्रतजिनस्तवनं॥

॥ओलंगडी ओलंगडी सुहेली हो, श्री श्रेयांसनी रे॥ ए देशी॥

ओलंगडी ओलंगडी तो कीजें,
श्री मुनिसुव्रत स्वामीनी रे ॥
जेहथी निज पद सिद्धि ॥
केवल ज्ञानादिक गुण उल्लसे रे,
लहिए सहेज समृद्धि ॥ ओ० ॥ १ ॥

अर्थः—हवे श्रीमुनिसुव्रत परमेश्वर अद्भुत आत्म परमात्मा, अहिंसकनी स्तवना करे छे, मुनि जे निर्ग्रंथ तेहना गुरु केतां भला व्रत पुण्य श्रीमुनिसुव्रत प्रभु तेहनी ओलग केतां सेवा मुख्ये गुणग्राम करीये जेहथी निजात्म तेहनुं पोतानुं पद जे परमानंद पद तेहनी सिद्धि थाय नि[illegible] पामे, वली केवल ज्ञानादिक गुण उल्लसे प्रगट थाय, अनाकुल रसनो भोगी थाय, तथा सहज अकृत्रिम आत्मसमृद्धि पामे, ए प्रभु सेवानुं फल छे ॥ १ ॥ इति ॥

उपादान उपादान निज परिणति वस्तुनी रे,
पण कारण निमित्त आधीन ॥
पुष्ट अपुष्ट दुविध ते उपदिस्यो रे,
ग्राहक विधि आधीन ॥ ओ० ॥ २ ॥

अर्थः—हवे इहां आत्मभावना करवामध्यें उपादान ते निज केतां पोतानी परिणति ने वस्तुनो मूलधर्म छे, एटले जे आत्मसत्ता छती छे, ते उपादान कारण छे, पण ते निमित्त कारणने आधीन छे, निमित्त सेवन कर्त्ता उपादान कारण समरे, ते निमित्त कारणना बे भेद छे. एक पुष्ट निमित्त बीजुं अपुष्ट निमित्त, तेने ग्राहक जे कार्यनो कर्त्ता, ते जे विधें कार्य थाय, ते विधे कार्य ग्रही प्रवर्त्तावे, तो ते निमित्त कारण कार्यनो हेतु थाय. पण अविधे ग्रहण करे, तो निमित्त कारण कार्य करे नहीं. जेम कुंभकार चक्रने फेरवे, तो माटीना पिंडने घटपणे पमाडे, अने नहीं फेरवे तो न पमाडे. एटले श्रीअरिहंतजी मोक्षना निमित्त कारण तो छे, परंतु जे रीतें आगममध्यें कह्युं छे, तेविधें आशातना टाली, पुद्गलाशंसा रहित केवलज्ञानादि गुणनी ओलखाण सहित जो सेवे, तो मोक्षनो निमित्त कारण थाय, पण अविधें सेवना, ते कामनी नहीं, माटे ग्राहकने विधि सहित कारण ग्रहवुं. तो ते कार्यने करे ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थ ॥

साध्य साध्य धर्म जमांहे होवे रे,
ते निमित्त अतिपुष्ट ॥
पुष्पमांहे तिलवासक वासना रे,
ते नवि प्रध्वंसक दुष्ट ॥ ओ० ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे पुष्टनिमित्तनुं स्वरूप कहे छे. साध्य केतां करवा योग्य, ते कार्यधर्म, ते जे कारणमां होय, ते तेनुं पुष्ट कारण कहीयें. ते पुष्ट कारण विविधें कार्य करवाने अर्थे ग्रह्यो

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

[illegible]

अर्थः—हवे इहां आत्मसाधना करवामध्ये उपादान ते निज केतां पोतानी परिणति ने वस्तुनो मूलधर्म छे, एटले जे आत्मसत्ता छती छे, ते उपादान कारण छे, पण ते निमित्त कारणने आधीन छे, निमित्त सेवन कर्यां उपादान कारण समरे, ते निमित्त कारणना बे भेद छे. एक पुष्ट निमित्त बीजुं अपुष्ट निमित्त. तेने ग्राहक जे कार्यनो कर्त्ता, ते जे विधें कार्य थाय, ने विधे कार्य ग्रही प्रवर्त्तावे, तो ते निमित्त कारण कार्यनो हेतु थाय. पण अविधें ग्रहण करे, तो निमित्त कारण कार्य करे नहीं. जेम कुंभकार चक्रने फेरवे, तो माटीना पिंडने घटपणे पमाडे, अने नहीं फेरवे तो न पमाडे. एटले श्रीअरिहंतजी मोक्षना निमित्त कारण तो छे, पंतु जे रीतें आगममध्ये कह्युं छे, तेविधें आशातना टाली, पुद्गलाशंसा रहित केवलज्ञानादि गुणनी ओलखाण सहित जो सेवे, तो मोक्षनो निमित्त कारण थाय, पण अविधें सेवना, ते कामनी नहीं, माटे ग्राहकने विधि सहित कारण ग्रहवुं, तो ते कार्यने करे ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

साध्य साध्य धर्म जमांहे होवे रे,
ते निमित्त अतिपुष्ट ॥
पुष्पमांहे तिलवासक वासना रे,
ते नवि प्रध्वंसक दुष्ट ॥ ओ० ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे पुष्टनिमित्तनुं स्वरूप कहे छे. साध्य केतां करवा योग्य, जे कार्यधर्म, ते जे कारणमां होय, ते तेनुं पुष्ट कारण कहीयें. ते पुष्ट कारण विधियें कार्य करवाने अर्थे ग्रह्यो

॥अथ विंशतितम श्रीमुनिसुव्रतजिनस्तवनं॥

॥ओलंगडी ओलंगडी सुहेली हो, श्री श्रेयांसनी रे॥ए देशी॥

ओलंगडी ओलंगडी तो कीजें,
श्री मुनिसुव्रत स्वामीनी रे ॥
जेहथी निज पद सिद्धि ॥
केवल ज्ञानादिक गुण उल्लसे रे,
लहिए सहेज समृद्धि ॥ ओ० ॥ १ ॥

अर्थः—हवे श्रीमुनिसुव्रत परमेश्वर अद्भुत शान्त परमात्मा, अहिंसकनी स्तवना करे छे, मुनि जे निर्ग्रंथ तेहना सुव्रत केतां भला व्रत एहवा श्रीमुनिसुव्रत प्रभु तेहनी ओलग केतां सेवा एटले गुणग्राम करियें तेहथी निजपद केतां पोतानुं पद जे परमानंद पद तेहनी सिद्धि केतां निष्पत्ति थाये, वली केवल ज्ञानादिक गुण उल्लसे केतां प्रगटे, आनन्द रसनो भोगी थाय, तथा सहज अकृत्रिम स्वरूपसमृद्धि पामे, ए प्रभु सेवनुं फल छे ॥ १ ॥ इति ॥

उपादान उपादान निज परिणति वस्तुनी रे,
पण कारण निमित्त आधीन ॥
पुष्ट अपुष्ट दुविध ते उपदिश्यो रे,
ग्राहक विधि आधीन ॥ ओ० ॥ २ ॥

अर्थः—हवे इहां आत्मभावना करवामध्यें उपादान ते निज केतां पोतानी परिणति ने वस्तुनो मूलधर्म छे, एटले जे आत्मसत्ता छती छे, ते उपादान कारण छे, पण ते निमित्त कारणने आधीन छे, निमित्त सेवन कर्त्ता उपादान कारण समरे, ते निमित्त कारणना बे भेद छे. एक पुष्ट निमित्त बीजुं अपुष्ट निमित्त, तेने ग्राहक जे कार्यनो कर्त्ता, ते जे विधें कार्य थाय. ते विधें कार्य ग्रही प्रवर्त्तावे, तो ते निमित्त कारण कार्यनो हेतु थाय. पण अविधें ग्रहण करे, तो निमित्त कारण कार्य करे नहीं. जेम कुंभकार चक्रने फेरवे, तो माटीना पिंडने घटपणे पमाडे. अने नहीं फेरवे तो न पमाडे. एटले श्रीअरिहंतजी मोक्षना निमित्त कारण तो छे, परंतु जे रीतें आगममध्यें कयुं छे, तेविधें आशातना टाली, पुद्गलाशंसा रहित केवलज्ञानादि गुणनी ओलखाण सहित जो सेवे, तो मोक्षनो निमित्त कारण थाय, पण अविधें सेवना, ते कामनी नहीं, माटे ग्राहकने विधि सहित कारण ग्रहवुं, तो ते कार्यने करे ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

> साध्य साध्य धर्म जेमांहे होवे रे,
> ते निमित्त अतिपुष्ट ॥
> पुष्पमांहे तिलवासक वासना रे,
> ते नवि प्रध्वंसक दुष्ट ॥ ओ० ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे पुष्टनिमित्तनुं स्वरूप कहे छे. साध्य केतां करवा योग्य, जे कार्यधर्म, ते जे कारणमां होय, ते तेनुं पुष्ट कारण कहीयें. ते पुष्ट कारण विधियें कार्य करवाने अर्थे ग्रहो

॥अथ विंशतितम श्रीमुनिसुव्रतजिनस्तवन॥

॥ओलंगडी ओलंगडी सुहेली [illegible] ॥

ओलंगडी ओलंगडी [illegible] कीजें,
श्री मुनिसुव्रत स्वामीनी [illegible] ॥
जेहथी निज पद सिद्ध ॥
केवल ज्ञानादिक गुण [illegible],
लहिये सहेज समृद्ध ॥ ओ० ॥ १ ॥

अर्थ—[illegible]
[illegible] केना [illegible] तानुं पद जे [illegible] थकी केवल ज्ञानादिक गुण [illegible] तेनो भोगी [illegible] सर्व [illegible] ॥ १ ॥

उपादान उपादान [illegible],
पण कारण निमित्त [illegible] ॥
[illegible]
[illegible] ॥ ओ० ॥ २ ॥

अर्थः—हवे इहां आत्मसाधना करवामध्ये उपादान ते निज केतां पोतानी परिणति ने वस्तुनो मूलधर्म छे, एटले जे आत्मसत्ता छती छे, ते उपादान कारण छे, पण ते निमित्त कारणने आधीन छे, निमित्त सेवन कर्त्ता उपादान कारण समरे, ते निमित्त कारणना बे भेद छे. एक पुष्ट निमित्त बीजुं अपुष्ट निमित्त. तेने ग्राहक जे कार्यनो कर्त्ता, ते जे विधें कार्य थाय, ते विधें कार्य ग्रही प्रवर्त्तावे. तो ते निमित्त कारण कार्यनो हेतु थाय, पण अविधें ग्रहण करे, तो निमित्त कारण कार्य करे नहीं. जेम कुंभकार चक्रने फेरवे, तो माटीना पिंडने घटपणे पमाडे, अने नहीं फेरवे तो न पमाडे. एटले श्रीअरिहंतजी मोक्षना निमित्त कारण तो छे, परंतु जे रीतें आगममध्यें कह्युं छे, तेविधें आशातना टाळी, पुद्गलाशंसा रहित केवलज्ञानादि गुणनी ओलखाण सहित जो सेवे, तो मोक्षनो निमित्त कारण थाय, पण अविधें सेवना, ते कारणनी नहीं, माटे ग्राहकने विधि सहित कारण ग्रहवुं, तो ते कार्यने करे ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

साध्य साध्य धर्म जेमांहे होवे रे,
ते निमित्त अतिपुष्ट ॥
पुष्पमांहे तिलवासक वासना रे,
ते नवि प्रध्वंसक दुष्ट ॥ ओ० ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे पुष्टनिमित्तनुं स्वरूप कहे छे. साध्य केतां करवा योग्य, ते कार्यवर्ग, ते जे कारणमां होय, ते तेवुं पुष्ट कारण कहीयें. ते पुष्ट कारण निपजावे कार्य करवाने अर्थे ग्रह्यो

थकी कार्यने करे, पण ते कार्यनो ध्वंसक न थाय, तेहनो दृष्टांत कहे छे. जेम तेलने सुगंधवासना करवारूप कार्य, तेहनुं कारण पुष्प छे, परंतु वासना करवी ते साध्य छे, ते वासना फूलमध्ये छे, अने ते फूल ते तेल तथा तेलनी वासनाना ध्वंसक नथी, तेमाटे ते पुष्टनिमित्त छे ॥ उक्तं च विशेषावश्यके ॥ कार्यस्य आसन्ननिमित्तं इति तदेव पुष्टं, दूरतरं कारणनैमित्तिकं तत् अपुष्टं ॥इति॥ तथा च श्रीसिद्धसेनपाज्यैः ॥ पुष्टहेतुर्जिनेंद्रोयं, मोक्षसद्भावसाधने ॥ इति ॥ तेहथी श्रीअरिहंतदेव ते मोक्षरूप कार्यना पुष्ट निमित्त छे, जे माटे साध्य जे निरावरण, परमात्मपद ते श्री अरिहंतने विषे छे, माटेज श्री अरिहंत ते पुष्ट निमित्त छे, जो विधियें सेवन थाय, तो एथी मोक्षकार्य निपजे॥३॥इति॥

दंड दंड निमित्त अपुष्ट घडातणो रे,
नवि घटता तसु मांह ॥
साधक साधक प्रध्वंसकता अछे रे,
तिणें नहीं नियत प्रवाह ॥ ओ० ॥ ४ ॥

अर्थः—हवे अपुष्टनिमित्त देखाडे छे, जेम दंड ते घडानुं अपुष्ट निमित्त छे, कारण के जेम फूलमांहे सुगंधवासना छे. तेम घटना केनां घटपणुं ते दंडमांहे नथी, कर्त्ताने प्रेरे कारण छे, ए दंड घटनुं साधक निपजाववानुं कारण पण छे, अने घटनुं प्रध्वंस करवानुं कारण पण छे. जो घट ध्वंसकर्त्ता तेहीज दंडने घट ध्वंस करावे प्रवर्त्तावे तो घट ध्वंस करवानुं कारण पण तेहीज दंड थाय, माटे ए नियत प्रवाह एनां निश्चेंथी एक धाटनो नथी. जे निश्चें घट कर. ए धर्म एहमां

नर्यी, अने श्री अरिहंत परमात्मानुं सेवन ते निश्चे सिद्धतानुं कारण छे, एहने सिद्धिकार्यनी रुचे जे सेवे, तेहने नियमा सिद्धि निपजे ॥ ४ ॥ इति ॥

षट् कारक षट् कारक ते कारण कार्यनुं रे,
जे कारण स्वाधीन ॥
ते कर्त्ता ते कर्त्ता सहुकारक ते वसु रे,
कर्म ते कारण पीन ॥ ओ० ॥ ५ ॥

अर्थः—हवे कारणनी पुष्टता कहेवा निमित्ते कारक कहे छे. १ कर्त्ता, २ कर्म, (कार्य) ३ करण, ४ संप्रदान, ५ अपादान, ६ अधिकरण. ए छ कारक छे, ते हरेक कार्य, निपजाववानां कारण छे. जिहां कर्त्ता क्रिया करे, तिहां अनुरूपने (सहजपने) ए छ कारक जाणवां, इहां आत्मा पोतानुं सिद्धतारूप कार्य तेने करवा रूप क्रिया करे, तेवारें ए छ कारक सर्व होय, तिहां कर्त्ता जे आत्मा तेहनुं सिद्धिरूप कार्य अभेद छे, ते माटे तेनां कारक पण अभेद छे, अने भिन्नकार्यनो कर्त्ता भिन्न होय, तेवारें कारक पण भिन्न होय, ए नीति छे, परंतु निमित्त कारण तो सर्वकार्यमां भिन्नज होय, माटे सिद्धरूप कार्यनुं निमित्त कारण श्रीअरिहंत छे, तेहने कारक उपादानपने सर्व पहोंचे छे, ए नीति छे.

हवे छ कारकमां प्रथम कर्त्ता नामे कारक छे, तेहनुं लक्षण कहे छे. जे कार्य निपजाववानुं स्वाधीन कारण एटले सर्वकारक तेहने आधीन होय ते कर्त्ता कारक कहीयें. स्वतंत्रः कर्त्ता, इति वचनात् ॥ कारणमहता उद्धा, तत्यसंननोति कारणे

कर्त्ता ॥ श्रीभाष्यसुधांबुधिवाक्यं ॥ सर्वकारक ते कर्त्ताने वशें छे, आधीन छे. हवे बीजुं कर्मनामा कारक, ते जे कारणें पुष्ट थाये अने कर्युं थाय, ते कर्मकारक कहीयें ॥ उक्तं च ॥ कम्मं किरियाकरणं इति ॥

कार्य कार्य संकल्प कारकदशा रे,
छती सत्ता सद्भाव ॥
अथवा तुल्य धर्मने जोयवे रे,
साध्यारोपण दाव ॥ ओ० ॥ ६ ॥

अर्थः—इहां कोई पूछे जे कर्म तो कार्य छे, पण कारण नथी, तेहने उत्तर कहे छे. जे कर्त्ताने पहेलां तो कार्यनो संकल्प थाय छे, ते वस्तुने ते कर्त्ता पहेलां संकल्प कार्यने विचारे, ते वार पछी कार्य करे, ते माटे कारण कहियें ॥ उक्तं च विशेषावश्यके ॥ सर्वोऽपि बुद्धौ संकल्प्य कार्यं करोति इति ॥ व्यवहारनयतो बुद्ध्यावद्र्यवतिमिनस्य कुंभस्य चिकीर्षितो मृण्मयः कुंभस्तद्बुद्ध्यालंबनतया कारणं भवति ॥ अथवा स्थासादि काल ते घट कार्यनुं कारण छे, अने कर्त्ताने तो स्थासादि कार्य छे, अथवा जे कार्य निपजाववानुं मृत्तिकादिक मूल उपादान, तेहमां जे कार्यनी छति सत्तायें योग्यतापणे रही छे, ते कार्यपणुं सत्तागत ते प्रागभावी कार्यनुं कारण छे ॥ उक्तं च ॥ अथवा मन्यो योग्यः स्वरूपसत्तामर्पयति अस्यपरुत्पाद्यितुमनः सुत्रस्यात्कार्यमप्यात्मनः कारणमिष्यते अवश्यं च कर्मणः कारणत्वमेष्टव्यं ॥ इति ॥ सत् भाव नजीकपणे जे कारण उपादान निमित्त ते सर्व नजीक थइ, कार्यने अर्थे ते कारणपणुं मा मात्र

छतांपणुं ते कार्य बुद्धियें मेलवे, ते माटे कार्यने
अथवा तुल्य धर्मनुं जोवुं, ते मुजने एहवुं कार्य
छे, जेम कोइ आत्मा मोक्ष पूर्णानंद करवाने उद्यम
ते सिद्धरूपनिष्पन्न तत्त्वने जोवे, अने विचारे जे
हरूं एहवुं तत्त्व निपजाववुं छे, एम संकल्प क
तुल्य धर्म जोइ कार्यनो उद्यम घणो थाय, ते माटे
पण कारण कहेवुं ॥ उक्तं च श्री पूर्व्यैः किं बहुना ।
यथाप्रवृत्तिनो पटवे तथा शुधायाः कर्मणः कारणत्वं
न्यथा कर्मणो कारणत्वे करोति इति कारणमिति यत्नां
त्वादुपपत्तिरेव स्यादिति ॥ ए रीतें कर्मने विषे कार
मानवुं, एमज कारकता छे, तात्पणुं आरोपण करवुं
कर्मने कारकपणुं जाणवुं ॥ ६ ॥ इति षष्ठ गाथार्थः ॥

अतिशय अतिशय कारण कारक करणते
निमित्त अने उपादान ॥
संप्रदान संप्रदान कारण पद भव नथी रे,
कारण व्यय अपादान ॥ ओ० ॥ ७ ॥

अर्थः—अतिशय उत्कृष्टपणे जे कारण ते कारणनाम
तुं कारक कहियें, तेहना बे भेद छे. एक निमित्त कारण
बीजुं उपादान कारण, तिहां उपादान ते आत्मानो सत्ता धर्म
निमित्त कारण श्रीअरिहंतादिक अने कारण पदनुं भवन थवुं
एटले उपादान अधिक अधिक कारणता पामे, ते कारणपर्या-
यनो लाभ. ते संप्रदानपणुं जाणवुं, जे उपादान कारणमां नवो
नवो कारण पर्याय पामे, ते चोथुं संप्रदानकारक कहियें, अथवा

कत्ता ॥ श्रीभाष्यसुधांबुधिवाक्यं ॥ सर्वकारक ते कर्त्ताने वशें छे, आधीन छे. हवे बीजुं कर्मनामा कारक, ते जे कारणें पुष्ट थाये अने कर्युं थाय, ते कर्मकारक कहीयें ॥ उक्तं च ॥ कम्मं किरियाकरणं इति ॥

कार्य कार्य संकल्पे कारकदशा रे,
छत्ती सत्ता सद्भाव ॥
अथवा तुल्य धर्मने जोयवे रे,
साध्यारोपण दाव ॥ ओ० ॥ ६ ॥

अर्थः—इहां कोई पूछशे जे कर्म तो कार्य छे, पण कारण नथी, तेहने उत्तर कहे छे. जे कर्त्ताने पहेलां नो कार्यनो संकल्प थाय छे, ते वखतें ते कर्त्ता पहेला संकल्प कार्यनें विचारे, ते वार पछी कार्य करे, ते माटे कारण कहियें ॥ उक्तं च विशेषावश्यके ॥ सर्वोऽपि बुद्धो संकल्प कार्यं करोति इति ॥ व्यवहारस्ततो बुद्धाव्यवसितस्य कुंभस्य चिकीर्षितो मृण्मयः कुंभस्तदुद्देशालंबननया कारणं भवति ॥ अथवा स्थासादि काल ते घट कार्यनुं कारण छे, अने कर्त्ताने नो स्थासादि कार्य छे, अथवा जे कार्य निपजाववानुं मृत्तिकादिक मूल उपादान, तेहमां जे कार्यनी छति सत्तायें योग्यतापणे रही छे, ते कार्यपणुं सत्तागत ते प्रागभावी कार्यनुं कारण छे ॥ उक्तं च ॥ अथवा भव्यो योग्यः स्वरूपलाभस्येति शक्यउत्पादयितुमतः सुकरत्वात्कार्यमप्यात्मनः कारणमिष्यते अवश्यं च कर्मणः कारणत्वमेष्टव्यं ॥ इति ॥ सत् भाव नजीकपणे जे कारण उपादान निमित्त ते सर्व नजीक करे, कार्यने अर्थे ते कारणनुं सत् भाव

[illegible] ॥ [illegible] ॥ [illegible] ते करीने [illegible] छे. [illegible] [illegible] ते जे कार्य [illegible] पामे अने [illegible] [illegible] करीने ॥ उक्तं च ॥ [illegible] [illegible] ॥

कार्य कार्य सकल कारकवशा रे,
छती सत्ता सद्भाव ॥
अथवा तुल्य धर्मने जोगवे रे,
साध्यारोपण दाव ॥ ओ० ॥ ६ ॥

अर्थ—[illegible] कार्य छे, [illegible] [illegible] [illegible] करीने [illegible] [illegible] छे, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ उक्तं च [illegible] ॥ [illegible] ॥ [illegible] ॥ [illegible] छे, अने [illegible] छे, [illegible] [illegible] छे, [illegible] छे ॥ उक्तं च ॥ [illegible]

[illegible]

छतांपणे ते कार्य बुद्धियें मेटवे, ते माटे कार्यनें कारण कहे अथवा तुल्य धर्मनुं जोवुं, जे मुजने एहवुं कार्य निपजाववुं छे, जेम कोइ आत्मा मोक्ष पूर्णानंद करवाने उद्यमी थयो, ते सिद्धरूपनिष्पन्न तत्त्वने जोवे, अने विचारे जे मने मा-हरूं एहवुं तत्त्व निपजाववुं छे, एम संकल्प करवो, ते तुल्य धर्म जोइ कार्यनो उद्यम घणो थाय, ते माटे कार्यने पण कारण कहेवुं ॥ उक्तं च श्री पूज्यैः किं बहुना ॥ यथा यथायुक्तिनो घटते तथा क्रियायाः कर्मणः कारणत्वं वाच्यम-न्यथा कर्मणो कारणत्वे करोति इति कारणभिन्न पण्णां कारक-त्वानुपपत्तिरेव स्यादिति ॥ ए रीतें कर्मने विषे कारणपणुं मानवुं, एमज कारकता छे, सात्यलुं आरोपण करवुं एहज कर्मने कारकपणुं जाणवुं ॥ ६ ॥ इति षष्ठ गाथार्थः ॥

> अतिशय अतिशय कारण कारक करणते रे,
> निमित्त अने उपादान ॥
> संप्रदान संप्रदान कारण पद भव नथी रे,
> कारण व्यय अपादान ॥ ओ० ॥ ७ ॥

अर्थः—अतिशय उत्कृष्टपने जे कारण ते कारणनामा त्रीजुं कारक कहिये, तेहना बे भेद छे. एक निमित्त कारण बीजुं उपादान कारण, तिहां उपादान ते आत्मानो सत्ता धर्म निमित्त कारण श्रीअरिहंतादिक अने कारण पदनुं भवन थयुं एटले उपादान अधिक अधिक कारणता पामे, ते कारणपर्या-यनो लाभ. ते संप्रदानपणुं जाणवुं, जे उपादान कारणमां नवो नवो कारण पर्याय पामे, ते चोथुं संप्रदानकारक कहियें, अथवा



कार्यना नवा नवा पर्यायनुं प्रगट थवुं, ते संप्रदान कहियें. एटले कार्यपणानुं भवन ते संप्रदान कहियें, अने पाछला कारण पर्यायनो व्यय केतां विनाश ते अपादान पांचमुं कारक कहियें, जीर्ण कारणपर्यायनो नाश थाय कारणतानुं निपजवुं, ते रीतें कार्यनी निष्पत्ति छे ॥ ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥

भवन भवन व्यय विणु कारज नवि होवे रे,
जिम दृषदें न घटत्व ॥
शुद्धाधारशुद्धाधार स्वगुणनो द्रव्य छे रे,
सत्ताधार सुतत्त्व ॥ आ० ॥ ८ ॥

अर्थः—कोइ कहेशे जे संप्रदान तथा अपादान तेहमां शी कारणता छे? तेहनो उत्तर कहे छे. जे भवन केतां नवा पर्यायनुं थवुं, व्यय केतां पूर्वपर्यायनो नाश, ए थया विना कार्य निपजे नहीं, जेम माटीनो पिंड, ते पिंडपर्यायनो व्यय स्थासपर्यायनुं भवन तथा स्थासपर्यायनो व्यय, कोशपर्यायनुं भवन, कोशपर्यायनो व्यय, कुशल पर्यायनुं भवन, कुशल पर्यायनो व्यय, कपाल पर्यायनुं भवन, कपाल पर्यायनो व्यय, घटपर्यायनुं भवन, ए रीतें कार्यनी उत्पत्ति छे, तेम सिद्धताने नीपजावतां पण मिथ्यात्वपर्यायनो व्यय, सम्यक् पर्यायनुं भवन. तेहना [illegible]पर्यायनो [illegible]नो व्यय, [illegible] उत्पाद, ए रीतें कार्यनी निष्पत्ति छे, परंतु भवन तथा व्यय विना कार्य थाय नहीं, जेम दृषदेंकरी घटत्व न थाय, [illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible])

थाय, कार्यनी स्मरणा प्रागभावभोगीपणानी रुचि उपजे, ते रुचि संपूर्णसिद्धतानुं मुख्य कारण छे, ते रुचि थवाथी सात्र-नभाव, ध्यानावस्थालंबीने पूर्णानंदना निपजावे, आत्मानो समाज केवो साम्राज्य प्रगटे, तेहथी मोक्षनो कर्ता आत्मा खरो पण मोक्षनी रुचि विनानुं कर्तापणुं प्रगटे नहीं, अने ते रुचि श्रीअरिहंतदेवने दीठे निपजे, माटे श्रीअरिहंतनुं दर्शन, ते रुचिनुं कारण छे, अने रुचि ते मोक्षनुं कारण छे. एवी रीते मोक्षरूप कार्यनुं मूलकारण श्रीअरिहंतज छे, ते माटे माहारे मोक्ष निपजे, ए उपकार नमिजिनना करनार; श्रीअरिहंतनो जाण ॥ ९ ॥ इति ॥

वंदन वदन नमन सेवन वली पूजना रे,
स्मरण स्तवन वली ध्यान ॥
देवचंद्र देवचंद्र कीजें जगदीशनु रे,
प्रगटे पूर्ण निधान ॥ ओ० ॥ १० ॥

अर्थः—जेमाटे वंदन केवां कर जोडवा, नमन केवां शीर्ष नमावनारूप, सेवना ते आज्ञा मानवारूप, वली पूजना ते पुष्पादिकनी, तथा स्मरण ते वारंवार गुणनुं संभारवुं, स्तवन वर्तने करी गुणनुं कथन, हर्षथी करवुं, तथा ध्यान ते प्रभु-गुणे चित्तनी एकाग्रतानुं करवुं, एटला सर्व उपाय छे, ते सर्व देवचंद्र स्तुति कर्ता ते पोताने कहे छे, जे देवचंद्रक स-र्वस्व कीजें, श्री जगदीशजी त्रैलोक्यपालजी ते वाचा सेवे करीने प्रगटे केवा प्रकाश थाय, पूर्ण निधान, अक्षय, अनंत आत्मिक, सर्वसंपन्न निधान प्रगटे. एवो श्रीअरिहंतना ध्यानथी

सेवा करतां पोतानी पूर्णपरमात्मता निपजे, अविनाशी धन प्रकाश पामे, ए श्री मुनिसुव्रत देवाधि देवनो परम उपकार छे. ॥ १० ॥ इतिश्री मुनिसुव्रजिनस्तवनं संपूर्ण ॥ २० ॥

॥अथ एकविंशति श्रीनमिनाथ जिनस्तवनं॥

॥ पीछोलारी पाल, ऊभा दोय राजवी रे ॥ ए० ॥ ए देशी ॥

श्रीनमि जिनवर सेव, घनाघन उनम्यो रे ॥घ०॥
दिठां मिथ्या रोरव, भविकचित्तथी गम्यो रे॥भ०॥
शुचि आचरणारीति ते, अभ्र वधे वडां रे ॥अ०॥
आतमपरिणति शुद्ध, ते वीज झबूकडा रे ॥ते० १॥

अर्थः—हवे एकवीशमा जिनराज परमोपकारी तेहना गुण स्तवे छे. उपगारसंपदाए करीने श्री एकवीशमा नमि-जिनवर छे नमिनाम स्थापना ते माटे ते नमवाईनो उत्कृष्टो भाव छे, तेमाटे ते श्रीनमिनाथ जिन जे अकषायी, तेमांहे वा पेतां प्रधान वीतराग, परमज्ञानी, परमात्मा, शुद्धस्वरूपभोगी, चिदानंदघन, निर्विकारी देवने ओळखवुं तथा तेनो योग मळवो, घणोज दुर्लभ छे ॥ उक्तं च ॥ इदंनं कल्पितं, सुरमणि कल्प-द्रुमरस कोटीनां ॥ साभो सुलहो दुलहो, जेसणो जिणनाहस्स ॥ १ ॥ तेमाटे श्रीजिनेश्वरनुं दर्शन दुःप्राप्य छे, ते संसार-चक्रमां मुनिन जीव, रत्नत्रयी रहित जीव संसारने जिन-सेवना किहांथी करे ? ते वोहरु पुन्यानुबंधी पुन्यना उदयथी, जीवने जिनसेवना प्रगटी. ते जीव दर्शन करे छे, ते श्री नमि जिनवरनुं सेवन, तेहीज घनाघन जेनां मेह उनम्यो..

जेम मेह [illegible] आवे, तेम मनें, वचनें, कायायें, [illegible] बहुमान नमन गुणनी अहुमनना [illegible] आश्रयना प्रगटी, ते मेह रूप [illegible]

[illegible] उंचो आवे, तेवारें लोकना [illegible] थाय, तेम इहां श्री अरिहन [illegible] नवां अनादि कालनो मिथ्यात्व [illegible] भविक जीवोना चित्तथी गयो [illegible] थयो.

मेघने विषे [illegible] प्रभुभक्तिरूप मेघने विषे [illegible] अज्ञाननारहित, पुद्गल आशारहित [illegible] थाय, तेहीज अभ्रपटल केना [illegible] थाय, पुद्गले रूपी वस्तुने रूपा उपमा बहु.

मेहमां विजलीना झबकारा घणा होय. तेम इहां प्रभुसेवना करतां आपणा आत्मानी परिणति शुद्ध थाय, गुणी शुद्धतत्त्वीना सेवनने अनुयायी थाय, तेहीज विजलीना झबुका जाणवा॥१॥
॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

वाजे वायु सुवायु, ते पावन भावना रे ॥ते०॥
इंद्रधनुष्य त्रिकयोग, ते भक्ति एकमना रे ॥ते०॥
निर्मल प्रभु स्तवघोष,ज्युं(इव?)नि घनगर्जना रे॥ज्युं॥
तृष्णा ग्रीष्मकाल, तापनी तर्जना रे ॥ता० २॥

अर्थः—मेहमां जेम वायु अनुकूल होय, तेम ए जिन-भक्तिरूप मेहने विषे जिनगुणनो बहुमान सहित जे भावना भाववी तेहीज सुवायु वाय छे.

वर्षादमां पण रेखा युक्त इंद्रधनुष्य शोभाकारी होय, तेम इहां मन, वचन, कायरूप त्रण योग ते भक्तिने विषे एक मना थया, ते इंद्रधनुष्य छे.

जेम मेहमां गर्जना होय, तेम इहां निर्मल उज्ज्वल प्रभुना गुण तेमनी जे स्तवना ध्वनि शब्द तेहीज घन केतां मेहनी गर्जना जाणवी.

मेहथी ग्रीष्म उष्णकालना ताप टले, तेम इहां प्रभुसेवनथी तृष्णा पुद्गल सुखनी पीपासानो जे अंतरंग ताप होय, ते टले एटले आत्माने आत्मसुखनी इहांयें पर जे तृष्णारूप ग्रीष्म कालनो महाताप, ते मटे ॥ २ ॥

शुभ लेश्यानि आलि, ते बग पंक्ति बनी रे ॥ते०॥
श्रेणीसरोवर हंस, वसे शुचि गुण मुनि रे ॥व०॥
चौगति मारगबंध, भविक निज घर रह्या रे ॥म०॥
चेतन समता संग, रंगमें ऊमह्या रे ॥रं० ३॥

अर्थः—जेम मेहमां बगपंक्ति होय तेम इहां प्रशस्त शुभलेश्या जे पद्मशुक्ललेश्याना परिणाम एहवी लेश्याशुभनी उज्ज्वलता ते बगपंक्ति छे.

वर्षादमां हंसपंक्ती सरोवरें वसे, तेम जिनभक्तिना योगें हंसपक्षी जेहवा मुनिराज ते ध्यानारूढ थई उपशम तथा क्षपकरूप श्रेणीयें जइ वसे.

जेम वर्षादथी चार दिशिना मार्ग बंध थाय, तेम इहां जिनभक्तिना योगें चार गतिनो मार्ग बंध थाय एटले साचा मनथी जे प्रभुसेवन करे, ते चार गतिना भ्रमणने टाले.

वर्षाकालें सर्वलोक पोताने घेरें रहे. तेम इहां पण अनादिनो उद्धत परभावाभिलाषी आत्मा ते अनेक विषय विकाररूप भावमां रहेतो हतो, तेने श्रीनिःकर्मदेवने निमित्तें स्वरूपनी प्राप्ति थइ, चेतनसमताने संगे रंगे केतां रीझ करीने उमझ्यो थको समतामां रमी रहे, स्वात्म स्वभावमां अनुभव रंगे रमी रहे ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

सम्यग्दृष्टि मोर, तिहां हरखे घणुं रे ॥ति०॥
देखी अद्भुत रूप, परम जिनवर तणुं रे ॥प०॥
प्रभुगुणनो उपदेश, ते जलधारा वही रे ॥ते०॥
धर्मरुचि चित्त भूमि, मांहे निश्चल रही रे ॥मां० ४॥

अर्थः—जिनभक्तिरूप मेह देखीने सम्यग्दृष्टि तत्त्वरुचिरूप मोर तेहने अत्यंत हर्ष आनंद उपजे, श्रीतीर्थंकर देवनुं रूप केहवुं छे ? जो अत्यंत परमोत्कृष्टरूप सर्व देवता मलीने विकुर्वें, तोपण श्रीअरिहंतना पगना अंगुठा समान रूप करी शके नहीं, एहवुं परमशीतल निर्विकारी परमेश्वरनुं रूप देखीने सम्यग्दृष्टि जीव वर्षाकालना मोरनी परें हर्ष आनंद पामे.

प्रभु श्रीतीर्थंकर देव, तेनी भक्तिमां परिणम्या, एवा तत्त्वरुचि जीव, ते पोताना वचनें उच्चार करीने प्रभुना गुणग्राम करें, ते प्रभुगुणगानरूप मेघनी जलधारा, वहीने ते

जलधारा धर्मरुचि जीवना चित्तरूप भूमिकामांहे निश्चल रहे, एटले तत्त्वरुचिवंत जीवना चित्तमां प्रभुना गुण समाइ रहे॥४॥

चातक श्रमण समूह, करे तब पारणो रे ॥क०॥
अनुभव रस आस्वाद, सकल दुःख वारणो रे ॥स०॥
अशुभाचार निवारण, तृण अंकूरता रे ॥तृ०॥
विरति तणा परिणाम, ते बीजनी पूरता रे ॥ते०५॥

अर्थः—प्रभुसेवनरूप जलधारा वरसतां श्रमण निर्ग्रंथ तत्त्वरंगी महामुनि तद्रूप जे चातक ते पारणुं करे छे, एटले सम्यग्दर्शन काळे तत्त्वस्वरूपें पोताना अनुभवनी पीपासा थइ हती, ते पीपासा श्रीजिनभक्तिरूप कारण पामीने आत्मस्वरूपनुं यथार्थ ज्ञान ते रूप अनुभव तेहना रसनुं आस्वादन केतां भोगववापणुं ते रूप पारणुं करे, पण ए पारणुं कहेवुं छे ? जे सकल सांसारिक विभाव ते कर्मभार उग्रता गुणावरणतादिक तेनो वारणो केतां वारणहार छे, एटले तद्रूपदुःखनुं निवारण करे छे.

हवे वर्षाकालें नीलां तृण उगे, तेम जिनभक्तिरूप मेहमांहे पण अशुभआचारनुं निवारण थयुं, ए तृणना नीला अंकूर प्रगट्या.

वर्षाकालें कर्षणी लोक धरतीमां बीज वावे, तेम इहां आश्रवथी विरमवारूप विरतिना परिणाम उपना, तेहीज बीजनी पूर्णता थइ ॥ ५ ॥

पंच महाव्रत धान्य, तणां कर्षण वध्यां रे ॥सा०॥
साध्यभाव निज थापी, साधनतायें सध्यां रे ॥सा०॥
क्षायिक दरिसण ज्ञान, चरणगुण उपना रे ॥च०॥
आदिक बहुगुण सस्य, आतम घर नीपना रे ॥आ०॥६॥

अर्थ — [illegible] होय, ते उमीने कहे, [illegible] महाव्रत [illegible] इत्यादिक [illegible] महाव्रत ते [illegible] वृद्धि पाम्यां, [illegible] आत्मभाव ते [illegible] अशि, तेनी [illegible] आत्मानी [illegible] केवल ज्ञान, केवल [illegible] गुण [illegible] ते [illegible] हवो, तेहना [illegible] दर्शन, [illegible] ॥ ६ ॥

प्रभुदरिसण महा मेह, तणे प्रवेशमें रे ॥प०॥
परमानंद सुभिक्ष थया, मुझ देशमें रे ॥प०॥
देवचंद्र जिनचंद्र, तणो अनुभव करो रे ॥त०॥
सादि अनंतो काल, आतमसुख अनुसरो रे ॥सा०॥७॥

अर्थः—एहवा एकवीशमा जिनेंद्र श्री नमि[illegible]
दयालु, गुण समुद्र, जगत्रयजीवना भावभास्कर,
महावैद्य, तेहनुं जे दर्शन केनां मुद्रानुं जोवुं, अथ[illegible]
अथवा दर्शन शब्दें समकित, तेहीज महाऔषध. तेहने प्र[illegible]
पेसवे करीने परमानंद आत्मिक आनंदरूप सुभक्ष केना[illegible]
थयो, माहारा देश केनां असंख्यात प्रदेशरूप क्षेत्रं[illegible]
तेमाटे देवमांहे चंद्रमा समान अथवा देवचंद्र जे स्तु[illegible]
तेहनुं संबोधन हे देवचंद्र ! श्रीजिनचंद्र श्रीजिनराज,
सर्वदर्शी, तेहना अनुभव गुणज्ञानादिनं आस्वादन करो[illegible]
नाज गुण बहुमानमांहे लीन रहो. तो थोडा कालमां
केनां जेहनी आदि छे, परन्तु अंत केनां छेडो नथी,
जे अविनाशी आत्मिक सुख. तेहने अनुभवो केनां प[illegible]
एटले अहो भव्यजीवो ! तुमे श्रीनिर्मलानंदी सद्दर्पस्वरूपभो[illegible]
एहवा श्रीजिनेश्वर तेहना गुणनुं बहुमान तथा तेहनी आज्ञ[illegible]
मानजो, तेमवे [illegible] प्रसिद्ध अविनाशी, अक्षयआत्मि[illegible]
अनंत संपदा पाम[illegible] एवा प्रगट वखानो ए लिपमा [illegible]
उपाय छे ॥ ७ ॥ इति श्रीनमिजिनाथजिनस्तवनं संपूर्ण ॥ २१ ॥

॥ अथ द्वाविंश श्रीनेमिनाथजिनस्तवनं ॥

॥ पद्मप्रभजिन जइ अलगा रह्या ॥ ए देशी ॥

नेमि जिनेसर निज कारज कर्युं,
छांड्यो सर्व विभावो जी ॥
आतमशक्ति सकल प्रगट करी
आस्वायो निज भावो जी ॥ ने० ॥ १ ॥

पंच महाव्रत धान्य, तणां कर्षण वध्यां रे ॥त०॥
साध्यभाव निज थापी साधनतायें सध्यां रे ॥सा०॥
क्षायिक दरिसण ज्ञान चरणगुण उपना रे ॥च०॥
आदिक बहुगुण सस्य आतम घर नीपना रे॥आ०॥६॥

अर्थ—[illegible] जे [illegible] वाव्या होय, ते उगीने थये, इहां द्रव्य तथा भावथी पांच महाव्रत "सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं" इत्यादिक धान्य ऊगीने [illegible] महाव्रत ते निरतिचार थया, तेहीज ध्यानना कर्षण [illegible] पाम्या, पण साध्यभाव जेना [illegible] निज जेना पोतानो आत्मभाव ते साध्यपणे [illegible], तेवो सध्या, पूर्ण साधनरूप थया, [illegible] आत्मानी सत्ता संपूर्ण प्रागभाव करवा पहुंचो [illegible] परिण-तिरूप साधनायें परिणम्या, [illegible], [illegible] केवल ज्ञान, केवल दर्शन, यथाख्यात चारित्र प्रमुख गुण ऊपना प्रगट थया. इत्यादिक स्वगुणनी अनंतता तेहीज सस्य जेनां धान्य छे जे आत्मा जिनदेशनमयी थयो हतो, तेहना घरे नीपना, आत्मप्रदेशमयें ज्ञान, दर्शन, चारित्रनी पूर्णता पाम्या ॥ ६ ॥

प्रभुदरिसण महा मेह, तणे प्रवेशमें रे ॥त०॥
परमानंद सुभिक्ष थयो, मुज देशमें रे ॥थ०॥
देवचंद्र जिनचंद्र, तणो अनुभव करो रे ॥त०॥
सादि अनंतो काल, आतमसुख अनुसरो रे॥आ०॥७॥

अर्थः—एहवा एकवीशमा जिनेंद्र श्री नमिनाथ, परम दयालु, गुण समुद्र, जगत्रयजीवना भावभास्कर, कर्मरोगना महावैद्य, तेहनुं जे दर्शन केतां मुद्रानुं जोवुं, अथवा शासन, अथवा दर्शन शब्दे समकित, तेहीज महावर्षाद, तेहने प्रवेशें केतां पेसवे करीने परमानंद आत्मिक आनंदरूप सुभक्ष केतां सुकाल थयो, माहारा देश केतां असंख्यात प्रदेशरूप क्षेत्रने विषे, तेमाटे देवमांहे चंद्रमा समान अथवा देवचंद्र जे स्तुतिकर्त्ता तेहनुं संबोधन हे देवचंद्र ! श्रीजिनचंद्र श्रीवीतराग, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, तेहना अनुभव गुणज्ञानादिनुं आस्वादन करो, तेहनाज गुण बहुमानमांहे लीन रहो. तो थोडा कालमां सादि केतां जेहनी आदि छे. परंतु अनंत केतां छेडो नथी, एहवुं जे अविनाशी आत्मिक सुख, तेहने अनुसरो केतां पामो, एटले अहो भव्यजीवो ! तुमें श्रीनिर्मलानंदी संपूर्णस्वरूपभोगी, एहवा श्रीजिनेश्वर तेहना गुणनुं बहुमान तथा तेहनी आज्ञानुं मानवुं, तेमने रहा. न [illegible] र्णसिद्ध अविनाशी, अक्षयआत्मिक, अनंत संपदा पामे. [illegible] पदा प्रगट करवानो ए नियमा पुष्ट उपाय छे ॥ ७ ॥ इति श्रीनमिनाथजिनस्तवनं संपूर्ण ॥ २१ ॥

॥ अथ द्वाविंश श्रीनेमिनाथजिनस्तवनं ॥

॥ पद्मप्रभजिन जइ अलगा वस्या ॥ ए देशी ॥

नेमि जिनेसर निज कारज कर्युं,
छांड्यो सर्व विभावो जी ॥
आतमशक्ति सकल प्रकट करी,
आस्वाद्यो निज भावो जी ॥ ने० ॥ १ ॥

अर्थः—हवे बावीशमा श्रीनेमिनाथनी स्तुति करे छे. जादवकुलमां तिलक समान, महाउपगारी, एहवा श्रीनेमिनाथ जिनेश्वरे निज केनां पोतानुं कार्य कर्यु, क्यांही पण आत्माने खरडवा दीधो नहीं. कांड्यो केनां नज्यो सर्व केनां सकल चार निक्षेप विभाव ते अनंग नया बाह्य कारणथी सर्व विभाव नज्यो, आत्मानी शक्ति असंख्यात प्रदेशने विषे जे अनंतज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत सुख, अनंत अगुरुलघु, अनंत दान, अनंत लाभ, अनंत भोग, अनंत उपभोग, अनंत वीर्य, अवर्ण, अगंध, अस्पर्श, परम असंगता, अयोगीतारूप पोतानुं प्रभुत्व, विभुत्व, कारणत्व कार्यत्व, व्यापकत्व, नित्यत्व, अनित्यत्व, अस्तित्व, नास्तित्व, भेदत्व, अभेदत्व, कारकत्व, पारिणामिकत्व, सत्त्व, प्रमेयत्व, द्रव्यत्व, ईश्वरत्व, सिद्धत्व, अखंडत्व, अदिमत्वादि ते उत्सर्ग आत्मसमाधिरूप सर्वशक्ति प्रगट करी, वळी ते निरावरण आत्मधर्म तेहने आस्वाद्यो, स्वरूपभोक्तृत्वपणे निजभाव केतां पोताना भावपणे श्रीनेमिनाथ प्रभुये भोगव्यो ॥ १ ॥

राजुलनारी रे सारी मति धरी,
अवलंब्या अरिहंतो जी ॥
उत्तमसंगें रे उत्तमता वधे,
सधे आनंद अनंतो जी ॥ ने० ॥ २ ॥

अर्थः—वळी राजीमतिनारीये पण रुडी मति अंगीकार करी, सर्व परिग्रहना संगनो त्याग करीने श्रीअरिहंत देव उपर अरिहंतनो राग धरी उपगारीपणे गुणीने आदरे अवि-

टेल्या एटले भर्तारपणानो अशुद्ध राग टाळीं देवत
आदर्यो, एम विचार्युं जे उत्तमने संगें उत्तमता थ
चारित्रवंत सर्वज्ञ श्रीनेमीश्वर भगवान् ते सर्वोत्तम
एना संगथी महारी पण उत्तमता एटले सिद्धता प्र
थवे, वळी सवे केनां नीपजे. आनंद केनां आत्यंतिक,
तिक, निर्द्वंद्व, निरामय सुख थाय, तेमाटे तेहीज कारु
एम सर्व भव्य जीवोयें विचारवुं ॥ २ ॥ इति द्वितीयगाथ

धर्म अधर्म आकाश अचेतना,
ते विजाति अग्राह्यो जी ॥
पुद्गल ग्रहवे रे कर्मकलंकता,
बाधे बाधक बाह्यो जी ॥ ने० ॥ ३ ॥

अर्थः—हवे राजीमतीयें जे विचार्युं, ते कहे छे. स
लोकमां पंचास्तिकाय छे, अने काल ते छठी रूपें द्रव्य नथ
श्रीभाष्यकार तथा अनुयोगद्वारसूत्र जोतां उपचारद्रव्य छे वळ
पंचास्तिकायमां धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय अने आकाशास्ति
काय, ए त्रण द्रव्य अचेतन छे, तथा विजाति छे. वळी
जीवद्रव्यनी ए जाति नहीं, अग्राह्य छे, ते अपरिणामीपणा
तथा अचलपणा माटे जीवथी ग्रहवाय नहीं, तेमाटे एहथी
पण माहरे काम नहीं, तथा पुद्गल द्रव्य साथें चिरकालनो
परिचय छे, तेहने जो ग्रहीयें, तो पुद्गल जडद्रव्यने ग्रहवे
आत्माने नवां कर्म बंधाय, अने आत्मा कलंकादित थाय,
अने बाधकभाव, परतंत्र, स्वगुणरोधकता, चेतनादि गुणनी
विपर्यासता बाधे केनां शुद्धि पामे, ते माटे पुद्गलने केनां

अनंतो काल थयो, पण आत्महित थयुं नहीं, तेमाटे ए पुद्गलना संगथी आत्मभींड थथे, माटे उत्तम जीव, एहने ग्रहे नहीं, एम गजुल विचार्युं, जे एने पण ग्रहवुं नहीं. केमके एना ग्राहक तो अनंता जीव निगोदमध्ये पड्या छे ॥३॥ इति तृतीयगाथार्थ. ॥

> रागीसंगे रे रागदशा वधे,
> थाए तिणे संसारो जी ॥
> नीरागीथी रे रागनुं जोडवुं,
> लहिएं भवनो पारो जी ॥ ने० ॥ ४ ॥

अर्थः—हवे पाचम ज्ञानरूप ने अनेक आत्मा छे, वली स्वजाति पण छे, माटे तेहने ग्रहो राग कराय, परन्तु एक अवगुण एहमा पण दीठो, ते कहे छे, ते संसारी जीव तो राग द्वेष संयुक्त छे, माटे तेहनो संग करवे तो आपणने पण राग दशा वधे, अने रागदशा तो अभिनवबंधनो हेतु छे, अरिहंतदेवनां आगम जोतां अने आत्मधर्म जोतां, राग तो तजवा योग्य छे, रागथी चार गतिरूप संसार थाए वधे, माटे ए पण आत्महित नहीं, ते माटे नीरागी, वीतराग, परमचारित्री, सर्वभावपरत्यागीथी, जो राग जोडीयें, तो भवनो पार पामीयें, यद्यपि क्षय तो रागनोज करवो छे, पण प्रथम राग पलटा-ववानो ए उपाय छे, जे नीरागीथी राग जोडीयें, एटले ते नीरागी राग करे नहीं, तेथी अनुक्रमें ए आपणो राग पण क्षय पामे, तेवारें ए आत्मा वीतरागभाव भजे ॥ ४ ॥ इति चतुर्थ गाथार्थः ॥

अप्रशस्तता रे टाली प्रशस्तता,
करतां आश्रव नासे जी ॥
संवर वाधे रे साधे निर्जरा,
आतमभाव प्रकासे जी ॥ ने० ॥ ५ ॥

अर्थः—ते माटे कामरूप जे अप्रशस्त राग हतो, ते टाली अरिहंतपणारूप प्रशस्त राग करवो, गुणी उपर राग ते प्रशस्त छे, ते साधनकालें कामनो छे, ते प्रशस्त राग करतां अनुक्रमें आश्रव नाश पामे, नवा कर्म लेवारूप अशुद्ध परिणति टले, वली प्रशस्तरागी जीव, ते गुणीने अवलंब्यो रहे, तेहथी स्वगुणनी एकत्वता वधे, ते स्वगुण एकत्वता परिणामयी संवरपरिणति वधे, अने पूर्वकृत कर्मनी निर्जरा परीसाटकरूप ते पण सधे केतां नीपजे, ते संवरनिर्जराने प्रगटवे आत्मानो भावधर्म, अरूपीशक्ति प्रकाश पामे, निरावरण थाय ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

नेमिप्रभुध्यानें रे एकत्वता,
निजतत्त्वें एक तानो जी ॥
शुक्लध्यानें रे साधि सुसिद्धता,
लहियें मुक्ति निदानो जी ॥ ने० ॥ ६ ॥

अर्थः—राजीमतीजी एम विचारीने श्रीनेमिपरमेश्वरने ज अवलंब्यां केमके नेमिप्रभुने ध्यानें एकत्वता तन्मय करवे करीने निज केतां पोताना तत्त्वें आत्मस्वरूपें एकतान केतां

एकत्वपणुं नीपजे, ते जेवारें स्वरूपें एकत्वपणुं पामे, तेवारें शुक्लध्यान प्रगटे जे स्वरूप एकत्वपणुं तेहीज शुक्लध्यान छे, ते शुक्लध्याने करी पोतानी सात्वना साधी लेतां नीरजातीने तेहथी मुक्ति जे सकलकर्मरहीतपणु तेहनुं निदान केतां मूल कारण लहीयें, एवा पामीय ॥ ६ ॥

अगम अरूपी रे अलख अगोचर,
परमातम परमीशा जी ॥
देवचंद्र जिनवरनी सेवना,
करतां थाये जगीशा जी ॥ ने० ॥ ७ ॥

अर्थ —नेमा! [illegible] [illegible] आत्मानो अध्यातम गुणरूपि पुद्गल [illegible] [illegible] [illegible] ते आगम वेदा [illegible] गम्य नहीं, अथवा जेमाटे अजाण आगमी अर्थ [illegible] नहीं, तो तेहने रूप, गंध, वर्ण, रस, संस्थान नहीं, तेमा! अरूपी, तथा अलख येनां पुद्गलाभिलाषी, एकान्तवादी, एवा नैयायिक, वैशेषिक, सांख्य मीमांसिक, वेदांतिक, बौद्ध, नास्तिक, तथा जे एकांत द्रव्यास्तिक पक्षवादी एवा जैनलिंगी इत्यादिकनो लखाव नहीं, एटले ओलखाय नहीं, वली अगोचर केतां इन्द्रियोना नहीं, अतींद्रिय पदार्थ ते अतींद्रियज्ञानगम्य [illegible] ज्ञा- [illegible] [illegible] [illegible] छे, वली परमेश्वर मां [illegible] [illegible] अनंत [illegible] आत्मा छे, वली [illegible] केतां [illegible] अविनाशी [illegible] अनंतगुण [illegible] सर्वना ईश छे, [illegible] ते [illegible], [illegible] ते [illegible], [illegible], [illegible] [illegible], वैमानिक, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] ते

मुनिराज, जिनकल्पी स्थविरकल्पी, परिहारविशुद्धि, पडिमापडिवन्न, सूक्ष्मसंपराती, उपशांतमोही, क्षीणमोही उवज्झाय, श्रुतधर, पूर्वधर, आचार्य, गणधर प्रमुख ते धर्मदेव, ते सर्व मध्ये वंदना समान नायक, शासनना पति, मार्गदेशक, एहवा जे जिनवर तेहनी सेवना आज्ञा मानवारूप करतां थकां थावे केतां शुद्ध पाने, साधकसंपदा, तथा सिद्धतारूप संपदा, तेहथी श्रीतीर्थंकर तीर्थपतिनी सेवना ते परम प्रधान छे. द्रव्यथी वंदन नमनादिक अने भावथी गुणनुं बहुमान. आज्ञाप्रमाणना रूप सेवा करतां अनंता सिद्ध थया, वली अनंता सिद्ध थशे, एहीज मोक्षसुखनो उपाय छे ॥७॥ इतिनेमिनाथजिनस्तवनं संपूर्ण ॥२२॥

॥अथ त्रयोविंश श्रीपार्श्वनाथजिनस्तवनं॥

॥ कडखानी देशी ॥

सहजगुण आगरो स्वामी सुखसागरो,
ज्ञानवयरागर प्रभु सवायो ॥
शुद्धता एकता तीक्ष्णताभावथी,
मोहरिपु जिति जय पडहवायो ॥ १ ॥

अर्थः—हवे त्रेवीसमा श्रीपार्श्वनाथ प्रभुजीनी परमेश्वरनी स्तुति करे छे. श्रीपार्श्वनाथ प्रभुजी केहेवा छे ? सहज अकृत्रिम वस्तुना मूल धर्म ज्ञानानंदादिक तेहना आगर छे, अनंत आत्मगुण उपजाववाना स्थान छे, स्वामी पोतानां स्वरूपसंपदाना अधिपति छे, सुखना सागर छे, पूर्ण ने अतींद्रिय,

स्वाधीन, [illegible] निरुपाय, अविनाशी सुख तेना समुद्र छो. [illegible] केवलज्ञानरूप वयर केतां वज्र ते [illegible] सदा सवदा प्रभु तमें सवाया छो [illegible] जाननी यथार्थता, निमलता [illegible] तन्मयता, तीक्ष्णता, [illegible] धारा छे, अने [illegible] छे. तथा ज्ञान ते प्रकाश [illegible] मोक्ष छे. कोइ कहेशे [illegible] ते ज्ञान ते दर्शन-[illegible] एकपणुं छे, तथा [illegible] आवश्यकनिर्युक्तौ [illegible] गुत्तिकरो ॥ [illegible] भणिओ ॥ १ ॥ [illegible] जाणीने अर्थात् ज्ञान [illegible] मोहादिक कर्मने हणीने, जयनो [illegible] ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

> वस्तु निजभाव अविभास निकलंकता,
> परिणति वृत्तिता करी अभेदे ॥
> भाव तादात्म्यता शक्तिउल्लासथी,
> सतति योगने तुं उच्छेदे ॥ स० ॥ २ ॥

अर्थ —हवे शुद्धतादिकनुं स्वरूप कहे छे. वस्तु जे [illegible]दिक ३ द्रव्य, तेहना जे निज केतां पोताना भाव ते [illegible]पर्यायरूप उत्पाद, व्यय परिणतिनो अविभास केतां अ-

णत्वं; ते पण निकलंक एटले एकांतता अयथार्थता ऊनतता अधिकता रहित सम्यग्ज्ञान तेने शुद्धता कहीजें, तथा परिणति जे जीवनो शुद्ध मूल परिणाम ते स्वरूपने विषे एकत्वपणुं परभावमां पेसे नहीं, ए आत्मानी परिणति छे, अने संसारी जीवने विभाव रंगीने ते मूल परिणति तो चारित्र मोहनीयें आवृत्त छे, तेणें करीने वृत्ति जे प्रवृत्ति ते रागी द्वेषी पुद्गलभोगीपणें प्रवृत्ति रही छे, ते प्रवृत्ति तजीने शुद्ध स्वरूपपर भणी करि, ते प्रवृत्ति तथा परिणति बेहुनुं एकज प्रवर्त्तन थयुं जे परिणति तेहीज प्रवृत्ति रही, पण औपाधिक प्रवृत्तिनो अंश पण रह्यो नथी, ते माटे परिणति तथा प्रवृत्ति बेहु एकपणे अभेदें करी तेने एकता कहीयें. वली भावतादात्म्यता शक्ति केनां जे विभाव ते तज्जन्यता केतां तदुत्पत्तिसंबंधे छे, ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्म ते संयोग संबंधे छे, अने शुद्धक्षायिक वीर्यादिक स्वगुण ते तादात्म्यसंबंधें छे, ते तादात्म्य संबंधनी जे आत्मिक शक्ति क्षायिकवीर्यना उल्लासथी ते आत्मावले संततियोगमां संतति केतां परंपरानो जे संयोगकर्म संबंध, तेहने उच्छेदे, एटले ज्ञानावरणादि कर्मनी प्रकृति, स्थिति, रस, प्रदेशनो बंध, तेहनुं स्थिति प्रमाणें रहेवुं छे, एटले जे कर्मने आत्मप्रदेश साथें संबंध ते असंख्यातो काल उत्कृष्टो सित्तेर कोडाकोडी सागरोपमनो छे, परंतु एकबंध भोगवतां बीजा स्थितिबंध प्रतिसमयबंधाय छे, वली ते भोगवतां बीजा प्रतिसमय अनेक बंधाय छे, एटले कर्मपुद्गल ते एक समय बंध तेहनो संयोग तो सादि सांत छे, परंतु अभिनवबंधनी परंपरायें अनादि छे, जेम पितायी पुत्र, पुत्रथी वली पुत्र, एटले तेनो ते मनुष्य तो पोताना

स्वाधीन, निरामय, निःप्रयास, अविनाशी सुख तेना समुद्र छो, निःसंग सुखना पात्र छो, केवलज्ञानरूप प्रवर केतां प्रवर ते हीरो तेहना आगर छो, सदा सर्वदा प्रभु तमे सासा छो, ए श्रीपार्श्वनाथ स्वामीनो शुद्धता, ज्ञाननी यथार्थता, निर्मलता, एकता, ने चारित्रनो स्वरूप रमणता, तीक्ष्णता, ते वीर्यना [illegible], [illegible] तीक्ष्णता ते धारा छे, अने चारित्रना गुणना [illegible] थकी प्रगटा छे, तथा ज्ञान ते प्रकाश देखाडण हार छे, ने भाव ए मलेज मोक्ष छे. कोई कहेशे जे सम्यग्दर्शन कां न कह्युं ! तेहनो उत्तर. जे ज्ञान ते दर्शनयुक्तनेज कहे छे. एटले ज्ञानमध्ये दर्शननुं एकपणुं छे, तथा तप ते वीर्यनी तीक्ष्णता कही छे, उक्तं च आवश्यकनिर्युक्तौ ॥ नाणं पयासगं सोहओ तवो संजमो य गुत्तिकरो ॥ तिण्हंपि समाओगे मोक्खो जिणसासणे भणिओ ॥ १ ॥ एटले शुद्धता, एकता, तीक्ष्णतायी मोहरिपुने आ तिने अर्थात् ज्ञान, चारित्र, तथा तपना बळे मोहादिक कर्मने हणीने, जयनो पडहो वजाव्यो ॥ १ ॥ इति प्रथम गाथार्थः ॥

वस्तु निजभाव अविभास निकलंकता,
परिणति वृत्तिता करी अभेदे ॥
भाव तादात्म्यता शक्तिउल्लासथी,
संतति योगने तुं उच्छेदे ॥ शा० ॥ २ ॥

अर्थः—हवे शुद्धतादिकनुं स्वरूप कहे छे. वस्तु जे [illegible] ए [illegible], तेहना जे निज केतां पोताना भाव ते [illegible], तथा परिणतिनो अविभास केतां प्र-

थयुं, ते पण निकलंक एटले एकांतता अयथार्थता अज्ञतता अधिकता रहित सम्यग्ज्ञान तेने शुद्धता कहीजें, तथा परिणति जे जीवनो शुद्ध मूल परिणाम ते स्वरूपने विषे एकत्वपणुं परभावमां पेसे नहीं, ए आत्मानी परिणति छे, अने संसारी जीवने विभाव संगीने ते मूल परिणति तो घातिय मोहनीयें आवृत्त छे, तेणें करीने वृत्ति जे प्रवृत्ति ते रागी द्वेषी पुद्गलभोगीपणें प्रवृत्ति रही छे, ते प्रवृत्ति तजीने शुद्ध स्वरूपपर भणी करि, ते प्रवृत्ति तथा परिणति बेहुनुं एकत्व प्रवर्त्तन थयुं जे परिणति तेहीज प्रवृत्ति रही, पण औपाधिक प्रवृत्तिनो अंश पण रह्यो नथी, ते माटे परिणति तथा प्रवृत्ति बेहु एकपणे अभेदें करी तेने एकता कहीयें. वली भावतादात्म्यता शक्ति येनां जे विभाव ते तदुत्पत्ति येनां तदुत्पत्तिसंबंधे छे, ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्म ते संयोग संबंधे छे, अने शुद्धक्षायिक वीर्यादिक स्वगुण ते तादात्म्यसंबंधे छे, ते तादात्म्य संबंधी जे आत्मिक शक्ति क्षायिकवीर्यना उल्लासथी ते आत्मप्रदेश संततियोगनां संतति येनां परंपरानो जे संयोगरूप संबंध, तेहने उच्छेदे, एटले ज्ञानावरणादि कर्मनी प्रकृति, स्थिति, रस, प्रदेशनो बंध, तेहनुं स्थिति प्रमाणें रहेवुं छे, एटले ते कर्मने आत्मप्रदेश साथें संबंध ते अनंतकालनो [illegible] छे, परंतु एकेक योगनां योग्य स्थितिरूप प्रतिनियतरूप छे, वली ते योगनां योग्य प्रतिनियत [illegible] छे, एटले कर्मपुद्गल ते एक समय [illegible] तेहनो संयोग [illegible] छे, परंतु अभिनवसंबंधी [illegible] छे. [illegible] दुख, दुखनो [illegible] एटले तेनो ते [illegible]

आयुष्य प्रमाणे थाते, परंतु संतानती परंपरा अनंती थाये, तेम तेनां नेहीज कर्म नो स्थिति प्रमाणे रहे, परंतु पूर्व-बंधे भोगवते, नवानो बंध थाय, तेहने भोगवते, वली बीजा नवानो बंध, एम संतानती परंपराये ए अनादिनो छे. ते संततियोग आत्मवीर्यरूप तीक्ष्णता चक्रे हे परमेश्वर ! तुं उच्छेदे केता सर्वथा उच्छेद कर, एहवे ज्ञान, दर्शन, चारित्र वीर्यना, अने अनादि कर्मरजना तुमें विनाश कर्यो ए शक्ति प्रभुजी तुमारामांज छे, बीजामां नही, ए कारणें नमे कर्यु, निरावरण थया ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

दोष गुण वस्तुनी लखीय यथार्थता,
लही उदासीनता अपरभावें ॥
ध्वंसि तज्जन्यता भावकर्त्तापणुं,
परम प्रभु तुं रम्यो निज स्वभावें ॥प्र०॥३॥

अर्थः—हवे वली एम शुद्धता, एकता, तीक्ष्णता ए त्रणेनो अर्थान्तर कहे छे. वस्तु जे वस्त्र, धन, वनितादिक, आत्मा, विषयादि, तेना दोष ते अशुभ वर्णादिक तथा गुण ते शुभवर्णादिक, तेहने प्रगट केता जाणे, यथार्थपणे एहवे अशुभदोष सहित वस्तुने अशुभदोषी सहित जाणे अने शुभ-गुणवंत वस्तुने शुभ जाणे, जड वस्तु जडपणे जाणे, चेतन वस्तुने चेतनपणे जाणे, ते यथार्थ ज्ञानपणे जाणे, ए शुद्धता कहीये. अने ते वस्तुने इष्ट, अनिष्ट रहितपणे जाणे, ते उदासीनता कहीये. एहवुं उदासीनपणुं तेणे सही केतां साचीने ग्रह्युं छे, उदासीनपणुं ते पामीने, तेथी पर

पोतानो आत्मा असंख्यातप्रदेशी तेहने विषे व्याप्यव्यापक-भावें रह्या जे गुणपर्याय, तेहथी अपर भाव केतां अन्यभावने एटले बीजा अन्य केतां जुदा जे अनंता जीव तथा अनंता पुद्गलादिक अजीव पदार्थ, ते सर्वथी उदासपणे सर्वेना अग्राहक, अभोगी, असंगी थया, ए सर्व चारित्र परिणतिने एकत्वा कहियें अने ध्वंसी केतां उच्छेदीने नजन्यता-भावें जे विभावकर्त्तापणुं तेहने छेदीने छेदकना शक्ति ते तीक्ष्णता जाणवी. ए कार्य करवे हे प्रभुजी ! तुं निज केतां पोताने स्वभावें रम्यो, आत्मस्वभावरमणी थयो ॥ ३ ॥ इति तृतीय गाथार्थः ॥

> शुभ अशुभ भाव अविभास तहकीकता,
> शुभ अशुभ भाव तिहां प्रभु न कीधुं ॥
> शुद्धपरिणामता वीर्यकर्त्ता थइ,
> परम अक्रियता अमृत पीधुं ॥स०॥ ४ ॥

अर्थः—वळी एहीज त्रिभंगीनो अर्थांतर कहे छे. शुभ केतां प्रशस्त अशुभ केतां अप्रशस्त जे भाव, तेहनी जे अविभास केतां ओळखाण, तहकिकता केतां तेहने निर्धारे ते शुद्धतापने ए सर्व तमे जाण्युं परंतु हे परमेश्वर ! तुमें तिहां रागद्वेषीपणे शुभअशुभ भाव पण कर्यो नही, एहीज एकता, चारित्र धर्मनी अरागी, अद्वेषी, परिणति ते एकत्व शुद्ध निरावरण परिणामना ते पारिणामिकभावें जे वीर्यगुण, तेहना कर्त्ता थइने एटले रागद्वेषने अनुयायीपणे वीर्यनो विकार छे, ते रागद्वेष रहितपणे थये, वीर्य शुद्ध

थाय. तेथी स्वकार्यपणे पारिणामिक कर्त्ता थइने, एटले स्वपरि-
णामिकताना कर्ता थइने परम तेना उत्कृष्ट अक्रियपणारूप
अपूर्व पान नस करे एटले विभाव कर्तृता तथा साधकरूप
कर्तृता तजीने अक्रिय, [illegible] पणा हे परमेश्वर ! तमें
अक्रिय थया ॥ ४ ॥ [illegible] गाथाय ॥

शुद्धता प्रभु तणी आत्मभावें रमे,
परम परमात्मता तास थाए ॥
मिश्रभावें अछे त्रिगुणनी भिन्नता,
त्रिगुण एकत्व तुज चरण आए ॥स० ५॥

अर्थ — प्रभुनी शुद्धता, तत्त्वता, निरावरणता, तथा अनंत-
गुणभोगीपणानी जे प्रभुता ते आत्मभावें केतां पोताने आत्म-
पणे रमे, एटले प्रभुना प्रभुता तेनो रंगी जे जीव, तेहने
परम उत्कृष्ट शुद्ध परमात्मपणुं थाय, मिश्रभाव जे क्षयोपशम
भावें त्रिगुण जे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तेहनी भिन्नता
केता भेदत्रयपणे छे, साधक छे, परंतु सविकल्प छे, ते त्रि-
गुण जे रत्नत्रयी. तेहनुं जे एकत्व केतां एकताई अभेदता
ते थाय, तुज केतां ताहरा चरण यथाख्यात क्षायिक चारित्र
आवे. प्रगट, एटले क्षीणमोहगुणठाणे एकत्व वितर्क अप्रवीचार
शुक्लध्यान उपजे, जे दर्शन निर्धाररूप, तथा चारित्र स्थिरता-
रूप, ए बे धारा, ज्ञानधारामां अभेद थइ, एटले प्रथम मि-
थ्यात्वकाले जे ज्ञान विपरीत रूपे हतुं ते सम्यग्दर्शन प्रगटे
यथार्थज्ञान थयुं, तेथी आत्मस्वरूप रमणी थयो, पछी ते ज्ञाने
स्वरूपमां स्थिरताभावने भजे, एम ध्यानारूढ थयो, निर्विकल्प

तजनो, पोताना आत्माने तत्त्वपरिणतिमध्ये तन्मयता पमाडनो पछी ज्ञानपुंज रमण, ज्ञाननोज निर्धार, एटले पर्यायभेदें बे मूलगुणें एकत्व पामे, ए अभेदत्वरूपीनुं स्वरूप, ध्यानिगम्य छे, परंतु मूलनयें आत्मा ज्ञान, दर्शन, ए बे गुणें सहित छे, एहवी आम्नाय छे, शेष निर्धारस्थिरताएं सर्व चेतना गुणनी प्रवृत्ति छे, तेमाटे ए ज्ञानमांहेज स्थिरत्वपरिणति ते अभेदता करेंगी, प्रथम क्षयोपशमी चारित्रवेतनाएं चेतनापर्यायनी प्रवृत्ति असंख्यसमयथी हुती, ते आसनप्रवृत्ति पछी कर्म कारण कार्यनां स्थिरतापरिणतिएं हती, ते क्षीणमोहकाळे शेषकने क्षये समकाल असंख्यसमयथी प्रवृत्ति थइ, ते केवलज्ञान थये निरावरणतायें एकसमयी थइ, ए रीतें अभेद स्वरूपी थाय छे. ए श्री भा-स्वनी समजरी ॥ ५ ॥

> उपशम रस भरी सर्व जन शंकरी,
> मूर्त्ति जिनराजनी आज भेटी ॥
> कारणें कार्यनिष्पत्ति श्रद्धान छे,
> तेणें भवभ्रमणनी भीड मेटी ॥स० ६॥

अर्थः—उपशम रस जे कषायनो अभाव, तेहथी भरी अने सर्वलोकने शंकरी केता कल्याणनी करनारी एहवी प्र-भुनी पासना येनां दर्शनें हेतुनी शांत अचल अनाहत, ते आज मेंहे येनां नवनवदम्भे भेट्यो. हवे कारणें कार्य निपजे, एहवी भाउ दर्शन छे, तेणें मेहने निर्भिन्न कारण, श्री जिनराजनी सेवा करो. अने उपादान कारण आत्मोपादेय [illegible] स्वभाव [illegible] रत्नत्रयें परिणत, एहवा

जे आज केतां ते दिवसें प्रभुने भेट्यो, ते दिवसें माहरुं सिद्धिसाधकपणुं सर्युं ॥ ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥

> आज कृतपुण्य धन्य दीह माहरो थयो,
> आज नर जन्म में सफल भाव्यो ॥
> देवचंद्र स्वामी त्रेवीशमो वंदीयो,
> भक्तिभर चित्त तुझ गुण रमाव्यो॥स०॥८॥

अर्थः—आज ते वेळायें अनुष्ठानादिक दोष रहित आतमा प्रभुभक्तें परिणम्यो, ते दिवस कृतपुण्य केतां पुण्योदय थयो, ए दिन धन्य थयो, ए दिनें जिनभक्ति रस अध्यवसाय थवे ए नर जन्म सफलपणे विचार्यो जे माहरो ए जन्म सफल छे, ते में नीरागी, निस्पृही, परमगुनी, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी देव, श्रीपार्श्वनाथस्वामी त्रेवीशमा तीर्थंकर तेने भेट्यो, वांद्यो, स्तव्यो, अने तेहनी भक्तिभरने विषे चित्त केतां मन रमाव्युं एटले पुद्गलरमणता तजी, श्रीअरिहंतगुणनी रमणताएं मन रमाव्युं तेहीज दिन कृतार्थ कृतपुण्य सफल मानवो, ए दिन लेखानो जाणवो, सर्व देवमांहे चंद्रमा समान अथवा स्तुतिकर्त्ता जे देवचंद्र ते एहवो लाभ पाम्यो ॥ ८ ॥ इति श्रीपार्श्वनाथजिन स्तवनं ॥

दरिद्री, मार्गनो विराधक, असंयमसंचारी, महाविकारी, तमारी आज्ञार्था विमुख, अनादिनो उद्धत, एहवा मुज उपर दया करीजें ताहरी कृपा तेहीज त्राण (शरण) थशे. यद्यपि अरिहंत तो कृपावंतज छे, तो कृपा शी करवी छे ? तो पण कर्यो विचारे नही माटे अर्थातुं ए वचन छे, ते दयावंतनेज एम कहेवाय छे, जे हे देव ! तमें दयाना भंडार छो, तमनेंज अवलंबे तरीश, एज सत्य छे ॥ १ ॥ इति प्रथम० ॥

> रागद्वेषें भर्यो मोह वैरी नड्यो,
> लोकनी रीतमां घणुंए रातो ॥
> क्रोधवश धमधम्यो शुद्धगुण नवि रम्यो,
> भम्यो भवमांहे हुं विषय मातो ॥ ता० ॥२॥

अर्थः—दास वहेंचे छे, रागद्वेषें भर्यो, जगत्मां पड्यो, गुणीथी ईर्ष्या करे ते, मोह जे मुंजिनपणुं ते तत्त्वनी अजाणता विपर्यासता, हेतुयें मोहवेरी नड्यो तेथी दबाणो छे, तथा लोकनी जे रीत केतां चाल तेमांहे घणोज मातो छे, लोकनी चाल मांहे मग्न छे, लोकरंजननो अर्थी छो, क्रोध जे ताता चंडपरिणाम तेहने विषे धमधमी रह्यो छे, जेम धमण धमतां अग्नि तपे, तेम तपी रह्यो छे, शुद्ध गुण जे सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, शुद्धचारित्र, क्षमा, मार्दव, आर्जवादि आत्मगुण, तेने विषे रम्यो नहीं, तन्मयी न थयो. ते रूप न थयुं. वली भम्यो चतुर्गतिरूप भवचक्रमांहे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप संसार तेने विषे हुं विषय ते पंचेंद्रियना स्वाद, तेमांहे मातो तेनां मग्न थयो, विषयग्रस्त थयो थको एम संसारचक्र अनु-

स्वामिदर्शन समो निमित्त लही निर्मलो,
जो उपादान ए शुचि न थाशे ॥
दोष को वस्तुनो अहवा उद्यम तणो,
स्वामिसेवासही निकट लाशे ॥ता० ॥४॥

अर्थः—स्वामी श्रीवीतराग जे परकार्यना अकर्ता, परभावादिना अभोक्ता इच्छा, लीला, चपलता रहित एटले जे इच्छा तेतो ऊणतावंतने छे, अने जे परमेश्वर तेतो पूर्णसुखी छे, तेमाटे इच्छारहित, वळी लीला पण सुखनी लालचवालाने होय, अने लालचीपणुं नथी, एहवा स्वामीना दर्शन समान निर्मल निमित्त लही एटलें पामीने जो ए आत्मानुं उपादान मूलपरिणति ते शुचि एटलें पवित्र नहीं थाशे तो जाणीयें छइयें जे वस्तु ते जीव, तेहनोज दोष एटलें अवगुण छे, एटले रखे ए जीवनो दल अयोग्य होय ! ए जीवनी सत्ता केवी हीननी छे ? अथवा पोताना उद्यमनी खामी छे ? केमके आदरे मथके उद्यम करी आत्माने तमारसे जोइयें, ते ए जीव पोतानी जरूरी आतमने तमारतो नथी, तेमाटे हवे शुं करवुं ? जे बीजो उपाय कोइ नथी, तो श्रीअरिहंतनी सेवा तेहीज निश्चे निकट लेने नजीक लाभे एटलें पामसे एटले ए आत्मा शुद्ध छे, परंतु श्रीजिनराजनी सेवानो हुन्नर तजशे ॥४॥

स्वामिगुण ओलखी स्वामीने जे भजे,
दर्शन शुद्धता तेह पामे ॥

विनति मानजो शक्ति ए आपजो,
भावस्याद्वादता शुद्ध भासे ॥
साधी साधक दशा सिद्धता अनुभवो,
देवचंद्र विमल प्रभुता प्रकाशे ॥ता०॥ ७ ॥

अर्थः—माहरी एटली विनति मानजो, ए पण भद्रकपणानी भक्तिनुं वचन छे, जे शक्ति सामर्थ्य एवी आपजो, ते कहे छे, जे भाव केनां वस्तुधर्म ते स्याद्वादरीतें नित्य, अनित्य, अनेक, अस्ति, नास्ति, भेद, अभेदपणें छ द्रव्यना अनंता धर्म शुद्ध, शंकादिक दूषण रहित भासे, केतां जाणपणामध्ये आवे, साधि केतां नीपजावीने साधकदशा ते भेदरत्नत्रयी, सिद्धता, निष्पन्नता, अनुभवे, केतां भोगवे, सर्वदेवमांहे चंद्रमा समान सिद्ध भगवान तेहनी विमल केता निर्मल जे प्रभुता, ते प्रकासे केनां प्रगट करे, एटले स्याद्वाद ज्ञाने साधकता प्रगटे, साधकतायी सिद्धता प्रगटे, एहीज सारपद्धति छे ॥ ७ ॥

एटले ए चोवीश स्तवन थयां. पोताना जाणपणाप्रमाणे परमेश्वरनी गुण ग्रामें स्तवना करी, तेमांहे जे यथार्थ ते प्रमाण, अने अयथार्थनुं मिच्छामि दुक्कडं. गीतार्थें गुण लेवो, दोष तजवो, में भद्रकतायें ए रचना करी छे, महोटा पुरुषें क्षमा राशी गुण लेवा॥७॥ इति महावीरजिन स्तवनम् ॥२४॥

॥ अथ सामान्यकालरूप पंचविंशतितम स्तवनं ॥

॥ काल बोलवानी देशीमां ॥

चोवीशे जिनगुण गाइयें,
ध्याइयें तत्त्वस्वरूपो जी ॥
परमानंद पद पाइयें,
अक्षय ज्ञान अनूपो जी ॥ चो० ॥ १ ॥

अर्थः—श्रीऋषभदेवथी माडीने महावीर पर्यंत अवसर्पिणी कालें शासनना नायक गुणरत्नाकर महामाहण, महागोप, महावैद्य, एहवा चोवीश तीर्थंकर थया, तेहने गाइयें एटलें गुणग्राम करीयें, अने पोताना तत्त्वस्वरूपने ध्यापीयें तेहने ध्यावे, तत्त्वनी एकाग्रता पामीयें, तेहथी परमानंद अविनाशीपद पामीजें. वली अक्षय, अविनाशी, एहवुं क्षायिक ज्ञान ते अनूप अद्भुत पामीजें ॥१॥ इति प्रथम गाथार्थः॥

चौहदसें बावन भला,
गणधर गुणभंडारा जी ॥
समतामयी साधु साधुणी,
श्रावक श्राविका सारा जी ॥ चो० ॥ २ ॥

अर्थः—चोवीशे जिनशासनना गणधर (१४५२) भला गुण मणि रिद्धना धणी, गुणना भंडार तथा समतावंत साधु

साध्वी, अने श्रावक, श्राविका सार केतां प्रधान धर्मना धोरी, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रनां पात्र. ए प्रकारनो संघ ते सहित गायशो ॥ २ ॥ इति द्वितीय गाथार्थः ॥

वर्द्धमान जिनवरतणो,
शासन अति सुखकारो जी ॥
चोविह संघ विराजतो,
दुःषमकाल आधारो जी ॥ चो० ॥ ३ ॥

अर्थः—तथा हमणां श्रीवर्द्धमान महावीर स्वामीनुं शासन अत्यंत सुखनुं कारक छे. ए शासनमांहे जे पेठा, ते जीव संसारनो पार पामे, तथा दुःषम काल पांचमा आरामध्ये भव्यजीवने आधारभूत चतुर्विध संघ विराजे छे, वर्तमानकालें नवतत्त्व षट्द्रव्यनी ओळखाण थाय, मिथ्यात्व असंयमनो छेदी थाय आवे, ते उपगार श्रीवीरप्रभुना शासननो छे, ते श्रीवीरनांज आगम छे ॥ ३ ॥

जिनसेवनथी ज्ञानता,
लहे हिताहित बोधो जी ॥
अहित त्याग हित आदरे,
संयम तपनो शोधो जी ॥ चो० ॥ ४ ॥

अर्थः—ए जिनसेवननुं फल श्रीजिनेश्वरदेवने अनुसरे वर्त्तीने रहे. ते श्रीजिनवचनना उपदेशथी तुरत लोकालोकनां स्वरूपनुं ज्ञान थाय, ते ज्ञानथी हित अहितनो बोध थाय. पछी

अहितनो त्याग करे, तथा हितने आदरे तेहथी संयम तपनी शोभ थेतां शुद्धता थाय ॥ ४ ॥

अभिनव कर्म अग्रहणता,
जीर्णकर्म अभावो जी ॥
निःकर्माने अबाधता
अवेदन अनाकुल भावो जी ॥चो०॥ ५ ॥

अर्थ.—प्रथम नवनी [illegible] [illegible] नवा कर्मनी अग्रहणता थाय, एटले नवा कर्म न बंधे. अने जीर्ण थेतां जुनां कर्मनो अभाव थाय, एटले [illegible] [illegible] कर्म निर्जरे अने नवानो बंध नही थाय. [illegible] [illegible] [illegible] क्षय जाय तेवारे आत्मा निःकर्मी थेतां [illegible] थाय. अबाधता थेतां बाधा रहित थाय, जे बाधा [illegible] [illegible] पुद्गलना संगनी छे, पुद्गलसंग टळे, बाधा मटी गइ, तेवारे आत्मा अवेदन अनाकुलपणुं पाम्यो ने आकुलता परोपाधिनी हती ते गइ ते सर्वप्रभुभक्तिनो उपगार जाणवो ते माटे चोवीशे जिनने रतवीए [illegible] [illegible] छे ॥ ५ ॥ इति पंचम गाथार्थः ॥

भावरोगना विगमथी,
अचल अक्षय निराबाधो जी ॥
पूर्णानंददशा लही,
विलसे सिद्ध समाधो जी ॥ चो० ॥ ६ ॥

अर्थः—हवे भावरोग जे परानुयायीपणुं तेहनो विगम

केतां सर्वथी टलवे करीने अचल केतां चपलता रहित अक्षय केतां अविनाशीपणुं निराबाध केतां अव्याबाध पद प्रगटे, ते सर्वनुं मूल कारण जिनराज श्री वीतराग देवथी सेवना भाव रुचे, द्रव्य तथा भावथी प्रगटे, माटे सेवना करवी एहीज हित छे, पूर्णानंद परमानंद अनंत गुणना भोगरूप स्वसिद्धता दशा लही केतां पामीने विलसे केतां अनुभवे, सिद्धनिष्पन्न परनिष्ठितार्थ आत्मिक समाधि, ज्ञानदर्शन समाधि, अव्याबाधानंदसमाधि भोगवे, पामे, ए श्री जिनेश्वरना सेवननुं फल एहीज परम निर्वाणपदनी प्राप्ति छे, तेणें सर्व विकल्प कल्पना निवारीने, सर्वज्ञ सर्वदर्शी शुद्धतत्त्वी परमेश्वर निर्विकारी देवनुं सेवन करो, एहीज परमसुखनुं पुष्ट कारण छे॥६॥

श्रीजिनचंद्रनी सेवना,
प्रगटे पुण्य प्रधानो जी ॥
सुमति सागर अति उल्लसे,
साधु रंग प्रभु ध्यानो जी ॥ चो० ॥ ७ ॥

अर्थः—श्री जिनचंद्र अरिहंत देव तेहनी सेवना करतां पुण्य प्रधान प्रगटे अने श्रेष्ठ सुमति ते परमानंद सायरमांहि ते उल्लसे केतां उल्लास पामे अने प्रभुने ध्याने साधु केतां भलो रंग थाय. बीजो अर्थ श्रीजिनचंद्रसूरि भट्टारक श्री खरतर गच्छाधीश्वर तेहना शीष्य श्रीपुण्यप्रधानोपाध्याय, तेहना शिष्य श्रीसुमति सागरोपाध्याय, तेहना शिष्य श्रीसाधुरंगवाचक, ए स्तुति कर्त्तानी परंपरानां वडवृद्ध थया, तेहनां नाम कह्यां ॥ ७ ॥ इति सप्तम गाथार्थः ॥

सुविहित खरतर गच्छवरू,
राजसार उवझायो जी ॥
ज्ञानधर्म पाठक तणो,
शिष्य सुजस सुखदायो जी ॥ चो० ॥ ८ ॥

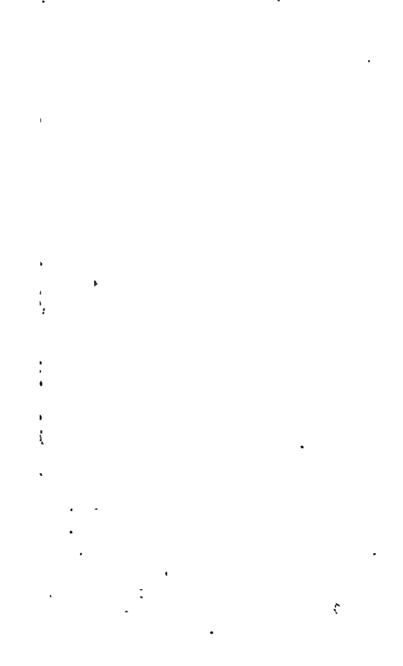
अर्थ—सुविहित कहेतां पचांगी प्रमाण रत्नत्रयीनी हेतु केतां कारण एहवी जेहनी समाचारी, एहवो जे खरतरगच्छ ते मध्ये श्रेष्ठ केतां प्रधान सर्व शास्त्र निपुण महस्थल तीरे अनेक जिनचैत्यप्रतिष्ठा कारक आवश्यकोद्धार प्रमुख ग्रंथोना कर्ता एवा महोपाध्याय, श्रीराजसारजी थया, तेहना शिष्य श्रीज्ञानधर्म उपाध्याय, न्यायादिक यथार्थपाठक, जेणे साठ वर्ष पर्यंत जिह्वाना रस नजरें जाकर जाति नथी, ने संवेग वृत्ति धरी, तेमना शिष्य रूडा यशना धणी, सुखना देवावाला एहवा ॥ ८ ॥ इति अष्टम गाथार्थः ॥

दीपचंद्र पाठक तणो,
शिष्य स्तवे जिनराजो जी ॥
देवचंद्र पद सेवतां,
पूर्णानंद समाजो जी ॥ चो० ॥ ९ ॥

अर्थः—तथा जेणे श्री शत्रुंजय तीर्थ उपर शिवासोमजी कृत चोमुखजी अनेक जिन प्रतिष्ठा करी तथा पांच पांडवना बिंबनी प्रतिष्ठा करी, तथा सहस्रकूट बिंब तथा श्रीइंद्रनाथ बिंब प्रतिष्ठा करी, श्रीराजनगरे सहस्रफणापार्श्व प्रभुनी प्रतिष्ठा

करी, एहवा उपाध्याय श्रीदीपचंद्रजी, तेहना शिष्य पंडित देवचंद्रगणि, तेणें ए चोवीश प्रभुनी स्तवना भक्तिवशें करी, पोतानी भक्ति परिणति महानंद हेतु छे, एहवा गुणना नाथ, देवचंद्र पद पूर्णानंद जे सिद्ध अव्याबाध आनंदनो समाज केतां समुदाय ते पामे, ए जिनभक्ति ते मोक्षनो परमोपाय छे ॥ ९ ॥ इतिश्री चोवीश जिनस्तुतिनो बाला-वबोध संपूर्ण ॥

॥ इति श्री देवचंद्रजी माहाराज कृत बालावबोध सहित चतुर्विंशति जिनस्तवनानि संपूर्णानि ॥



अथ श्रीदेवचंद्रजीकृत विंशति विहरमानजिन स्तवनानि ॥

॥ तत्र प्रथम श्रीसीमंधरजिन स्तवनं ॥

॥ सिद्धचक्रपद वंदो ॥ ए देशी ॥

॥ श्री सीमंधर जिनवर स्वामी, विनतडी अवधारो ॥ शुद्धधर्म प्रगट्यो जे तुमचो, प्रगटो तेह अम्हारो रे स्वामी, विनवीयें मनरंगे ॥ १ ॥ जे परिणामिक धर्म तुमारो, तेहवो अमचो धर्म ॥ श्रद्धाभासन रमण वियोगें, वलग्यो विभाव अधर्म रे, स्वामी ॥ वि० ॥ २ ॥ वस्तु स्वभाव स्वजाति तेहनो, मूल अभाव न थाय ॥ परविभाव अनुगत परिणतियी, कर्मे ते अवराय रे, स्वामी ॥ वि० ॥ ३ ॥ जे विभाव ते पण नैमित्तिक, संतति भाव अनादि ॥ परनिमित्त ते विषय सं-गादिक, ते संयोगें सादि रे, स्वामी ॥ वि० ॥ ४ ॥ अशुद्ध निमित्तें ए संसरता, अत्ता कत्ता परनो ॥ शुद्ध निमित्त रमे जब चिद्घन, कर्त्ता भोक्ता घरनो रे, स्वामी ॥ वि० ॥ ५ ॥ जेहना धर्म अनंता प्रगट्या, जे निजपरिणति वरीयो ॥ परमातम जिनदेव अमोही, ज्ञानादिक गुणदरीयो रे, स्वामी ॥ वि० ॥ ६ ॥ अवलंबन उपदेशक रीतें, श्री सीमंधर देव ॥ भजीयें शुद्ध निमित्त अनोपम, तजीयें भवभय टेव रे, स्वामी ॥ वि० ॥ ७ ॥ शुद्धदेव अवलंबन करतां, परहरीयें परभाव ॥ आत्मधर्म रमण अनुभवतां, प्रगटे आतम भाव रे, स्वामी ॥ वि० ॥ ८ ॥ आतमगुण निर्मल नीपजतां, ध्यान समाधि

भव्य सहाय रे ॥ द० ॥ देवचंद्र पद नीपजे रे
इपसाय रे ॥ द० ॥ १० ॥ श्री० ॥ इति श्री
स्तवनं ॥

॥ अथ तृतीय श्रीबाहुजिन स्तवनं

॥ संभवजिन अवधारीयें ॥ ए देशी ॥ बाहुजि
मणी, वर्त्तमान भगवान ॥ प्रभुजी ॥ महाविदेहें विच
ज्ञान निधान ॥ प्र० ॥ १ ॥ बा० ॥ द्रव्यथकी
न हुवे लेह लगार ॥ प्र० ॥ भावथी परिणामने
छे व्यवहार ॥ प्र० ॥ २ ॥ बा० ॥ रूप अनुत्तर
अनंत गुणंजमिराम ॥ प्र० ॥ जोतां पण जगजंतुनें,
विषय विराम ॥ प्र० ॥ ॥ ३ ॥ बा० कर्मउदय जिन
भविजन धर्मसहाय ॥ प्र० ॥ नामादिक संभारतां, मि
विलाय ॥ प्र० ॥ ४ ॥ बा० ॥ आतमगुण अविरायना
दशा भंडार ॥ प्र० ॥ क्षायिक गुण पर्यायनें, नवि परथ
॥ प्र० ॥ ५ ॥ बा० ॥ गुणगुण परिणति परिणमे, बाध
विहीन ॥ प्र० ॥ द्रव्य असंगी अन्यनो, शुद्ध अहिंसक
॥ प्र० ॥ ६ ॥ बा० ॥ क्षेत्रें सर्वप्रदेशमें, नहीं परभाव
॥ प्र० ॥ अतनु अयोगी भावथी, अवगाहना अभंग ॥
॥ ७ ॥ बा० ॥ उत्पाद व्यय ध्रुवपणे, सहेजें परिणति
॥ प्र० ॥ छेदन योजनता नहीं, वस्तुस्वभाव समाय ॥ प्र०
८ ॥ बा० ॥ गुण पर्याय अनंतता, कारक परिणति तेम
प्र० ॥ निज निज परिणति परिणमे, भाव अहिंसक एम
प्र० ॥ ९ ॥ बा० ॥ एम अहिंसकतामयी, दीठो तुं जिनर
॥ प्र० ॥ रक्षक निज पर्जीवनो, तारक करुं जिनराज ॥ प्र

॥ अथ पंचम श्रीसुजातजिन स्तव

॥ देहुं देहुं नणद हठीली ॥ ए देशी ॥
सुहाया, दीठा आणंद उपाया रे ॥ मनमोहना
जिणें प्रण तत्त्व निपाया, द्रव्यास्तिक नय ठहराय
॥ १ ॥ पर्यायास्तिक नयराया, ते मूलस्वभाव समाया
ज्ञानादिक स्व परजाया, निजकार्य करण वरताया रे
॥ २ ॥ अंशनय मार्ग कहाया. ते विकल्पभाव
॥ म० ॥ नय चार ते द्रव्य थपाया, शब्दादिक भा
रे ॥ म० ॥ ३ ॥ दुर्नय ते सुनय चलाया, एक
स्थाया रे ॥ म० ॥ ते सविपरमार्थ समाया, तसु
गमाया रे ॥ म० ॥ ४ ॥ स्याद्वादीवस्तु कहिजें,
अनंत लहीजें रे ॥ म० ॥ सामान्य विशेषनुं धाम, ते
स्तिक परिणाम रे ॥ म० ॥ ५ ॥ जिनरूप अनंत गण
दिव्यज्ञान जाणीजें रे ॥ म० ॥ श्रुतज्ञानें नयपथ लीजें
भव आस्वादन कीजें रे ॥ म० ॥ ६ ॥ प्रभुशक्ति
एकभावें, गुण सर्व रह्या समभावें रे ॥ म० ॥ माहरे
प्रभु सरखी, जिनवचन पसायें परखी रे ॥ म० ॥ ७ ॥
निज संपत्ति भोगी, हुंतो परपरिणतिनो योगी रे ॥ म०
तिणे तुम्ह प्रभु माहरा स्वामी, हुं सेवक तुझ गुणग्रामी
॥ म० ॥ ८ ॥ ए संबंधें चित्त समवाय, मुझ सिद्धिनुं का
थाय रे ॥ म० ॥ जिनराजनी सेवना करवी, ध्येय ध्य
धारणा धरवी रे ॥ म० ॥ ९ ॥ तुं पूरण प्रभु अरूपी,
ज्ञानानंद स्वरूपी रे ॥ म० ॥ इम तत्त्वालंबन करीयें, त
देवचंद्र पदवरीयें रे ॥ म० ॥ १० ॥ इति सुजातजिनस्तवनं॥

॥ अथ सप्तम श्रीऋषभाननजिन स्

॥ वारी हुं गोडी पासने ॥ ए देशी ॥ ॥
वंदियें, अचल अनंत गुणवास ॥ जिनवर ॥ क्षा
भोगवी, ज्ञानानंद विलास ॥ जि० ॥ १ ॥ श्री०
प्रभु मुख वदे, तेहीज नयन प्रधान ॥ जि० ॥
जे नामीयें, मस्तक तेह प्रमाण ॥ जि० ॥ २ ॥
अरिहापदकज अरचियें, स लहीजें ते हत्थ ॥ जि०
गुण चिन्तनमें रमे, तेहज मन सुकयत्थ ॥ जि० ॥ ३
जाणो छो सहु जीवनी, साधक बाधक भाव ॥ जि०
श्रीमुखथी सांभली, मन पामे नीरांत ॥ जि० ॥ ४ ॥
तीन काल जाणग भणी, शुं कहियें वारंवार ॥
पर्यानंदी प्रभु नयें, ध्यान ते परम आधार ॥ जि० ।
श्री० ॥ कारणथी कारज हुवे, ए श्री जिनमुख वाण ॥
पुष्टहेतु मुज सिद्धिना, जाणी कियुं प्रमाण ॥ जि० ॥
श्री० ॥ शुद्ध तत्त्व निज संपदा, ज्यां लगें पूर्ण न
॥ जि० ॥ त्यां लगें जग गुरु देवना, सेवुं चरण
॥ जि० ॥ ७ ॥ श्री० ॥ कारज पूर्ण कर्या विना,
केम मुकाय॥ जि० ॥ कारज रुचि कारणतणा, सेवे शुद्ध
॥ जि० ॥ ९ ॥ श्री० ॥ ज्ञान चरण संपूर्णता, अव्या
अमाय ॥ जि० ॥ देवचंद्र पद पामीयें, श्री जिनराज प
॥ जि० ॥ ९ ॥ श्री० ॥ इति श्री ऋषभाननजिन स्तवनं

॥ अथ अष्टम श्री अनंतवीर्यजिन स्तवन ॥

॥ [illegible] अनंतवीर्य
जिनराजनो [illegible]
[illegible] प्रभुगुण [illegible]
[illegible] है ॥ [illegible]
रूप है ॥ [illegible]
है ॥ ३ ॥ [illegible]
है ॥ [illegible]
॥ प्र० ॥ [illegible]
॥ [illegible]
॥ प्र० ॥ [illegible]
है ॥ [illegible]
है ॥ ६ ॥ प्र० ॥ [illegible]
धाम है ॥ [illegible]
७ ॥ प्र० ॥ शुद्ध [illegible]
है ॥ ते [illegible]
॥ ८ ॥ प्र० शुद्ध [illegible]
समाय है ॥ [illegible]
॥ ९ ॥ प्र० ॥ [illegible]
है ॥ देवचंद्र [illegible] ॥ १० ॥ इति ॥

॥ अथ नवम श्रीसूरप्रभजिन स्तवनम् ॥

॥ देशी कडखानी ॥ सूर जगदीशनी तीक्ष्ण अति धारता, तेणें चिरकालनो मोह वार्यो ॥ भाव स्याद्वादता शुद्ध परकाश करि, नीपनो परम पद जग वधार्यो ॥ १ ॥ सू० ॥ प्रथम-मिथ्यात्व हणि शुद्ध दर्शन निपुण, प्रगट करि जेणें अविरति पणासी ॥ शुद्ध चारित्र गत वीर्य एकत्वथी, परिणति कलुषता सवि विनाशी ॥ २ ॥ सू० ॥ सर्व परभावनी कर्तृता परिहरी, आत्मपरिणाम कर्तृत्व धारी ॥ श्रेणि आरोहतां वेद हास्यादिनी, संगमी चेतना प्रभु निवारी ॥ ३ ॥ सू० ॥ भेद-ज्ञानें यथा वस्तुता ओलखी, द्रव्य पर्यायमें थइ अभेदी ॥ भाव सविकल्पता छेदि चेतन सकल, ज्ञान अनंतता स्वामि वेदी ॥ ४ ॥ सू० ॥ वीर्यक्षायिक बलें चपलता योगनी, रोधि चेतन कर्यो शुचि अलेशी ॥ भाव शैलेशीमें परम अक्रिय थइ, क्षय करी चार तनु कर्मशेषी ॥ ५ ॥ सू० ॥ वर्ण रस गंध विनु फरस संस्थान विनु, योगनें संग विनु सिद्ध अरूपी ॥ परम आनंद अव्याबाध सुख अनुभवी, तत्त्वन-मय सदा चिद्रूपी ॥ ६ ॥ सू० ॥ ताहरी शक्ता धीरता भीरुता, देखि सेवकतणो चित्त राच्यो ॥ एम गुणरागनी पुष्टी आदरैना, गुणी अनुसरे जीव साच्यो ॥ ७ ॥ सू० ॥ आत्मगुण रुचि थये तत्त्व साधन रसी, तत्त्व निष्पत्ति निर्वाण थावे ॥ देवचंद्र शुद्ध परमात्म सेवनथकी, परम आत्मिक आनंद पावे ॥ ८ ॥ सू० ॥ इति नवम सूरप्रभजिन स्तवनम् ॥ ९ ॥

॥ अथ दशम श्रीविशालजिन स्तवनं ॥

॥ प्राणी वाणी जिनतणी ॥ ए देशी ॥ देव विशाल जिणंदनी, तमें ध्यावो तत्त्व समाधि रे ॥ चिदानंद रस अनुभवी, सहज अकृत निरुपाधि रे ॥ १ ॥ स० ॥ अरिहंत पद वंदीयें गुणवंत रे ॥ गुणवंत अनंत महंत स्तवो, भवतारण भगवंत रे ॥ ए आंकणी ॥ भव उपाधि गद टालवा, प्रभुजी छो वैद्य अमोघ रे ॥ रत्नत्रयि औषध करी, तमें तार्या भविजन ओघ रे ॥ २ ॥ त० ॥ अ० ॥ भव समुद्र जल तारवा, निर्यामक सम जिनराज रे ॥ चरण जहाजें पामीयें, अक्षय शिवनगरनुं राज रे ॥ ३ ॥ अ० ॥ अ० ॥ भव अटवी अति गहनथी, पारग प्रभुजी सत्थवाह रे ॥ शुद्धमार्ग दर्शकपणे, योग क्षेमंकर नाह रे ॥ ४ ॥ यो० ॥ अ० ॥ रक्षक जिन छकायना, वली मोहनिवारक स्वामी रे ॥ श्रमण संग रक्षक सदा, तेणें गोप ईश अभिराम रे ॥ ५ ॥ ते० ॥ अ० ॥ भाव अहिंसक पूर्णता, माहणना उपदेश रे ॥ धर्म अहिंसक नीपने, माहण जगदीश जिनेश रे ॥ ६ ॥ मा० ॥ अ० ॥ पूरण आतम अनुभवी, तारक ज्ञायक मुनिचंद रे ॥ मोचक मोह विभावथी, टालण मोह अरिंद रे ॥ ७ ॥ टा० ॥ अ० ॥ कामकुंभ सुरमणि थकी, अधिकें उपगारी थाय रे ॥ देवचंद्र सुखकर प्रभु, गुण गेह अमोह अमाय रे ॥ ८ ॥ गु० ॥ अ० ॥

इति श्री विशालजिन स्तवनम् ॥

॥ अथ एकादश श्री वज्रंधरजिन स्तव

॥ नदी यमुनाके तीर ॥ ए देशी ॥ विहरमान
सुणो मुज विनति ॥ जगतारक जगनाथ. अछो त्रिभुव
भासक लोकालोक, तिण जाणो छती ॥ तो पण विन
कहूं छुं तुज प्रति ॥ १ ॥ हुं सत्ता निज छोडि. र
दुरुदे ॥ क्षान्ति उत्तर आणी. विषय तृष्णाजले ॥
बंधविभाव, करुं रुचि आपणी ॥ भुल्यो मिथ्यावास, दे
परभणी ॥ २ ॥ अवगुण ढांकण काज. करु जिनमत ि
न तजुं अवगुण चाल, अनादिनी जे प्रिया ॥ दृष्टिरागनो
वेह समकित गयुं ॥ स्याद्वादनी रीत, न देखुं निजपणुं
रुन तनु वस्तु स्वभाव, वचन एकांतता ॥ वस्तु
स्वभाव, न भासे ते उता ॥ जे लोकोत्तर देव, नमुं ल
करी ॥ दुर्लभ सिद्ध स्वभाव, प्रभो तहकीकरी ॥ ४
महाविदेह मजार के, तारक जिनवरु ॥ श्रीवज्रंधर अरि
अनंत गुणाकरु ॥ ते निर्यामक श्रेष्ठ, सही मुज तारशे
महावैद्य गुणयोग, रोग भव वारशे ॥ ५ ॥ प्रभुमुख भ
स्वभाव, गुन जो माहरो ॥ तो पामे प्रमोद, एह चेत
रुरो ॥ थाये शिवपद आश, राशि सुखवृंदनी ॥ सहज स्वत
स्वरूप, खाण आणंदनी ॥ ६ ॥ वळगया जे प्रभुनाम, धार
ते गुण तणा ॥ धाये चेतन राम, एह थिरवासना ॥ देवचंद्र
जिनचंद्र, हृदय थिर थापजो ॥ जिन आणायुक्त भक्ति, शक्ति
मुज आपजो॥७॥ इति एकादश श्रीवज्रधरजिन स्तवनं॥११॥

हो, के करताभाव नहीं ॥ सर्व प्रदेशें हो, के वृत्ति विभक्त कही ॥ चेतन द्रव्यने हो, के सकल प्रदेश मिले ॥ गुणवर्त्तना वर्त्ते हो, के वस्तुने सहज बले ॥ ३ ॥ शंकर सहकारी हो, के सहजें गुण वरते ॥ द्रव्यादिक परिणति हो, के भवें अनुसरते ॥ दानादिक लब्धि हो, के न हुवे सहाय विना ॥ सहकार अकंपे हो, के गुणनी वृत्ति घना ॥४॥ पर्याय अनंता हो, के जे एक कार्यपणें ॥ वरते तेहने हो, के जिनवर गुण पभणे ॥ ज्ञानादिक गुणनी हो, के अनंता जीव प्रतें ॥ धर्मादिक द्रव्यने हो, के सहकारें करते ॥ ५ ॥ ग्राहक व्यापकता हो, के प्रभुतुम धर्म रमी ॥ आतम अनुभवथी हो, के परिणति अन्य वमी ॥ तुझ शक्ति अनंती हो, के गातांने ध्यातां ॥ मुझ शक्ति विकाशन हो, के थाये गुण रमतां ॥ ६ ॥ इम निज गुणभोगी हो, के स्वामि भुजंग मुदा ॥ जे नित्य वंदे हो, के ते नर धन्य सदा ॥ देवचंद्र प्रभुनी हो, के पुण्यें भक्ति सधे ॥ आतम अनुभवनी हो, के नित्य नित्यशक्ति वधे ॥ ७ ॥ इति ॥ १४ ॥

॥ अथ पंचदश श्री ईश्वरदेवजिन स्तवनम् ॥

॥ काल अनंतानंत ॥ ए देशी ॥ ऐसो ईश्वरदेव, जिणें ईश्वरता हो निज अद्भुत वरी ॥ तिरोभावनी शक्ति, आविर्भावें हो सवि प्रगट करी ॥ १ ॥ अस्तित्वादिक धर्म, निर्मल भावें हो सहुने सर्वदा ॥ नित्यत्वादि स्वभाव, ते परिणामी हो जडचेतन सदा ॥ २ ॥ कर्ता भोक्ता भाव, कारक ग्राहक हो ज्ञान चारित्रता ॥ गुणपर्याय अनंत, पाम्या

बुद्ध ॥ वीरज वीरज अनंत स्वभावनो हो जी, चारित्र [illegible] शुद्ध ॥ ५ ॥ न० ॥ विश्रामि विश्रामि निजभावना जी, स्याद्वादी अप्रमाद ॥ परमातम परमातम प्रभु दे[illegible] हो जी, भासि [illegible] ॥ ६ ॥ न० ॥ जिन[illegible] जिनसम [illegible] [illegible] इह अंत[illegible] [illegible] हो जी, परपरिणति [illegible] ॥ ७ ॥ न० ॥ प्रति[illegible] [illegible] जिनराजने हो जी, [illegible] साधक भाव ॥ देवचंद्र देवचंद्र पद [illegible] हो जी, शुद्ध[illegible] प्रागभाव ॥ ८ ॥ न० ॥ इति [illegible] नमिप्रभजिन स्तवनं ॥

॥ अथ सप्तदश श्री [illegible]जिन स्तवनम् ॥

॥ [illegible] ॥ [illegible] ॥ [illegible] जगदीस ताहरी परम जगीश, आज [illegible] त्रिभुवनधी धणी जी ॥ १ ॥ अणहारी [illegible] [illegible] अजय अविरोध, आज हो अविनाशी अलेशी [illegible] प्रभुता घणी जी ॥ २ ॥ अनींद्रिय गत कोह, विगतमाय मय लोह, आज [illegible] मोहे रे मोहे जगजनना भणी जी ॥ ३ ॥ [illegible] ॥ [illegible], पूर्णानंद स्वरूप, आज हो [illegible] [illegible] थि[illegible] ॥ धणी जी ॥ ४ ॥ वेदरहित अकषाय, शुद्ध सिद्ध अ[illegible], आज हो ध्यायकें ध्यायकें ध्येयपदें [illegible] जी ॥ ५ ॥ [illegible] निज भोग, शुद्धस्वगुण उपभोग, आज हो अजोगी [illegible] भोक्ता प्रभु रह्यो जी ॥ ६ ॥ दरिसण ज्ञान चारित्र, सहज [illegible] पवित्र, आज हो निर्मल निस्संगी अविहा वीर्य जी ॥ ७ ॥ देवचंद्र जिनचंद्र, पूर्णानंदनो वृंद, आज हो [illegible], थिर आनंदीयें जी ॥ ८ ॥ इति ॥

॥ अथ अष्टादश श्री महाभद्रजिन स्त

॥ नट यमुनानुं रे, अति रलीयामणुं रे ॥ ए
महाभद्र जिनराज, राज राजविराजे हो आज तुमा
क्षायिकवीर्य अनंत, धर्म अभंगें हो तुं साहिब वडो
हुं बलिहारी रे श्री जिनवरतणी रे ॥ कर्त्ता भो
कारक कारण हो तुं स्वामी छतो जी ॥ ज्ञानानं
सर्व वस्तुनो हो धर्म प्रकाशनो जी ॥ २ ॥ हुं० ॥
दर्शन नित्त, स्थिरनिर्धारे रे अविसंवादना जी ॥ अ
समाधि, कोश अनघ्यें रे. निज आनंदना जी ॥३॥ हुं
असंख्य प्रदेश, निजनिज रीते रे गुण संपत्ति भर्या जी ॥
दुर्ग अभंग, आतम शक्ते हो पज्जय संचर्या जी ॥४॥
धर्मक्षमादिक सैन्य, परिणति प्रभुता हो तुज बल
जी ॥ तत्त्व सकल प्राग्भाव, सादि अनंती रे रीतें प्र
जी ॥ ५ ॥ हुं० ॥ द्रव्य भाव अरिलेश, सकल निव
साहिब अवनवी जी ॥ इत स्वभाव विलास, भोगी उप
रे ज्ञान गुणे भर्यो जी ॥ ६ ॥ हुं० ॥ आचारिज उव
साधक मुनिवर हो देश विरत धरू जी ॥ आतम सिद्ध
कारणरूपें रे योगक्षेमंकरु जी ॥ ७ ॥ हुं० ॥ सम्यग्दृष्टि
आणाकामी हो सहु जिनराजना जी ॥ आतम साधन व
सेवे पदकज हो श्री महाराजना जी ॥ ८ ॥ हुं० ॥ देव
जिनचंद्र, भगतें राचो हो भवि आतम रुचि जी ॥ अ
स्वरूप शुद्ध, संपत्ति प्रगटे हो सत्तागत शुचि जी ॥९॥ हुं०

बुद्ध ॥ वीरज वीरज अनंत स्वभावनो हो जी, चारित्र क्षायिक शुद्ध ॥ ५ ॥ न० ॥ विश्रामि विश्रामि निजभावना हो जी, स्याद्वादी अप्रमाद ॥ परमातम परमातम प्रभु देखता हो जी, भागि भाति जनाद ॥ ६ ॥ न० ॥ जिनसम जिनसम सत्ता ओलखी हो जी, तसु प्रागभावनी इह ॥ अंतर अंतर आतमना लही हो जी, परपरिणति निरीह ॥ ७ ॥ न० ॥ प्रतिछंदें प्रतिछंदें जिनराजनें हो जी, करतां साधक भाव ॥ देवचंद्र देवचंद्र पद अनुभवे हो जी, शुद्धातम प्रागभाव ॥ ८ ॥ न० ॥ इति षोडश नमिप्रभजिन स्तवनं ॥

॥ अथ सप्तदश श्री वीरसेनजिन स्तवनम् ॥

॥ लाछलदे मात मल्हार ॥ ए देशी ॥ वीरसेन जगदीश ताहरी परम जगीश, आज हो दीपे रे वीरजना त्रिभुवनधी धणी जी ॥ १ ॥ अणहारी अशरीर, अक्षय अजय अतिधीर, आज हो अविनाशी अलेशी ध्रुव प्रभुता घणी जी ॥ २ ॥ अतींद्रिय गत कोह, विगतमाय मय लोह, आज हो सोहे रे मोहे जगजनता भणी जी ॥ ३ अमर ॥ अखंड अरूप, पूर्णानंद स्वरूप, आज हो चिद्रूपें दीपे थिर समता धणी जी ॥ ४ ॥ वेदरहित अकषाय, शुद्ध सिद्ध असहाय, आज हो ध्यायकें नायकने ध्येयपदें ग्रह्यो जी ॥ ५ ॥ दानलाभ निज भोग, शुद्धस्वगुण उपभोग, आज हो अजोगी करता भोक्ता प्रभु लह्यो जी ॥ ६ ॥ दरिसण ज्ञान चारित्र, सकल प्रदेश पवित्र, आज हो निर्मल निसंगी अरिहा वंदीयें जी ॥७॥ देवचंद्र जिनचंद, पूर्णानंदनो वृंद, आज हो जिनवरसेवाथी, चिर आनंदीयें जी ॥ ८ ॥ इति ॥

॥ अथ अष्टादश श्री महाभद्रजिन स्तवन॥

॥ नट यमुनानुं रे. अति रळीयामणुं रे ॥ ए दे
महाभद्र जिनराज, राज राजविराजे हो आज तुमारडो
क्षायिकवीर्य अनंत, धर्म अभंगे हो तुं साहिब वडो जी
हुं बलिहारी रे श्री जिनवरतणी रे ॥ कर्ता भोक्ता
कारक कारण हो तुं स्वामी छतो जी ॥ ज्ञानानंद
सर्व वस्तुनो हो धर्म प्रकाशनो जी ॥ २ ॥ हुं० ॥ स
दर्शन मित्त, स्थिरनिर्धारे रे अविसंवादना जी ॥ अव्य
समाधि, कोश अनर्घ्यं रे. निज आनंदना जी ॥३॥ हुं ।
असंख्य प्रदेश, निजनिज रीतें रे गुण संपत्ति भर्या जी ॥ ६
दुर्ग अभंग, आतम शक्तें हो परजय संचर्या जी ॥४॥ हुं०
धर्मक्षमादिक सैन्य, परिणति प्रभुता हो तुझ बल अ
जी ॥ तत्त्व सकल प्राग्भाव, सादि अनंती रे रीतें प्रभु
जी ॥ ५ ॥ हुं० ॥ द्रव्य भाव अरिलेश, सकल निवार
साहिब अवनयों जी ॥ सहज स्वभाव विलास, भोगी उपयं
रे ज्ञान गुणें भर्यो जी ॥ ६ ॥ हुं० ॥ आचारिज उवझ
साधक मुनिवर हो देश विरत धरु जी ॥ आतम सिद्ध अ
कारणरूपें रे योगक्षेमंकरु जी ॥ ७ ॥ हुं० ॥ सम्यग्दृष्टि उ
आणाराणी हो सहु जिनराजना जी ॥ आतम साधन का
सेवे पदपंकज हो श्री महाराजनां जी ॥ ८ ॥ हुं० ॥ देव
जिनचंद, भगतें राचो हो भाव आतम रुचि जी ॥ अव्य
अक्षय शुद्ध, संपत्ति प्रगटे हो सत्तागत शुचि जी ॥९॥ हुं०

बुद्ध ॥ वीरज वीरज अनंत स्वभावनो हो जी, चारित्र क्षायिक शुद्ध ॥ ५ ॥ न० ॥ विश्रामि विश्रामि निजभावना हो जी, स्याद्वादी अप्रमाद ॥ परमातम परमातम प्रभु देखता हो जी, भागि भ्रांति अनादि ॥ ६ ॥ न० ॥ जिनसम जिनसम सत्ता ओलखी हो जी, तसु प्राग्भावनी इह ॥ अंतर अंतर आतमता लही हो जी, परपरिणति निरीह ॥ ७ ॥ न० ॥ प्रतिछंदे प्रतिछंदे जिनराजने हो जी, करतां साधक भाव ॥ देवचंद्र देवचंद्र पद अनुभवे हो जी, शुद्धातम प्राग्भाव ॥ ८ ॥ न० ॥ इति षोडश नमिप्रभजिन स्तवनं ॥

॥ अथ सप्तदश श्री वीरसेनजिन स्तवनम् ॥

॥ लाछलदे मात मल्हार ॥ ए देशी ॥ वीरसेन जगदीश ताहरी परम जगीश, आज हो छाजे रे वीरजता त्रिभुवनधणी जी ॥ १ ॥ अणहारी अशरीर, अक्षय अजय अतिधीर, आज हो अविनाशी अलेशी ध्रुव प्रभुता घणी जी ॥ २ ॥ अतींद्रिय गत कोह, विगतमाय मय लोह, आज हो सोहे रे मोहे जगजनता भणी जी ॥ ३ ॥ अमर ॥ अखंड अरूप, पूर्णानंद स्वरूप, आज हो चिद्रूप दीपे थिर समता धणी जी ॥ ४ ॥ वेदरहित अकषाय, शुद्ध सिद्ध असहाय, आज हो ध्यायकें नायकने ध्येयपदे ग्रह्यो जी ॥ ५ ॥ दानलाभ निज भोग, शुद्धस्वगुण उपभोग, आज हो अजोगी करता भोक्ता प्रभु लह्यो जी ॥ ६ ॥ दरिसण ज्ञान चारित्र, सकल प्रदेश पवित्र, आज हो निर्मल निसंगी अरिहा वंदीयें जी ॥७॥ देवचंद्र जिनचंद्र, पूर्णानंदनो वृंद, आज हो जिनवरसेवाथी, चिर आनंदीयें जी ॥ ८ ॥ इति ॥

॥ अथ अष्टादश श्री महाभद्रजिन स्त

॥ नट पनुनानुं रे, अति रुमीयामणुं रे ॥ ए
महाभद्र जिनराज, राज राजविराजे हो आज तुमा
क्षायिकवीर्य अनंत, धर्म अभंगे हो तुं साहिब वडो
हुं बलिहारी रे श्री जिनवरना रे ॥ कर्ता भो
कारक कारण हो तु स्वामी छतो जी ॥ ज्ञानानं
सर्व वस्तुनो हो धर्म प्रकाशनो जी ॥ २ ॥ हुं० ॥
दर्शन मित्त, स्थिरनिर्धार रे अविसंवादना जी ॥ ३
समाधि, कोश अनघ रे. निज आनंदना जी ॥३॥ हु
असंख्य प्रदेश. निजनिज रीते रे गुण संपति भर्या जी ॥
दुर्ग अभंग, आतम शक्ते हो परजय संचर्या जी ॥४॥
धर्मक्षमादिक सैन्य, परिणति प्रभुना हो तुझ बल
जी ॥ तत्त्व सकल प्राग्भार, सादि अनंती रे रीतें प्र
जी ॥ ५ ॥ हु० ॥ द्रव्य भाव अरिलेश, सकल निव
साहिब अवनवी जी ॥ हुआ स्वभाव विलास, भोगी उप
रे ज्ञान गुणें भर्या जी ॥ ६ ॥ हु० ॥ आचारिज उव
साधक मुनिवर हो देश विरत अछ जी ॥ आतम सिद्ध अ
शरणरूपें रे योगक्षेमंकर जी ॥ ७ ॥ हुं० ॥ सम्यग्दृष्टि
आणारागी हो सहु जिनराजना जी ॥ आतम साधन क
वि पदकज हो श्री महाराजना जी ॥ ८ ॥ हुं० ॥ देव
जिनचंद्र, भगतें राचो हो मन आतम रुचि जी ॥ अ
रूप शुद्ध, संपत्ति प्रगटे हो सत्तागत शुचि जी ॥९॥ हुं०

॥ अथ एकोनविंश श्री देवजशाजिन स्तवनम् ॥

॥ महाविदेह क्षेत्र सोहामणुं ॥ ए देशी ॥ देवजशा दरि-सण करो, विघटे मोह विभाव लाल रे ॥ [illegible]

॥ अथ विंशति श्री अजितवीर्यजिन स्तवनम् ॥

॥ अजितवीर्यजिन विचरना रे ॥ मनमोहनां रे लाल ॥ पुष्कर अर्द्धविदेह रे ॥ भविबोहनां रे लाल ॥ जंगम सुरतरु सारिसो रे ॥ मन० ॥ सेवे धन्य धन्य तेह रे ॥ भवि० १ ॥ जिनगुण अमृत पानथी रे ॥ म० ॥ अमृतक्रिया सुपसाय रे ॥ भ० ॥ अमृतक्रिया अनुष्ठानथी रे ॥ म० ॥ आतम अमृत थाय रे ॥ भ० ॥ २ ॥ प्रीति भक्ति अनुष्ठानथी ॥ म० ॥ वचनअसंगी सेव रे ॥ भ० ॥ कर्तानिर्भयता लहे रे ॥ म० ॥ प्रभुभक्ति निर्भयमेव रे ॥ भ० ॥ ३ ॥ परमेश्वर अवलंबने रे ॥ म० ॥ ध्याता ध्येय अभेद रे ॥ भ० ॥ ध्येय समापि हुवे रे ॥ म० ॥ साध्यसिद्धि अविच्छेद रे ॥ भ० ॥ ४ ॥ जिन-गुण राग परागथी रे ॥म०॥ वासित मुझ परिणाम रे ॥ भ० ॥ तजसे दुष्टविभावता रे ॥म०॥ सरसे आतम काम रे ॥भ०॥ ॥ ५ ॥ जिनभक्तिरत चित्तने रे ॥ म० ॥ वेधकरस गुण प्रेम रे ॥ भ० ॥ सेवक जिनपद पामसे रे ॥ म० ॥ रसवेधित अय जेम रे ॥म०॥६॥ नाथ भक्तिरस भावथी रे ॥म०॥ तृण जाणुं परदेव रे ॥ भ० ॥ परमानम चिन्तामणि सुरतरु थकी रे ॥ म० ॥ अधिकी अरिहंत सेव रे ॥भ०॥ ७ ॥ गुण स्मृतिथकी रे ॥ म० ॥ फरसे आतमराम रे ॥ भ० ॥ नियमाकंचनता लहे रे ॥ म० ॥ लोह ज्युं पारस पाम रे ॥ म० ॥ ८ ॥ निर्मल तत्त्वरुचि थइ रे ॥ म० ॥ करजो जिनपति भक्ति ॥ भ० ॥ देवचंद्र पद पामसो रे ॥ म० ॥ परम महोदय युक्ति रे ॥ भ० ॥ ९ ॥ इति ॥ २० ॥

॥ अथ एकोनविंश श्री देवजसाजिन स्तवनम् ॥

॥ महाविदेह क्षेत्र सोहामणुं ॥ ए देशी ॥ देवसजा दरिसण करो, विघटे मोह विभाव लाल रे ॥ प्रगटे शुद्ध स्वभावना, आनंद लहरी दाव लाल रे ॥ १ ॥ दे० ॥ स्वामी वसो पुष्कर वरें, जबूभरतें दास लाल रे ॥ क्षेत्र विभेद घणो पड्यो, किम पोहोंचे उल्लास लाल रे ॥ २ ॥ दे० ॥ होवत जो तनु पांखडी, आवत नाथ हजूर लाल रे ॥ जो होती चित्त आंखडी, देखत नित्य प्रभु नूर लाल रे ॥ ३ ॥ दे० ॥ शासनभक्त जे सुरवरा, विनवुं शीश नमाय लाल रे ॥ कृपा करो मुझ उपरें, तो जिनवंदन थाय लाल रे ॥ ४ ॥ दे० ॥ पूर्वे विराधना, शी कीधी इणे जीव लाल रे ॥ अविरति मोह टले नहीं, दीठे आगमदीव लाल रे ॥ ५ ॥ दे० ॥ आतम शुद्ध स्वभावने, बोधन शोधनकाज लाल रे ॥ रत्नत्रयी प्राप्ति तणो, हेतु कहो महाराज लाल रे ॥ ६ ॥ दे० ॥ तुझ सरिखो साहिब मिल्यो, भांजे भवभ्रम टेव लाल रे ॥ पुष्टालंबन प्रभु लहि, कोण करे परसेव लाल रे ॥ ७ ॥ दे० ॥ दीनदयाल कृपालुओ, नाथ भविक आधार लाल रे ॥ देवचंद्र जिन सेवना, परमामृत सुखकार लाल रे ॥ ८ ॥ दे० ॥ इति श्री देवजसाजिन स्तवनं ॥

॥ अथ विंशति श्री अजितवीर्यजिन स्तवनम् ॥

॥ अजितवीर्यजिन विचरता रे ॥ मनमोहनां रे लाल ॥ पुष्कर अर्द्धविदेह रे ॥ भविबोहनां रे लाल ॥ जंगम सुरतरु सारिखो रे ॥ मन० ॥ सेवे धन्य धन्य तेह रे ॥ भवि० १ ॥ जिनगुन अमृत पानथी रे ॥ म० ॥ अमृतक्रिया सुपसाय रे ॥ म० ॥ अमृतक्रिया अनुष्ठानथी रे ॥ म० ॥ आतम अमृत थाय रे ॥ म० ॥ २ ॥ प्रीति भक्ति अनुष्ठानथी ॥ म० ॥ वचनअसंगी सेव रे ॥ म० ॥ कर्त्तानन्यपना लहे रे ॥ म० ॥ प्रभुभक्ति निःस्नेह रे ॥ म० ॥ ३ ॥ परमेश्वर अवलंबने रे ॥ म० ॥ ध्याता ध्येय अभेद रे ॥ म० ॥ ध्येय समापि हुवे रे ॥ म० ॥ साध्यसिद्धि अविच्छेद रे ॥ म० ॥ ४ ॥ जिन-गुन राग परागथी रे ॥म०॥ वासित मुझ परिणाम रे ॥ म० ॥ तजसे दुष्टविभावता रे ॥म०॥ सरसे आतम काम रे ॥म०॥ ॥ ५ ॥ जिनभक्तिरत चित्तने रे ॥ म० ॥ वेधकरस गुण प्रेम रे ॥ म० ॥ सेवक जिनपद पामसे रे ॥ म० ॥ रसवेधित अय [illegible] रे ॥म०॥६॥ नाथ भक्तिरस भावथी रे ॥म०॥ तृण जाणुं [illegible] रे ॥ म० ॥ परमानम चिन्तामणी सुरतरु थकी रे ॥ म०॥ अधिकी अरिहंत सेव रे ॥म०॥ ७ ॥ गुण स्मृतियकी रे ॥ म० ॥ परसो आतमराम रे ॥ म० ॥ नियमा कंचनता [illegible] रे ॥ म० ॥ लोह ज्युं पारस पाम रे ॥ म० ॥ ८ ॥ निर्मल तत्त्वरुचि थइ रे ॥ म० ॥ करजो जिनपति भक्ति [illegible] ॥ म० ॥ देवचंद्र पद पामसो रे ॥ म० ॥ परम महोदय [illegible] भक्ति रे ॥ म० ॥ ९ ॥ इति ॥ २० ॥

॥ कलश ॥ राग धन्याश्री ॥

॥ वंदो वंदो रे जिनवर विचरंता वंदो ॥ कीर्त्तन स्तवन नमन अनुसरतां, पूर्वपाप निकंदो रे ॥ जिनवर विचरंता वंदो ॥ १ ॥ जंबू द्वीपें चार जिनेश्वर रे, धातकी आठ आणंदो ॥ पुष्कर अर्धे आठ महामुनि, सेवे चोशठ इंदो रे ॥ जि० ॥ २ ॥ केवली गणधर साधु साधवी, श्रावक श्राविका वृंदो ॥ जिनमुख धर्मअमृत अनुभवतां, पामे मन आणंदो रे ॥ जि० ॥ ३ ॥ सिद्धाचल चौमास रहीने, गायो जिनगुण छंदो ॥ जिनपति भक्ति मुगतिनो मारग, अनुपम शिवसुखकंदो रे ॥ जि० ॥ ४ ॥ खरतर गच्छ जिनचंद सूरिवर, पुण्यप्रधान मुणिंदो रे ॥ सुमति सागर साधु रंग सुवाचक, पीयो श्रुतम-कंदो रे ॥ जि० ॥ ५ ॥ राजसार पाठक उपगारी, ज्ञानधर्म दिणंदो ॥ दीपचंद सद्गुरु गुणवंता, पाठक धीर गयंदो रे ॥ जि० ॥ ६ ॥ देवचंद्र गणि आतम हेतें, गाया वीश जिणंदो ॥ ऋद्धि वृद्धि सुखसंपत्ति प्रगटे, सुजस महोदय वृंदो रे ॥ जि० ॥ ७ ॥ इति पंडितश्री देवचंद्रजीकृत विंशति विहरमान जिनस्तवनानि संपूर्णानि ॥

॥ अथ श्री महोपाध्याय देवचंद्रजी कृत अतित जिन चोविशी ॥

॥अथ प्रथम तीर्थंकर श्रीकेवलज्ञानी जिनस्तवन॥

नामे गाजे परम आल्हाद,
प्रगटे अनुभव रस आस्वाद ॥
तेथी थाये मति सुप्रसाद,
सुणतां भाजेरे कांई विषय विषादरे,
जिणंदा ताहरा नामथी मन भीनो ॥१॥

क्षेत्र असंख्य प्रदेश,
अनंत पर्याय निवेश ॥
जाणग शक्ति अशेष,
तेहथी जाणेरे कांई सकल विशेषरे॥जि० २॥

सर्व प्रमेय प्रमाण,
जस केवल नाण पहाण ॥
तिणे केवलनाणी अभिहाण,
जस ध्यावेरे कांई मुनिवर झाणरे ॥जि० ३॥

ध्रुव परिणति छति जास,
परिणति परिणमे त्रिक राश ॥

करता पद प्रवृत्ति प्रकाश,
अस्ति नास्तिरे कांई सर्वनो भासरे ॥जि० ४

सामान्य स्वभावनो बोध,
केवल दर्शन शोध ॥
सहकार अभावे रोध,
समयंतररे कांई बोध प्रबोधरे ॥जि० ५॥

कारक चक्र समग्ग,
ते ज्ञायक भाव विलग्ग ॥
परमभाव संसग्ग,
एक रीतेरे कांई थयो गुण वग्गरे ॥जि० ६॥

इम सालंबन जिन ध्यान,
भवि साधे तत्त्व विधान ॥
लहे पूर्णानंद अमान,
तेहथी थायेरे कांई शीव इशानरे ॥जि० ७॥

दास विभाव अपाय
नासे प्रभु सुपसाय ॥
जे तन्मयताए ध्याय,
सही तेहनेरे देवचंद्र पद थायरे ॥जि० ८॥

॥ अथ द्वितीय श्रीनिर्वाणी प्रभुनुं स्तवन ॥
॥ धीरजी प्याराहो धीरजी प्यारा ॥ ए राग ॥

प्रणमुं चरण परमगुरु जिनना,
हंस ते मुनि जन मनना ॥
वासी अनुभव नंदन वनना,
भोगी आनंद घनना ॥ १ ॥
मोरा स्वामी हो तोरा ध्यान धरीजे,
ध्यान धरीजे हो सिद्धि वरीजे,
अनुभव अमृत पीजे,
मोरा स्वामी हो तोरा० ॥ ए आंकणी ॥
सकल प्रदेश समा गुण धारी,
निज निज कारज कारी ॥
निराकार अवगाह उदारी,
शक्ति सर्व विस्तारी ॥ मोरा० २ ॥
गुण गुण प्रति पर्याय अनंता,
ते अभिलाप्य स्वतंता ॥
अनंत गुणानभिलापी संता,
कार्य व्यापार करंता ॥ मोरा० ३ ॥
इति अविभागी पर्यय व्यक्ते,
कारज शक्ति प्रवर्त्ते ॥

ते विशेष सामर्थ्य प्रशक्ते,
गुण परिणाम अभिव्यक्ते ॥ मोरा० ४ ॥

निरवाणो प्रभु शुद्ध स्वभावी,
अभय निरायु अपावी ॥
स्याद्वादी यम नोगत रावी,
पूरण शक्ति प्रभावी ॥मोरा० ५॥

अचल अखंड स्वगुण आरामी,
अनंतानंद विसरामी ॥
सकल जीव खेदज्ञ सुस्वामी,
निरामगंधो अकामी ॥मोरा० ६॥

निःसंगी सेवनथी प्रगटे,
पूर्णानंदो ईहा ॥
साधन शक्ते गुण एकत्वे,
सीधे साध्य समीहा ॥मोरा० ७॥

पुष्ट निमित्तालंबन ध्याने,
सालंबन लय ठाने ॥
देवचंद्र गुणने एक ताने,
पहोंचे पूरण थाने ॥मोरा० ८॥

॥ अथ श्री तृतीय सागर प्रभु जिनस्तवन ॥

॥ चउमासी पारणुं आवे ॥ ए राग ॥

गुण आगर सागर स्वामी,
मुनि भाव जीवन निःकामी ॥
गुण करणे कर्त्तृ प्रयोगी,
प्राग्भावी सत्ता भोगी ॥ १ ॥

सुहंकर भव्य ए जिन गावो,
जिम पूरण पदवी पावो॥सुहंकर०॥ए आंकणी॥

सामान्य स्वभाव स्वपरना,
द्रव्यादि चतुष्टय धरना ॥
देखे दरशन रचनाये,
निज वीर्य अनंत सहाये ॥सु० २॥

तेहने ते जाणे नाण,
ए धर्म विशेष पहाण ॥
सावय वीकारज शक्ते,
अविभागी पर्यय व्यक्ते ॥सु० ३॥

जे कारण कारज भावे,
परते पर्याय प्रभावे ॥

प्रति समये व्यय उत्पादि,
ज्ञेयादिक अनुगत सादि ॥सु० ४॥
अविभागी पर्यय जेह,
समवायी कार्यना गेह ॥
जे नित्य त्रिकाली अनंत,
तसु ज्ञायक ज्ञान महंत ॥सु० ५॥
जे नित्य अनित्य स्वभाव,
ते देखे दर्शन भाव ॥
सामान्य विशेषनो पिंड,
द्रव्यार्थिक वस्तु प्रचंड ॥सु० ६॥
इंम केवल दरशन नाण,
सामान्य विशेषनो भाण ॥
द्विगुण आतम श्रद्धाए,
चरणादिक तसु व्यवसाए ॥सु० ७॥
द्रव्य जेह विशेष परिणामी,
ते कहीए पज्जव नामी ॥
छती सामर्थ्य दुभेदे,
पर्याय विशेष निवेदे ॥सु० ८॥
तसु रमणे भोगनो वृंद,
अप्रयासी पूर्णानंद ॥

प्रगटी जस शक्ति अनंती,
निज कारज वृत्ति स्वतंती ॥ सु० ॥९॥

गुण द्रव्य सामान्य स्वभावी,
तोरथपती त्यक्त विभावी।
प्रभु आणा भक्ते लीन,
तिणे देवचंद्र पद कीन ॥ सु० ॥१०॥

॥ अथ चतुर्थ श्री महाजस जिन स्तवन ॥

आतम प्रदेश रंगथल अनुपम,
सम्यकदर्शन रंगरे, निज सुखके सधैया ॥
तुं तो निज गुण खेल वसंतरे ॥ निज० ॥
पर परिणति चिंता तजी निजमें,
ज्ञान सखाके संगरे ॥ नि० ॥ १ ॥

वास बरास सुरुचि केशर घन,
छांटो परम प्रमोदरे ॥ नि० ॥
आतम रमण गुलालकी लाली,
साधक शक्ति विनोदरे ॥ निज० ॥ २ ॥

ध्यान सुधारस पान मगनता,
भोजन सहज सभोगरे ॥ निज० ॥

रिझ एकत्त्वता तानमें वाजे,
वाजिंत्र सनमुख योगरे ॥ निज० ॥३॥

शुक्लध्यान होरीकी ज्वाला,
जाले कर्म कठोररे ॥ निज० ॥
शेप प्रकृति दल खिरण निर्झरा,
भस्म खेल अति जोररे ॥ निज० ॥४॥

देव महाजस गुण अवलंबन,
निर्भय परिणति व्यक्तिरे ॥ निज० ॥
ज्ञाने ध्याने अति वहुमाने,
साधे मुनि निज शक्तिरे ॥ निज० ॥ ५ ॥

सकल अजोग अलेश असंगत,
नाहि होवे सिद्ध रे ॥ निज० ॥
देवचंद्र आणामें खेले,
उत्तम युंहिं प्रसिद्ध रे ॥ निज० ॥ ६ ॥

॥ अथ पंचम श्री विमलजिन स्तवन ॥

॥ राग-कडखो. ॥

धन्य ! तुं धन्य तुं ! धन्य ! जिनराज तुं,
धन्य ! तुज शक्ति व्यक्ति सनूरी ॥

कार्य कारण दशा सहज उपगारता,
शुद्ध कर्तृत्व परिणाम पूरी ॥ धन्य० ॥१॥
आत्म प्रभाव प्रतिभास कारज दशा,
ज्ञान अविभागि परजय प्रवृत्ते ॥
एम गुण सर्व निज कार्य साधे प्रगट,
ज्ञेय दृश्यादि कारण निमित्ते ॥ धन्य० ॥२॥
दास बहु मान भासन रमण एकता,
प्रभु गुणालंबनी शुद्ध थाये ॥
बंधना हेतु रागादि तुज गुण रसी;
तेह साधक अवस्था उपाये ॥धन्य तुं०॥३॥
कर्म जंजाल युंजनकरण योग जे,
स्वामी भक्ति रम्या थिर समाधि ॥
दान तप शील व्रत नाथ आणा विना,
थईय बाधक करे भव उपाधि ॥ धन्य०॥४॥
सकल परदेश समकाल सवि कार्यता,
करण सहकार कर्तृत्व भावो ॥
द्रव्य परदेश पर्याय आगमपणे,
अचल असहाय अक्रिय दावो ॥धन्य०॥५॥
उत्पति नाश ध्रुव सर्वदा सर्वनो;
षट्गुणी हानिवृद्धि अन्यूनो ॥ :

कार्य कारण दशा सहज उपगारता,
शुद्ध कर्तृत्व परिणाम पूरी ॥ धन्य० ॥१॥
आत्म प्रभाव प्रतिभास कारज दशा,
ज्ञान अविभागि परजय प्रवृत्ते ॥
एम गुण सर्व निज कार्य साधे प्रगट,
ज्ञेय दृश्यादि कारण निमित्ते ॥ धन्य० ॥२॥
दास वहु मान भासन रमण एकता,
प्रभु गुणालंवनी शुद्ध थाये ॥
बंधना हेतु रागादि तुज गुण रसी,
तेह साधक अवस्था उपाये ॥धन्य तुं०॥३॥
कर्म जंजाल युंजनकरण योग जे,
स्वामी भक्ति रम्या थिर समाधि ॥
दान तप शील व्रत नाथ आणा विना,
थईय वाधक करे भव उपाधि ॥ धन्य०॥४॥
सकल परदेश समकाल सवि कार्यता,
करण सहकार कर्तृत्व भावो ॥
द्रव्य परदेश पर्याय आगमपणे,
अचल असहाय अक्रिय दावो ॥धन्य०॥५॥
उत्पति नाश ध्रुव सर्वदा सर्वनी,
पट्गुणी हानिवृद्धि अन्यूनो ॥

सबला साहिब ओलगे,
आतम सबलो थायरे॥
बाधक परिणति सवि टले,
साधक सिद्धि कहायरे ॥ जग० ॥ १३ ॥
कारणथी कारज हुवे,
ए परतित अनादिरे ॥
माहरा आतम सिद्धिना,
निमित हेतु प्रभु सादिरे ॥ जग० ॥ १४ ॥
अविसंवादन हेतुनी,
द्रढ सेवा अभ्यासरे ॥
देवचंद्र पद निपजे,
पूर्णानंद विलासरे ॥ जग० ॥ १५ ॥

॥ अथ श्री सप्तम श्रीधरजिन स्तवन ॥

॥ रसीयानी देशी ॥

से मुख मुख प्रभुने न मली शक्यो,
तो सी वात कहाय, जिणंदजी ॥
निज पर द्योतक वात लहो सहु,
पण मने किम पतित आय ॥ जिणंदजी ॥
से मुख० ॥१॥

भव्य अभव्य परित्त अनंत तो,
कृष्ण शुकलपक्ष धार ॥ जि० ॥
आराधक विराधक रीतनो,
पूछि करन निरधार ॥ जि० ॥ से मुख० ॥२॥
किण काले कारण केहवे मले,
थाशे मुजने हो सिद्धि ॥ जि० ॥
आतम तत्त्व रुचि निज रिद्धिनी,
लहिशुं सर्व समृद्धि ॥ जि० ॥ से मुख० ॥३॥
एक वचन जिन आगमनो लहो,
निपाव्यां निज काम ॥ जि० ॥
एटले आगम कारण संपजे,
ढील थई किम आम ॥ जि० ॥ से० ॥४॥
श्रीधर जिन नामे बहु निस्तर्या,
अल्प प्रयासे हो जेह ॥ जि० ॥
मुज सरिखां एटले कारण लहे,
न तरे कहो किम नेह ॥ जि० ॥५॥
कारण जोगे साधे तत्त्वने,
नवि समर्थो उपादान ॥ जि० ॥
श्री जिनराज प्रकाशो मुज प्रते,
तेहनो कोण निदान ॥ जि० ॥ से० ॥६॥

भाव रोगना वैद्य जिनेश्वरु,
भावौषध तुज भक्ति ॥ जि० ॥
देवचंद्रने श्री अरिहंतनो,
छे आधार ए व्यक्ति ॥ जि० ॥ से० ॥७॥

॥ अथ अष्टम श्रीदत्तप्रभु स्तवन ॥

॥ राग धमाल ॥

जिन सेवनथें पाईये हो,
शुद्धातम मकरंद ॥ ए आंकणी ॥
तत्त्व प्रतीत वसंत ऋतु प्रगटी,
गई सिसिर कुप्रतीत ॥ ललना ॥
दुरमती रजनी लघु भई हो,
सदबोध दिवस वदीत ॥ ललना ॥ जिन० ॥१॥
साध्य रुचि सुसखा मिलीहो,
निज गुण चरचा खेल ॥ ल०
बाधक भावकी नंदना हो,
बुध मुख गारिको मेल ॥ ल० ॥ जि० ॥२॥
प्रभु गुण गान सुछंदशुं हो,
वाजित्र अतिशय तान ॥ ल०
शुद्ध तत्त्व बहुमानता,
खेलत प्रभु गुण ध्यान ॥ ल० ॥ जि० ॥३॥

गुण बहुमान गुलालसो हो,
लाल भए भवि जीव ॥ ल०
राग प्रशस्तकी धममें हो,
विभाव बिडारे अजीव ॥ ल० ॥ जिन० ॥३॥
जिन गुण खेलमें खेलते हो,
प्रगट्यो जिन गुण खेल ॥ ल० ॥
आतम घर आतम रमे हो,
समता सुमति के मेल ॥ ल० ॥ जि० ॥४॥
तत्त्व प्रतित प्याले भरे हो,
जिन वाणी रसपान ॥ ल० ॥
निर्मल भक्ति लाली जगी हो,
रिझे एकत्वता तान ॥ ल० ॥ जिन० ॥६॥
भय वैराग अविरुद्ध हो,
चरण रमण सुमहेल ॥ ल० ॥
समिति गुप्ति वनिता रमे हो,
खेले हो शुद्ध खयाल ॥ ल० ॥ जि० ॥७॥
साधक गुण गलीया किये हो,
निज साधक परिणाम ॥ ल० ॥
कर्म प्रकृति अरति गई हो,
उदयीक [illegible] उदाम ॥ ल० ॥ जि० ॥८॥

थिर उपयोग साधन मुखे हो,
पिचकारीकी धार ॥ ल० ॥
उपशम रस भरी छांटतां हो,
गई तताई अपार ॥ ल० ॥ जि० ॥९॥
गुण पर्याय विचारतां हो,
शक्ति व्यक्ति अनुभूति ॥ ल० ॥
द्रव्यास्तिक अवलंबतां हो,
ध्यान एकत्व प्रसूति॥ ललना० ॥जि०॥१०॥
राग प्रशस्त प्रभावनाहो,
निमित्त करण उपभेद ॥ ल० ॥
निरविकल्प सुसमाधिमें हो,
भये हे त्रिगुण अभेद ॥ ल० ॥ जि० ॥ ११ ॥
ईम श्रीदत्त प्रभु गुणे हो,
फाग रमे मतिमंत ॥ ल० ॥
पर परिणति रज धोयके हो,
निरमल सिद्धि वसंत ॥ ल० ॥ जि० ॥१२॥
कारणथें कारज सधे हो,
एह अनादिकी चाल ॥ ल० ॥
देवचंद्र पद पाईये हो,
करत निज भाव संभाल ॥ल०॥ जि० ॥१३॥

॥ अथ नवम श्री दामोदर जिन स्तवन ॥
॥ मोरा साहेब हो श्री शीतल नाथके ॥ ए देशी ॥

सुप्रतीते हो करि थिर उपयोग के,
दामोदर जिन वंदीये ।
अनादिनी हो जे मिथ्या भ्रांतिके,
तेह सर्वथा छंडीये ॥
अविरति हो जे परिणति दुष्ट के,
टालो थिरता साधीए ।
कषायनी हो कसमलना कापी के,
वर समता आराधीए ॥ १ ॥
जंबूने हो भरते जिनराज के,
ावमा अतित चोवीशीये ॥
ास नामे हो प्रगटे गुण राशि के,
याने शिव सुख विलसीये ॥
पराधी हो जे तुजथी दूर के,
ूरि भ्रमण दुःखना धणी ॥
। माटे हो तुज सेवा रंग के,
ोजो ए इच्छा घणी ॥ २ ॥
ारुधरमें हो जिम सुरतरु लुंबके,
ागरमें प्रवहण समो ॥

भवभ्रमतां हो भविजन आधार के,
प्रभु दरशन सुख अनुपमो ॥
आतमनो हो जे शक्ति अनंतके,
तेह स्वरुप पदे धस्या ॥
पारिणामिक हो ज्ञानादिक धर्म के,
स्व स्वकार्यपणे वस्या ॥ ३ ॥
अविनाशी हो जे आत्मानंद के,
पूर्ण अखंड स्वभावनो ॥
निज गुणनो हो जे वर्त्तन धर्म के,
सहज विलासी दावनो ॥
तस भोगी हो तुं जिनवर देव के,
त्यागी सर्व विभावनो ॥
श्रुतज्ञानी हो न कही शके सर्व के,
महिमा तूज प्रभावनो ॥ ४ ॥
निःकामी हो निकपाई नाथ के,
साथ होजो नित तुम तणो ॥
तुम आणा हो आराधना शुद्धके,
साधुं हुं साधकपणो ॥
वीतरागथी हो जे राग विशुद्धके,
तेहीज भवभय वारणो ॥

आणा आराधन विना,
किम गुण सिद्धि थाय नाथरे ॥नमि०॥६॥
हवे जिन वचन प्रसंगथी,
जाणो साधक नीति नाथरे ॥
शुद्ध साध्य रुचिपणे,
करिए साधन रीति नाथरे ॥ न० ॥ ७ ॥
भावन रमण प्रभु गुणे,
योग गुणी आधीन नाथरे ॥
राग ते जिम गुण रंगमें,
प्रभु दीठां रति पीन नाथरे ॥नमि०॥८॥
हेतु पलटावी सवे,
जोड्या गुणि गुण भक्ति नाथरे ॥
तेह प्रशस्तरणे रम्या,
साधे आतम शक्ति नाथरे ॥नमि०॥९॥
धन तनु मन वचना सवे,
जोड्या स्वामी पाय नाथरे ॥
बाधक कारण वारतां,
साधन कारण थाय नाथरे ॥ न० ॥ १० ॥
आतमता पलटावतां,
प्रगटे संवर रूप नाथरे ॥

स्वस्वरूप रसी करे,
पुरणानंद अनूप नाथरे ॥नमि०॥११॥
विषय कषाय जहर टले,
अमृत थाये एम नाथरे ॥
जे परसिद्ध रूचि हुवे,
तो प्रभु सेवा धरी प्रेम नाथरे ॥नमि०॥१२॥
कारण रंगी कार्यने,
साधे अवसर पामि नाथरे ॥
देवचंद्र जिनराजनी,
सेवा शिवसुख धाम नाथरे ॥नमि०॥१३॥

॥ अथ द्वादशम श्री मुनिसुव्रत जिन स्तवन ॥

॥ रमणी रमणी ने मन गमणी ॥ ए देशी ॥

दिठो दरिशण श्री प्रभुजीनो,
साचे रागे मनसुं भीनो ॥
जसु रागे निरागी थाये,
तेहनी भक्ति कोने न सुहाये ॥ १ ॥
पुद्‌गल आशा रागी अनेरा,
तसु पासे कुण खाये फेरा ॥

जसु भगते निर्भय पद लहिए,
तेहनी सेवामां थिर रहियो ॥ २ ॥
रागी सेवकथी जे राचे,
बाह्य भक्ति देखीने माचे ॥
जसु गुण दाझे तृष्णा आंचे,
तेहनो सुजस चतुर किम वाचे ॥ ३ ॥
पूरण ब्रह्मने पूर्णानंदी.
दर्शन ज्ञान चरण रस कंदी ॥
सकल विभाव प्रसंग अफंदी,
तेह देव समरस मकरंदी ॥ ४ ॥
तेहनी भक्ति भवभय भाजे,
निर्गुण पिण गुण शक्ति गाजे
दास भाव प्रभुताने आपे.
अंतरंग कलिमल सवि कापे ॥ ५ ॥
अप्पातम सुख कारण पूरो.
स्वस्वभाव अनुभूति सनूरो।
तसु गुण वल्गी चेतना कीजे,
परम महोदय शुद्ध लहीजे ॥ ६ ॥
मुनिसुव्रत प्रभु प्रभुता लीना.
आतम संपत्ति भासन पीना ॥

आणा रंगे चित्त धरीजे,
देवचंद्र पद शीघ्र वरीजे ॥ ७ ॥

॥ अथ त्रयोदशम श्री सुमतिजिन स्तवन ॥

॥ कान्हैयालाल ए देशी ॥

प्रभुस्युं इम्युं विनवुं रे लाल,
मुज विभाव दुःख दीजे रे साहिबिया लाल।
तिन कालना ज्ञेयनो रे लाल,
जाणो छो सहु नीतिरे साहिबिया लाल ॥प्रभु०॥१॥
ज्ञेय ज्ञानस्युं नवि मिले रे लाल,
ज्ञान न जाय तत्थर ॥ सा० ॥
ग्राम अग्राममयने रे लाल,
जाणो जे जिम जत्थरे ॥ सा० ॥ प्रभु० ॥ २ ॥
दर्शन पज्जाय जे जाननारे लाल,
ते ना नवि पलटायरे ॥ सा० ॥
ज्ञेयनो नवनवि वर्तनारे लाल,
सर्व जाणो असहायरे ॥ सा० ॥ प्र० ॥ ३ ॥
धर्मादिक सहु द्रव्यनोरे लाल,
ज्ञान भणी सहकाररे ॥ साहि० ॥
स्वनादिक गुण वर्तनारे लाल,
पर ते एक न धारे ॥ सा० ॥ प्र० ॥ ४ ॥

जाणग अभिलाषी नहिरे लाल,
नवि प्रतिबिंबे ज्ञेयरे ॥ सा० ॥
कारक शक्ते जाणवुं रे लाल,
भाव अनंत अमेयरे ॥ सा० ॥ प्रभु० ॥ ५
तेह ज्ञान सत्ता थकेरे लाल,
न जणाये निज तत्वरे ॥ सा० ॥
रुचि पण तेहवि नवि थयेरे लाल,
ए अम मोह महत्वरे ॥ सा० प्रभु० ॥ ६ ॥
मुज ज्ञायकता पर रसीरे लाल,
पर तृष्णाए तप्तरे ॥ साहिबि० ॥
ते समता रस अनुभवेरे लाल,
सुमति सेवन व्याप्तरे ॥ सा० ॥ प्र० ॥ ७ ॥
साधकता पलटावतारे लाल,
साध भक्ति आधाररे ॥ सा० ॥
प्रभु गुण रंगी चेतनारे लाल,
एहीज जीवन साररे ॥ सा० ॥ प्र० ॥ ८ ॥
अमृतानुष्ठाने रहीरे लाल,
अमृत क्रियाने उपायरे ॥ सा० ॥
देवचंद्र रंगे रमेरे लाल,
ते सुमति देव पसायरे ॥ सा० ॥ प्र० ॥ ९ ॥

सहज अनंत अत्यंत महंत
सुखे भर्या हो लाल ॥ म० ॥
अविनाशी अविकार अपार गुणे
वर्या हो लाल ॥ अ० ॥ ५ ॥
जे प्रवृत्ति मूल छेद
उपाय जे हो लाल ॥ छे० ॥
प्रभु गुण रागे रक्त थाय
शिवदाय ते हो लाल ॥ था० ॥
अंश थकि सरवंश विशुद्धपणुं
ठवे हो लाल ॥ वि० ॥
शुकल बीज शशि रेह तेह
पूरण हुवे हो लाल ॥ तेह० ॥ ६ ॥
तिम प्रभुथी शुचि राग करे
वीतरागता हो लाल ॥ करे० ॥
गुण एकत्वे थाय स्वगुण
प्राग्भावता हो लाल ॥ स्वगुण० ॥
देवचंद्र जिनचंद्र सेवामांहि
रहो हो लाल ॥ सेवा० ॥
अव्याबाध अगाध आतम सुख
संग्रहो हो लाल ॥ आ० ॥ ७ ॥

॥ अथ पंचदशम श्री आस्नागजिन स्तवन ॥

॥ मन मोहं अमारं प्रभु गुणे ॥ ए देशी ॥

धरो साचो रंग जिनेश्वरू,
संसार विरंग सहु अन्यरे ॥
सुरपति नरपति संपदा,
ते तो दुरगंधी कदन्नरे ॥ धरो० ॥ १ ॥

जिन आस्नाग गुण रस रसी,
चल विषय विकार विरूप रे ॥
विण समकित मने अभिलखे,
जिणे चाख्यो शुद्ध स्वरूपरे ॥ ध० ॥ २ ॥

निज गुण चिंतन जल रम्या,
प्रभु मोध अनलनो ताप रे ॥
नवि व्यापे धापे भवस्थिति,
जिन शीतल अर्क प्रतापरे ॥ ध० ॥ ३ ॥

जिन गुण रंगी चेतना,
नवि बांधे अभिनव कर्मरे ॥
गुण रमणे निज गुण उल्लसे,
ते आस्वादे निज धर्मरे ॥ ध० ॥ ४ ॥

पर त्यागी गुण एकतत्वता,
रमता ज्ञानादिक भावरे ॥
स्वस्वरूप ध्याता थई,
पामे शुचि क्षायिक भावरे ॥ करो० ॥ ५ ॥

गुण करणे नव गुण प्रगटता,
सत्तागत रस थीती छेद रे ॥
संक्रमण उदय प्रदेशथी,
करे निर्झरा टाले खेद रे ॥ करो० ॥ ६ ॥

सहज स्वरूप प्रकाशथी,
थाए पूर्णानंद विलासरे ॥
देवचंद्र जिनराजनी,
करज्यो सेवा सुख वासरे ॥ करो० ॥ ७ ॥

॥ अथ षोडपम श्री नमिश्वर स्वामी जिन स्तवन ॥

॥ हो पीउ पंखीडा ॥ ए देशी ॥

जगत दिवाकर श्री नमिश्वर स्वामजी,
तुज मुख दीठे नाठी मुज अनादिनी रे लो ॥
जाग्यो सम्यग् ज्ञान सुधारस धामजी,
छांडी दुर्नय मिथ्यानींद प्रमादनी रे लो ॥ज०॥१॥

सहज प्रगट्यो निज पर भाव विवेक जो,
अंतर आतिम ठहर्यो साधन साधवेरे लोल ॥
साध्यालंबी थई क्षायकता छेक जो,
निज परिणति थिर निज धर्म रसे ठवेरे लो ॥ज०॥२॥
त्यागीने सवि पर परिणति रस रीझ जो,
जागी छे निजआतम अनुभव इष्टतारे लोल ॥
सहजे छुटी आश्रव भावनी चालजो,
जालम ए प्रगटी संवर शिष्टतारे लोल ॥ ज० ॥३॥
बंधुना हेतु जे छे पाप स्थानजो,
ते तुज भगते पाम्या पुष्ट प्रशस्ततारे लोल ॥
ध्येय गुणे वलग्यो पूरण उपयोग जो,
तेहथी पामे ध्याता ध्येय समस्ततारे लोल॥ज०॥४॥
जे अति दुस्तर जलधि समो संसारजो,
ते गोपद सम कीधो प्रभु अवलंबनेरे लोल॥
जाण्यो पूर्णानंद ते आतम पाम जो,
अवलंब्यो निर्विकल्प परमातम तत्वनेरे लोल॥ज०॥५
स्याद्वादी निज प्रभुनाने एकत्वजो,
क्षायिक भावे थाए निज रसत्रयीरे लोल॥
प्रत्याहार करीने धारे धारण शुद्ध जो,
तत्वानंदी पूर्ण समाधि लय मईरे लोल॥ज०॥६॥

अव्याबाध स्वगुणनी पूरण रीत जो,
कर्त्ता भोक्ता भावे रमणपणे धरेरे लोल॥
सहज अकृत्रिम निर्मल ज्ञानानंदजो,
देवचंद्र एकत्वे सेवनथी वरेरे लोल ॥ ज०॥७॥

॥ अथ सप्तदशमा श्री अनीलजिन स्तवन ॥

॥ देखो गति दैवनी रे ॥ ए देशी ॥

स्वारथ विणु उपगारता रे,
अद्भुत अतिशय रिद्धि ॥
आत्म स्वरूप प्रकाशना रे,
पूरण सहज समृद्धि ॥
अनील जिन सेवीएरे ॥
नाथ तुमारी जोडि न को त्रिहुं लोकमेंरे,
प्रभुजी परम आधार अछो भवि लोकनेरे॥१॥
परकारज करता नहिरे,
सेव्या पार न हेत ॥
जे सेवे तनमय थईरे,
ते लहे शिव संकेत ॥ अ० ॥ २ ॥
करता निज गुण वृत्तिनारे,
गुण परिणति उपभोग ॥

निष्प्रयास गुण वर्त्ततारे,
नित्य सकल उपयोग ॥ अनील० ॥ ३ ॥
सेव भक्ति भोगी नहीं रे,
न करे परनो सहाय ॥
तुज गुण रंगी भक्तनारे,
सहजे कारज थाय ॥ अनील० ॥ ४ ॥
किरिया कारण कार्यतारे,
एक समय स्वाधीन ॥
वर्ते प्रति गुण सर्वदारे,
सहु अनुभव लयलीन ॥ अनील० ॥ ५ ॥
ज्ञायक लोकालोकनारे,
अनील प्रभु जिनराय ॥
नित्यानंद मयी सदारे,
देवचंद्र सुखदाय ॥ अनील० ॥ ६ ॥

॥अथ अष्टादशमा श्री यशोधर जिनराजनुं स्तवन॥

॥ राग मारू ॥ ए देशी ॥

वदन पर वारिहो जशोधर वदन पर वारिहो ॥
मोह रहित मोहन जयाको उपशम रस क्यारिहो॥
अहो उपशम रस क्यारिहो ॥ व० ॥ १ ॥

मोही जीव लोहको कंचन,
करवे पारस भारि हो ॥
समकित सुरतरु उपवन सिंचन,
वर पुष्कर जलधारि हो ॥ अहो० ॥ वं० ॥ २ ॥
सर्व प्रदेश प्रगट सम गुणथी,
प्रवृत्ति अनंत अपहारी हो ॥
परम गुणी सेवनथें सेवक,
अप्रशस्तता वारी हो ॥ अहो० ॥ व० ॥ ३ ॥
पर परिणति रुचि रमण ग्रहणता,
दोप अनादि निवारी हो ॥
देवचंद्र प्रभु सेवन ध्याने,
आतम शक्ति समारी हो ॥ अहो० ॥ व० ॥४॥

॥ अथ एकोनविंशतितम कृतार्थ जिन स्तवन ॥

॥ अधिका ताहरो हुं अपराधि ॥ ए देशी ॥

सेवा सारज्यो जिनजी मन साचे,
पण मत मागो भाई ॥
महेनतनो फल मागी लेतां,
दास भाव सवि जाई ॥ से० ॥ १ ॥

भक्ति नहि ते तो भाडायत,
जे सेवा फल जाचे ॥
दास तिके जे घन भरि निरखी,
केकीनी परे माचे ॥ सेवा० ॥ २ ॥
सारी विधि सेवा सारंतां,
आण न कांइ भाजे ॥
हुकम हाजर खिजमति करतां,
सहजे नाथ निवाजे ॥ सेवा० ॥ ३ ॥
साहिब जाणो छो सहु वाते,
शुं कहीए तुम आगे ॥
साहिब सनमुख अमे मागणनि,
वात कारमी लागे ॥ से० ॥ ४ ॥
स्वामि कृतारथ तो पण तुमथी,
आश सहुको राखे ॥
नाथ विना सेवकनी चिंता,
कोण करे विणु दाखे ॥ सेवा० ॥ ५ ॥
तुज सेवा फल माग्यो देतां,
देवपणो थाये काचो ॥
विण माग्यां वंछित फल आपे,
तिणे देवचंद्र पद साचो ॥ से० ॥ ६ ॥

॥ अथ विंशतितम श्री धर्मीश्वर जिन स्तवन ॥

अखीयां हरखन लागी हमारी अखीयां ॥ ए देशी ॥

॥ राग प्रभाती ॥

हुं तो प्रभु वारि छुं तुम मुखनी,
हुं तो जिन वलिहारी तुम मुखनी ॥
समता अमृतमय सुप्रसननी,
नेय नही राग रूखनी ॥ हुं० ॥ १ ॥
भ्रमर अधर सिस धनु हर कमल दल,
कीर हीर पुन्यम शशीनी ॥
शोभा तुछ प्रभु देखत थाकी,
कायर हाथे जिम असिनी ॥ हुं० ॥ २ ॥
मन मोहन तुम सनमुख निरखत,
आंख न तृपति अम्हची ॥
मोह तिमिर रवि हरख चंद्र छवी,
मुरत ए उपशमची ॥ हुं० ॥ ३ ॥
मननी चिंता मटी प्रभु ध्यावत,
मुख देखतां तुम जिनजी ॥
इंद्रि तृषा गई जिनेश्वर सेवतां,
गुण गातां वचननी ॥ हुं० ॥ ४ ॥

मीन चकोर मोर मतंगज,
जल शशी घन नीचनथी ॥
तिम मो प्रति साहिब सुरतथी,
और न चाहुं मनथी ॥ हुं० ॥ ५ ॥

ज्ञानानंदन जाया नंदन,
आस दास नीयतनी ॥
देवचंद्र सेवनमें अहनिश,
रमज्यो परिणति चित्तनी ॥ हुं० ॥ ६ ॥

॥ अथ एकविंशतितम श्री शुद्धमति जिन स्तवन ॥

श्री जिन प्रतिमा हो जिन सरखी कही ॥ ए देशी ॥

श्री शुद्धमति हो जिनवर पूरवो,
एह मनोरथ माल ॥
सेवक जाणी हो महेरवानी करो,
भव संकटथी टाल ॥ श्री० ॥ १ ॥

पतित उद्धारण हो तारण वच्छलुं,
करे अपणायत एह ॥
नित्य निरागी हो निस्नेह ज्ञाननी,
शुद्ध अनन्त देह ॥ श्री० ॥ २ ॥

परमानंदि हो तुं परमातमा,
अविनाशी तुज रीत॥
ए गुण जाणी हो तुम वाणी थकी,
ठहराणी मुज प्रीत ॥ श्री॰ ॥ ३॥
शुद्ध स्वरूपी हो ज्ञानानंदनो,
अव्यावाध स्वरूप ॥
भवजल निधि हो तारक जिनेश्वरु,
परम महोदय भूप ॥ श्री॰ ॥ ४ ॥
निरमम निसंगी हो निरभय अविकारता,
निरमल सहज समृद्धि ॥
अष्ट करम हो वन दाहथी,
प्रगटी अन्वय रिद्धि ॥ श्री॰ ॥ ५ ॥
आज अनादिनो हो अनंत अक्षता,
अक्षर अनक्षर रूप ॥
अचल अकल हो अमल अगमनुं,
चिदानंद चिद्रूप ॥ श्री॰ ॥ ६ ॥
अनंत ज्ञानी हो अनंत दर्शनी,
अनाकारी अविरुद्ध ॥
लोकालोक हो ज्ञायक सुहंकरु,
अनाहारी स्वयं बुद्ध ॥ श्री॰ ॥ ७ ॥

जे निज पासे हो ते शुं मागीए,
देवचंद्र जिनराय ॥
तो पण मुजने हो शिवपुर साधतां,
होजो सदा सुसहाय ॥ धी० ॥ ८ ॥

॥ अथ श्रीदेवचंद्रजीकृत स्नात्रपूजाविधि प्रारंभः ॥

॥ प्रथम निस्सहीपूर्वक श्रीदेरासरमध्ये आवी अंग शुद्ध करी, नवीन वस्त्र पहेरी, स्वभालतिलक करी, बाजोटनी स्थापना करी, ते उपर बाजोट मांडी, स्नात्र पीठ उपर थालनी स्थापना करवी, ते उपर तंडुलनी ढगली करवी ॥ तेनी उपर रूपानाणुं तथा नालीयेर धरीनें पछी स्नात्रीयायें पोताने हाथे मौली सूत्र बांधवुं, तथा बीजा कलश प्रमुख स्थानकें मौली बंधन करी, कलशाने धूप दइ, दुध, दधि, घृत, जल तथा शर्करा, ए पंचामृतथी कलश भरी राखवा. पछी मुखकोश बांधी मूल नायकजी आगल आवी नमस्कार करी, अने धूपधाणुं हाथमां लइ धूप उखेवचो ॥ ते समये मुखथी धूपाबलीनी गाथा कहेवी, ते आ प्रमाणे:—

॥ असुरिंदसुरिंदाणं, किन्नर गंधव्व चंद सूराणं ॥ विज्जाहरा सुराणं, सज्जोगा सिद्धाण सिद्धाणं ॥ १ ॥ मुणिय परमत्थ वित्थर, गिपत्थ विविह तव सोसियंगाणं ॥ सिद्धिवहू निब्भरहं, ठियाणं जोगीसराणं च ॥ २ ॥ जं पूयाए भगवओ, तित्थयरा राग रोस तम रहिया ॥ विणय पणएण तेसिं, समुद्दूओ मे इमे धूओ ॥ ३ ॥ तित्थंकर पडिमाणं, कंचण मणिरयण विद्दुममयाणं ॥ तिहुयण विभूसगाणं, सासय सुरनर कयाणं च ॥ ४ ॥ सिद्धाण सूरि पाढग, साहूणं झाण जोग निरयाणं ॥ सुयदेवय माईणं, समुद्दुओ मे इमे धूओ ॥ ५ ॥

॥ ए गाथाओ कह्या पछी प्रथम अक्षतनें धोइ वेओ ने केशर तथा चंदन लगाडवुं, तथा पुष्पोने पण जलथी शुद्ध करी राखवां, तदनंतर ते अक्षत तथा फुलनी कुसुमांजलि हाथमां लइ, उभा थइने " नमो अरिहंताणं, नमोऽर्हत्सिद्धा० " ॥ एम पाठ कहेवो. अने पछी बे श्लोक पठन करवा, ते आ प्रमाणेः—

॥ श्रीमत्पुण्यं पवित्रं कृतविपुलफलं मंगलं लक्ष्म लक्ष्म्याः, क्षुण्णारिष्टोपसर्गग्रहगतिविकृतिस्वप्नमुत्पातघाति ॥ संकेतं कौतुकानां सकलसुखमुखं पर्व सर्वोत्सवानां, स्नात्रं पात्रं गुणानां गुरुगरिमगुरो वंचिता यै र्न दृष्टम् ॥ १ ॥ अशेषभवनांतराभितसमाजखेदक्षमो, नचापि रमणीयतामतिशयीत तस्यापरः ॥ प्रदेश इह भानतो निखिललोकसाधारणः, सुमेरुरिति तामिनः स्नपनपीठभावं गतः ॥ २ ॥

॥ एम कह्या पछी स्नात्र पीठ सन्मुख कुसुमांजलि अर्पण करवी, तदनंतर स्नापनपीठ पखाली लछीने कुंकुमनो स्वस्तिक करवो, धूप उखेववो, अने सर्व स्नात्रीयाओना हाथने धूपावली आपवी, पछी कर्पूर लगाडवो, अने एक नवकार कहीने स्नात्रपीठ उपर प्रतिमाजीनी स्थापना करवी, ते प्रतिमा प्रायः पंचतीर्थिक, अर्थपरकरसंयुक्त स्थापवी, तेना मुख आगल अक्षतोनी ढगली करवी, अने तेनी उपर पंचापूननो एक कलश मुकवो, पछी हाथमां कुसुमांजलि लइने "मुक्तालंकार विकार०" ए आर्या भणी कुसुमांजलि अर्पण करीने, प्रतिमाजीनां निर्माल्य उतारी प्रक्षालन करवुं, अंगलूहणादी प्रमार्जिने धूप उखेववो, अने केशर, चंदन, कपूर तथा कस्तूरी

घसी ते पवित्रभाजनमां भरीने ते भाजन प्रतिमाजी आगल धरवुं पछी कुसुमांजलि हाथमां लइ उभा थइ " इच्छं णमो अरिहंताणं० ॥ नमोऽर्हत्सिद्ध० ॥ " कहीने स्नात्र पूजानी पहेली पांखडी कहेवी, एम अनुक्रमे पांच पांखडी कही कुसुमांजलि पूर्ण करीने हाथमां चामर लइने तेने भगवंतनी उपर ढोलतो ॥ वस्तु ॥ " सयल जिनवर्यो मांडीने यावत् वधाई वधाई थइ अतीव " सुधीनो पाठ कहे, ते पूर्ण थया पछी चैत्यवंदन करवुं. पछी शक्रस्तव कही जयवीयराय सुधी भणवुं. पछी हाथ धोई धूप कर्पूरादिक हाथने लगाडवां, त्यार केडे ले पूर्वे कलशोने धोइ धूप आपी कंठे मौलीसूत्र बांधी उपर स्वस्तिक करी तेओमां पंचामृत भरी, अक्षतोना ढगलाओ उपर धारण करी तेनी उपर अंगलूहणां ढांकी धूप उखेवी, तेओमांना मात्र बेज कलशोने आसपास जलधारा देइने राख्या होय पछी स्नात्रीयाना हाथमां स्वस्तिको करी सर्वे जणोयें श्रेणीबद्ध उभा रहेवुं, अने प्रत्येक स्नात्रीओयें स्वमारामण देइ, पंचांग नमस्कार करवो, पछी प्रत्येक स्नात्रीयायें पोताना बे हाथमां कलशो लेवा, ते कलशधारक स्नात्रीयायें पोताना बे हाथने विषे रहेला कलशने उत्तरासंग वस्त्रवडे ढांकी राखवा, अने पोतें उभा छतां मुखथी " श्री तीर्थपतिनो कलश मज्जन० " इहांथी मांडीने संपूर्ण पूजा भणवी, त्यार पछी प्रतिमाजी उपर कलशो ढोळी, पश्चात् करी अंगलूहणाथी मज्जन करी, केशर चंदनथी अर्चन करीने पुष्प चडाववां. पछी थालमां स्वस्तिक करी बिंबनी स्थापना करवी ॥ अने धूप करवो ते समये आ प्रमाणें पाठ भणवोः—

॥ अथ कलश ढालवा समयनुं स्तवन ॥

॥ इंद्र कलशभर ढाले श्रीजिन पर ॥ इंद्र कलश० ॥ हाथो हाथ अमरगण आनन, खीर विमल जलधारे ॥ श्री जिनपर० ॥ १ ॥ सुरवनिता मळि मंगल गावे, भावत भाव महारे ॥ श्री जिनपर० ॥ २ ॥ किन्नर अरु गंधर्व महोरग निरत नीर निन्य सारे ॥ श्री जिनपर० ॥ ३ ॥ देव दुंदुभिधुनि गर्जन अति, शिर पर सुजस विथारे ॥ श्रीजिनपर० ॥ ४ ॥ परमानंद जिनराज जगतपर, जगजीवन हितकारे ॥ श्रीजिनपर० ॥ ५ ॥ इति कलश ढालवा समयनुं स्तवन ॥

॥ पछी रकेबीमां लूणपाणी लइने आरतिनी पेरें करवुं अने ते वखतें मुखथकी गाथाओ कहेवी, ते आवी रीतेः—

॥ अथ लूण उतारण गाथा ॥

॥ उवहि पडिभग्ग पसरं, पयाहिणं मुणिवइ करेऊणं ॥ पडइ सलूण त्तणलज्जियं व लूणं हु अवहंमी ॥ १ ॥ दोहा ॥ पिरके विणु मुह जिणवरह, दीहर नयण सलूण ॥ न्हावइ गुरु मच्छर भरिय, जलणी पइसमइ लूण ॥ २ ॥ लूणउतारिह जिणवरह, तिन्नि पयाहिण देउ ॥ तडपड मह कंति पह, विन्ना विन्ना जलेण ॥ ३ ॥ गाथा ॥ ज जेणविन्न विन्नइ, जलेण तं तह निहल्यह मम्मह ॥ जिणरूप मच्छरेणव, फुट्टइ लूण तडपडस्स ॥ ४ ॥ ॥ ए गाथाओ कहीने लूणने अग्निशरण करवुं. पछी वळी प्रथमनी पेठें लूण पाणी लइने मुखथी आवी रीतें गाथाओ कहेवीः—

॥ दोहा ॥ सर्व मुनिवइ अलविजउ, ते नहु भमलइ पास ॥ अहव कर्मनसुमिम्मउ, निग्गुण बुद्धि पपास ॥ १ ॥ जट आपेविणु जलमिह पामह, भर विकसंजलि भाविहिं पासह ॥ तिन्नि पयाहिण दितिय पासह, जिम जिउ छुट्टइ भव दुह पासह ॥ २ ॥ जट निम्मल कर कमलहि लेविणु, सुरवइ भावहि मुनिवइ सेविणु ॥ पभणइ जिणवर तुह पइ सरण, भय तुट्टइ लब्भइ सिद्धि गमणं ॥ ३ ॥ ए गाथाओ कही लूण पानी उतारीने जल शरण करवुं, त्यार पछी माला लइ उभा रहिने आ प्रमाणे गाथाओ कहेवीः—

अथ पुष्पमाला पूजा गाथा ॥

॥ उवय पुव्वय भत्तस्स, नियठाणे संठियं कुणंतस्स ॥ जिणपासे भमिय जिणस्स. निय ठाणे संठियं तस्स (पाठांतरे) पि पत्तुह हुयवरे पडणं ॥ १ ॥ सबो जियप्पभावो, सरिसा सरिसेसु लेण गंति ॥ सवन्नूण मपासे, जडस्स भमणं ण संकमण ॥ २ ॥ अच्चंत दुक्करं विट्ठ, हुअवह निवडेण जडेण कयं ॥ आणा सवन्नूणं, न कया सुकयत्थ मूलमणि ॥ ३ ॥ ए पाठ भणीने माला चढाववी, पछी हाथमां छुटां फूलो लेवां, ते वखत गाथाओ कहेवी, ते आ प्रमाणेः—

॥ अथ छूटां फूलपूजा गाथा ॥

॥ उसरणो जिणपुरओ, परिमल मिलिया उक्खित्तविह सिगीपा ॥ मुत्तामरेहिनो कुणओ, मरमल मिलिया उक्खित्तवि-रसं ॥ १ ॥ उवणेउ मंगलं वो, जिणाण मुहलालि जाल वलिया ॥ तित्थ पवत्तण समए, तियसेनि मुक्का कुसुम

मुकी ॥ २ ॥ ए पाठ कहीने प्रभुनी आगल फूलो उछा-
ळतां, हवे आभरण तथा वस्त्रो लइने उभा रहीने गाथाओ
कहेवी, ते आ प्रमाणेः—

॥ अथ वस्त्राभरण पूजा ॥

॥ श्लोकः ॥ शक्रोयथा जिनपतेः सुरशैलचूला, सिंहा-
सनोपरि निजस्नपनावसाने ॥ स्नपयतेः कुसुम चंदनगंध-
धूपैः, कृत्वार्चनं न विदधाति सुवस्त्रपूजां, ॥ १ ॥ तद्व-
च्छ्रावकवर्गोऽपि विधिनालंकारवस्त्रादिना, पूजां तीर्थकृतां करोति
सततं ज्ञानयातिभक्त्याहतः ॥ [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] ॥२॥ एम कही आभरण तथा वस्त्र पूजा करवी ॥

॥ पछी ज्ञान पूजा करे, तेनी गाथाओ ॥

॥ नमवि [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ १ ॥
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ॥ [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ॥ २ ॥ ए
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible],
[illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] पूजा करवी.

॥ पछी धूप करती वखते आ गाथा कहेवी ॥

[illegible], [illegible] ॥ [illegible]
[illegible], [illegible] [illegible] ॥ २ ॥ [illegible]

कहीने धूप उखेववो. पछी मंगल दीपक करीने आ गाथाओ कहेवी—

॥ अथ मंगलदीपक पूजा ॥

॥ कोसंबी संठियस्स, पयाहिण कुणइ मउलियपईवो ॥ जिणसोम दंसणोदिण, व्व तुह नाह मंगल पईवो ॥ १ ॥ भामिज्जंतो सुर सुंदरीहिं, तुह नाह मंगल पईवो ॥ कणयायलस्स निडिए, भाणुव्व पयाहिणं दितो ॥ २ ॥ जय सामल चामर जिउ, कोमल सरीरिं कंतीहिं करेविउ, ले उतारइ मंगल पईवो, सो ना होइ निसेस पईवो ॥३॥ ए गाथा कहीने मंगलदीवो करवो. पछी स्नेबीमां कार घरी, अग्निमां पछी मरणापाने मुक्तपणे आ गाथाओ कहेवी:—

॥ अथ आरति गाथा ॥

॥ अं मरगय मणी घडिय, विसाल थाल माणिक मंडिय पईवो ॥ न्हवण यरकर सिन. भमइ जिण आरतिं तुम्हं ॥ १ ॥ आरतिअ निव दइ. सिरकम ए जिणकलसदरं ॥ सामेसु भमउ निच्चिर. मलय सिरिसिरिसि ॥ २ ॥ पय-सेवो भवंता, ममसिरस्कम्मस्स भमय ॥ आरतिय संग-दत्त. उतरतो सहिदत्ता ॥ ३ ॥ एवी रीते आरति करवी ॥ इति संत्रेन आरतिविधि ॥

॥ पछी उपाश्रयमां जइ, चैत्यवंदन करवुं, अने जो कोई पण करवं, करवी त्र आजनतो त्या न करतां ते पूज इत्ये नैवेद ने होय, ते पूजन करवी देवुं. पछी

७

गुणगीत करवां, जय जय शब्द उच्चारवा, साह्मीवात्सल्य करवुं तथा यथाशक्ति दान देवुं ॥ इति श्री स्नात्रपूजाविधिः समाप्तः ॥

॥ आरति ॥ दीपक ॥ लूणजलविधिः प्रारभ्यते ॥

प्रभुथी अंतरपट करी, प्रभु सन्मुख बेशी आरति करनारने नव अंगे कुंकुमनां तिलक करवां. पछी एक थालमां स्वस्तिक करी, तेमां आरति, मंगल दीपक, जमणी बाजु राखी, त्यां आरतिमां घृत थोडुं भरवुं. अने मंगलदीपकमां घृत पूर्ण भरवुं. पछी केशर, फूल, तंदुल करी, तेनी पूजा करवी. उपर कुंकुमना छांटा नांखी मंगल दीपक प्रगटाववो अने कर्पूर सलगाववो तेनो मंत्र कहे छे. ॐ अर्हते पंचज्ञानमहाज्योतिर्मयाय, ध्वांतवातिने द्योतनाय, प्रतिमायै दीपो भूयात्सर्वदार्हते ॥ १ ॥ एम भणी ॥ मंगलदीपक प्रगटावीने पछी ते मंगलदीपकथी आरति प्रगटावी, पछी दीवो नीचे मूकीने आरति उतारवी, तेवार पछी दीपक उतारे, पछी लूणनी काकरी लेइ " लूण उतारो जिनवर अंगे " इत्यादिक पाठ कही लूणनी गाथा भणवी, पछी बृहच्छांति कहेवी, ते न आवडे तो त्रण नवकार गणी, आ प्रमाणे श्लोक कहेवो ते ॥ श्लोक ॥ आज्ञाहीनं क्रियाहीनं मंत्रहीनं च यत्कृतं ॥ तत्सर्वं क्षमया देव, क्षम त्वं परमेश्वर ! ॥ १ ॥ एम कही चैत्यवंदन करवुं ॥ इति आरति दीपक लूण जल विधिः ॥

॥ स्नात्रपूजा प्रारंभः ॥

(पांचडी गाथा) ॥ ढाल पहेली ॥

॥ चउतिसे अतिसय जुओ, वचनातिसय जुत्त, सो परमेसर देखि भवि, सिंहासन संपत्त ॥ १ ॥

॥ ढाल ॥

॥ सिंहासन बेठा जग भाण, देखि भविक जन गुण-मणि खाण ॥ जे दीठे तुज निर्मल नाण, लहियें परम महोदय ठाण ॥ कुसुमांजलि मेहेलो आदि जिणंदा, तोरां चरणकमल सेवे चोसठ इंदा ॥ कु० ॥ १ ॥ चोवीश वेरागी, चोवीश सोभागी, चोवीश जिणंदा ॥ कु० ॥ एम कही प्र-भुना चरणे पूजा करीयें ॥

॥ गाथा ॥

॥ जो निजगुण पज्जव रम्यो, तसु अनुभव एगंत ॥ सुह पुग्गल आरोपनां, जो तसु रंग निरत्त ॥ २ ॥

॥ ढाल ॥

॥ जो निज आतमगुण आणंदी, पुग्गल संगें जेह अफंदी ॥ जे परमेसरनिज पदलीन, पूजो प्रणमो भव्य अ-दीन ॥ कुसुमांजलि मेहेलो शांति जिणंदा ॥ तो० ॥ कु० ॥ ३ ॥ एम कही प्रभुना जानुयें पूजा करीयें ॥

॥ गाथा ॥

॥ निम्मल नाण पयासकर, निम्मल गुण संपन्न ॥ नि-म्मल धम्मोवएस कर, सो परमप्पा धन्न ॥ ३ ॥

गुणगीत करवां, जय जय शब्द उच्चारवा, साहामीवात्सल्य करवुं तथा यथाशक्ति दान देवुं ॥ इति श्री स्नात्रपूजाविधिः समाप्तः ॥

॥ आरति ॥ दीपक ॥ लूणजलविधिः प्रारभ्यते ॥

प्रभुथी अंतरपट करी, प्रभु सन्मुख बेशी आरति कर-नारने नव अंगे कुंकुमनां तिलक करवां. पछी एक थालमां स्वस्तिक करी, तेमां आरति, मंगल दीपक, जमणी बाजु राखी, त्यां आरतिमां चुन थोडुं भरवुं. अने मंगलदीपकमां घृत पूर्ण भरवुं. पछी केशर, फूल, तंदुल करी, तेनी पूजा करवी. उपर कुंकुमना छांटा नांखी मंगल दीपक प्रगटाववो अने कर्पूर सलगाववो तेनो मंत्र कहे छे. ॐ अर्हते पंचज्ञा-नमहाज्योतिर्मयाय, ध्वांतघातिने द्योतनाय, प्रतिमायै दीपो भूयात्सर्वदार्हते ॥ १ ॥ एम भणी ॥ मंगलदीपक प्रगटावीने पछी ते मंगलदीपकथी आरति प्रगटावी, पछी दीवो नीचे मूकीने आरति उतारवी, तेवार पछी दीपक उतारे, पछी लूणनी कांकरी लेइ " लूण उतारो जिनवर अंगे " इत्यादिक पाठ कही लूणनी गाथा भणवी, पछी बृहच्छांति कहेवी, ते न आवडे तो त्रण नवकार गणी, आ प्रमाणे श्लोक कहेवो ते ॥ श्लोक ॥ आज्ञाहीनं क्रियाहीनं मंत्रहीनं च यत्कृतं ॥ तत्सर्वं क्षमया देव, क्षम त्वं परमेश्वर ! ॥ १ ॥ एम कही चैत्यवंदन करवुं ॥ इति आरति दीपक लूण जल विधिः ॥

॥ स्नात्रपूजा प्रारंभः ॥

(पांचरी गाथा) ॥ ढाल पहेली ॥

॥ चउतिसे अतिसय जुओ, वचनातिसय जुत्त, सो परमेसर देखि भवि, सिंहासन संपत्त ॥ १ ॥

॥ ढाल ॥

॥ सिंहासन बेठा जग भाण, देखि भविक जन गुणमणि खाण ॥ जे दीठे तुज निर्मल नाण, लहिये परम महोदय ठाण ॥ कुसुमांजलि मेहेलो आदि जिणंदा, तोरां चरणकमल सेवे चोसट इंद्रा ॥ कु० ॥ १ ॥ चोवीश वैरागी, चोवीश सोभागी, चोवीश जिणंदा ॥ कु० ॥ एम कही प्रभुना चरने पूजा करीयें ॥

॥ गाथा ॥

॥ जो नियगुण पज्जव रम्मो, तसु अनुभव एगंत ॥ सुह पुग्गल आरोपनां, जो तसु रंग निरत्त ॥ २ ॥

॥ ढाल ॥

॥ जो निज आतमगुण आणंदी, पुग्गल संगें जेह अणंदी ॥ जे परमेसरनिज पदलीन, पूजो प्रणमो भव्य अदीन ॥ कुसुमांजलि मेहेलो शांति जिणंदा ॥ तो० ॥ कु० ॥ २ ॥ एम कही प्रभुना जानुयें पूजा करीयें ॥

॥ गाथा ॥

॥ निम्मल नाण पयासकर, निम्मल गुण संपन्न ॥ निम्मल धम्मोवएस कर, सो परमप्पा धन्न ॥ ३ ॥

॥ ढाल ॥

॥ लोकालोक प्रकाशक नाणी, भविजन नाण उपासक प्राणी ॥ [illegible] नीशानी, जसु [illegible] गुण [illegible] प्राणी ॥ [illegible] जिनंद, जो० ॥ इ० ॥ ३ ॥ [illegible] पूजा करीये ॥

॥ गाथा ॥

॥ [illegible] ॥ जसु [illegible] ॥ ४ ॥

॥ ढाल ॥

॥ [illegible] ॥ [illegible] ॥ [illegible] ॥ जो० ॥ इ० ॥ ५ ॥ [illegible] ॥

॥ गाथा ॥

॥ [illegible] ॥ [illegible] ॥

॥ ढाल ॥

॥ [illegible] ॥ [illegible] ॥ जो० ॥ इ० ॥ [illegible] ॥ [illegible]

॥ [illegible] ॥

॥ [illegible]

पत्रीरोहि संघविय, करीस धम्म सुपवीन ॥ इंद्रमय इगम सरि निम्मंडा, एक समय विहरंति महीयले, चरम समय इगवीस जिणं, जन्म समय इगवीस ॥ भविय भावें पर्जपा करो संघ सुजगीस ॥ १ ॥

॥ ढाल बीजी ॥

॥ एक दिन अचिरा हुलरावती ॥ ए देशी ॥

॥ भव त्रीजे समकित गुण रम्या, जिन भक्ति प्रमुख गुण परिणम्या, तजि इंद्रिय सुख आशंसना, करी स्थानक वीशनी सेवना ॥ १ ॥ अति राग प्रशस्त प्रभावता, मन भावना एहवी भावता, सवि जीव करुं शासन रसी, इसी भाव दया मन उल्लसी ॥ २ ॥ लही परिणाम एहवुं भलुं, निपजावी जिनपद निर्मलुं ॥ आयुबंध वचें एक भव करी, श्रद्धा संवेग ते थिर धरी ॥ ३ ॥ त्यांथी चविय लहे नर-भव उदार, भरतें तेम ऐरवतेज सार, महाविदेहें विजयें वर प्रधान, मध्य खंडे अवतरे जिन निधान ॥ ४ ॥

॥ अथ सुपनानी ॥ ढाल त्रीजी ॥

॥ पुण्यें सुपनह देखे, मनमांहे हर्ष विशेषे, गजवर उज्ज्वल सुंदर, निर्मल वृषभ मनोहर ॥ १ ॥ निर्भय केशरी सिंह, लक्ष्मी अतिहि अबीह ॥ अनुपम फूलनी माल, निर्मल शशी सुकुमार ॥ २ ॥ तेजेंतरणी अति दीपे, इंद्रध्वजा जग जीपे, पूरण कलश पडूर, पद्म सरोवर पूर ॥ ३ ॥ अग्यारमे रयणायर, देखे माताजी गुण सायर ॥ बारमे भुवन विमान, तेरमे अनुपम रत्न निधान ॥ ४ ॥ अग्निशिखा निर्धूम, देखे माताजी अनुपम ॥ हर्षी रायने भाखे, राजा अर्थ प्रकाशे

॥ ५ ॥ जगपति जिनवर सुखकर, होशे पुत्र मनोहर ॥ इंद्रादिक जसु नमशे, सकल मनोरथ फलशे ॥ ६ ॥

॥ वस्तुच्छंद ॥

॥ पुण्यउदय पुण्यउदय उपना जिननाह, माता तव रयणी समे, देखी सुपन हरखंती जागीय ॥ सुपन कही निज कंतने, सुपन अरथ सांभलो सोभागीय ॥ त्रिभुवन तिलक महागुणी, होशे पुत्र निधान ॥ इंद्रादिक जसु पाय नमी, करशे सिद्धि विधान ॥ १ ॥

॥ ढाल ॥ चोथी ॥ चंद्रावलानी देशीमां ॥

॥ सोहमपति आसन कंपियो ए, देइ अवधि मन आणंदियो ए ॥ निज आतम निर्मल करण काज, भव जलतारण प्रगट्यो झहाज ॥ १ ॥ भवअडवी पारग सत्थवाह, केवल नाणाइय गुण अगाह ॥ शिव साधन गुण अंकूरो जेह, कारण उलट्यो आसाढि मेह ॥ २ ॥ हरखें विकसी तव रोमराय, वलयादिकमां निज तनु न माय ॥ सिंहासनथी उठ्यो सुरिंद, प्रणमंतो जिन आनंदकंद ॥ ३ ॥ सग अडपय साहामो आवि तत्थ, करि अंजलीय प्रणमीय मच्छ ॥ मुखें भांखे ए क्षण आज सार, तिय लोय पहु दीठो उदार ॥ ४ ॥ रे रे निसुणो सुर लोय देव, विषयानल तापित तुंम सवेव ॥ तसु शांति करण जलधर समान, मिथ्या विष चूरण गरुडवान ॥ ५ ॥ ते देव सकल तारण समत्थ, प्रगट्यो तसु प्रणमी हवो सनाथ ॥ एम जंपी शक्र स्तव करेवि, तव देव देवी हरखें सुणेवि ॥ ६ ॥ गावे तव रंभा गीत गान, सुरलोक हवो मंगल निधान ॥ नरक्षेत्रें आरिज वंश ठाम, जिनराज

थये सुर हर्ष धाम ॥ ७ ॥ पिता माता घेरें उत्सव अशेष, जिन शासन मंगल अति विशेष ॥ सुरपति देवादिक हर्ष संग, संयम अर्थिजनने उमंग ॥ ८ ॥ शुभवेला लगनें तीर्थ नाथ, जनम्या इंद्रादिक हर्ष साथ ॥ सुख पाम्या त्रिभुवन सर्व जीव, वधाई वधाई थइ अतीव ॥ ९ ॥

॥ ढाल ॥ पांचमी ॥

॥ श्रीशांति जिननो कलश कहिशुं प्रेम सागर पूर ॥ ए देशी ॥

॥ श्रीतीर्थपतिनुं कलशमज्जन, गाइयें सुखकार ॥ नरखित मंडण दुह विहंडण, भविक मन आधार ॥ तिहां राव राणा हर्ष उत्सव, थयो जग जयकार ॥ दिशाकुमरी अवधि विशेष जाणी, लह्यो हर्ष अपार ॥ १ ॥ निजअमर अमरी संग कुमरी, गावती गुणछंद ॥ जिन जननी पासें आवि पोहोती, गहगहती आणंद ॥ हे माय ! नें जिनराज जायो, शुचि वधायो मन ॥ अम जन्म निम्मल करण कारण, करीश मूइंकम्म ॥ २ ॥ तिहां भूमि शोधन दीप दर्पण, वाय वीजण धार ॥ तिहां कर्यां कदली गेह जिनवर, जननि मज्जनकार ॥ वरराखडी जिनपाणी बांधि, दीये एम आशीष ॥ जुग कोडा कोडि चिरंजीवो, धर्मदायक ईश ॥ ३ ॥

॥ ढाल ॥ छट्ठी ॥ एकवीशानी ॥

॥ जग नायकजी, त्रिभुवन जन हितकार ए ॥

॥ परमानंदजी, चिदानंद घनसार ए ॥ ए देशी ॥

॥ जिन रयणीजी, दशदिशि उज्ज्वलता धरे ॥ शुभलगनेजी, ज्योतिष चक्रते संचरे ॥ जिन जनम्याजी, जेणें अवसर माता घरे ॥ तेणे अवसरजी, इंद्रासन पण थरहरे ॥

॥ त्रुटक ॥

॥ थरहरे आसन इंद्र चिंते, कोण अवसर ए बन्यो ॥
जिन जन्म उत्सव काल जाणी, अतिहीं आनंद उपन्यो ॥
निज सिद्धि संपत्ति हेतु जिनवर, जाणी भक्तें उमह्यो ॥
विकसित वदन प्रमोद वधते, देव नायक गहगह्यो ॥ १ ॥

॥ ढाल ॥

॥ तव सुरपतिजी, घंटानाद कराव ए ॥ सुरलोकेंजी, घोषणा एह देवराव ए ॥ नरक्षेत्रें जी, जिनवर जन्म हुओ अछे ॥ तसु भगतें जी, सुरपति मंदर गिरि गछे ॥

॥ त्रुटक ॥

॥ गच्छेति मंदर शिखर उपर, भवन जीवन जिन तणो ॥
जिन जन्म उत्सव करण कारण, आवजो सवि सुरगणो ॥
तुम शुद्ध समकित थाशे निर्मल, देवाधिदेव निहालतां ॥
आपणां पातक सर्व जाशे, नाथ चरण पखालतां ॥ २ ॥

॥ ढाल ॥

॥ एम सांभली जी, सुरवर कोडी बहु मली ॥ जिनवंदनजी, मंदरगिरि सामा चली ॥ सोहमपतिजी, जिन जननी घर आविया ॥ जिन माताजी, वंदी स्वामी वधाविया ॥

॥ त्रुटक ॥

॥ वधाविया जिन हर्ष बहुले, धन्य हूं कृतपुण्य ए ॥
त्रैलोक्य नायक देव दीठो, मुज समो कोण अन्य ए ॥
हे जगत जननी ! पुत्र तुमचो, मेरु मज्जन उर करी ॥
उत्संग तुमचे वलिय थापिश, आतमा पुन्यें भरी ॥ ३ ॥

॥ ढाल ॥

॥ सुर नायकजी, जिन निज कर कमलें ठव्या ॥ पंच रूपेंजी, अतिशय महिमायें स्तव्या ॥ नाटक विधिजी, तव मनीश आगल धरे ॥ सुर कोडीजी, जिन दर्शनने उम्मदे ॥

॥ त्रुटक ॥

॥ सुरकोडा कोडी नाचती वली, नाथ शुचि गुण गा-वती ॥ अप्सरा कोडी हाथ जोडी, हावभाव देखावती ॥ जयो जयो तुं जिनराज जगगुरु, एम दे आशीष ए ॥ अम्ह प्राण शरण आधार जीवन, एक तुं जगदीश ए ॥ ४ ॥

॥ ढाल ॥

॥ सुरगिरिवर जी, पांडुक वनमें चिहुं दिशें ॥ गिरिशिल परजी, सिंहासन सासय वसे ॥ तिहां आणीजी, शकें जिन खोले ग्रह्या ॥ चोसठेजी, तिहां सुरपति आवी रह्या ॥

॥ त्रुटक ॥

॥ आविया सुरपति सर्व भक्तें, कलश श्रेणी बनाव ए ॥ सिद्धार्थ पमुहा तीर्थ औषधि, सर्व वस्तु अणाव ए ॥ अच्चु-अपति तिहां हुकम कीनो, देव कोडा कोडिने ॥ जिन मज्जनारथ नीर लावो, सवे सुर कर जोडीने ॥ ५ ॥

॥ ढाल ॥ सातमी ॥

॥ शांतिने कारणे इंद्र कलशा भरे ॥ ए देशी ॥

॥ आतमसाधन रसी देवकोडी हसी, उल्लसीने धसी क्षीरसागरदिशि ॥ पउमदह आदि दह गंगपमुहा नई, तीर्थ-जल अमल लेवा भनी ते गई ॥ १ ॥ जातिअड कलश

करि सहस अट्ठोत्तर, छत्र चामर सिंहासण शुभतरा ॥ उपगरण पुष्फ चंगेरी पमुहा सवे, आगमें भाखिया तेम आणी ठवे ॥ २ ॥ तीर्थजल भरिय करकलश करि देवता, गावता भावता धर्म उन्नतिग्ना ॥ तिरिय नर अमरने हर्ष उपजावता, धन्य अम्ह शक्ति शुचि भक्ति एम भावना ॥ ३ ॥ समकित बीज निज आत्म आरोपता, कलश पाणीमशे भक्ति जल सींचता ॥ मेरु सिंहासन सर्व आव्या वही, शक्र उत्संग जिन देखी मन गह गही ॥ ४ ॥

॥ अनुष्टुप्छंद ॥

॥ हहो देवा हहो देवा अणाइ काळो, अदिठ्ठ पुव्वो तिलोयनाहो तिलोय बंधु, मिच्छत्त मोहविद्धंसणो अणाइ तिण्हा विणासणो, देवाहिदेवो दिठ्ठ हियय कामेहिं ॥ ५ ॥

॥ ढाल बीजी ॥

॥ एम पभणंत वण भवण आउसग, देव वैमानिया भत्ति धम्माधरा ॥ केवि कप्पाहिया केवि मित्ताणुगा, केवि वर रमणि वयणेण अइ उच्छुगा ॥ ६ ॥

॥ अनुष्टुप्छंद ॥

॥ [illegible] ॥ ७ ॥

॥ ढाल ॥ आठमी ॥

॥ तीर्थकमलदल उदक भरीने पुष्कर ॥ सागर आवे ॥ ए दे

॥ पूर्णकलश शुचि उदकनी धारा, जिनवर अंगे ना
आतम निर्मल भाव करंता, वधते शुभ परिणामें ॥ अच
दिक सुरपति मज्जन, लोकपाल लोकांत ॥ सामानिक इं
पमुहा, एम अभिषेक करंत ॥ १ ॥

॥ गाथा ॥

॥ तव ईसाण सुरिंदो, सक्कं पभणेइ, करइ सुपसाअ
तुम अंके महनाहो, पगमित्तं अम्ह अप्पेह ॥ २ ।
सक्केदो पभणेई, साहम्मी वच्छलंमि बहु लाहो ॥ आणा
हेवं, दिण्हि हवो उच्छप्पाभो ॥ ३ ॥ एम कही सर्व
भिषा कलश ढाळे, अने कुसुमांजली नीचे प्रमाणे पाठ कहे

॥ ढाल ॥ तेहीज ॥

॥ सोहम सुरपति वृषभ रूप करी, न्हवण करे
अंग ॥ करिय विलेपन पुष्पमाल ठवि, वर आभरण अभं
तव सुरवर बहु जय जयरव करि, नाचे धरी आनंद ॥
मार्ग सारथवाति पाम्यो, भांजशुं हवे भव फंद ॥ ४ ॥
बत्रीश कोडी कनक उवारी, वाजंते घर नादें ॥ सुरपति संच
रभी प्रभुने, जननीने सुप्रसादें ॥ आणी थाप्या एम
अंगे तिलरिसा जाउ ॥ पुत्र तुमारो धणी रे हमारो,
तारण झहाज ॥ ५ ॥ मात जतन करी राखजो एहने,
तुम अम आधार ॥ सुरपति भक्ति सहित नंदीश्वर, करे
भक्ति उदार ॥ निज निज कल्प गया सुरि निरसों, व
प्रभुगुणसार ॥ दीक्षा केवल ज्ञान कल्याणक, इच्छा

करि सहस अट्ठोतरा, छत्र चामर सिंहासण शुभतरा ॥ उप गरण पुष्फ चंगेरी पमुहा सवे, आगमें भासिया तेम आणी ठवे ॥ २ ॥ तीर्थजल भरिय करकलश करि देवता, गावता भावता धर्म उन्नतिरता ॥ तिरिय नर अमरने हर्ष उपजावता, धन्य अम्ह शक्ति शुचि भक्ति एम भावता ॥ ३ ॥ सम कित बीज निज आत्म आरोपता, कलश पाणीमशें भक्ति जल सींचता ॥ मेरु सिहरोवरें सर्व आव्या वही, शक्र उत्संग जिन देखी मन गह गही ॥ ४ ॥

॥ वस्तुच्छंद ॥

॥ हंहो देवा हंहो देवा अणाइ कालो, अदिट्ठ पुव्वो तिलोयनारणो तिलोय बंधु, मिच्छत्त मोहविद्धंसणो अणाइ तिण्हा विणासणो, देवाहिदेवो दिट्ठ बोहिय कामेहिं ॥ ५ ॥

॥ ढाल तेहीज ॥

॥ एम पभणंत वण भवणं जोईसरा, देव वेमाणिया भत्ति धम्मापरा ॥ केवि कप्पट्ठिया केवि मित्ताणु गा, केवि वर रमणि वयणेण अइ उत्सुगा ॥ ६ ॥

॥ वस्तुच्छंद ॥

॥ तत्थ अच्चुय नत्थ, अच्चुय इंद आदेस ॥ कर जोडि सवि देवगण, लेय कलस आदेस पामिय ॥ अद्भुतरूप सरूप जुअ, कयग एह उत्संगे सामिय ॥ इंद वदे जग तारणो, पारग अम परमेस ॥ नायक दायक धम्म निहि, करीयें तुम्ह अभिसेस ॥ ७ ॥

तत्त्वरंगी, प्रथमभेदाभेदना ॥ सविकल्पने अविकल्प वस्तु, सकल संशय छेदना ॥ १४ ॥

चारित्रपूजा ॥

॥ चारित्रगुण वळी वळी नमो, तत्त्वरमण जसु मूलोजी ॥ पररमनीयपणुं टले, सकलसिद्ध अनुकूलोजी ॥ १५ ॥ प्रतिकूल आश्रव त्याग संयम, तत्त्वथिरता दममयी ॥ शुचि परम खंति मुत्ति दश पद, पंच संवर उपचई ॥ सामायिकादिक भेद धर्मे, यथाख्याते पूर्णता ॥ अकषाय अकलुष अमल उज्ज्वल, काम-कश्मल चूर्णता ॥ १६ ॥

तपपूजा ॥

॥ इच्छारोधन तप नमो, बाह्य अभ्यंतर भेदें जी ॥ आतम सत्ता एकता, परपरिणति उच्छेदे जी ॥१७॥ उलालो॥ उच्छेद मर्म अनादिसंतति, जेह सिद्धपणुं वरे ॥ योगसंगें आहार टाळी, भाव अक्रियता करे ॥ अंतर मुहूरत तत्त्व साधे, सर्व संवरता करी ॥ निज आतमसत्ता प्रगटभावें, करो तप गुण आदरी ॥ १८ ॥

॥ ढाल ॥

॥ एम नवपद गुणमंडलं, चउ निक्षेप प्रमाणेंजी ॥ सात नयें ले आदरे, सम्यग्ज्ञानें जाणे जी ॥ १९ ॥ उलालो ॥ निर्धारसेंती गुणी गुणनो, करे जे बहुमान ए ॥ तसु करण ईहा तत्त्व रमणें, थाय निर्मल ध्यान ए ॥ एम शुद्धसत्ता भल्यो

॥ अथ श्रावकगुणोपरि एकवीशप्रकारी प्रारंभः ॥

॥ प्रथमस्नात्रपूजाप्रारंभः ॥

॥ दोहा ॥

॥ स्वस्तिश्री सुख पूरवा, कल्पवेली अनुहार ॥ पूजा भक्ति जिननी करो, एकवीश भेय विस्तार ॥ १ ॥ (पाठांतरें) विधिपूर्वक विस्तार ॥ १ ॥ स्नात्र विलेपन भूषणं, पुष्प वास धूप दीव ॥ फल अक्षत वेम पत्रनी, पूग नैवेद्य अतीव ॥ २ ॥ उदक वस्त्र चामर तथा, छत्र वाद्य गीत जाण ॥ नृत्य स्तुति जिनकोशनी, वृद्धि ए एकवीश ठाण ॥ ३ ॥ शुचितनु तैलजलादिकें, पहेरी चीवर सार ॥ पीठत्रिकोपरि जिनठवी, जिनआणा शिर धार ॥ ४ ॥ गंगा मागध क्षीरनिधि, औषधिनिश्चिन सार ॥ कुसुमें वासित शुचिजलें, करो जिनस्नात्र उदार ॥ ५ ॥

१ स्नात्रपूजा ॥

॥ ढाल ॥ सुरती महीनानी देशी ॥

॥ मणिकनकादिक अड विध, करी भरी कलश सफार ॥ शुभरुचि जे जिनवर न्हवे, तस नहि दुरित प्रचार ॥ मेरुशिखर जेम सुरवर, जिनवर न्हवण जमान ॥ करता वरता निजगुण, समकित शुद्धि निदान ॥ ६ ॥ कल्पम् ॥ हर्षं भरी अप्सरावृंद आवे, स्नात्र करी एम आशीष भावे ॥ जिहां लगें सु

४ कुसुमपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ शतपत्री वर मोगरा, चंपक जाय गुलाब ॥ केतकी दम नक वोलसिरि, पूजो जिन भरी छाब ॥ १४ ॥ ढाल ॥ अ-मल अखंडित विकसित, शुभ सुमनो घनि जाति ॥ लासीणो छोहर टशो. आंगी रचो बहु भाती ॥ गुणकुसुमें निज आतमा, मंडित करना भव्य ॥ गुणरागी जड्त्यागी, पुष्प चढावो नव्य ॥ १५ ॥ काव्यम् ॥ जगधनी पूजनां विविधफूलें, सुरवरा वे गले क्षण अमूलें ॥ खांति धरी मानवा जिनप पूजे, नस तणां पाप संताप धूजे ॥ १६ ॥ इति चतुर्थ कुसुमपूजा ॥ ४ ॥

५ वासपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ बावन चंदन कुंकुमं, सुरभिजात मंदार ॥ घनसारेंयुत वासशुं, पूजो जिनप उदार ॥ १७ ॥ ढाल ॥ सरस सुगंधित वासें, वासे जिनपति देह ॥ तस मिथ्यात विनासे, वासे समकित देह ॥ निज गुण वासित आतमा, गततम होवे निःशंक ॥ तत्त्वालंबी चेतना, टाळे कर्म कलंक ॥ १८ ॥ काव्यम् ॥ सुरभिवर वासशुं भक्तिरागें, त्रिभुवनवर वासतां एम मागे ॥ तुज गुणज्ञानमां लीन अप्पा, थिर रहो दूर छंडी विगप्पा ॥ १९ ॥ इति पंचम वासपूजा ॥ ५ ॥

६ धूपपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ कृष्णागरु मृगमद तगर, अंबर तुरक लोबान ॥ मेलि

गिरि जंबुदीवो, अम तणा नाथ जीवो तुं जीवो ॥ ७ ॥
इति प्रथम स्नात्रपूजा ॥ १ ॥

२ विलेपनपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ बावना चंदन कुंकुमें, मृगमदने घन सार ॥ जिन-तनु लेपे तस टले, मोह संताप विकार ॥ ८ ॥ ढाल ॥ सकल संताप निवारण, ठारण सवि भवि चित्त ॥ परम अनीहा अरिहा, तनु चरचो भवि नित्य ॥ निज रूपें उपयोगी, धारी जिनगुण गेह ॥ भाव चंदन सुहभावथी, टाले दुरित अछेह ॥ ९ ॥ काव्यम् ॥ जिनतनु चरचनां सकल नाकी, करे कुग्रह उग्रता आज थाकी ॥ सकल अनिमेषता आज माकी, भव्यता अम तणी आज पाकी ॥१०॥ अथ द्वितीयविलेपन पूजा ॥२॥

३ भूषणपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ तिलक मुकुट कुंडल युगल, अंगद कंठी हार ॥ भूषणभूषित जिनतनु, करी पामो भवपार ॥ ११ ॥ ढाल ॥ मणि मुगताफल हीरला लालडी पाच पीरोज ॥ नीलवी विद्रुम पुष्करें, लसणीया लहें बहु मोज ॥ कनकजडित वर भूषणें, भूषित जिन वर देह ॥ साधक धर्म जगावया, अतिशय संपद एह ॥ १२ ॥ काव्यम् ॥ शोभना भूषण देखि भीजे, जडमयी आतमा स्वगुण छीजे ॥ अविकारी जिनतनो देखी एह, भवि लहे तत्त्व आणंद रेह ॥ १३ ॥ इति तृतीय भूषणपूजा ॥ ३ ॥

४ कुसुमपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ शतपत्री वर मोगरा, चंपक जाय गुलाब ॥ केतकी दमणय बोलसिरि, पूजो जिन भरी छाब ॥ १४ ॥ ढाल ॥ अमल अखंडित विकसित, शुभ सुमनी घनि जानि ॥ लाखीणो टोडर रचो, आंगी रची बहु भांनी ॥ गुणकुसुमें निज आतमा, मंडित करना भव्य ॥ १५ ॥ काव्यम् ॥ जगधणी पूजनां विविधफूलें, सुरवरा वे गने क्षण अमूलें ॥ खांति धरी मानवा जिनप पूजे, तम नगां पाप संताप धूजे ॥ १६ ॥ इति चतुर्थ कुसुमपूजा ॥ ४ ॥

५ वासपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ बावन चंदन कुंकुमें, सुरभिवान मंदार ॥ घनसारेयुत वासशुं, पूजो जिनवर उदार ॥ १७ ॥ ढाल ॥ सरस सुगंधित वासें, वासे जिनपति देह ॥ तम मिथ्यात विनासे, वासे समकित देह ॥ निज गुण वासित आतमा, गततम होवे निःशंक ॥ तत्त्वालंबी चेतना, छंडे कर्म कलंक ॥ १८ ॥ काव्यम् ॥ सुरभिवर वासशुं भक्तिरागें, विबुधवर वासनां एम मागे ॥ शुद्ध गुणज्ञानमां लीन अप्पा, थिर रहो दूर छंडी विगप्पा ॥ १९ ॥ इति पंचम वासपूजा ॥ ५ ॥

६ धूपपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ कृष्णागरु धूपनत नगर, अंबर तुरुक्क लोबान ॥ मेलि

सुगंध घनसार घण, करो जिनने धूप घाण ॥ २० ॥ ढाल ॥ धूप घटी जेम महमहे, तेम दहे पातकवृंद ॥ आरति अनादिनी जाये, पावे मन आणंद ॥ जे जिन पूजे धूपें, भावपूर्वे फरी तेह ॥ नावे पावे शुभ घर, आपे सुरत अच्छेह ॥ २१ ॥ काव्यम् ॥ जिन घर वासनां धूप पुंजें, मिथ्यत दुर्गंधता जाय दूरें ॥ धूप जिम सहज ऊर्ध्वगं स्वभावें, कारक उघगति भाव पावे ॥ २२ ॥ इति षष्ठधूपपूजा ॥ ६ ॥

७ दीपपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ मणिमय रजत ताम्रप्रमुख, पात्र भरी घृत पूर ॥ वृत्ति शुभ कौसुभनी, करो प्रदीप सनूर ॥ २३ ॥ ढाल ॥ मंगलदीप प्रभावो, गावो जिनगुण गीत ॥ दीप तणी जेम आलिका, मालिका मंगल नीत ॥ दीपतणी शुभ ज्योति, द्योतित जिनमुख चंद ॥ निरखी हरखी भविजना, जेम लहो परमानंद ॥ २४ ॥ काव्यं ॥ जिनगृहे दीपमाला प्रकाशे, तेहथी तिमिर अज्ञान नासे ॥ निज घरे ज्ञान ज्योति विकासे, तेहथी अमलता भाव भासे ॥२५॥ इति सप्तमदीपपूजा ॥७॥

८ फलपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ [illegible] जिनवरो, [illegible] देव ॥ [illegible] शुभ [illegible], [illegible] जिन [illegible] ॥ २६ ॥ ढाल ॥ [illegible] [illegible] ॥ [illegible]

दाडिम, करणा पटबीज सफार ॥ मधुर सुस्वादिक उत्तम, लोकें अनिंदित जेह ॥ वर्ण गंधादिकें रमणिक, मत्र फल ढोके तेह ॥ २७ ॥ काव्यम् ॥ फल भरें पूजतां जगत स्वामी, मनुज गति वेलि होय सफल पामी ॥ सकल मुनिच्येय गत-भेद रंगें, ध्यावतां फल समाप्ति प्रसंगें ॥ २८ ॥ इत्यष्टमफल-पूजा ॥ ८ ॥

९ अक्षतपूजा ॥

॥ ढाल ॥

॥ अक्षत अक्षत पूरहुं, जे जिनआगें सार ॥ स्वस्तिक रचतां विस्तरे, निज गुण भर विस्तार ॥ २९ ॥ ढाल ॥ उज्ज्वल अमल अखंडित, मंडित अक्षत चंग ॥ पुंजत्रयी करो स्वस्तिक, आस्तिक भावें रंग ॥ निज सत्ताने सन्मुख, उन्मुख भावें जेह ॥ ज्ञानादिकगुण ठावे, भावे स्वस्तिक एह ॥३०॥ काव्यम् ॥ स्वस्तिक पूरतां जिनप आगें, स्वस्ति श्री भद्रक-ल्याण जागे ॥ जन्मजरामरणादि अशुभ भागे, नियति शिव-शर्म रहे तास आगें ॥ ३१ ॥ इति नवमाक्षतपूजा ॥ ९ ॥

१० पत्रपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ अमल अखंडित अघयुत, शुभ संख्यायें पत्त ॥ जिण-करपत्ते पत्त भवि, टवतां बहुगुण पत्त ॥ ३२ ॥ ढाल ॥ वि श्रगुणाकार नागर, आदर धरी ग्रहे जास ॥ भोजन उत्तर देवे, लेवे तरा मुख वास ॥ तेह सुपत्तें पूजतां, पूजक वाधे र ॥ अहमरुवादिकपत्तें, विभति भत्तें पूर ॥३३॥ काव्यम् ॥

पूजना पत्र शुचिभाव जागे, अग्र उपयुक्तता सवि दोष तागे ॥ भावतंबोल श्रीजेह माचे, शिववधू तेहयीं सद्य राचे ॥३४॥ इति दशमपत्रपूजा ॥ १० ॥

११ पुगीफलपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ उज्ज्वल शुद्ध सुस्वादवर, नव्य भव्य जे जाति ॥ जनप्यारी सोपारी वर, पूजो जिन भलि भाति ॥ ३५ ॥ ढाल ॥ मंगल कारण लावियें, भावियें घर घर हर्ष ॥ स्वस्तिक मंडन खंडन, दुरित तणा उत्कर्ष ॥ क्रमुक फलें जिन अरचो, विरचो धरी गुणराग ॥ मंगलमाला पावे, पावे भवजल ताग ॥ ३६ ॥ काव्यं ॥ शुद्धस्याद्वाद मुदुभावसंगें शुद्धता शुद्धवर भाव रंगें ॥ भावथी पूजतो एम पूगें, निपति आनंद घर तेह पूगे ॥ ३७ ॥ इत्येकादशपगीफलपूजा ॥११॥

१२ नैवेद्यपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ सरस शुचि पकवान भर, शालि दाल घृतपूर ॥ करे नैवेद्य जिन आगलें, क्षुधा दोष नस दूर ॥ ३८ ॥ ढाल ॥ लपनश्री वर घेवर, मृदुतर मोतीचूर ॥ सिंह केसर सेवइया, दलिया मोदक पूर ॥ साकर द्राख शीगोडां, भक्त व्यंजन पून सद्य ॥ एम नैवेद्य जिनने करे, तस मने सुख अनवद्य ॥ ३९ ॥ काव्यम् ॥ दोकता भोज्य परभाव त्यागे, भंजना निजगुण भोग मागे ॥ अम भर्णी अम तनुं स्वरूप.

भोज्य, आपजो नातजी जगत पूज्य ॥ ४० ॥ इति द्वादश-नैवेद्यपूजा ॥ १२ ॥

१३ जलपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ शुभरुचि शुचिनिर्वाणलं, पूर्ण कलश भरी तोय ॥ जिनपति आगल ढोवतां, गततृष्णा भवि होय ॥४१॥ ढाल ॥ जगजीवन गुणपावन, निर्म्मल शीतल जेह ॥ उदक स्पर्शे जिन पूजतां, न रहे पातक रेह ॥ अतिमीष्में भवग्रीष्में, नवि पीडाये देह ॥ सुखभर शिवघर वासवा, आदिमंगल एह ॥ ४२ ॥ काव्यम् ॥ निर्म्मलें समजलें जेह भाणी, भरी पात्र भद्दान ते सुगुणखाणी ॥ एकता जिनगुणे देवदेवा, भजे भावथी जलनणी एह सेवा ॥ ४३ ॥ इति त्रयोदश जल-पूजा ॥ १३ ॥

१४ वस्त्रपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ चीनांशुक उज्ज्वल अमट, जग्याकी शुद्ध पट ॥ सरस सुकोमल मृदु घनां, वस्त्रजुगल गहगट ॥ ४ ॥ ढाल ॥ वस्त्र-जोडी मन कोडे, धारो जिनअंगनाग ॥ गतदोषे न्होवे, जेह जिनमंदिर राग ॥ शोभातो स्वस्त टालो, धारो वरी बहुमान ॥ वस्त्रपूजा हरे भविजनां, दुःख शीतादि अमान ॥ ४५ ॥ काव्यम् ॥ भावथी वस्त्रयुग ले पवित्र, ते धरे जिननणी अंग ईना ॥ शिविर शुद्ध आभरे मोहछोडे,

नवि लहे दुःख संसारमीम्में ॥ ४६ ॥ इति चतुर्दश वस्त्र पूजा ॥ १४ ॥

१५ चामरपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ अति उज्ज्वल अंगुल तणुं, एकशत आठ प्रमाण ॥ चामरर्से पूजतां, नासे दुरितविहाण ॥ ४७ ॥ ढाल ॥ कनकरयणनें दंडें, मंडित चामरजोडि ॥ हरखनां जिनमुख निरखतां, वींजे होडा होडि ॥ विकसिन कज जेम जिनमुख, सन्मुख आवी हंस ॥ सेवे एम उपमति करे, भवि जन धरी आशंक ॥ ४८ ॥ काव्यम् ॥ ज्ञान मय किरिय उज्ज्वल स्वभावें, नति उन्नति गौण मुख्यादि भावें ॥ मानगुणसंख जिनराज आणे, भावयी बुद्ध चामर वखाणे ॥ ४९ ॥ इति पंचदशचामरपूजा ॥ १५ ॥

१६ छत्रत्रयपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ उज्ज्वल शारद चंद जिम, छत्रत्रय बहु मूल ॥ ठाविर्ये जिन उपरें, तस दुगसिरि अनुकूल ॥ ५० ॥ ढाल ॥ छत्रत्रय जेम फरके, भरके पातकवृंद ॥ मोहादिक अरि शाठा, नाठा करे आक्रंद ॥ जे नित्य पूजे छत्रें, शुभगोत्रें लहे जन्म ॥ तनसर्णे छत्र धरे हरि, सुरगेरें उत्सव कम्म ॥ ५१ ॥ काव्यम् ॥ इक्कजें जेह जिनराज ध्यावे, हीनना अवंचक योग छावे, भावत्रय धर्या गुणसमाजे, सादि निरअंन शिवराजगने ॥ ५१ ॥ इति षोडशपूजा ॥ १६ ॥

१९ नृत्यपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ मूकी शंक संसारनी, जिनपति आगें जति ॥ क
नृत्य सूर्याभ परें, तस नहीं भवभय नृत्य ॥ ५९ ॥ ढाल
भूचर खेचर अमरवर, किन्नरी नरी शुभचित्त ॥ नाचे मा
जिनगुणें, सांचे सुकृतवित्त ॥ योग अवंचक एहथी, तेह
जिनपद हेतु ॥ चउगइ गमणनिवारण, तारण भवजलसे
॥ ६० ॥ काव्यम् ॥ जेह निजयोगगति सहजरंगें, फो
अमृतानुष्ठान संगें ॥ अतुलगुणनान न चूके असंगें, भाव
त्यपूजना एह ढंगें ॥ ६१ ॥ इति एकोनविंशतिनृत्यपूजा ॥

२० स्तुतिपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ व्याकरण काव्य अलंकृति, तर्क छंद अपभ्रंश ॥ द
न दोषें स्तुति करे, स्तुतिपूजा गुणसत्य ॥ ६२ ॥ ॥ ढाल
स्वरपदवर्णविराजति, भाजति उक्ति अनूप ॥ अतिशय ग
उपगारी, अह तस शुद्ध स्वरूप ॥ संपद त्रिक एम स्तर
टवनो जिनगुण चित्त ॥ सुरनर किन्नर थवे तस, पूर्णदश
करे नित ॥ ६३ ॥ काव्यम् ॥ जेह पटद्रव्य जिन आग
भाखे, शुद्धस्याद्वादनी टेक राखे ॥ अवर एकांतना दूर नाखे,
भावस्तुति पूजना एह आखे ॥ ६४ ॥ इति विंशतिस्तुति
पूजा ॥ २० ॥

२१ कोशपूजा ॥

॥ दोहा ॥

॥ निज शुद्धनउदये रह्यं, न्यायोपार्जितवित्त ॥ शुद्धि जिनवरनिकोशनी, करे पूजा अहर्नित्त ॥ ६५ ॥ ढाल ॥ रुपैया सोनैया, असिगर्नी अर्पण ॥ इम एकलिया गरथा, छत्र मेरुमसंग ॥ पुण्ये पामीनरलो, स्वर्गीमनिजिनकोश ॥ शुद्धि कने अपना भाग, निजगुण भावमनोश ॥ ६६ ॥ काव्यम् ॥ मनिसलें लेह जिनराज अंगे, निजस्वभाव विशाय माने ॥ जेहथी आत्मगुनठाण रचे, भावथी कोशनी शुद्धि साधे ॥ ६७ ॥ इति एकविंशतिकोशपूजा ॥ २१ ॥

॥ दोहा ॥

॥ एम एकवीस विधिपूजना, विरचे जे विधिवित्त ॥ मानव भव सफलो करे, करे सम्यक्तवित्त ॥ ६८ ॥ ढाल ॥ अगणित गुणगण आगर, नागरविलास ॥ हरखी उलटी ज्ञानसागर उजागर ॥ न नवनवरस मेवर, मधुरसले रस-मन्दय ॥ श्रीजिनराज नाइं, जिनदर्शी लीन ॥ ६९ ॥ सेवत गुण इण अवर इड, हर्षभर लागे श्री जिनेंद्र ॥ तस फल शुद्धनी सहज मानी, करो ज्ञानउद्योत पल निरतिशली ॥ ७० ॥

॥ दोहा ॥

॥ इकवीस प्रकारपूजने, पूजा कुशर मेह ॥ हर नर हरख करे, शिवसुख लहे अछेह ॥ ७१ ॥

सकलसंताप निवारण, टाल्या सहू भविचित्त ॥ परम अनीहा अरिहा, तसु चरचो भविनित्त ॥ निजरूपें उपयोगी, धारी जिनगुण गेह ॥ भावचंदन सुह भावथी, टाले दुरित अछेह ॥ २ ॥ ढाल ॥ जिन तनु चरचतां सकल नाकी, कहे सुमह उपना आज थाकी ॥ सकल अनिमेषना आज म्हांकी, भव्यता अम्ह नणी आज पाकी ॥ ३ ॥

॥ सकलमोहतमिस्रविनाशनं, परमशीतलभावयुतंजिनम् ॥ विनयकुंकुमदर्शनचंदनैः, सहजतत्त्वविकाशकृतेऽर्चये ॥ २ ॥ ॐ ह्रीं परमपरमात्मने अनंतानंतज्ञानशक्तये जन्मजरामृत्युनिवारणाय श्रीमज्जिनेंद्राय चंदनं यजामहे स्वाहा ॥ २ ॥ इति चंदनपूजा ॥

॥ अथ तृतीय पुष्पपूजा प्रारंभः ॥

॥ दोहा ॥ शतपत्री वरमोगरा, चंपक जाइ गुलाब ॥ केतकि दमनो बोलसिरि, पूजो जिन अरिहाव ॥ १ ॥ ढाल ॥ अमल अखंडित विकसित, शुभकुसुमनी बनी जाति ॥ दामसीयो ढोडर टवो, अंगी रचो बहु भाति ॥ पुष्पकुसुमें निज आतमा, मंडित करशो भव्य ॥ गुणगण सहज सुगंधतां, पुष्प चडावो नव्य ॥ २ ॥ ढाल ॥ जगधणी पूजतां विविधफूले, सुरवरा ते गने क्षण अमूले ॥ शांति धरि मानवा जिनप पूजे, तसु तणां पाप संताप धुजे ॥ ३ ॥

॥ विकचनिर्मलशुद्धमनोरमैः, विशदचेतनभावसमुद्भवैः ॥ सुपरिणामप्रसूनघनैर्नवैः परमतत्त्वमयं हि यजाम्यहम् ॥ ३ ॥ ॐ ह्रीं परमपरमात्मने अनंतानंतज्ञानशक्तये जन्मजरामृत्युनि-

अज्ञान नासे ॥ निजघटे ज्ञानज्योति विकासे, तेहथी जगत्‌ना भाव भासे ॥ ३ ॥

॥ भविकनिर्मलबोधविकाशकं, जिनगृहे शुभदीपक दीपनम्॥ सुगुणरागविशुद्धिसमन्वितं, दधतु भावविकाशकृते जनाः ॥५॥ ॐ ह्रीं परमपरमात्मने अनंतानंतज्ञानशक्तये जन्मजरामृत्युनिवारणाय श्रीमज्जिनेंद्राय दीपं यजामहे स्वाहा ॥ ५ ॥ इति दीपपूजा ॥

॥ अथ षष्ठाक्षत पूजा प्रारंभः ॥

॥ दोहा ॥ अक्षत अक्षत पुरशुं, जे जिन आगे सार ॥ स्वस्तिक रचनां विस्तरे, निजगुण भर विस्तार ॥१॥ ढाल॥ उज्ज्वल अमल अखंडित, मंडित अक्षतचंग ॥ पुंजत्रय करो स्वस्तिक, आस्तिक भावे रंग ॥ निज सत्ताने सन्मुख, उन्मुख भावे जेह ॥ ज्ञानादिक गुण ढावे, भावे स्वस्तिक एह ॥२॥ थाल ॥ स्वस्तिक पुण्य जिनप आगे, स्वस्ति श्रीभद्र कल्याण जागे ॥ जन्मजरामरणादि अशुभ भागे, नियत शिवशर्म रहे तासु आगें ॥ ३ ॥

॥ सकलमंगलकेलिनिकेतनं, परममंगलभावमयं जिनम् ॥ श्रयत भव्यजना इति दर्शयन्, दधतु नाथ पुरोऽक्षतस्वस्तिकम् ॥ ६ ॥ ॐ ह्रीं परमपरमात्मने अनंतानंतज्ञानशक्तये जन्मजरामृत्युनिवारणाय श्रीमज्जिनेंद्राय अक्षतान् यजामहे स्वाहा ॥ ६ ॥ इति अक्षतपूजा ॥

॥ अथ सप्तम नैवेद्यपूजा प्रारंभः ॥

॥ दोहा ॥ सरस शुचि पक्वान्न भर, शालदाल घृतपूर ॥

धरे नैवेद्य जिन आगले, क्षुधादोष तसु दूर ॥ १ ॥ ढाल ॥ लपनश्री वरघेवर, मृदुतर मोतीचूर ॥ सिंहकेसरियां सेवैया, दलिया मोदकपूर ॥ साकर द्राख सिंगोडा, भक्तव्यंजन कुन सद्य ॥ करो नैवेद्य जिन आगलें, जिम मिले सुख अनवद्य ॥ २ ॥ चाले ॥ टोचनां भोज्यपर भाव त्यागे, भविजना निज गुण भोज्य मागे ॥ अम्ह भणी अम्हतणो सरूप भोज्य, आपजो तातजी जगतपूज्य ॥ ३ ॥

॥ सकलपुद्गलसंगविवर्ज्जनं, सहजचेतनभावविलासकम् ॥ सरसभोजननव्यनिवेदनात्, परमनिर्वृतिभावमहं स्पृहे ॥ ७ ॥ ॐ ह्रीं परमपरमात्मने अनंतानंतज्ञानशक्तये जन्मजरामृत्युनिवारणाय श्रीमज्जिनेंद्राय नैवेद्यं यजामहे ॥ ७ ॥ इति नैवेद्यपूजा ॥

॥ अथाष्टम फलपूजा प्रारंभः ॥

॥ दोहा ॥ पक्क बिजोरुं जिन करे, टलतां शिवपद देइ ॥ सरस मधुर शुभ फल घणां, इह जिन भेट करेइ ॥ १ ॥ ढाल ॥ श्रीफल कदली सुरंगा, नारंगी आंबा सार ॥ जंबीर अंजीर दाडिम, करणा पस्तीज सफार ॥ मधुर सुस्वादिक उत्तम, ढोके आनंदित जेह ॥ ग्रण गंधादिके रमणीक, बहुफल होवे तेह ॥ २ ॥ चाल ॥ फलभरे पूजतां जगतस्वामी, मनुजगति पेंठि होय सफल पामी ॥ सकल मुनि ध्येयगत भेद रंगे, ध्यावतां फलसमापत्ति प्रसंगे ॥ ३ ॥

॥ कटुककर्मविपाकविनाशनं, सरसपक्वफलव्रजढौकनम् ॥ विहितमोक्षफलस्य प्रभोः पुरः, कुरुत सिद्धिफलाय महाजनाः ॐ ह्रीं परमपरमात्मने अनंतानंतज्ञानशक्तये जन्मजरामृत्युनिवा-

स्याय श्रीमज्जिनेंद्राय फलं यजामहे स्वाहा ॥ ८ ॥ इति फलपूजा ॥

॥ दोहा ॥ इम अडविध जिनराजनी, जिनवे जे दिनदिन ॥ [illegible] मनमे धरे, पावे समकित जिन ॥ १ ॥ [illegible] ॥ [illegible] गुणमणि आगार, नागर [illegible] पाय ॥ [illegible] [illegible], ज्ञानभक्त उवझाय ॥ नाम [illegible] सेवक [illegible] [illegible] ॥ श्रीजिनपूजा गाइ, जिनवाणी [illegible] ॥२॥ [illegible] ॥ [illegible] गुण [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] गाइये श्रीजिनेंद्र॥ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], कहे ज्ञान उद्योत [illegible] [illegible] ॥ ३ ॥

॥ इति जिनराजः [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] स्तुति ॥ [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] अर्चति ॥ १ ॥ ॐ ह्रीं [illegible] [illegible] [illegible] श्रीमज्जिनेंद्राय अर्घं यजामहे स्वाहा ॥ ८ ॥

॥ अथ वस्त्र पूजा ॥

॥ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] ॥ [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] ॥ १ ॥ इति ॥

१. [illegible]

॥ अथ मंगल दीपक ॥

॥ दीवो रे दीवो मंगलिक दीवो, भुवनप्रकाशक जिन चिरंजीवो ॥ दी० ॥ १ ॥ चंद सूरज प्रभु तुम मुख केरां, लुंछण करतां दे नित फेरा ॥ दी० ॥ २ ॥ जिन तुज आगल सुरनी अमरी, मंगलदीप करी दिये भमरी ॥ दी० ॥३॥ जिम जिम धूपघटी प्रगटावे, तिम तिम भवना दुरित दझावे ॥ दी० ॥ ४ ॥ नीर अक्षत कुसुमांजलि चंदन, धूप दीप फल नैवेद्य वंदन ॥ दी० ॥५॥ इनि परें अष्ट प्रकारी कीजे, पूजा स्नात्र महोत्सव भनीजे ॥ दी० ॥६॥ इ० मं० दी० ॥

तुंज पद सेवत श्रेणिकभाई, सुलसा रेवइबाई,
प्रभुसम पदवी तुरत निपाई साचि भगति सहाई
हो प्रभुजी ॥ ५ ॥ तुं ॥

॥ ढाल ॥ श्री सुपास जिनराज ॥ ए देशी ॥

वरगणधर इग्यार, चउदसहस अणगार;
अणगारि हो सहस्स छतिस सुहामणीजी,
श्रमणोपाशकसार इगलख अधिक हजार;
गुणसठी हो सोभंना देसवीरत धणीजी ॥ १ ॥
तिडलख श्राविका चारु उपरि सहस अढार,
सम्यग् दृष्टि हो दर्शनयुत शीवमारगसिजी;
चौदसपुवि धन्य सवखर संपन्न,
अजिणा जिण सकासा हो तिगसय उल्लसीजी ॥ २ ॥
वादीचउसय धीर परमत भंजक वीर,
पंचसयाचार्यम मणनाणिखराजी;
निज दिक्षीत मुनिराज समना ध्यान समाज,
सातसया केवलनाणि सिद्धिवराजी ॥ ३ ॥
वैक्रियधर सयसान पद्जीतन पिनमान,
राजें हो आज तेरस ओही जिणशयाजी;
अणुत्तरवाइ मुनिशिगइठिई श्रेयइस,
अनुभव अभ्यासि यतिवर अडसयाजी ॥ ४ ॥
इत्यादिक परिवार जिनवर आणा धार,
वंदेहो परिवरिया विचरे मूलतेजी;
वरिनडमरभयशोक इंने मीतिना थोक,
नासे हो जिनपद फरसनने सहेजी ॥ ५ ॥

ढाल राग गोडि ॥ धन धन सुरनर पतितनो ॥ ए देशी ॥

वीर विहारे विहारे विचरता करता जगकुं शाताजी,
धरण सोवन पंकज थापता जगवत्सल जगत्राताजी.

॥ त्रुटक ॥

शाता अनादि विभाव दुखके आविया पावापुरी,
जिनराज आगम हरख पाम्या भव्यकेकि हितधरी;
धन्य पुहवि धन्य वनसो धन्य जनपदपुरसहि,
श्रीवीरनायक चरण फरसक भइ पावन या महि ॥ १ ॥
इंद्रादिक आगल चले भगते जयजय कहेतेजी,
छत्र सिंहासन चमर सुं इंद्र ध्वज लई वहवेजी;

॥ त्रुटक ॥

वहतिज आगले देवकोडी धर्मचक्रदेखावती,
नरतिरि व्यंतर असुर किन्नर अपछरा गुन गावति;
निज कार्यकर्ता भ्रमणभमती आत्मतत्त्व नीपावती,
दुनमनि उनी उभय पासे नायपद धीर नामवी ॥२॥
गगन पंखीगन उडता करता प्रदक्षिण रंगेजी,
पूठि पवन अनुकूलता हरखी इंति प्रसंगेजी;

॥ त्रुटक ॥

सहजे सुगंधित निर वरसे पुष्प वृष्टि चिहु दिसे,
कंटक अधोमुख कहे जिनते भाव कंटक सविनसे;
जयजय वहंति सुति नचंति देव दुंदभि रणझने,
देवाधिदेवा करे सेवा तत्त्वरुचिजनने मने ॥ ३ ॥
पावन करता भूतले मिथ्या तिमिर हरंताजी,
विषयविषे मूर्छीत भवी देशना अमृत झरंताजी;

श्रीवीरेजी गौतम गणधर मोकल्या,
आणाकरजि देवशरमा बोधन चल्या;
जिन आणाजि हित सुख मंगलकारए,
इंम जाणीजी गणधर करे विहार ए ॥

॥ त्रुटक ॥

नवरायल्लछिनवें मन्नि वीर वचन रसेरस्या,
निज देश चिंता तजी जिनपद सेवना करवा वस्याः
सुराय चौसट्टि तिहां आव्या सिद्धि अवसर जाणता,
श्रीवीर दर्शन मन कीरतन परम सुख मन आणता ॥३॥

॥ दोहा ॥

कार्तिक वदी चौदस दिने प्रात समय जिनराय,
सिंहासने बेठा जिस्यें सुरंभा गुण गाय ॥ १ ॥

॥ ढाल ॥ जीरीयानि ॥ अथवा सोहलानी ॥

वाल्हेसर त्रिसलादेवीनंद दीठो हे दीठो अमृत घनसमो
सोभागीस्वामी सोभागी सिद्धि वधू भरतार,
मोहन हे मोहन मूर्ति नीत नमो; उपगारी स्वामी ॥ १ ॥
तुम्हे गाओ हे तुम्हे गावो नित गुण धरि मनप्रेम,
खेम न हे खेम न जावो क्रूर गति ॥ उ० ॥
चिरंजीवो हे चिरंजीवो गौतम गुरुराय,
नित प्रति हे निन प्रति एसे सुरवितै ॥ उ० ॥ २ ॥
अप्रति बद्ध हे अप्रति बद्ध पाचो जगनाथ,
जिण जित्यो हे जिण जित्यो मोह सुभटरुरू ॥ उ० ॥
तूटो हे तूटो आज अमीमय मेह,
सरलो हे सरल फल्यो धरिसुरतरू ॥ उ० ॥ ३ ॥

जय जय हे जय जय जगजीवन जगबंधू,
सिद्धारथ हे सिद्धारथ नृप कुलतिलो, ॥ उ० ॥
तूठा हे तूठा आज सर्वे कन्यां पुन्य,
भेट्यो हे भेट्यो जिनवर गुणनीलो ॥ उ० ॥ ४ ॥
बलिहारि हे बलिहारि वार हजार,
तुं ज्ञानि हे तुं ज्ञानि गुण सेहरो; ॥ उ० ॥
जंगम हे जंगम तीरथ शिवसुखकंद,
निश्चय हे निश्चय शिवसुख देहरो ॥ उ० ॥ ५ ॥
इंद्रादिक हे इंद्रादिकना प्राण आधार,
जीवो हे जीवो कोडि जुगो लगे ॥ उ० ॥
जसु दिठे हे जसु दिठे नासे दुःख अंधार,
भामंडल हे भामंडल दिनकर झगमगे ॥ उ० ॥ ६ ॥
त्रिभुवन पति हे त्रिभुवन पति तुज वचन सवाद,
मोह्या हे मोह्या सुरपति नरपतिजी ॥ उ० ॥
तुंहि हे तुंहि भवभवनाथ दयाल,
करियें हे करियें इंणविधि विनतीजी ॥ उ० ॥ ७ ॥
तरीये हे तरीये भवसायर दुःखपूरि,
हरिये हे हरिये कर्म महा अरि ॥ उ० ॥
वरियें हे वरियें देवचंद्र पदसार,
करियें हे करियें भक्ति सदा खरी ॥ उ० ॥ ८ ॥

॥ ढाल धनिनी ॥

इंम गाती रंभा गीत प्रभु आव्या सुविदित,
ज्ञानदर्शन चरणानंदि हरख्या सवि प्रभुपद वंदी ॥१॥

प्रभु देशना अतिसुखकार भाख्या निश्चय विवहार,
कारण कारज विधि भाखी शिव साधन शिक्षा दाखी ॥२॥
सर्व जीव अछे सम एष, संग्रह मताने लेशः
जे पर परनति त्याग, नय वर्ननी भावड भागी ॥३॥
जसु नम्नरुचि थयो ज्ञान ते माल्वे साध्य अमान,
निज व्यक्ति शक्ति निज संगी गवे गुण शक्ति अनंगी ॥४॥
शुचि श्रद्धाभासन रमण कारक निज कार्यने गमणे,
भागे परपरणति रिन एकत्वे तत्त्व प्रतिन ॥ ५ ॥
परभाव अरोधक दृष्टि निज ज्ञानसुधानि वृष्टि,
परभोगी भाव अभावे कृत्नादि थया निज भावे ॥६॥
जाणि निज परणति स्वामी, कुंण थाइं परपरणामी;
ए भावे निज गुण पोषे, ते शुद्ध समाधि संतोषे ॥७॥
दुःख पोषक पर परसंग, न भजेहेन धरि रंग;
निज तत्त्व रमो भविप्राणी, देवचंद्र वदे इंम वाणि ॥८॥

॥ ढाल ॥ पद्मिनी रह्या न सकि निसंजी ॥ ए देशी ॥

सुरनरतिरिय मध्य हर्षजी बेठा श्रीवर्द्धमान;
जगत दया उपदिसेजी, शुद्ध धर्म सुख स्थान ॥१॥
जिनेशर तुम मुज प्राणाधार ॥ टेक ॥
भवभय पीडित जीवनेजी. शासनाण सुखकार;
सोल पहोरनी देशनाजी, वीर रह्यी तिणवार
क्षीराश्रववदने कह्याजी, प्रश्न छत्रीस उदार जिने० ॥२॥
पंचावन अध्ययनमांजी, सुखविपाक स्वरूप;
वळी तेता अध्ययनमांजी, दुःखविपाक विरूप जिने० ॥३॥

अवन्ने अगंधे अफासे अरूपी, प्रभु तुं थयो अरस संठाण हीनो,
अमोहि अकर्ता अभोगी अयोगी, अवेदी अखेदी गुणानंद पीनो.
॥ २ ॥ प्रभु० ॥

प्रभु जाणतो ज्ञानथी तुं सर्व छति, वस्तुने देखतो सर्व सामान्य भावो;
आतमा गुणरमण, अनुभव रसे घूमतो तें लह्यो पूर्ण शुद्धात्म भावो.
॥ ३ ॥ प्रभु० ॥

आत्मगुण दान लाभे अनंते वरयो, भोग उपभोग निज धर्म लीनो;
सकल गुणकार्य सहकार विरय वरया, चपल वीरय गये थिर अदीनो.
॥ ४ ॥ प्रभु० ॥

तुं क्षमी तुं दमी तुंहि मार्दवमयी, आर्य विमुक्ति समता अनंति;
तुं असंगी अभंगी अनंगी प्रभु, सर्व प्रदेश गुणशक्तिवंति ॥५॥
प्रभु० ॥

प्रभागी प्रभेद अनेद अयोदि, अकंपात्म देशी अलेशी अवेशो;
स्वयं ध्यानयुक्तो सदा ध्येयरूपो मुनिमानसे जेहनो वास देशो.
॥ ६ ॥ प्रभु० ॥

॥ दोहा ॥

सिद्ध थया जिन जानिने, इंद्रादिक सुरवृंद;
शोकातुर आतुर रडे चौविह संघ समूह. ॥ १ ॥
हैं हैं नाथ वियोगथी, ए जिवन निष्काम;
मोक्षमार्ग साधन भणी, कोण पहोंचसे हाम. ॥ २ ॥
वीर वियोगे जीवत्तो, ते निठुर परिणाम;
धन तनु वनिता संपदा, स्युं कीजे सुखधाम. ॥ ३ ॥
जग उपगारि विछड्ये, स्ये हेते सुर शक्ति;
प्रभु मने करस्युं किहां, बहु विस्तारि भक्ति. ॥ ४ ॥

॥ ढाल ॥ मेरे नंदना ॥ ए देशी ॥

एतला दिन लगे जांगतारेहां, प्रभु सनमुख बहुवार; मेरे साहिबा॥
वंदन विधि नाटक करिरेहां, लहेस्युं लाभ अपार. मेरा०॥१॥
बोलो नाथ दयाल क्रिपानिधि करुणाल तुंज वयणां गुणमाल;
थई सर्व निहाल तत्त्वरमण संभाल थाय ज्ञान विशाल. मे० ॥२॥
एक वचन श्रीवीरनोरे आपे भवनी कोडी;
अविनाशी सुख आपवारे कोण करे तुंज होडि. मे० ॥३॥
तुंज सरीखे साहेब छतेरे करता मोटी हुंस;
मोह महारिपु जीपिनेरेहां करस्यां कर्मनो ध्वंश. मे० ॥४॥
मोहाधीन जे जीवडारेहां तृष्णा तापें तप्त;
पुद्गल आशावंधि विषयारस सलिप्त. मे० ॥ ५ ॥
तनु विभावरंगी दुखीरेहां आवृत आतमशक्ति;
तेहवाने कुंण तारसेरेहां देखाडि गुणव्यक्ति. मे० ॥ ६ ॥
बहु परिचित परभावनारेहां चपल एकत्व अपाप; मे०
करतां कहे कुंण वारसेरेहां ते देखाडो ताप. मे० ॥ ७ ॥
विषयादिक आसेवनारेहां थातो अम संकोच; मे०
तुज उपगारे तेहवेरेहां थास्यें किमते सोच. मे० ॥ ८ ॥
वीर चरण जायोअछेरेहां गुणरा अमृत वाणि; मे०
ते माटे सुर भोगनारेहां करता नवि मंडाण. मे० ॥ ९ ॥
कृपा करो एक वचननीरेहां अम पिछो वीतराग; मे०
महा मोहना कष्टथीरेहां छोडावो महाभाग. मेरा० ॥१०॥
भरतक्षेत्रना जीवनेरेहां तुंजविण कुण रखवाल;
दुसम काल कृतांतमांरेहां एहवो करण हवाल. मेरा० ॥११॥
मेघमुनिने राखीयोरेहां राख्यो सोमलछंद; मेरा०
खंधक शिवपमुहा तर्यारेहां नार्यो चमर सुरिंद. मेरा० ॥१२॥

हुं सोहम पति विनवुंरेहां दया करो मुज देव; मेरा०
सदा हजूरि दासनीरेहां मानो विनति सेव. मेरा० ॥१३॥
नित्य मनोरथ नव नवारेहां करता मुं अवलंब मेरा०
ते दिशी दाख्यो सवने रेहां प्रभुजी ज्ञान कदंब मेरा० ॥१४॥
एह श्रमण श्रमणी भणीरेहां निज आराधक भाव मेरा०
केहने पूछी आलोयणेरेहां अंतर गत परभाव मेरा० ॥१५॥
भव्य अभव्य निरधारनारेहां पूछीशुं कुण पास मेरा०
आश्रव पीडित जीवनीरेहां कुण सुणसे अरदास मेरा० ॥१६॥
ते सवि मनमां रहिरेहां चाल्यो नारक सिद्धि मेरा०
आणा आलंबन करिरेहां करवी कार्य समृद्धि मेरा० ॥१७॥
तोपण पूछना नामथीरेहां सरशे मोटी आश मेरा०
देवचंदनी सेवनारेहां शिव सुख कारण खास मेरा० ॥१८॥

॥ दोहा ॥

इंम दुःख भरि इंद्रिके विमन चित्त मुखदिन
कलश विवे नव्र क्रिया विन भक्ति लयलीन ॥ १ ॥
करी विलेपन अति सुगंधि बहुविध फूलनी माळ
आभरणादिक अलंकर्या श्री जिन अगत दयाळ ॥ २ ॥
सहस्र थंभ शिबिका रचि उज्वल अभिराम
सिंहासनपाद पीठ विधि चामर छत्र अभिराम ॥ ३ ॥
प्रभु पेसाड्या पालखी उपाडे सुरवृंद
वैमानिक भुवनाधिपति व्यंतर सुरचंद ॥ ४ ॥
चामर विंजे भक्तिशुं शक्र वलिईशान
दीवे आपणने धर्मनो इम दें शिक्षा दान ॥ ५ ॥

॥ गाथा ॥

दुल्हहो जिणंदजोगो दुलहंत धम्म सवण निवारं;
दुलहा मुख पवित्ति, सामग्गी संगमो दुलहो ॥ १ ॥
हाहाइय किं जायं, अम्हो सिद्धो महोदयं पत्तो;
अम्हाण पुठ्ठ साहण, हेउ विजोग भवं दुरकं ॥ २ ॥
वीर विहम्मि धम्मा, धारेण असरण यादुहिया;
तेसिंदुसमकाले, कोदायी एरिसंचम्मं ॥ ३ ॥

॥ ढाल ॥ मेघमुनिसर काइं डमडोलई रे ॥ ए देशी ॥

गीत गान नाटिक करीजी, करुणा रसमय सर्व;
हा नायक हा तारकुंजी, कहता वदन सुपर्व
नाथजी मोटो तुंज आधार १ ॥
तुं त्रिभुवन निसतार; तुं प्रभु ज्ञान आधार,
तुंज सरिखो दातार दुलहो एणिवार नाथ० २ ॥
चंदनकाष्टे जिनतनुंजी दाहे अग्निकुमार,
दुखभरि सजल नयणे करीजी वायु ते पवन कुमार नाथ० ३॥
उदधि कुमार जले करीजी शीतल कीधि ठाम,
जिनदाढा ले भक्तियीजी सुरपति दक्षिण वाम नाथ० ४ ॥
अस्थि भस्म माटि ग्रहेजी सुरनर अवर अनेक,
वंदे पूजे भक्तियीजी धरता चित्त विवेक नाथ० ५ ॥
देवसरमा प्रतियोधिओजी वलिया गोतम स्वामि,
सांजे वनमां मुनि वदयाजी पाम्या श्रुति विशराम नाथ० ६॥
पावा परिसर गणधरुजी राति वस्या जिहि ठाय,
वीर विरह गौतम सुण्योजी हीयडे दुःख न माय नाथ० ७॥
हे प्रभु मुज बालक भणिजी स्यें न जणायुं आम,
मूंकी स्यें मुने वेगळोजी ए निपाव्यो काम नाथ० ८ ॥

हवे शुंण संशय मेटसेजी केरसे सूक्ष्म मात्र,
केने चांदिश भगतिसुंजी करसुं तिनय स्वभाव नाथ० ९॥
वीर विना केम थायसेजी मुने आतमसिद्धि,
वीर त्यारे एनल जी पाम्या पूर्ण समृद्धि, नाथ० १० ॥
इंम चिंतवतां उपन्योजी वस्तु धर्म उपयोग,
करता सहु निज कार्यनाजी प्रभु नमित्तिक योग, नाथ० ११॥
ध्यानालंबन नाथनोजी, ते तो सदा अभंग,
तिण प्रभु गुणने जोइवेजी, जोइतुं आतम अंग, नाथ०१२ ॥
आतम भासन रमणतीजी भेदे ज्ञान पृथक्त्व,
वेह अभेदे प्रणम्योजी पाम्यो तत्त्व एकत्व नाथ० १३ ॥
ध्यान लीन गौतम प्रभुजी, क्षपक श्रेणि आरोहि,
घन घाति सविचूरियांजी, कीधो आत्म अमोह नाथ० १४ ॥
लोकालोकनी अस्तिताजि, सर्वत्र पर परजाय,
तिन कालना जाणियाजी, केवल ज्ञान पसाय नाथ० १५ ॥
प्रभु प्रभु करतां प्रभु थयाजी श्री गौतम गणराय
नतक्षितइंद्रादिक भणीजी, एह वधाई थाय नाथ० १६॥
संघ सकल हरखित थयोजी, जाणि गौतम ज्ञान,
कारण तूट पडि नहीजी, एह पुण्य अमान नाथ० १७ ॥
सुरपति नरपति जन सहुजी चौविह संघ महंत,
आव्या गौतम परकजेजी जय जय शब्द वदंत नाथ० १८॥
करि उत्तर पद थापियाजी जगगुरु पाटेत्यार,
इंद्रादिक वंदन करीजी, बेठा सभा मझार नाथ० १९ ॥
तिन भुवन हरखित थयाजी, वीर पटोधर देखी,
हरखें गुण गावे घणाजी, चौविह संघ विशेष नाथ० २०॥

वीर प्रभु-पाटे थयाजी, गौतम ज्ञान निधान,
देवचंद्र वंदे सदाजी, समता अमृत खान नाथ० २१ ॥

॥ दोहा ॥

श्री गौतम गुरु देशना, सांभली उठ्या सर्व,
सुरवर सहु नंदीश्वरे पोहत्या भगति अखर्व ॥ १ ॥
बार वरस केवलिपणे, विचर्या गौतम स्वामी,
आठ वरस केवलिनिधि, श्री सुधर्म अभिरामी ॥ २ ॥
वरस चौमालीस केवली, श्री जंबुसुखकार,
त्यार पछी श्रुत ज्ञान बल, चाले सासन सार ॥ ३ ॥
एकवीस सहस वरस लगे, रहस्ये वीरवचन;
तसु आलंबन जे रमे, तेहीज जीव सुधन्न ॥ ४ ॥

॥ ढाल ॥

धन्य धन्य सासन श्री जिनवरनो, जिहां वर वाचक वंस रे,
दूसम काले जास प्रसादे लहिइं धर्म परसंस रे धन्य० ॥ १ ॥
आर्य प्रभ सीजंभवसूरि, सूरि यशोभद्र स्वामी रे,
श्री संभूति विजय सुतसागर, भद्रबाहु वर नाम रे धन्य० ॥ २ ॥
दश निर्युक्ति छेद वर आगम, उधर्या वस्तु स्वरूप रे,
संपूरण द्वादस आगम धर, ज्ञानक्रिया विधि रूप रे धन्य० ॥ ३ ॥
थूलभद्र कोश्या प्रतिबोधी, महागीरि सूरिसुहस्ति रे,
वयरस्वामी जे पूरव दशधर युग प्रधान सु प्रशस्त रे धन्य० ॥ ४ ॥
भाष्योद्धार कारक उपगारी श्री जिनभद्र मुनिंद रे,
चूरणी करता श्रुत उद्धरता श्री देवर्द्धि मुणिंद रे धन० ॥ ५ ॥
पुस्तकारूढ कर्या जिन आगम, राख्यो सासन छंद रे,
टीकाकार श्री सिलांग सूरिवर, श्री अभयदेव मुणिंद रे धन० ॥ ६ ॥

श्री हरिभद्र मलयगिरि पंडित हेमसूरी मल्हार रे,
धंद्रमहत्तरसूरि जिनेश्वर जिन वल्लभ सुखकार रे धन० ॥ ७ ॥
श्री देवेंद्र हेम आचारिज कुमारपालज सुभक्ति रे,
श्री सोमेंद्र प्रमुख श्रुतरसिया दूषम काले व्यक्त रे धन० ॥ ८ ॥
दूपसहसूरि छेल्ला गणधर आगधक जिन आण रे,
चोविस सेर सूत्रधरणाधर, पंचांगी परमाण रे धन० ॥ ९ ॥
द्रव्यकुक नव तत्वनी श्रद्धा, ज्ञानक्रिया सिरगार रे,
उत्सर्गने अपवाद साधना, निश्चयनयव्यवहार रे. धन० ॥१०॥
निमित्त वली उपादान ने कारण, योग साधन तीन प्रकार रे,
स्वराति विकल्प तथा परगति, शुचिकरना भव निस्तार रे. धन०११॥
पुष्ट निमित्त सेवननी आनन, परगति थाई शुद्ध रे,
तत्त्वालंबि तत्त्व प्रगटना, मांचे पूर्ण समृद्ध रे. धन० ॥१२॥
देवचंद्र श्रीवीर चरणयुग, सेवो भक्ति अखंड रे,
सासन रंगी आणा रंगी, ते थाइ गतदंड रे. धन० ॥१३॥

॥ ढाल ॥ कुमत इम सकल दूरे करि ॥ ए देशी ॥

भगति इम चित्त लावो धरी थाइ सासन रीत रे,
वारीइं दुष्ट दुरवासना धरीइं भवननी मिती रे. भग० १॥
वीर जिनराज सम प्रभु टरि गहगहि बुद्धि गुणधाम रे,
कोण पर देखने आदरे, कल्पतरु सम प्रभु पामि रे. भग० २॥
एक आधार छे ताहरो माहरे दिनदयाल रे,
तार कीजे हवे दासनि नाथ जगजीव मतिपाल रे. भग० ॥३॥
विनती दासनी धारीइं तारिइं कर उपगार रे,
दोष अनादि निवारीइं अनी इम अनुभव सार रे. भग०॥४॥

मोह जंजाल वशे जीवडा रडवडे पुद्गल राग रे,
तेहने शुद्ध रतनत्रयि दाखवि ते महाभाग रे. भग० ॥५॥
एक आलंबन स्वामीनो दासना चित्तने नाह रे,
असरण सरण भवअडविनो तूंहि परम सत्थवाह रे. भग० ॥६॥
तुंज गुण रागभर हृदयमें किम वसे दुष्ट कषाय रे,
निरमल तत्त्वना ध्यानथी ध्याय निरमल थाय रे. भग० ॥७॥
ध्येयनी शुद्धता रसथकि विद्धअय कंचन थाय रे,
तिम अमोहिरसि चेतना पूर्ण आनंद उपाय रे. भग० ॥८॥
माहरी परणति दोषनी तीव्रता वारणहार रे,
ताहरा सासन श्रुततणो राग छे एक आधार रे. भग० ॥९॥
खिण खिण नाम तुमचो, जपुं तुंज गुण स्तवन उल्लास रे,
चींतवि रूप प्रभूजी तणो, किजीये आत्म प्रकाश रे. भग० ॥१०॥
वलि वलि विनवुं सामीजि निरपत्ये तुंहिज देव रे,
शुद्ध आशयपणे मुज होज्यो भवभव ताहारी सेव रे. भग० ११॥
वीर आणा अविहडपणे आदरु साधन एह रे,
ताहारि साखथी सत्य छे, सीझस्ये माहरे तेह रे. भग० १२॥
भद्रकभावरागीपणे, विनती एम कराय रे,
देवचंद्र पद निपजे नाथजी भगति सुपसाय रे. भग० १३॥

॥ ढाल ॥ राग धन्याश्री ॥

गावो गावो रे जिनराजतणा गुण गावो,
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरणनी निर्मल थिरता पावो रे; जि० टेक॥
पंचकल्याणक स्तवना स्तवतां आतम तत्त्व नीपावो,
मोह महारिपु दोष अनादि खीणमें तेह गमावो रे; जि०॥१॥

आतम तत्त्व ध्यान एकता, साचो शिवसुख दावो,
ईश्वर भक्ति तेहनो कारण, आगममांहि कहावो रे; जि० ॥२॥
प्रभु गुण ध्यान स्वजाति रमणे, निर्मल परणति थावो रे,
तेहथी सिद्धतणे प्रभु सेवन, आतमशक्ति वधावो रे; जि०॥३॥
सुविहित खरतरगछ परंपर राजसार उवझायो,
तास शिष्य पाठक सम दमधर ज्ञानधरम सुखदायो रे; जि०॥४॥
दीपचंद पाठक उपगारी शासन राग सवायो,
तास शिष्य सुचि भक्ति, प्रसंगे देवचंद्र जिन गायो रे; जि०॥५॥
भावनगर श्रीऋषभप्रसादे दीवाळि दिन ध्यायो,
संघ सकल श्रुत शासन रागी परम प्रमोद उपायो रे; जि०॥६॥
शासन नायक वीर जिनेसर गुण गातां जयमालो,
देवचंद्र प्रभु सेवन करतां मंगलमाल विसालो रे. जिन० ॥७॥

इतिश्री वीरजिनवर निर्वाण समाप्तम् ॥
श्रीशुभंभवतुं ॥ श्रीकल्याणमस्तु ॥

आवती चोवीशीना प्रथम जिनेश्वर पद्मनाभ स्वामीनुं स्तवन ॥

॥ पंथडो नीहाळुं रे ॥ ए देशी ॥

वाटडी वीलोकुरे भावी जिन तणी रे, पद्मनाभ जसु नाम;
दूसम दोषारे भरत कृपाकरुरं, उपशम अमृत धाम ॥ वाटडी० १॥
वीर निमित्ते श्रेणीकने भवेरे, तुमे बांध्युं जिन नाम;
कल्याणक अतिशय उपगारतारे, वीर समान समाव ॥ वाटडी० २॥
सुदि असाढे छठीने दिनेरे, उपजशो जगनाथ;
चैत्र धवल तेरस प्रभु जनमशोरे, थाशे मेरु सनाथ ॥वाटडी० ३॥
मागसीर वदी दसमी दीक्षा ग्रहीरे, वरशो चरण उदार;
सुदी वैशाखे दसमे केवली रे, चौविह संघ आधार ॥वाटडी० ४॥
समवसरण सीहासन बेसिनेरे, प्रभु करशो व्याख्यान;
आतम धर्म सुणी ते अवसरेरे, धरतो प्रभु गुण ध्यान
वाटडी० ॥ ५ ॥
संमुख त्रिपदी पामी गणधरारे रचशे द्वादश अंग;
ते वेला [illegible] प्रभु घणो रहुंरे, जिनधरमे दढरंग ॥ वाटडी० ६ ॥
दीवाळी दिन शिवपद पामशोरे, शुद्धातम मकरंद;
देवचंद्र साहेबनी सेवनारे, करतां परमानंद ॥ वाटडी० ७ ॥

॥ श्री सीमंधरस्वामी विनतिरूप स्तवन ॥

प्रभुनाथ तुं तिहूंलोकनो, प्रत्यक्ष त्रिभुवन भाण;
सर्वज्ञ सर्वदर्शी तुमे शुद्ध सुखनी खाण ॥ १ ॥

जिनजी वीनती छे एह (ए टेक)

प्रभु जीव जीवन भव्यना, प्रभु मुज जीवन प्राण;
ताहरे दर्शने सुख लहुं, तुंहीज गति स्थिति जांण जि० ॥ २ ॥

तुज विना हुं चिहुं गति भम्यो, धर्या वेश अनेक;
निजभावने परभावनो, जाण्यो नहीं सुविवेक जि० ॥ ३ ॥

धन्य तेह जे नित्तु प्रहसमें, देखे श्रीजिनमुख चंद;
तुज वानी अमृतरस लही, पामे ते परमानंद जि० ॥ ४ ॥

एक वचन श्री जिनराजनो, नय गम भंग प्रमाण;
जे सुंणे रुचिथी ते लहे, निज तत्त्व सिद्धि अमान. जि० ॥५॥

जे क्षेत्र विचरे नाथजी, ते [illegible] अति सुपसत्थः
तुज विरह जे क्षण जाय छे, ते मानिये अकयत्थ. जि० ॥६॥

श्री वीतराग दर्शन विना, वीत्यो जे काल अतीत;
ते अफल मिच्छादुक्कडं, तिविहं तिविहनी रीत. जि० ॥ ७ ॥

प्रभु वात मुज मननी सहु, जाणोज छो जगनाथ;
थिरभाव जो तुमथी लहुं तो मिले शिवपुर साथ. जि० ॥ ८ ॥

प्रभु मिले हुं थिरता लहुं, प्रभु विरहे चंचल भाव;
एकवार जो तन्मय रमुं तो, करुं अचल स्वभाव. जि० ॥ ९ ॥

प्रभु जडो क्षेत्र विदेहमां, हुं रहुं भरत मझार;
पन प्रभुना गुण चिते, राखुं स्वचेतन सार. जि० ॥ १० ॥

आणंद रक्षित भावनाए भावतां सिवपुर पत्त ॥ से० ॥
कालासी इगसहसथीए, मुनी सुभद्र सय सत्त ॥ से० ॥११॥
रामचंद्र पण कोडयीए, नारदमुनि पिसताल ॥ से० ॥
पांडव कोडि वीसथीए, सिव पोंग्या समकाल ॥ से० ॥१२॥
संब प्रद्युम्न मुनिश्वरुए, मुनि साडीत्रिण कोड ॥ से० ॥
विमलाचलें निर्मल थया ए, ते प्रणमुं बे करजोड ॥ से० ॥१३॥
थावच्चा सुत सूकमुनिए, सेलंग पंथक सिद्ध ॥ से० ॥
वसुदेव घरणी सिव लह्य रे, सहस पैत्रीस प्रबुद्ध ॥ से० ॥१४॥
वैदरतिनिकरमताए सामी सल चोफाल ॥ से० ॥
श्री वससार आनंतताए, पामी गुण संभाल ॥ से० ॥१५॥
सिध्या बहु मुनि इण गिरिवरेंए, यादव वंश अनेक॥ से० ॥
श्रेणिक कुल साधु साधवीए, सिद्ध लह्या थिर टेक॥ से० ॥१६॥
विद्याधर भूचर घणाए, इहां पाम्या गुण कोडि ॥ से० ॥
आतम हेते एहनीए, को न करी शकें होडि ॥ से० ॥१७॥
तिवारें तीरथपतीए, ए तीरथ बहुवार ॥ से० ॥
आव्या भविजन तारवाए, निरमम निरहंकार ॥ से० ॥१८॥
पुंडरगिरिनी सेवनाए, जेह करे भवी जीव ॥ से० ॥
ते आतम निरमल करीए, पामे सुख सदीव ॥ से० ॥१९॥
ए गिरिराजने सेवनांए, पामे देवचंद्र पदसार ॥ से० ॥
भव भव ए तीर्थ सेवनाए, होज्यो परम आधार. ॥ से० ॥२०॥

॥ कलस ॥

इम सकल तीरथ नाथ सेत्रुंज शिखर मंडण जिनवरो
श्री नाभिनंदन जग आनंदन विमल शिव सुख आगरो

आणंद रक्षित भाणाण, भावतां सिवपुर पत ॥ से० ॥
कालगी इगराहमयीए, मुनी सुभद्र सय सत ॥ से० ॥११॥
रामचंद्र पण कोडयीए, नारदमुनि पिसनाल ॥ से० ॥
पांडव कोडि वीसयीए, सिव पोहच्या सगकाल ॥ से० ॥१२॥
सांब प्रद्युम्न मुनिश्वरुए, मुनि साडी त्रिण कोड ॥ से० ॥
विमलाचले निर्मल थया ए, ते प्रणमुं बे करजोड ॥ से० ॥१३॥
थावचा सुत सुकमुनिए, सेलंग पंचक सिद्ध ॥ से० ॥
वसुदेव घरणी सिव लहु रे, सहस पत्रीस प्रबुद्ध ॥ से० ॥१४॥
चैद्गतिनिवारणनाए, सामी सत्व बोधाल ॥ से० ॥
श्री वगगार आनननाए, नामी गुण संभाल ॥ से० ॥१५॥
सिध्या बहु मुनि इण गिरिराए, यादव वंश अनेक ॥ से० ॥
श्रेणिक [illegible] [illegible], सिद्ध [illegible] ॥ से० ॥१६॥
[illegible] [illegible], इहां पाम्या गुण कोडि ॥ से० ॥
आगम [illegible] [illegible], को न [illegible] होडि ॥ से० ॥१७॥
[illegible] [illegible], [illegible] [illegible] ॥ से० ॥
आग्या [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] ॥ से० ॥१८॥
[illegible] [illegible], [illegible] ॥ से० ॥
[illegible] [illegible], [illegible] ॥ से० ॥१९॥
[illegible] [illegible], [illegible] ॥ से० ॥
[illegible] [illegible], [illegible] ॥ से० ॥२०॥

॥ [illegible] ॥

[illegible]
[illegible]

सुविपूर्ण चिद्घन ज्ञानदर्शन, सिद्ध उद्योत सुभ मनें
निज आत्मसत्ता शुद्ध करवा वीरजिन केवल दिनें
श्री सुविहित खरतर गच्छ जिनचंद्र सुरि साखा गुणनीलो
उवझायवर श्री राजसार, सीस पाटक सिर टीलो

श्री ज्ञानधर्मसूम पाटक देवचंद्र वीनव्यो जगहितकरो
इति चैत्यपरवाडी सिद्धखेत्रनी संपूर्ण ॥

॥ श्री सिद्धाचल स्तवन ॥

धन धन मुनिवर जे संजमवर्याजी परिहर्या पाप अढारे
समता आदरी मुनि ममता तजीजी सम्यक् क्षमा दया भंडारे.
धन धन० ॥ १ ॥

रुषभ वंश द्रवड नृप पुत्र येजी द्रविड अने वीजो वारिखिल्लरे
भूमि निमित्ते रणरसीया थकाजी तापस संयोगे काढ्यो सल्ल रे.
॥ धन० ॥ २ ॥

संजम लीधो भट दसकोडिसीजी पुहुता सिद्धाचल गिरिशृंग रे
अणसण करि निज तत्वे परिणम्याजी त्रिविध त्रिविध
वोसिरावी संगरे ॥ धन० ॥ ३ ॥

रत्नत्रयी रमी आत्म संवरीजी ओटखी छंड्यो सर्व विभावरे
भत्याहार करि धर्म धारणाजी वट्या निर्मल ध्यान स्वभावरे
॥ धन ॥ ४ ॥

मैत्रिभाव भजी सवि जीवर्याजी, करुणाभाव दुःखर्या तेमरे
पंच गुणीनी नित्य प्रमोदताजी, शुभ अशुभ विपाके मध्या प्रेमरे
॥ धन० ॥ ५ ॥

पिंडस्थे अरिहंतादिक तणीजी, मुद्रा आसन शुभआकार रे
ध्याता अतिशय उपगारीपणुंजी ध्यानपदस्थ थयो सुविचार रे
॥ धन० ॥ ६ ॥

निर्मल सिद्ध स्वभावे तन्मयीजी, ज्ञानादिक गुणथी थिर भावरे;
सिद्ध शुद्ध गुणीगुण गायनाजी, अविलंब्यो रूपस्थ स्वभावरे
॥ धन० ॥ ७ ॥

सत्तागत आतमगुण पेखनाजी, ध्याता निज गुण पर्यायरे;
भेद स्वभावे थइ अभेदनाजी, तन्मय तत्ने मोहविलायरे ॥
धन० ॥ ८ ॥

मोह क्षय थये घातिदलक्षय गयाजी, पाम्या निर्मल केवल ज्ञानरे;
सिद्ध थया दसकोडि मुनिमलजी, कार्तिक शुदि पुनम दिन
मानरे ॥ धन० ॥ ९ ॥

कार्तिक शुदि पुनिम जे सिद्धाचलेजी, वंदे पुजे धन नर तेहरे;
उत्तम गति पामी शिव सुख लहेजी, थाये ते अनुपम गुण
गेहरे ॥ धन० ॥ १० ॥

सिद्धाचल सिध्या मुनिगणनेजी, गायो थयो धरि आनंदरे;
सद्गुरु पाठक श्री दीपचंदनोजी, शिष्य गणि भांगे देवचंदरे ॥
धन० ॥ ११ ॥

श्री सिद्धाचल स्तवन.

भाव्यो शांति जिन वंदन जइए, श्री [illegible] अंगे;
अनंत सिद्धि ध्यान सिद्धाचल, पामी जे मन रंगेरे ॥भाव्यो॥१॥
गुरुआणाए मंत्रे सुविदित, दीठे पापविदारीरे;
पुरव आहारे मुनि मंडल, [illegible] कथित परिहारीरे ॥भाव्यो॥२॥
[illegible] अतिशय [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] भक्ति अधिकारीरे;
[illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] ॥भाव्यो॥३॥

जिहां मुनि कोडि शिवगेह पहोता, निज अनुभव लसलसतीरे;
विषय दोप उपसम तरसि, रत्नत्रमीमें रमतीरे ॥चालो॥४॥
रुषभादिक जिन फरसित अंगे, फरस्या पाप पुलाइरे;
शुद्ध गुण स्मरण गुण प्रगटे, ध्यान लहर लीलाइरे ॥चालो॥५॥
अतीत अनागतने वर्त्तमाने, ए तीर्थ शिर टिकोरे;
श्री शेत्रुंजा भक्ते पाने, देवचंद्र पदनिकोरे ॥ चालो ॥ ६ ॥

श्री सिद्धाचल स्तवन.

चालो चालोने राज श्री सिद्धाचल जइए;
श्री विमलाचल तीरथ फरसि, आतम पावन करिए ॥चालो॥१॥
इण गिरिवर मुनिवर कोडि, आतम तत्त्व निपायो;
पूर्णानंद सहज अनुभव रस, महानंद पद पायो ॥चालो॥२॥
पुंडरिकप्रमुहा मुनिवर कोडि, सकल विभाव गमायो;
भेदानंद तत्त्व परिणतिथी, ध्यान अभेद उपायो ॥चालो॥३॥
जिनवर गणधर मुनिवर कोडि, ए तीरथ रंगराता;
शुद्ध शक्ति व्यक्ते गुणसिद्धि, त्रिभुवन जिनना माता ॥चालो॥४॥
ए तीरथ फरसे भव्य परीक्षा, दुरगति उछेद;
सम्यग् द[illegible]न निर्मल कारण, निज आनंद अभेद ॥चालो॥५॥
संवत अढार चोडोत्तर वरसे, सित मृगसर तेरसीये;
श्री सुरतथी भक्ति हरखथी, संघ सहित उल्लसीये ॥चालो॥६॥
कचरा कीका जिनवर भक्ति, रुपचंद (गुणवंत) जीहए;
श्री संघने प्रभुजी भेटाव्या, जगपति प्रथम जिणंद ॥चालो॥७॥
ज्ञानानंदीत त्रिभुवन वंदीत, परमेश्वर गुण भीना;
देवचंद्र पद पामे अदभुत, परम मंगल लयलीना ॥चालो॥८॥

॥ श्री वीरप्रभुनुं दीवालीनुं स्तवन ॥

मारग देशक मोक्षनोरे, केवलज्ञान निधान ॥
भावदया सागर प्रभुरे, पर उपगारी प्रधानोरे ॥ १ ॥
वीर प्रभु सिद्ध थया, संघ सकल आधारो रे ॥
हवे इण भरतमां, कोण करशे उपगारो रे ॥ वीर० ॥२॥
नाथ विहूणुं सैन्यज्यूं रे, वीर विहूणोरे संघ ॥
साधे कोण आधारथीरे, परमानंद अभंगो रे ॥ वी० ॥३॥
मात विहूणो बाल ज्युंरे, अरहो परहो अथडाय ॥
वीर विहूणा जीवडारे, आकुल व्याकुल थाय रे ॥ वी० ॥४॥
संशय छेदक वीरनोरे, विरह ते केम खमाय ॥
जे दीठे सुख उपजेरे, ते विण केम रहेवाय रे ॥ वी० ॥५॥
निर्यामक भव समुद्रनोरे, भव अडवी सत्थवाह ॥
ते परमेश्वर विण मलेरे, केम वाधे उत्साह रे ॥ वी० ॥६॥
वीर थकां पण श्रुततणोरे, हतो परम आधार ॥
हवे इहां श्रुत आधार छेरे, अहो जिन मुद्रा साररे ॥ वी० ॥७॥
त्रण काले सवि जीवनेरे, आगमथी आणंद ॥
सेवो ध्यावो भवि जनारे, जिन पडिमा सुख कंदरे ॥ वी० ॥८॥
गणधर आचारज मुनिरे, सहुने एणि परे सिद्धि ॥
भव भव आगम संगथीरे, देवचंद्र पद लीधरे ॥ वी० ॥९॥

॥ श्री नवानगर आदिजीन स्तवन ॥

नवानगरमे भेटीए जिनवर उपकारी,
परमानंद महात्मी मूर्ति मनोहारी. नवा० ॥ १ ॥
घणा दीवसनी हुंसडी हती मनमांहे,
ते सवि आज सफल थइ प्रभुने जगनाहे. नवा० ॥२॥
दरिसण दीठे देवनां दुःख जाए दूरे,
चिदानंद रस उपजे समता रस पूरे, नवा० ॥ ३ ॥
जिन मुद्रा जिनवर सभी दिए साधन भांखी,
श्री अरिहंत आलंबने पूरणता दाखी. नवा० ॥ ४ ॥
फल संवर जिन भक्तिनो फल सरखो तोल्यो,
हितसुख निःश्रेयसणो आगममें बोल्यो. नवा० ॥ ५ ॥
तुंगीया नगरीना श्रावके जिन पूजा कीधी,
भगवइमें शंख पुष्कली पूजन विध दीधी. ॥ ६ ॥
रीखभदत्त अभिगम उवाइ उवंगे,
विहरती जिन पुष्प पूजना अभिगम प्रसंगे. नवा० ॥७॥
भगवइ अंगे साधुजी जिन प्रतिमा वंदे,
आवश्यकमां पूजना अनुमोदे आणंदे. नवा० ॥ ८ ॥
भव परमा कूपने नर देव [illegible],
महा नीसिने पूजनां फल [illegible] [illegible]. नवा० ॥९॥
भगवइ अनुयोगद्वारमें निक्षेपा भाख्या,
ते में पूजा [illegible] [illegible] [illegible]. नवा० ॥१०॥
[illegible] [illegible] जिन [illegible] [illegible],
[illegible] [illegible] महिमा [illegible]. नवा० ॥ ११ ॥

आवश्यक पंचांगनुं पुस्तक थयुं पहेलुं,
जे अधिकार तिहां लख्युं विधिपूर्वक वहेलुं. नवा०॥१२॥
अन्य सूत्र लखतां थकां न लख्युं ते निमते;
ते माटे शंका करी जिन पूजा भगते. नवा० ॥१३॥
पुस्तकारुढ जीणे कर्युं नथु वचन कल्लोल;
पूर्णिमे पूजा वही शी शंका भाळी. नवा० ॥ १४ ॥
आगम अरथ लह्या विना आगम उत्थापे;
ते तप खप करता थको नवी भव भय कापे. नवा०॥१५॥
विनय वेयावच्च दानमें हिंसा नवि लेखे,
अळति हिंसा दाखवी कां पूजा उवेखे. नवा० ॥१६॥
नाम निक्षेपो उचरी नमतां आणंदे,
नाम थापना द्रुग भणी शे माटे न वंदे. नवा० ॥१७॥
एम आलोची चित्तमां जिन प्रतिमा वंदो,
जिन शासन उद्दिपणां करना आणंदो. नवा० ॥ १८ ॥
शेठ विहार सुहामणो आदिगर स्वामी,
वंदो पूजा भविजनां पूरण सुख कामी. नवा० ॥१९॥

कलश.

एम मोक्ष कारण त्रिजग तारण तरण तारण गुणकरी
जिनराज पडिमा नमन पूजा सूत्र भाखे आदरी
शुचि ध्यान धारे सिद्ध पावे कर्म क्लेश सहु हरी
श्री दीपचंद्र पसाय भांखो देवचंद्र हिते धरी

आतमभावे रमो हो चेतन आतमभावे रमो ए आंकणी
परभावे रमतां ते चेतन, काल अनंत गमो. हो चे०॥१
रागादिकशुं मलीने चेतन, पुद्गल संग भम्यो,
चोगति मांहे गमन करता, निज आतम न दमो. हो०॥२
ज्ञानादिक गुण रंग धरीने, कर्मशुं संग वमो,
आतम अनुभव ध्यान धरंतां, शीव रमणीशुं रमो. हो०॥३
परमातमनुं ध्यान करतां, भवथितीमां न भमो,
देवचंद्र परमातम साहिब, स्वामी करीने नमो. हो० ॥४

इति द्रुपद संपूर्ण.

॥ समवसरणनुं स्तवन ॥



आज गइथी हुं समवसरणमां जिन वचनामृत पीवारे,
श्री परमेश्वर वदनकमल छबी निरख निरख हरखेवारे. आ० १
त्रिभुवन नायक शुद्धातम तत्वामृत मुद्दरे,
सकल भविक वसुधानी लानी, मारुं मन दिध तुद्दरे. आ० २
मनमोहन जिनवरजी मुजने, अनुभव पियालो दीधोरे,
पूर्णानंद अक्षय अविचलरस, भक्ति पवित्र थइ पीधोरे. आ० ३
ज्ञानसुधा लालीनी लहेरे, अनादि विभाव विसार्योरे,
सम्यग्ज्ञान सहज अनुभवरस शुचि निज बोध समार्योरे. आ० ४
भोली सखीयो एम शुं जोवो, मोह मगन मत राचोरे,
देवचंद्र प्रभुशुं एकताने, मिलवो ते सुख साचोरे. आ० ५

॥ कुंभ स्थापना स्तवन ॥

धर्म उत्तमसमे जैनपद कारणे उत्तम मंगल आचरे ए,
भावमंगल तिहां देव अरिहंत प्रभु एहथी परम मंगल मंगल वरे ए;
तेहना नामने जाउं हुं भामणे, खिणखिण हरख समरण करे ए,
पांच कल्याणके जीम सुरपति करे, तिम जिन भक्ति भवि आदरे ए.१॥
भावमंगलतणि पुष्टता कारणें, द्रव्यमंगल भला कीजीए ए,
तिहां गुणे पूर्णता इच्छना भविकजन, कुंभ थिरपूरण लीजीए ए;
पदमआसन ठव्यो परम छत्रे ठव्यो, मंत्र पवित्रथी जपीए ए,
जिनवर जिनमणि दीशि हरखभरी, हियडे पूरण कलशजयी पीवे ए.२॥
माहरा नाथने परम मंगल होजो, मंगल संघ चउविह भणे ए,
मंगल तीर्थने मंगल चैत्यने, मंगलनेह करना भणीए;
जैनशासनतणो हरख मंगल करें, तेन आनंद अति उपजे ए,
च्यवन अवसर समे माताना गर्भमें, पूरे हरखजे संपजे ए. ३॥
तिम प्रासादनी थापना अवसरे कुंभ थापन समें हरखीयें ए,
जेम संसारना मंगल करे ए
तिम जिन धर्मनी वृद्धिने कारणे, श्रावक सुविधि मंगल धरे ए,
परम आनंदवर धन्यना मानना गीत मंगल धरी उचरे ए;
देवना देवने मंगल कीजना देवचंद्र पद अनुसरे ए.

अथ श्री सहस्रकूट (१०२४) जिनप्रतिमा स्तवन.

देशी रमीयानी.

सहस्रकूट जिन प्रतिमा वंदीये, मन धरी अधिक जगीस विवेकी;
सुंदर मूरति अति सोहामणी, एकसहसने चोवीस. वि० सह०
(ए टेक) १॥
अतीत अनागत ने वर्त्तमाननी, त्रण्य चोवीसी हो सार विवेकी;
बोतेर जिनवर एकएक क्षेत्रमें, प्रणमीजे वारंवार. वि० सह० २॥
पांच भरत वळी एरवत पांचमें, सरखी रीत समाज विवेकी;
दश क्षेत्रे थइ थाए सातसें, वीस अधिक जिनराज. वि० सह० ३॥
पंचविदेहे जिनवर सोठ सो (१६०) उत्कृष्ट एहीज टेव विवेकी;
जिन समान जिन प्रतिमा ओळखी, भक्ती कीजे हो सेव. वि०४॥
पंचकल्याणक जिन चोवीसना, वीसासो (१२०) तेहीज थाय विवेकी
ते कल्याणक विधिशुं साचवी, लाभ अनंत कहाय. वि० सह० ५॥
पंच विदेहे हो हमणां विहरता, वीसअछे अरिहंत विवेकी;
शाश्वताजिन ऋषभानन आदिदे, चार(४) अनादि अनंत. वि० ६॥
एकसहस चोवीस जिनवर तणी, प्रतिमा एकण ठाम विवेकी;
पूजा करतां जनम सफळ होवे, सीझे वंछीत काम. वि० ७॥
तीनकाल अढाइ द्वीपमां, केवलनाण पहाण विवेकी;
कल्याणक करी प्रभु इहां सामटां, लाभे गुणमणी खाण. वि० ८॥
सहसकूट सिद्धाचल उपरें, तीमहिज घरणी विहार विवेकी;
तेवी अद्भूत ए छे स्थापना, पाटण नगर मझार. वि० ९॥

१-७२०
२-१६०
३-१२०
४- २०
५- ४
१०२४

१ प.टणमां तांगडीयावाडामां सहस्रफणा पार्श्वनाथनी प्रमुख सात देहेरासरजी छे तेमां १ एक सहस्रकूट छे.

तीर्थ सकल वळी तीर्थंकर सहु, एणें पूजा ते पूजाय विवेकी;
एक जीह (जीव्हा)थी महिमा एहनो, किणभांतें कहेवाय. वि० १०॥
श्रीमाळी कुळदीपक जेतसी, शेठ सुगुणभंडार विवेकी;
तस सुत शेठ शिरोमणि तेजसी, पाटण नगरमें दातार. वि० ११॥
तेणें ए बिंब भराव्या भावशुं, सहस अधिका चोवीस विवेकी;
कीधी प्रतीष्टा पुनमगच्छवरु, भावप्रभसूरीस. वि० १२॥
सहस जिनेसर विधीशुं पूजमे, द्रव्यभाव शुचि होय विवेकी;
ए भव परभव परम सुखी होवे, लहस्यें नवनिधि मोय. वि० १३॥
जिनवर भक्ति करें मनरंगशुं, भविजननी ए छे रीत विवेकी;
दीपचंद्र सम श्री जिनराजजी, देवचंद्रनी ए प्रीत वि० ॥१४॥

इति सहस्रकूट स्तवन समाप्त ॥

॥ पद ॥ राग होरी ॥

अजितनाथ चरण तोरे ॥ आयो अ० ॥
तुं मनमोहन नाथ हमारो, त्रिभुवनजनकुं सुख प्यारो ॥
अरी अरी लाला वि० ॥
तृष्णा ताप निवारण वारो, वावना चंदनसें अति प्यारो ॥अ०॥१॥
माहा माहाग रत्तंग दरीगो, नग भेदनकुं वज्र अटारो ॥अ०॥
ग्रांगवरा पुरमां मनोहारो, प्रासाद बन्यो अतिसारो ॥ अ० ॥२॥
समता रस वरषिन घन धारो, समकित बीज ऊपावन क्यारो ॥अ०
देवचंद्र गुणि गुण संभारो, एही अशरण शरणता उदारो ॥अ०॥३॥

॥ श्री ज्ञान बहुमान नमस्कार ॥

सकल वस्तु प्रतिभासभानु निरमल सुख कारण,
सम्यग् दर्शन पुष्ट हेतु भवजल निधि तारण;
संयम तप आनंद कंद अज्ञान निवारण,
मार विकार प्रचार ताप नाशीन जिन टारण ॥ १ ॥

स्याद्वाद परिणाम धर्म परणति पडि बोहण,
साहु साहुणी संघ सर्व आराधन सोहण;
मोहतिमर विध्वंस सूर मिथ्यात्त्व पणासय,
आतम शक्ति अनंद शुद्ध प्रभुता परगासण ॥ २ ॥

मति श्रुति अवधि विशुद्ध नाण मणपज्जव केवल,
भेद पचास क्षायोपशमिक ओक क्षायिक निरमल;
दोय परोक्ष प्रथम तिहां हुग परतक्ष देशतः,
सकल प्रतक्ष प्रकाशभास ध्रुव केवल अपर मित ॥ ३ ॥

धर्म्म सकलनो मूल शुद्ध त्रिपदी जिन भाखी,
बाहिर अंग प्रधान ग्रंथ गणधर सुमकाशी;
श्री निर्युक्तिभाष्य पडिशाखा दीपें,
चूरण टीका पत्र पुष्प संशय तन जीपें. ॥ ४ ॥

पंचांगीसार बोध कह्यो जिन पंचम अंगे,
नंदी अनुयोग द्वार साख मानो मनरंगे;
वीर परंपर सीत अनुभव उपगारी,
अम्यासो आगम अगम निरुपम सुखकारी. ॥ ५ ॥

मोह पंकहर नीर सिद्धांत अगाधे,
देवचंद्र आणा सहित नय भंग अगाधे;
ए श्रुतज्ञान सोहामणो सकल मोक्ष सुखकंद,
भगतें सेवो भविकजन पामो परमानंद ॥ ६ ॥

॥ श्री सिद्धाचल स्तुति ॥



विमलाचलमंडण जीनवर आदि जीणंद,
निर्मय नीरमोही केवळ ज्ञान दिणंद;
जे पुरव नवाणुं वार धरी आणंद,
शेत्रुंज गिरिशीखरे समवसर्या सुखकंद ॥ १ ॥
इण चउवीसमां रुखभादिक जिनराय,
वली काल अतीते अनंत चउवीसी थाय;
ते सविइणगिरिवर आवी फरसी जाय,
इम भावी काले आवसे सवि मुनिराय. ॥ २ ॥
श्री रुषभ नागणधर पुंडरिक गुणवंत,
द्वादश अंगरचना कीधी जेण महंत;
सवि आगम मांहे शेत्रुंज महिम महंत,
भाविजिन गणधर सेवो करी थिर चित्त. ॥ ३ ॥
चक्केसरि गोमुह कपर्दि पमुह सुरसार,
जसु सेवा कारण थापि इंद्र उदार;
देवचंद्र गणिभावे भविजनने आधार,
सवी तिरथ मांहे सिद्धाचल शीरदार. ॥ ४ ॥

॥ वीस स्थानक स्तुति ॥

अरिहंत सिद्ध पवयण आचारज थविराण,
उपझाय साहु नाणदंसण विनयपहाण;
चारित्र ब्रह्म किरिया तप गोयम जिनमाण,
संजमनाणी श्रुत संघ सेवो वीसे ठाण ॥ १ ॥

उत्कृष्टे जिनवर एकसो सित्तेर धीर,
थडी काल्ज धन्ये जिनवर वीस गंभीर;
जिन थाय अनंत अतीत अनागत काल,
ए वीसे थानिक आराधी गुण माल. ॥ २ ॥

आवश्यक बेवेला जिन वंदन निशि काल,
थानक पद गणवो सहस दोय सुकुमाल;
काउस ग गुण स्तवना पूजा प्रभावनासार,
इम शासन वच्छल करतां भवनो पार. ॥ ३ ॥

समकीते अहोनिशि गुणरागी सुरसाथ,
जक्ख जक्खणी सुरपति वैयावच्च कर नाथ;
थानक तप विधिसुं ले सेवे मन रंग,
देवचंद्र आणाए शासनविकरे तसु चंग. ॥ ४ ॥

॥ गिरनार स्तुति ॥

यादव कुलमंडण नेमिनाथ जगनाथ,
त्रिभुवण जनमोहन शोभत शिवपुरसाथ;
गिरनार शिखर शिर दीक्षानाण निरवाण,
सोरिपुर नयरे चवण जनम सुखकार. ॥ १ ॥
इम भरते पंचे इरवते वलीसार,
चोवीसी जिननी थाये जन आधार;
तसु पंच कल्याणक वंदे पूजे जेह,
निरुपम सुख संपत्ति निश्चे पामे तेह. ॥ २ ॥
जीन मुख लही त्रीपदी गुंथ्या जेह,
दश अंग अग्यारह दृष्टिवाद गुण गेह;
त्रिणि काले जिनवर कल्याणक निश्चिनेह,
समकित थिरकारण सेवो भविये मनेह. ॥ ३ ॥
श्री नेमिजीपेसर शासन जिनपरन,
जिनवर कल्याणक आगधक भविचित;
देवचंद्रने शासन मानिधि कर निन मेत,
समरीजे अहनिशि सा अंबाद देव. ॥ ४ ॥

॥ वडी साधु वंदना ॥

ॐनमः अथ तेर ढालकी वडी साधु वंदना लिख्यते॥

॥ दोहा ॥

अरिहंत सिद्ध साधु नमो, नमतां कोड कल्याण;
साधुनणा गुण गाइशुं मनमें आणंद आण. ॥ १ ॥
गुण गाशुं गीरूआनणा मन मोटे मंडाण,
गीरूआ तणेजे गुण करे तिणे वंछित काज. ॥ २ ॥
दुर्लभ अढी द्वीपने अणगारा जगदीश;
भाव धरी वंदन करुं ऊठत मन अति टीन. ॥ ३ ॥
भावप्रधान कह्यो तिणे सबने भावज जाण;
ते भावे सबकुं नमुं अनंतो चोवीसी नाम. ॥ ४ ॥
उठ प्रभाते समने मझ साधु वंदना माग;
गुण गातो मोटाना पाप गेण मझ जाण. ॥ ५ ॥

॥ ढाल १ ली ॥ चोपाईनी चालमें ॥

पांच भरत पांच इरवत जाण, पांच महा विदेह वखाण;
तेह अनंत हुआ अरिहंत, कर जोडी नमुं ते संत. ॥१॥
सेहि दश विचरे जिनचंद, वेर विदेह महा सुखकंद;
कर जोडी नमुं तस पाय, उत्तम जिन स्तु टले अघ. ॥२॥
सिद्ध अनंता पहोंचे मेर, ते नमुं मन धरी उमेद;
आराधत नमुं गणधर, श्री उत्तम महा सुखकार. ॥३॥

साधु सदा प्रणमुं केवली, काल अनादि अनंते वली;
जेहि वडा विचरे गुणवंत साधु साधवी सहु भगवंत. ॥४॥
ते सहु प्रणमुं मन उल्लास, अरिहंत सिद्ध ने साधु प्रकाश;
साधु वंदना करुं हितकार, ते सांभलजो सहु नरनार. ॥५॥

॥ दोहा ॥

इणही जंबू द्वीपमे भरतज नामे क्षेत्र,
जिनवर वचन लही करी निर्मल कीधा नेत्र. ॥ १ ॥
तिहां चोवीसे जिण हुआं रीषभादीक महावीर,
पूर्व भाव करी प्रणमीये पांमीजे भवतीर. ॥ २ ॥
पूर्वभव चक्रवर्त्ति थया, रिषभदेव नरइंद,
अजितादिक तेवीस जिण, राजा सहु मंडलीक. ॥ ३ ॥
प्रन लेई पूर्व चवदे रीषभ, भण्या मनरंग,
पूर्वभव तेवीस जिण भण्या अग्यारे अंग. ॥ ४ ॥
वीस स्थानक तिहां सेवीया, बीजे भव सुखदाय,
तिहांथी चवी चोवीस जिण, ते हुआ प्रणमुं पाय. ॥ ५ ॥

॥ ढाल १ ली ॥ नमणी खमणी ॥ एहनी देशी ॥

श्री चक्रवर्ति पूर्वभव जाण, वैर नाम तिहां नाम वखाण;
ऋषभदेव प्रणमुं जग भाण, गुण गातां हुवे जन्म प्रमाण. ॥१॥
वीमलवाहन पूर्वभव नाम, अजित जिनेश्वर करुं प्रणाम;
विमलवाहन पूर्वभव सार, श्री संभव प्रणमुं धरी प्यार. ॥२॥
पूर्वभव धर्मसी राजान, अभिनंदन प्रणमुं शुभ ध्यान;
पूर्वभव थया सुमति प्रसिद्ध, सुमति जिनेश्वर प्रणमुं सिद्ध. ॥३॥
पूर्वभव राजा धर्ममित्र, पद्मप्रभुजीने वांदु नित्य;
पूर्वभव श्री सुंदरबाहु, तेह सुपास प्रणमुं उछाहु. ॥४॥

पूर्वभव इगवाहु मुनिस, चंदाप्रभु प्रणमुं निसदीस;
जगबाहु पूर्वभव जीव, प्रणमुं सुवद जिणंद सदीव. ॥५॥
सटबाहु पूर्वभव जास, श्री शीतल प्रणमुं उल्लास;
दीनराई कुलतिलक समान, प्रणमुं श्री श्रेयांस प्रधान. ॥६॥
इंद्रदत्त मुनिवर गुणवंत, वासुपूज्य वांदू भगवंत;
पूर्वभव सुंदर बडभाग, वांदू विमल धरी मन राग. ॥७॥
पूर्वभव जे राय महिरथ, तेह अनंतजिन प्रणमुं सुखकर;
साधु शीरोमण सिंहरथराय, धर्मनाथ वांदू चित लाय. ॥८॥
पूर्वभव मेघरथ गुणगाउं, शांतिनाथ जिनवर चित लाउं;
पूर्वभव रुपीमुनि वदीये, कुंथुनाथ प्रणम्यां सुख लहीये. ॥९॥
रायसुदर्शन मुनि विख्यात, वांदु अर्जुन त्रिभुवन तात;
पूर्वभव नंदनमुनिचंद, ते प्रणमुं श्री मल्लिजिणंद. ॥१०॥
सिंहगिरी पूर्वभव सार, मुनि सुव्रतजिण जगदाधार;
अदीन सत्रु मुनिवर शिर नाय, करजोडी प्रणमुं नमिनाथ. ॥११
संखनरेसर साधु सुजाण, रहनेमि प्रणमुं गुणखाण;
राय सुदर्शन तेह मुनिस, पार्श्वनाथ प्रणमुं निसदीस. ॥१२॥
छठे भव पोटिल मुनि जान, कोडी वरस चारित्र प्रमाण;
चोथे भव नंदन गजान, कर जोडी प्रणमुं वर्द्धमान. ॥१३॥
चोवीसे जिनवर भगवंत, ज्ञानदर्शन चारित्र अनंत;
वारंवार करुं परणाम, अष्टकर्म क्षय करवा काम. ॥१४॥

॥ दोहा ॥

मेरु थकी उत्तर दिसे, पूर्व जंबु द्वीप,
इरवेरव सोहामणो, जिनविध चोवीं दीप. ॥ १ ॥
जिहां चोवीसे जिन हुवा, चंद्रानन वारिषेण,
एही चोवीसीमें सही ते प्रणमुं सम्मेण. ॥ २ ॥

॥ ढाल ३ जी ॥ राग वेलावली ॥ ए देशी ॥

चंद्रानंन जिण प्रथम जिणेसरुं, दुजा श्री सुचंद भगवंतके;
अगीयसेण तीजा तीर्थंकर, चोथा श्री अश्रीनंदिषेण अरिहंतके;
त्रिकरण सुद्ध सदा जिण प्रणमुं. ॥ १ ॥
ईरवखेत्र तणारे चोवीस के, ऋषभादिक स्वामी अनुक्रम हुवा;
एकसमे जिन हुवा जगदीसके. त्रि० ॥ २ ॥
पांचमा निसीदिन थुणीजे, बलिहारी छठा जिणरायके;
सोमचंद सातमा जिन समरु, युतिसेण आठमा सुखसायके. ॥३॥
नवमे अजीयसेण जिन प्रणमुं, दसमा श्री सीवसेण उदारके;
देवसभा इग्यारमा ध्याउं, बारमा निषन सहित सुखकारके. त्रि०॥४
तेरमा असंजल जिणनारके, चौदमा श्री जिणनाथ अनंतके;
पंनरमा उपसांत नमिजे, सोलमा श्री गुमसेण महंतके. त्रि० ॥५
सत्तरमा अतिपास सुणीजे, प्रणमुं अठारमा श्री सुपासके;
उगणीसमा मरुदेव मनोहर, वीसमा श्रीधर प्रणमुं हुंल्लासके.त्रि०॥६॥
इकवीसमा समकोठ सुहंकर, बावीसमा प्रणमुं अगीसेणके;
तेवीसमा अगीपुत्र अनोपम, चोवीसमा प्रणमुं वारीखेणके. त्रि०॥७
चोथे अंग थकी ए भाख्या, अडतालीस जिणेसर नामके;
छठे अंग कह्या मुनि सुव्रत सुखविपाक जगबाहु स्वामके. त्रि०॥८
जिण पचास ए प्रवचन वचने, एम हुवा अनंत अरिहंतके;
विहरमान वलि जिनवर विचरे, केवली साधु सहु भगवंतके.त्रि०॥९
सिद्ध थया वली संप्रति विचरे, करजोडी प्रणमु तसुपायके;
हवे जे आगम नाम सुणीजे, ते मुनिवर कहिस्युं चितलायके.त्रि०॥१०
प्रथमज जिनवर गणधर समणि, चक्रवर्ति हलधर वली तेहके;
पूर्वभव तसु नाम जगगुरु गायस्युं, चोथा अंग थकी तेहके. त्रि०॥११

चोवीस जिन तीर्थ अंतर, कोड अनंत हुवा मुनि सिद्धके;
कर जोडी प्रणमुं प्रातसम, नाम कहुं हवे जे परसिद्धके. वं०॥१२

॥ ढाल ४ थी ॥ राग धन्याश्रीनी देशी ॥

प्रहसम प्रणमुं ऋषभ जिनेसरुं, श्रीमरुदेवा सिद्धसोहंकरुं,
चौरासी गणधार शीरोमणी, ऋषभसेन मुनिवर प्रणमु सुखमणी.॥१
उलाली ॥

सुखमनी प्रणमु बाहुबलमुनी सहस चौरासि मुनि,
वीस सहस प्रणमु केवली वली सिद्ध थया त्रिभुवन धणी;
तीन लाख समणीश्वर नमु नित नाम ब्राह्मीसुंदरी,
सहस चालीस केवली वली नमु श्रमण चित्त धरी. ॥१॥

ढाल ॥
आरिसेघरभरतनरेसरु, ध्यान वलेकर केवल दहिवरु;
सहसदसे संघाते नरपती, विचरे जगमे प्रणमुं शुभमति.
उलाली ॥

शुभमति जंबुद्वीपे पन्नती वखाणीये,
भरतनी पेरे बल केवल खेत्र इरव जाणीये;
वंदीये चक्री इवां मुनि भावसु नित मनरली,
हवे भरत पाटे आठ अनुक्रम वंदीए नृप केवली. ॥२॥
ढाल ॥
श्रीआई जसमहाजस केवली, अइबल महाबल तेजवीरिये वली;
कीरत विरीये दंड वीरिये ध्याईये, जलविरीय मुनिनाथ गुण गाईये.
उलाली ॥

गाईये ताणां (घणा) अंग मुनिवर एह भाषए संजति,
श्री ऋषभ ते वने अजित अंतर हवे सुणो कहु सुभमति;

पचास लाखे कोड सार तिहां असंख्य केवली,
जेह थया मुनिवर तेह प्रणमुं असुभ दुरमति निरदली. ॥३॥

ढाल ॥

अजित जिणेसर ने गणधरुं, धुर प्रणमुं सहसेण सुहंकरुं;
प्रणमु महसम फगुसाहुणी, हरखस्युं वांदु सगर महामुनि.

उलाली ॥

महामुनि सगर तीस लाखे कोड अंतरे जे थया,
केवली मुनिवर तेह प्रणमुं दोय कर जोडी रया;
श्री संभव चारु मुनिवर चिन समायिकगुण रमु,
लाख दसेही कोडसागर अंतरे सिद्ध सहुं नमुं. ॥ ४ ॥

ढाल ॥

श्री अभिनंदन प्रणमु गुणपति, वैरनाभ मुनि अजयासती।
सागर लाखे नव कोड अंतरे, केवली थया वंदीये शुभपरे.

उलाली ॥

शुभपरे सुमत जिणेसर गणधर चमरकाल विजमया,
नेऊ सहस कोड सागर विच नमुं जे सिद्ध थया;
श्री पद्मप्रभु सीम नांमी सुव्रतीये प्रभी वंदीये,
साहुणी तेहं नामे प्रणम्यां दुःख दुर निकंदीये. ॥ ५ ॥

ढाल ॥

कोड सहस नवसागर विच वली, प्रणमुं मुनिवर जे थया केवली।
श्रीसुपास जिणविय गुणदत्त प्रणमुं, सोमा सनगी गुणनिधि.

उलाली ॥

गुणनिधि नवसें कोडसागर अंतरं जे केवली,
तेह प्रणमुं भावस्युं ए दुःख जाये सहु टली;

श्री चंद्रप्रभुदीन गणधर सती समणा ध्याईये,
नेउं सागर कोड अंतरे केवली गुण गाईये.

॥ढाल ९ मी॥ सफल संसार अवतार ए हु गिणुं ॥ए देशी॥

सुविधि जिणेसर मुनीवरा ए,
साहुणी वंदिये चित्त उछाह ए;
अंतरे कोड नव सागर सहु जिहां,
कालिकसूत्र नी थांह भाख्यो तिहां. ॥ १ ॥
स्वामी शीतल जिण साधु आणंद ए,
सती सुलसा नमु चित्त आणंद ए;
एककोड सागर तणो अंतरो कह्यो,
एकसो सागर ऊणो कर संग्रह्यो. ॥ २ ॥
सहस छाविस साठ लाख उपरे,
कालिकसूत्रनी छेद ईण अंतरे;
श्री श्रेयांस मुनि गोथ वधाईये,
धारणी साहुणी वले वर्णवी चित्त लाईये. ॥ ३ ॥
पूर्व भव गुरु साधु वहु संभूतए,
वीस नंदी वली सुगुण संयुत ए;
अचल मुनिवर नमुं पउम हलधरा ए,
वंदव नृप केसव सीरवरा ए. ॥ ४ ॥
चोपन सागर वीच थया केवली,
वंदीये सूत्रनी वीहभाख्यो वली;
ईम विछेद विच सात जिण अंतरे,
जाणीये शांति जिणवर लगे इणपरे. ॥ ५ ॥

स्वामी वासुपूज्य जिण साधुश्री धर्मेश्वर,
साहुणी वली जिहां धर्णी उपद्रवहर;
सुगुरु सुभद्र सुवंधव वखाणिये,
बीजे मुनि वंधव त्रिपृष्ठ हरि जाणीये. ॥ ६ ॥
तीस सागर बीच अंतरे जे थया,
केवली वंदीये भाव भगतेसया;
विमलजिन वंदीये साधु सीमंधर वली,
समणी धरणी धरा आगम सांभली. ॥ ७ ॥
गुरु सुदरसण मुनि सागरदत्त ए,
भवहर वंधव भद्र सिवपत्त ए;
नव सागर बीच अंतरे केवली,
जे थया ते सहु वंदीए वलीवली. ॥ ८ ॥
स्वामी अनंतजिण प्रणमीये अघुगणी,
समणी (प्रेमे) नमु सुगुरु श्रेयंसमुनि;
सीस अशोकगु प्रणमुं प्रभपती,
भात पुरुषोत्तम केसव नृपति. ॥ ९ ॥
सागर चारनो अंतरो भाखीये,
केवली वंदीने सीव सुख चाखीये;
जिणवर धर्म अ.तृ गणधर कह्,
सती समणां सेवा वांदी सिर सुरा सहु. ॥ १० ॥
धर्मेश्वर कृष्णगुरु दतनगु सीस ए,
राम प्रणमुं सुदरसन नीसदीस ए;
वंधव पुरुषसिंह केसव भयो,
आज्ञा पांच सुतर कुडरी गयो. ॥ ११ ॥

सागर तीन बीच आंतरे भांखीये,
पुण्य पल्योपम ऊंणो करि दाखीये;
तिहांकणे रायरिखीमघव मुनिवर भयो,
जै धन छोडीने सुद्ध संयमी थयो. ॥ १२ ॥
चोथो चक्रिसर सनत कुमार ए,
वंदिये अंतक्रिरिया अधिकार ए;
इण अंतर मुनि मुक्ति गयाजिके,
केवली वंदिये भाव भगतेतिके. ॥ १३ ॥

॥ ढाल ६ ट्ठी ॥ वीर जिणेसर चरणकमल ॥
कमलाकरवासी ॥ ए देशी ॥

सोलमा श्री शांति नमु चक्री जिनराया,
चक्रायुधगणि समगिसु प्रणम्यां सुखपाया;
पूर्वभव गंगदत्त गुरु नमु सिष्य वाराह,
वंधव पुरुष पुंडरीक राम आणंद उछाह. ॥ १ ॥
अर्ध पल्योपम अंतरे ए सिद्धा बहु भेद,
वेह मुनिसर वंदतां नहि तिरये छेद;
चक्री श्रीकुंथुं नमुं संभव गणधार,
असुक अज्ञा वंदतां हुवे लेलेकार. ॥ २ ॥
सागर गुरु धर्मसेन सिस नंदन हलधार,
वंधव केसवदत्त नाम सातमो विचार;
कोड सहस वरसे करि ऊणोपलिये चोभाग,
इण अवसर सो सिद्ध बहु वांदु धरि राग. ॥ ३ ॥
अर्जुन चक्री सातमो ए कुंभ गणधर गाउं,
रुखिया समनि वंदना ए सीवसंपत पाउं;

कोड सहस वर्ष अंतरे ए सिद्धा मुनिवृंद,
सातमी नरक सुभूम चक्री पहुत्यो मतिमंद. ॥ ४ ॥
मल्लिजिनेसर वंदिए अभिनैय मुणिंद,
गणति वंदु चरण कमल प्रणमु सुखकंद;
सहस पंचावन साधवी साधुसहसचालीस,
बत्तिससोमुनि केवली प्रणमुं निसदीस. ॥ ५ ॥
मल्लि जिनेसर पूर्वभव सही वली अनगार,
तात वलि तसु वंदीये वली मुनिबारमवार,
अचल जीव थयो पडिबुध धर्म चंद्र छाया,
पूर्ण जीवते संखवसुं रूपी कहाया. ॥ ६ ॥
वेस मनते अदिन सत्रु अभिचंद्र जित सत्रु,
लहि केवल मुक्ते गया पूर्व भव मित्रु;
मुनिवर नंदन नंद मित्र सुमित्र वखाण,
बाल मित्र वली नाण मित्र अमरपत्त आणं. ॥ ७ ॥
अमरसेण महासेण आठे नाथ कुमार,
मिलिसंगाते साध थया अंग छठे विचार;
अंतरे इहां वली जाणीये लाख चोपनवास,
केवलि तिहां बहुवंदीये धरी हर्ष उल्लास. ॥ ८ ॥
वंदु जिणेसर वीसमा मुनिसुव्रतस्वामी,
गणधर इंद्र कुंभ पुरस्कवंनो प्रणमु शीरनामी;
सुरवर सातमे कल्प थयो मुनिवर गंगदत्तो,
कीर्तिसिंह महेन्द्रपने गुरुश्रीय गंदत्तो. ॥ ९ ॥
रायश्री महापउमचक्री वांदु कर जोडी,
समुद्र गुरु अरागनीयो ए गाउं मनमोडी;

राम रुपीश्वर वंदीयेए नाम पौम लेह,
केसव नारायण तणोए यंबव कहुं वेह. ॥ १० ॥
लही केवल मुक्ते गया आठ बलदेव,
नवमो सुरसुरत अनुभव लहेसे शिवसुख देव,
मुनि सुव्रत नमी अंतरे ए वर्ष लाख छ होइ,
केवली सिद्धा तेह प्रणमुं सुर जोइ. ॥ ११ ॥

॥ ढाल ७ मी ॥ श्री नवकार जपो मनरंगे ॥ ए देशी ॥

एकवीसमा श्रीनमिजिन वांदु, गणधर सुभपरधानरी माई;
समणी अमीला गुणगावंता, सफल हुवे निज ज्ञानरे माई.॥१॥
श्री जिन सासन मुनिवर वंदु ॥ ए आंकणी ॥
भक्ति निज शीर नामरी माई, कर्म हणीने केवल पाम्या;
पहुत्या शीवपुर टामरी माई, श्रीनवनिव चौदे रेणजिण त्यागी;
चक्री श्री हरिसेणरी माई, आश्रव छंडी संवर मंडी;
वेगेवरी सिवजैनरी माई. श्री० ॥ २ ॥
वरस वलि इहां पंचलख, अंतर तिहां चक्री जयरापरी माई;
वली अनेरा मुक्ति पहोत्या, ते वंदु मन लायरी माई. श्री०॥३॥
गौतम समुद्र सागर गाउं, गंभीर थंभीर उदाररी माई;
अचल कंपील अक्षोभ प्रसेण, दशमो विष्णुकुमाररी माई.श्री०॥४॥
पोसम प्रणमुं श्री नेमीश्वर, समण ते सहस अढाररी माई;
वरदत्त आदि मुनि पनरे, वांदु केवल धाररी माई. श्री० ॥५॥
अक्षोभ सागर समुद्र वंदु, हेमंवत अचल सुचंगरी माई;
धाणि पुरिण अभिचंद आठमो, भण्या इग्यारे अंगरे माई.श्री०॥६

अंधक विष्णुसुत धारणी अंगज, मुनिवर एह अढाररी माई. श्री०॥७

वसुदेव देवकी अंगज छऊं, आणीसेण अणंतसेणरो माई;
अजितसेण ने अनिहतरिपु, देवसेण सत्रुसेणरो माई. श्री० ॥८॥
सुलसाना घरे सुजोगे, बत्रीरमन छत्तीसरी माई;
छंडी छठ तप चउदश पूर्वी, संयम वर्ष वीसरी माई. श्री० ॥९॥
वसुदेव देवकी अंगज आठमो, मुनिवर गजसु कुमालरी माई;
राति परिसहो मुक्ति पहोंच्यो, ते वंदु त्रिकालरी माई. श्री० ॥१०॥
सामण दारुण कुमर अणाढी, चउदे पूर्व धारणी माई;
वीस वर्ष संयम आराधी, कीधो कर्म संहारणी माई. श्री० ॥११॥
जाली मयाली ने उवयाली, पुरिससेण वारीसेणरी माई;
बारे अंगे भीना धर्म, पाल्यो संयम तेणरी माई. श्री० ॥१२॥
वसुदेव धारणी अंगज आठे, रमणी तजी पचासरी माई;
सुमना भावे शिवपुर पहोंच्या, सणधु देह उद्धारणी माई. श्री० ॥१३॥
सुमुख दुमुख ने कुवार ए वंदु, बलदेव धारणी पुत्ररी माई;
वीस वर्ष संयम पर साध्या, चउदे पूर्व सूत्ररी माई. श्री० ॥१४॥
रूपमणी कृष्ण वडा कुमर प्रद्युम्न, जंबुवती सुत सांबरी माई;
प्रद्युम्न सुत अनिरुद्ध अनोपम, आगमेदर्भी अंतरी माई. श्री० ॥१५॥
समुद्रविजय शिवादेवीनंदन, रथनेमी दृढनेमी माई;
बारे अंगे भीना धर्म, रमणी पचासे तेमरी माई. श्री० ॥१६॥
समुद्र विजय सुत मुनिवर नेमि, ए सहु राजकुमारी माई;
कर्म हणीने मुक्ते पहोंच्या, ते वंदु करजोडी माई. श्री० ॥१७॥
आरम्भ उआणी अन्तेवेसि हणी, ममनी सहुण पालीसी माई;
एरम्या मिद्रा तीन सहस्र ते, वंदु सुमति दारुण माई श्री० ॥१८॥
दीक्षा गरीने मरणं, शासनना गुणसंपत्री माई;
वैदरभी समवसर रूपमणी, द्वारवती अतिसारी माई. श्री० ॥१९॥

मूलश्री मूल दत्तादिक, संब कुमरशुं नाणो माई;
अंतगड अंगे ए सहु भाख्यो, पाम्यो भवनो पारो माई. श्री०॥२०

उत्तराध्येन राजेमती सती, नेमना सोहरी साथणी माई;
प्रतिबोधी रहनेमि दन्तो, लहता सुख निरवाणी माई.श्री०॥२१

॥ ढाल ८ मी ॥ गौतम समुद्र कुमार सागर गंभीरा
॥ ए देशी ॥

थावचा सुत सुखसे ढग आद दे, पंथक प्रमुख मुनि पांचसोए,
मास संलेषणां करी तव अति घणां, पुंडरीक गिरी सिद्धपुर वर्यो ए;
युधिष्ठिर भीम अति बली, अर्जुन नीकुल सहदेवजी ए,
राय श्रीयरिहरी, सुध संयम धरी, साधुजी श्रीवरदवी भजीए॥१॥

वंदा पूर्व धरी धीवर धर्मघोष, धर्मरुचि शील गुण भर्यो ए,
नाग श्रीनाकुनी बीष दीयो पारनी, तुंबानो माल पारनो कीयोए;
सर्वार्थ सिद्ध अवतरी तद नर भव करी, क्षेत्र विदेहमे शिव गयोए,
ते मुनि वंदनां कर्मवली मंदतां, जन्म जीवीत सफलो पयोए॥२

समनी सुवालीया वीण सुख माडीया दीयो पाता सहुगुण भद्रए,
भीम दली सुलता द्रौपदी संपना, नेम तामन सुन धुंदुए;
विमल जिन अनंत अंतरे राय कहि, बलदेव परभाववीए,
तानते अंगए कुमर विरह ए. तरुणी बत्रीस तरुणी पत्तीए ॥३॥

ताम सिद्धार्थ गुरु पास संयम ग्रह, ब्रह्मलोके सुर उपन्यो ए,
चर्वी बलदेव धरे रेवती उदर रे, निषढ नाम सुन संतनी ए;
नेम पाई अनसरी अभिग्रह पाहरी, रमणी पंचासतणी मन म्होए
करी बहु सम्दम घरत गर संदमे, पामीने सर्वार्थ सिद्ध लहोए॥४

क्षेत्र विदेहमे केवल संयम, सिद्धही सोळे ते मुनी ए,
इण परि अतीतह दोए गतीस सहु यति कहु गुण थुणीए।
दसारह दृढ रहे महा धनुनेह, सतचतु गुण भुज मन वरयाए,
नवचतु दसचतु सहि धनुमुनि एह भाखीयो, मूत्रवकही दशाए॥५
पूरव भव हरगुरु नाम सुसभगे म, लहन नाम ते पूरवभवे ए,
राम बलदेव बली नवमो हलधर, ब्रह्म लोके सुर अनुभवे ए;
चविजिण तेरमो नाम निकषाय, थाप सीसही सुरतरु समोए,
वंदव केशव एक अनगार, अमम होसी जिण बारमोए ॥६॥
सहसबले रयांसिर्या सातसे भार्यायां, वरस पंचास इहां अंतरोए;
तिहां वले चित्तमुनि सिद्ध गंगतरु, नाम लेईने कीरत करुं ए,
पूर्वभव बंधव चक्री ब्रह्मदत्त, मानमी नरक गयो मरी ए;
इंण अंतरे वली नमुं, बहु केवडो येगेमित सुंदरी ज्यां वरीए ॥७

॥ ढाल ९ मी ॥ रामचंद्रके बागमें चम्पो मोरी रह्योरी
॥ ए देशी ॥

तेवीसमा जिन तारक, पुरुषा दाणीय पास,
मुनिवर सोळे सहस, गणधर आठहुलास;
आज दिने शुभ शुभ थीक, सांधु सामट नाम,
बली ब्रह्मचारी सोमरु, श्रीधर करूं प्रणाम ॥ १ ॥
वीरभद्र जस आदि, सिद्धा सहस प्रमाण,
वेद मुनिवर वरसा, छोर पाम कल्याण;
सातवी मरुपा महु अडतीस, सहस वखाणुं,
पुष्प चूडादि सहस दो, सिद्धी ते मन आणुं ॥ २ ॥
समनी गुरुनी दासी मुणी, भाखी धर्म पैठाण,
ए अधिकार वदो, श्री ठाणांग सुठाण,

[illegible] ॥ ३ ॥

[illegible] ॥ ४ ॥

[illegible] ॥ ५ ॥

[illegible] ॥ ६ ॥

[illegible]

॥ ढाल १० मी ॥ [illegible] मुनिवर [illegible]

॥ ए देशी ॥

[illegible]

राई उदाई सिंह दस विरनो, निर्मल संजम धारोजी;
सेठ सुदर्शन मुनि मुगते गयो,मुणी महाबल अधिकारोजी.नि०॥३
काल संवेगी गंगायो गणी, पिंगल ने शिरराजोजी;
काम उदये अेवंतो मुनि, वंदना भांजे काजोजी. नि० ॥ ४ ॥
मकाई मुनिकिंक्रम वंदीये, अर्जुन माली हुल्लासोजी;
काशव मव धर जाणीये, केवलरूप कैलासोजी. नि० ॥ ५ ॥
मुनि हरीचंद भारतिये वली, सुदर्शन धरण मेरोजी;
साथ समण भद्र समता आदरे, सुपईठ समप मेरोजी.नि०॥६॥
मेघ मुनीश्वर अेवंतो मुनि, राप ऋषी अलक्षोजी;
श्री जिण सीस ए सहु मुगते गया, सेवे सुरनर सक्रोजी.नि०॥७॥
सहस छत्तीसे समणी वंदणा, आदे चउदसे सिवीजी;
देवानंदा जननी वीरनी, केवल ज्ञाने समिंदाजी. नि० ॥ ८ ॥
नितनिन वंदु समणी ए सहु, समणी जेवंती पदम शिद्धया तरी;
सिद्धां केवल पामीजी, नंदानंदवती नंदीनरा यन्नीनंदसेणीपा
नामोजी. नि० ॥९॥
मरुतासमरुता महामरुता नमु, मरुदेवा वली जाणीजी;
भद्रासुभद्रा सुजया जिननणी, पाली निर्मल आणीजी. नि०॥१०
समणोसमणी मुइ दोनानमुं, राणी अेणकरादेजी;
नाग संवेगण तेरे सिद्ध थई, मणकया पालीक जापजी. नि०॥११
काली सुकाली महाकाली नमुं, कन्या सुकन्या तांमोजी;
मद्दा कन्या वीर कन्या साहुनी, राम कन्या सुत नेमोजी.नि०॥१२
पितसेन कन्या महासेन कन्या, ए दश श्रेणिक नारीजी;
निजनिजनंदन काल सुने थर्ग, दीनो संदन भारीजी.नि०॥१३
ए दश समणी ते वेरागणी, आदे दश प्रकारेजी;
मुदि वेरद ए मऊ मुगते गई, ने वंदु सहुसारेजी. नि० ॥१४॥

॥ ढाल ११ मी ॥ सुखकारण भवियण समरो नीत नवकार ॥ एहनी देशी ॥

श्री धर्मघोष मुनीश्वर, महिपल गुरु सुनधार;
जिन प्रउसो रे हो, लोकालोक विचार. ॥ १ ॥
पेसाडे सारण, पिंगल नाम निहंत;
पर श्रावक पउत्था, खंधक समय पहुंत. ॥ २ ॥
वळी पुत्र मेहल, आणंद श्रमणो ज्ञान;
दवे कामदे पोदी, दिवगं पाम संतान. ॥ ३ ॥
मुनि तीस धुरुदत्त, वळी निपंनो पुन,
धन नारद पुत्र मुनि, साम हनी मंथुत्त. ॥ ४ ॥
मुनि क्षत्र गर्देण मुह, क्षीपर वळी आणंद;
जिन सीमो ल्यावो, धन धन सिद्दी मुणिंद. ॥ ५ ॥
वळी पुउसा जिनने, हेरवादिक बहु भेद;
गुण गाउं महा मुनि, मार्दशो ध्रुव उमेद. ॥ ६ ॥
हवे मेणिक गुन बहु, भारी धुवर मसाळी;
उदसाहि पुरमसेण, वरिसेण आसरा टाळी. ॥ ७ ॥
देह दंतने रुद्र दंत, वळी मेदल होय;
वेहल्ले वेदास, पेतल्ला अंभय होय. ॥ ८ ॥
इंद मेता मेदल, मुनिरा अभय कहंत;
देहलेदने महासेण, रूदंतने गुणवंत. ॥ ९ ॥
शुध दंत पुनर हल, दुमने दुमसेन;
गुण गाउं महा दुमसेन, सिंहने सिंहसेन. ॥ १० ॥
मुनिवर महसेन; पुन्नसेन वखान;
ए धारणी अंगज, तेरे सुरग सुजान. ॥ ११ ॥

नृप श्रेणिक नंदन, इय दस तेरे कुमार;
आठ आठ रमणी तजी, अनुत्तर सुर अवतार ॥१२
तिण अवसर नयरी, काकंदी अभिराम;
तिण पूरव देशे भद्रा, सारथवाही नाम. ॥ १३ ॥
तसु नंदन धन्नो, सुंदर रूप निधान;
तिन परणी तरुणी, बत्तीस रंभ समान. ॥ १४ ॥
जिन वयण सुणीने, लीधो संयम जोग;
मुनि तरुणपणेमें, छंड्या रसना भोग. ॥ १५ ॥
नित छठ तप पारणो, आंबीले भुत्त भात;
जस समणवणी मग, कांई न वंछे तिलमान. ॥ १६ ॥
अति दुधर तपस्या, आराधी नव मास;
एक मास संथारे, सर्वार्थ सिद्ध वास. ॥ १७ ॥
काकंदी मुणि क्षत्र, राजगृही मतिदाम;
पेल्हक ए बेउं, पुकाण नगर हुल्लास. ॥ १८ ॥
राम पुत्रने चंद्रमा, साकेतपुर वर ग्राम;
पुट्टीमां पेढा छे, पुत्र वाणीयां ग्राम. ॥ १९ ॥
हथणाउर पोटिल, सहु ए धना समान;
तरुणी तप जिगनी, संयम वर सीमान. ॥ २० ॥
हवे वहल कुमर कहु, राजगृही आवास;
सर्वार्थ सिद्ध पहुंतो, धर संयम छंडं ग्मास. ॥ २१ ॥
एक भव शिवगामी, ए श्री जिनवर सीस,
सहु नवने अंगे, भाख्या मुनि तेत्रीस. ॥ २२ ॥
हवे पीम महा पीम, भद्र सुभद्र वखाण;
पीमभद्र ने पीमसेन, पीम गुम मन आण. ॥ २३ ॥

नलिनी गुल्म आणंद, नंदन एह मुनिजान;
कालादिकना सुत, कप्पवडंसीया ठाण. ॥ २४ ॥
मुनि उदग पेढाल, गौतमने पचखाण;
थां सामथकी कीयो, पंचनगी परिमाण. ॥ २५ ॥
जिणे जिन मत मांडी, छंडो कुमत अनेक;
ते आठ कुमर मुनि, धन धन बुद्ध विवेक. ॥ २६ ॥
गर्व भाली मोस्यो, संजयी नृप अणगार;
मुनि क्षत्री भाख्या, बहुविध अर्थ प्रकार. ॥ २७ ॥
मही मंडल विचरे, विगत मोह अमाय;
गुण गावंता अहोनिस, संपजे शिवपुर साय. ॥ २८ ॥
नृप श्रेणिक नंदन, मुनिवर मेघ सुजाण;
तज आठ अंतेउर, उपन्यो विजय विमाण. ॥ २९ ॥
अपमानी रैणा, आदर्यो संयम लेह;
जिन पालक मुनिवर, सोहम सुर थयो तेह. ॥ ३० ॥
हरि थोर चीलायतो, सुसमा तात ते घणो;
आराधी संयम सोहम, सुर उपनो. ॥ ३१ ॥
श्री वीर जिणेसर, सातग मुनिवर नाम;
निज भक्ते गाउं, वेहलनणा गुण ग्राम. ॥ ३२ ॥

॥ ढाल १२ मी ॥ विणजारीया विंगन्त ॥ ए देशी ॥

धर्मघोष गुरु सोलदत्त, मासने पारणे तेह सुयुत्त,
प्रतिलाभ्यो सुभ चित्त, सुसुरा थयो भव विघ सुबाहु;
सुर थयो संयम ग्रही साहु, गुण तसु गाउं नित्त. ॥ १ ॥

विमलवाहण नामे राजान धर्मरुचिने देई दान,
वरदत्त हुवो भव वीजे संयम लेई सुरश्री पामी;
कल्प अंतर जे शिवपुरगामी कीरति तेहनी कीजे. ॥१०॥
पूर्वभव दान देई उदार वीजे भव थया रायकुमार,
त्यां तजी पांचसे नार सहु थया वीरजिणेसर शिष्य;
सुखविपाके एह मुनेस पंचमहाव्रतधारी. ॥ ११ ॥
नामे मानंग ने सीमल गाउं रामगुतिसुदर्शण ध्याउं,
नमु जमाली भोगाधि किंकम पेल्क काली ये तीजी;
अंतगड अंगे वाहिण थीजी घणां अंग संभाली. ॥१२॥
पूर्वभव महा पौम ते वीजे तेतली पुत्र मुनि प्रणमीजे,
महापौम पुंडरीक तात वळी वंदु जितशत्रु सुबुद्ध;
कर्म हणी तिण वरी विशुद्धी ते वंदु विख्यात. ॥१३॥
मुनि जयघोप विजयघोष वांदु वळी श्री नाम मृगा पुत्र वांदु,
कमलावती इक्षुकार पुत्र पुरोहित वळी तसु नार;
नामजसा संवेगे सारी वंदनां नित्य जयकारी. ॥१४॥

॥ ढाल १६ मी ॥ चतुर विचारीयेरे ॥ ए देशी ॥

मुनिदास ने धन्नो वळी वखाणीएरे सुणीखत्तकित्तीयसंमुत्त,
संगण सालभद्र आणंद तेतलीरे दशार्णभद्र ऐवंत. ॥ १ ॥
मुनि गुण गाईयेरे गावंतां परमाणंद सिवसुख साधणे करी,
अहोनिस संपजेरे भाजेभव भवफंद. मु० ॥ २ ॥
अणुत्तर अंगनी एहीज वीजी वाचनारे ऐदस मुनिवर नाम,
नंदिसूत्रमे साखसुभदपणे कह्यारे नंदीसेण अभिराम. मु० ॥३॥
विपम नंदीफल अधिकार धन्नो मुनिरे धन्नो देव दिनतात,
सुव्रता समणी गुरुणी सिप्पणी पोट्टारे पुंडरीक कुंडरिक्न भ्रात.मु०॥४

गुरुणी सुभद्रा केरी समणी सुव्रतारे पूर्णभद्र सुचंग,
मांणभद्रने दत्तशीवबल मुनिरे, तिण तज्या लोभ संताप;
इंद्र परीक्षा अवसर उपशम आदरोरे, नमो नमावे आप. मु० ६
सुरवर सेवत श्रीहरि केसो बलमुनिरे, संवर धार सुलेस;
सकले प्रे (हो?) डी मतिसंयम आदर्योरे, दशार्णभद्र नरेस. मु० ॥७
मुनि करकंडुराजा देश कलिंगणोरे, दुमुही पंचभूपाल;
वली विदेही नृपति नमि नामे व्रतिरे, निग्गाई गंधार रसाल. मु० ॥८
सेतवीज ने महिबल ए सह राजवीरे, व्रत लेई थया अणगार;
कामकषाय निवारी सीतल आतमारे, विचरते श्रुत गणधार. मु० ॥९
हवे श्रीवीर जिणेश्वर सीस सुहमगणीरे नाम परंपर एह;
जंबू प्रभव वलि सय्यंभव जाणीयेरे, मनगपीया मुनि तेह. मु० ॥१०
श्रीजसोभद्र ने मुनि संभूतवीजे वलीरे, भद्रबाहु थूलभद्र एम;
अणेरा जिणवर आणमांही हुवारे, ते मुनि गाउं समुद्र. मु० ॥११
काल अनंते मुनिवर मुक्ते गयारे, संप्रति विचरे तेह;
नाणदर्शन ने चरणकरण धुरंधरारे, श्रीदेवचंदे तेह. मु० ॥ १२ ॥

॥ कलश ॥

इम चोवीस जिणवर प्रथम गणधरचक्री हलधर जे हुवा,
संसारतारक केवली वली समणसमणी संथुवा;
संवेग श्रुतधर साधु सुखकर आगम वचने जे सुण्या,
दीपचंद गुरु सुपसाये श्री देवचंद्र संथुण्या. ॥१३॥

इतिश्री वडी साधु वंदना तेर ढालकी चोपाई संपूर्णम ॥

॥ अथ श्री पंडित देवचंद्रजी कृत

साधुनी पंच भावना ॥

॥ दोहा ॥

[illegible] तीर्थंकर नमु, धर्म ध्यान सुखठाम ।
स्याद्वाद परिणाम धर, प्रणमुं चेतनराम ॥ १ ॥

अर्थः—शुद्ध [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] छे [illegible] [illegible] छे, अने [illegible] छे, [illegible] छे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] छे, [illegible] ॥ १ ॥

महावीर जिनवर नमी, भद्रबाहु सूरीश ।
वंदी श्री जिनभद्र गणि, श्री हेमेंद्र मुनीश ॥२॥

अर्थ—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ २ ॥

सद्गुरु शासन देव नमी, बृहत्कल्प अनुसार।
शुद्ध भावना साधुनी, भाविश पंच प्रकार ॥३॥

अर्थः—वळी शुद्ध नये स्याद्वाद उपदेश देवावाळा सद्गुरु अने तीर्थंकरोनी वाणी शासनदेवीने नमी बृहत्कल्प भाष्यने अनुसारे शिव मार्ग साधना साधुओने भाववानी शुद्ध पंच भावना भावीशुं ॥ ३ ॥

इंद्री योग कषायने, जीपे मुनि निशंक।
इण जीते कुध्यान जय, जाए चित्त तरंग ॥ ४ ॥

अर्थः—मुनि पंच इंद्रियो, त्रण योग अने चार कषायने निर्भय निशंकपणे जीते तेम आर्त रौद्र कुध्यान माठा अध्यवसायने जीते अने तेथी चित्तना शुभाशुभ संकल्पो रूप तरंगो जाय एटले निर्विकल्पपणे शुद्धात्मगुणमां परम समाधी पामे ॥ ४ ॥

प्रथम भावना श्रुततणी, बीजी तप त्रिय सत्त्व।
तुरिय एकता भावना, पंचम भाव सुतत्त्व ॥ ५ ॥

अर्थः—तेमांहे श्रुत अभ्यासनी पहेली भावना (१) विषय भोग इच्छा रहित शुद्धात्म गुणमां तप रहेवुं ते तपनी बीजी भावना (२) उपसर्ग वेरी तथा परिषह अने विषयादिकथी चळायमान थवुं नहि एवुं साहस धरवारूप त्रीजी सत्त्वभावना (३) शुद्धात्म तत्त्वमां एकत्व अभेदपणे परिणमन स्थिर थवा रूप चोथी एकत्वभावना (४) अने आत्म तत्त्व विचार रूप पांचमी शुद्धतत्त्वभावना जाणवी (५) ॥५॥

श्रुतभावना मन थिर करे, टाळे भवनो खेद ।
तपभावना काया दमे, वामे वेद उमेद ॥ ६ ॥

अर्थः—श्रुतभावना मन थिर करे अने भवभ्रमण भीतिनो खेद टाळे. तपभावना कार्मण अने औदारिकादि कायाने दमे अने वेद भोगववाना उमेदने फेंके एटले तेनी ईच्छा आशा कामना मटी थिरता थाय ॥ ६ ॥

सत्वभाव निर्भय दशा, निज लघुता इक भाव ।
सत्त्वभावना आतम गुण, सिद्ध साधना दाव ॥७॥

अर्थः—सत्त्वभावनाथी निर्भयदशा पामीए. पोतानी लघुता भावीए तो स्वस्वरूपमां एकता थाय. तत्त्वभावना भाववाथी आतम शुद्धता सिद्ध करवानो दाव आवे ॥ ७ ॥

॥ ढाल १ ली ॥

लोक स्वरूप विचारो आतम हित भणीरे ॥ ए देशी ॥

श्रुत अभ्यास करो मुनिवर सदारे,
अतिचार सहु टालि ।
हीण अधिक अक्षर मत उचरोरे,
शब्द अरथ संभालि ॥ श्रुत० ॥ १ ॥

अर्थः—हे मुनि ! अकाल अविनयादिक आठ अतिचार तजी सदा श्रुत अभ्यास करो, अक्षरनो हीण अधिक उच्चार न करो अर्थ संभाळी शब्द उच्चार करो ॥ १ ॥

सूक्ष्म अर्थ अगोचर द्रष्टिथीरे,
रूपी रूप विहीण ।
जेह अतीत अनागत वर्त्ततारे,
जाणे ज्ञानी लीन ॥ श्रुत० ॥ २ ॥

अर्थः—जे सहजे दृष्टिगोचर न आवे एवा अर्थरूपी के अरूपी अतीत अनागत के वर्त्तमान विषय जेम होय तेम ज्ञाने लीन होय ते ज्ञानी जाणे छे तेम रूपी अरूपी कालादिक तथा आत्मगुणने प्रशस्त अप्रशस्त विचारी सूक्ष्म अर्थ दृष्टिगोचर करो ॥ २ ॥

नित्य अनित्य एक अनेकनारे,
सदसद भाव स्वरूप ।
छ ए भाव एक द्रव्य परिणम्यारे,
एक समयमां अनूप ॥ श्रुत० ॥ ३ ॥

अर्थः—सकल द्रव्यमां समकाले नित्य, अनित्य, एक अनेक, सत्य असत्य, एम छए भाव परिणमे छे ए प्रमाण करे द्रव्य विचारो ॥ ३ ॥

उत्सर्ग अपवादरंगे करीरे,
जाणे सहु ।
वचन [illegible]

अर्थः—वस्तु उत्सर्गे अने अपवादे जेम कही छे तेम सर्व श्रुतचाल जाणे अने नययुक्तिथी वचन विरुद्धता निवारे अने बत्रीशे दूषण टाळी अव्याप्ति, अतिव्याप्ति अने असंभवादि दोष टाळी सूत्रनो अर्थ यथार्थ ग्रहे, थापे निश्चय करे ॥४॥

द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक धरेरे,
नयगम भंग अनेक ।
नय सामान्य विशेष बेहु ग्रहेरे,
लोकालोक विवेक ॥ श्रुत० ॥ ५ ॥

अर्थः—ज्यां मुख्यपणे द्रव्यार्थकने आगळ करी बोल्या होय त्यां पर्याय अर्थनी गौणतानी सापेक्षता राखवी, ज्यां मुख्यपणे पर्याय अर्थ बतावी बोल्या होय त्यां द्रव्य अर्थनी गौणताए सापेक्षता राखी तत्त्वार्थ विचारवो, नयना गमा अने अनेक भांगा ते पूर्वापर अने गौण मुख्य सापेक्षताए विचारी लेवा, एम सामान्यनय विशेषनय आदि अनेक प्रकारना नयवाद विचारी लेवा, वळी लोकालोक के० लौकिक अलौकिक विवेक राखवो ते लौकिक लोकोत्तर विवेक जाणवो ॥५॥

नंदिसूत्रे उपगारी कह्योरे,
वलि अशुचा ठाम ।
द्रव्यश्रुतने वांयो गणधरेरे,
भगवई अंगे नाम ॥ श्रु० ॥ ६ ॥

अर्थः—नंदीसूत्रमां तथा भगवती अंगमां असुच्चाकेवलीना अधिकारे सूत्रने उपकारी कह्यो छे, वळी भगवतीसूत्रमां द्रव्य-

श्रुतने गणधरोए बांध्यो एम कह्युं छे एटले द्रव्यश्रुत ते पण भावश्रुतनुं कारण छे माटे श्रुत ते उपकारीज छे ॥ ६ ॥

श्रुत अभ्यासे जिनपद पामिएरे,
छठे अंगे साख ।
श्रुतनाणी केवलनाणी समारे,
पन्नवणिज्जे भाख ॥ श्रुत० ॥ ७ ॥

अर्थः—ज्ञाता अंगमां श्रुतअभ्यासे जिनपद पामीए एम कह्युं छे वली श्रुतज्ञानी केवलज्ञानी सरखो एवी पण प्रकरण सिद्धांतोमां घणे ठेकाणे छे ॥ ७ ॥

श्रुतधारी आराधक सर्व ते रे,
जाणे अर्थ स्वभाव ।
निज आतम परमातम सम प्रहेरे,
ध्यावे ते नयदाव ॥ श्रुत० ॥ ८ ॥

अर्थः—श्रुतज्ञानी यथार्थ द्रव्यना गुण भावनो अर्थ जाणे माटे सर्व आराधक कह्यो छे श्रुतज्ञानीज पोताना आत्माने परमात्म समान जाणे ध्यावे छे, तत्त्वार्थ श्रुतज्ञानीने ध्येय छे एटले नय युक्तिए आत्माना परमभावने ध्यानी सम्यग्दर्शन पावे ॥ ८ ॥

संयम दरसन ते ज्ञाने बंधेरे,
ध्याने निर धार्यंत ।

भव स्वरूप चउ गतिनो लखेरे,
तेणे संसार तजंत ॥ श्रु० ॥ ९ ॥

अर्थः—शुद्ध संयम अने शुद्ध सम्यक्दर्शन ते श्रुतज्ञानेज वधे अने धर्मध्यान शुक्लध्यान ते श्रुत अजाण साधी शके नहीं पण द्रव्य गुण पर्यायनो पूर्ण जाण श्रुतज्ञानी होय तेज धर्म शुक्लध्यान साधी शके वली श्रुतज्ञानीज शुद्ध ध्येय अने शुद्ध साधना प्रवृत्ति जाणी साची आत्म सिद्धि करे; वली श्रुतज्ञानी चारे गतिनुं भवस्वरूप जाणे तेथी ते भवभोगथी विरक्त थई उदासीनता रूप नावे चडी क्षेम कुशलताए निर्भयपने भव समुद्र तरे ॥ ९ ॥

इंद्रिय सुख चंचल जाणी तजेरे,
नव नव अर्थ तरंग ।
जिम जिम पामे तिम मन उल्लसेरे,
वसे न चित्त अनंग ॥ श्रु० ॥ १० ॥

अर्थः—श्रुतज्ञानी इंद्रियसुख चंचल अने उपचरित जाणी तजे अने श्रुतज्ञानीने वस्तुना नवा नवा अर्थ तरंगो प्रगटे तेथी सकल शंका कंखाआदिथी निवर्ते जेम जेम अधिक श्रुत पामे तेम तेम आत्मवीर्ये करी मन उल्लास पामे अने तेना चित्तमां अनंग के० काम विकार वसे नहि-रहे नहि अने कोई ठेकाणे लख्युं छे के "नव नव अरपत रंग" एटले श्रुत ते चित्तने शुद्धात्म भावमां नवो नवो रंग रीझ आपे ॥ १० ॥

काल असंख्याताना भव लखेरे,
उपदेशक पण तेह ।
परभव साथी आलंबन खरोरे,
चरण विना शिव गेह ॥ श्रु० ॥ ११ ॥

अर्थः—पूर्ण श्रुतज्ञानी असंख्याता काल सुधी पूर्वेना भव जाणे अने श्रुतज्ञान विना जे उपदेश करे छे ते पोताने अने पर जीवने बुडाडवावाला छे पण शुद्ध श्रुतज्ञानी तेज समभावी अने सत्य उपदेश करवावालो छे. परभवे जता जीवने श्रुतज्ञान तेज संगे रहेवावालुं साचुं आलंबन छे अने बाह्य चारित्र विना पण श्रुत पण मोक्षनुं घर छे ॥ ११ ॥

पंचम काले श्रुत बल पण घणोरे,
तो पण ए आधार ।
देवचंद्र जिन मतनो तत्व ए रे,
श्रुतस्युं धरज्यो प्यार ॥ श्रु० ॥ १२ ॥

अर्थः—आ पांचमा दुखमकालमां श्रुतबल घणुं छे तो पण श्रुतनोज आधार छे. देवचंद्र मुनि कहे छे के जिन मतनो सार ते श्रुतज्ञानज छे ए माटे श्रुत अभ्यासमां पूर्ण प्रीति राखजो ॥ १२ ॥

॥ ढाल २ जी ॥

॥ अनुमति दीधी माए रोवती ॥ ए देशी ॥

रयणावली कनकावली,
मुत्तावली गुण रयण ।
वज्रमध्यने जवमध्य ए,
तप करीने हो जीपो रिपु मयण ॥ १ ॥

भवियण तप गुण आदरो,
तप तेजेरे छीजे सहु कर्म ।
विषय विकार सहु टले,
मन गंजे रे भंजे भव भर्म ॥ भवि० ॥२॥

अर्थः—रत्नावली, कनकावली, मुत्तावली, गुणरत्न, वज्रमध्य अने जवमध्य ए आदि तप करी काम शत्रुने जीतो. ए माटे हे भवि जीवो ! तमे शुद्धात्म भावमां तृप्ति रूप तप गुण आदरो. तप तेजे सर्व कर्म छीजे-भस्म थाय अने विषय विकार सर्व टले एटले विषयोनी इच्छा रहे नहि तेनुंज नाम तप कहीए. मन विषयइच्छाने जीते तेथी भवभोगमां सुखपणानो भर्म हतो ते भांगे एटले आत्म उपयोग शुद्धात्म भावमां थिर थाय ॥ १ ॥ २ ॥

जोगे जय इंद्रिय जय तदा,
तप जाणो हो कर्म सूडण सार ।

उवहाणे योग दुहा करी,
शिव साधेरे सूधा अणगार ॥ भ० ॥ ३ ॥

अर्थः—शुद्धात्म भावमां तृप्तिवंत जीव मन वचन काय-योगने तथा ईंद्रिय विषयने पण जीते तेथी तप ते कर्मने छेदवावालो कापवावालो सार जाणवो. ध्यानवुं कारण तेने उपध्यान कहीए एटले खावा पीवामां विषयादिक व्यापारमां चित्त जतुं रोकीए ते ध्यान के० शुद्धात्म भावमां थीरतानुं कारण छे तेने उपधान कहीए. ते उपधाने करी मन वचन काय योग असंयम पुद्गल व्यापारथी वारी संयमयोगमां थिर करी सुधा अणगार मोक्ष साधे ॥ ३ ॥

जिम जिम प्रतिज्ञा द्रढ थको,
वैरागीओ तपसी मुनिराय ।
तिम तिम अशुभ दल छीजवे,
रवि तेजेरे जेम शीत विलाय ॥ भ० ॥ ४ ॥

अर्थः—वैरागी तपस्वी मुनिराज जेम जेम पोतानी प्रतिज्ञा द्रढ करे तेम तेम अशुभकर्मदल छीजवे जेम सूर्यना तेजथी शीत नाश पामे तेम अशुभकर्मदल नाश पामे ॥ ४ ॥

जे भिक्षु पडिमा आदरे,
आसन अकंप सुधीर ।
अति लीन समता भावमां,
तृण परे हो जाणंत शरीर ॥ भ० ॥ ५ ॥

अर्थः—जे मुनि साधुनी बार प्रतिमा मांहेथी कोइ पण प्रतिमा आदरे अने धैर्यपने अडोल अकंप आसने रहे, समता-भावमां अतिशय लीन थइ उपयोगनी थिरता वधारे अने शरीरने तृण परे जाणे ते मुनि सहज शिव संपदा वरे ॥५॥

जिण साधु तप तलवारथी,

खूंडयो छे हो अरि मोह गयंद ।

तिण साधुनो हुं दास छुं,

नित्य वंदुरे तस पय अरविंद ॥ भ० ६ ॥

अर्थः—जे साधुए तपरुपी तलवार वडे मोह शत्रुरूप गजेंद्रने काप्यो ते साधुनो हुं दास छुं अने तेना पदकमलने नित्य वंदु छुं ॥ ६ ॥

आचार सूयगडांगमां,

तिम कह्यो हो भगवई अंग ।

उत्तराध्ययन गुणतीशमें,

तप संगे हो सहु कर्मनो भंग ॥ भ० ॥ ७ ॥

अर्थः—आचारांग, सूत्रकृतांग, भगवती अंगमां अने उत्तराध्ययनना ओगणत्रीसमामां कह्युं छे के तपस्याथी सकल कर्मनो नाश थाय एम अनेक स्थानके कह्युं छे ॥ ७ ॥

ते दुविध दुकर तप तपे,

भव पास आश विरक्त ।

धन्य ! साधु मुनि ढंढण समा,

ऋषि खंधक हो तीसग कुरुदत्त ॥ भ० ॥८॥

अर्थः—जे मुनि भगवान आज निरत थया ते द्रव्यभाव द्विविध दुष्कर तप आदरे. धन्य ! ते ढंढण मुनि, खंधक ऋषि, तिसगमुनि अने कुरुदत्त ए आदि साधुओने के जे दुष्कर तप आदरी उत्तम गति पाम्या छे ॥ ८ ॥

निज आतम कंचन भणी,
तप अग्नि करी शोधंत ।
नव नवि लब्धि बल छते,
उपसर्ग हो ते सहंत ॥ भ० ॥ ९ ॥

अर्थः—निज आतम कंचन करवा पुरुषे रागद्वेषादि मलीनता टाली शुद्ध चिद्रूप करवा तप रूप अग्नि करी कर्म मेल प्रजाळी आत्मअंग शुद्ध कंचन करे. नव नवी लब्धिना बल छते पण [illegible] करी ते सहन [illegible] पणे उपसर्ग परिसह सहे ॥ ९ ॥

धन्य ! तेह जे धन गृह तजी,
मन मेहना करी छेह ।
निःसंग वनवासे वसे,
तपधारी हो ते अभिग्रह गेह ॥ भ० ॥१०॥

अर्थः—धन्य ! तेह के जे धन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] करी निःसंग [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] मुनि ते अभिग्रह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

कुटुंबादिनो स्नेह थाय छे. जेणे देहथी भिन्न शुद्ध निजात्म स्वरुप जाण्युं तेने देहनो स्नेह पण रहेतो नथी तो अन्य वस्तुनो स्नेह शानो रहे ? माटे देह स्नेह छोडे तेज तपस्यां आदरे ॥ १० ॥

धन्य ! तेह गच्छ गुफा तजी,
जिनकल्प भाव अफंद ।
परिहारविशुद्धि तप तपे,
ते वंदे हो देवचंद्र मुनींद ॥ भ० ॥ ११ ॥

अर्थः—धन्य ! तेने के जे गच्छ गुफा आदि आश्रय तजी जिनकल्प आदरी अफंदी थई परिहार विशुद्धि तप तपे. एहवा महंत मुनींद्रोने देवचंद्रमुनि वंदना करे छे ॥ ११ ॥

॥ ढाल ३ जी ॥

हवे राणी पदमावती ॥ ए ॥ देशी ॥

रे जीव ! साहस आदरो,
मत थाओ दीन ।
सुख दुःख संपद आपदा,
पूरव कर्म आधीन ॥ रे जीव० ॥ १ ॥

अर्थः—रे जीव ! साहसके० धैर्य आदरो अधीरपणुं छोडो, अधीरपणाथी दीनपणुं थाय छे माटे अदीनपणुं आदरो. सुखदुःख संपदा अने आपदा ते तो पूर्व कर्म आधीन छे,

कुटुंबादिनो स्नेह थाय छे. जेणे देहथी भिन्न शुद्ध निजात्म स्वरुप जाण्युं तेने देहनो स्नेह पण रहेतो नथी तो अन्य वस्तुनो स्नेह शानो रहे ? माटे देह स्नेह छोडे तेज तपस्या आदरे ॥ १० ॥

धन्य ! तेह गच्छ गुफा तजी,
जिनकल्प भाव अफंद ।
परिहारविशुद्धि तप तपे,
ते वंदे हो देवचंद्र मुर्णींद ॥ भ० ॥ ११ ॥

अर्थः—धन्य ! तेने के जे गच्छ गुफा आदि आश्रय तजी जिनकल्प आदरी अफंदी थई परिहार विशुद्धि तप तपे. एहवा महंत मुनीश्वरोने देवचंद्रमुनि वंदना करे छे ॥ ११ ॥

॥ ढाल ३ जी ॥

हुवे राणी पदमावती ॥ ए ॥ देशी ॥

रे जीव ! साहस आदरो,
मत थाओ दीन ।
सुख दुःख संपद आपदा,
पूरव कर्म आधीन ॥ रे जीव० ॥ १ ॥

अर्थः—हे जीव ! साहसके० धैर्य आदरो अधीरपणुं छोडो, अधीरपणाथी दीनपणुं थाय छे माटे अदीनपणुं आदरो. सुखदुःख संपदा अने आपदा ते तो पूर्व कर्म आधीन छे,

श्वता परतंत्र चल मल जड छे, तेथी शुं स्नेह करवो ? के जेना वडे शुद्ध आत्मिक स्वतंत्र आनंदनी हानी अने अज्ञान मिथ्यात्व कषाय जन्म जरा मरणादिनी वृद्धि थाय छे तो एवा दुःखदाई पुद्गल पर्यायो उपर कोण मूर्ख स्नेह करे ॥३॥

जिम बालक वेलू तणां,
घर करीय रमंत ।
तेह छते अथवा ढहे,
निज निज गृह जंत ॥ रे जीव० ॥ ४ ॥

अर्थः—जेम बालक वेलु अने धूलनां घर करी रमे छे अने ते भांगेथी अथवा तो तेने पड्यां मुकीने पोत पोताने घेर जाय छे. तेम पौद्गलिक वैभव पड्यो मुकीने अथवा नाश थयेथी संसारी जीव अन्य गत्यंतरे जाय छे. तो एहवा परतंत्र पदार्थो उपर स्नेह करवो अगर तेना स्नेहवडे बंधाई रहेवुं ते मोक्षाभिलाषी जीवोने युक्त नथी ॥ ४ ॥

पंथी जेम सराहमां,
नदी नावनी रीति ।
तिम ए परियण तो मिल्यो,
तिणथी शी प्रीति ॥ रे जीव० ॥ ५ ॥

अर्थः—पंथी लोको जेम धर्मशाला अथवा सराहमां भेगा मळे छे अथवा नदीओ वगेरेना नावमां पण अनेक तरेहना लोको भेगा मळे छे तेम ए कुटुंब परिवार मळ्यो छे तेथी प्रीति करी आत्म सुखने भूलवुं ए शुं हितकारी छे ? ना ए तो हितकारी नथी पण अहितकारी छे ॥ ५ ॥

ज्यां स्वारथ त्यां ए सहु सगां,
विण स्वारथ दूर ।
पर काजे पापे भले,
तुं किम होये सूर ॥ रे जीव० ॥ ६ ॥

अर्थः—ज्यां सुधी जेने स्वारथ छे त्यां सुधी ते सर्व सगपण राखे छे पण स्वारथ थया पछी वेगला रहे छे तो ताहरे पोताना आत्म गुण शिवाय अन्य परिजनथी कांइ स्वारथ नथी तो परकाजे तुं शा वास्ते पापमां भळुं छुं अने पाप कार्यमां केम शूरो थाउं छुं ? ताहरूं शूरपणुं ताहरा रागादि शत्रुओने विदारवामां जो वापरूं तोज ताहरूं पुरुषपणानुं सांचुं पराक्रम कहेवाय पण कर्म शत्रुओने पोषवामां अने आत्म गुणोनी हानि करवामां शूरपणुं करे तेना जेवो मूर्ख कोण ? ॥ ६ ॥

तज बाहिर मेलावडो,
मिलियो बहु वार ।
जे पूरव मिलियो नहीं,
तिणस्युं धर प्यार ॥ रे जीव० ॥ ७ ॥

अर्थः—अॅाम अंगथी बाहिरनो मेलापरूप मेलावडो छोड के जे अनंतिवार मल्यो तो पण निवृत्तिरूप सुख लेश मात्र ताहरा हाथमां आव्युं नही माटे जे अनादियी नथी मल्यो एहवो शुद्धात्म धर्म अने शुद्धात्म धर्मना दातारथी प्यार कर के जेवडे परम निवृत्ति शाश्वत सुख पामे. ॥ ७ ॥

चक्री हरी वल प्रतिहरी,
तस विभव अमान ।
ते पण काले संहर्या,
तुज धन श्ये मान ॥ रे जीव० ॥ ८ ॥

अर्थः—चक्रवर्त्ती वासुदेव बलदेव अने प्रतिवासुदेव तेमने अथाह वैभव होय छे तेहवाने पण काले नाश कर्या तो ताहरूं धन अने वैभव शुं गणतीमां छे ? माटे हे पुद्गलीक धन अने बहुनी ममता छोडी आत्मिक धन अने बलपूर्ण प्रेम प्रतिते आदरो । ८ ॥

हा हा हुंतो तुं फिरे,
परियण चिंत ।
नरक पड्या कहे तूजने,
कोण करे निचिंत ॥ रे जीव० ॥ ९ ॥

अर्थः—तुं परिवारनी चिंता माटे हा माहरूं अमुक सगुं मांदुं पडुं मरण पाम्युं, अथवा तो आ रोगीने आ दरद छे अमुक रीसायुं, एम परिवारनी चिंतामां हा हा करतो फरे छे, पण तुं जे कर्म बांधे छे तेनी चिंता करतो नथी तो नरक पड्यां तने कोण निश्चिंत करशे ! माटे सांभी नजरे विचार कर के जे सुज्ञान तत्त्व पूर्ण प्रसाद आपे छे तेनुं फल तेज भोगवे पण बीजो कोइ भोगववा आवे तेम नथी. कोइ पुरुष हाथ अफेडो चोर होतो रे अने विचारे के क्यां जवानो छे ? पण ते चोर पछो हाथ आवे नहीं तेम पणं

साधना रूप उत्तम नरभव हाथ आव्यो छे अने तुं गफलत राखुं के शी फीकर छे नो नरभवादि सौ धर्म सामग्रीनो जोग मलवो दुर्लभ छे एम जाणवुं ॥ ९ ॥

रोगादिक दुःख ऊपने,
मन अरति मधेय ।
पूरव निज कृत कर्मनो,
ए अनुभव देय ॥ रे जीव० ॥ १० ॥

अर्थः—रोगादिक दुःख उपने तुं मनमां अरति न दहीश केमके पूर्वे निज कृत कर्मनो एहवो अनुभव छे. वली तुं निज करे आरोग्य [illegible] [illegible] नरव एं नो ए अर्थ देह संभालना आ पण न [illegible] पुंति संभालवानी वेद के [illegible] [illegible] [illegible] माटे साहसी आरोग्य शास्त्रनाले संभाल के सेवा [illegible] [illegible] [illegible] मगटे ॥ १० ॥

एह शरीर असाश्वतो,
खोतामें सौभ्रेन ।
प्रीत किसि ने उपरे,
जे स्वारथवंत ॥ रे जीव० ॥ ११ ॥

अर्थ—[illegible]
[illegible]
[illegible]

रहेला पदार्थोमां विसरी रह्यो छे पण तने हितकारी थतो नथी. माटे शुद्धात्मगुणमां अने शुद्धात्म तत्त्व दातारमां प्रीति कर के जेथी अनंति प्रीत ताहरी ताहरामां थशे ॥११॥

ज्यां लगे तुज इण देहथी,
छे पूरव संग।
त्यां लगे कोटि उपायथी,
नवि थाये भंग ॥ रे जीव० ॥ १२ ॥

अर्थः—ज्यांसुधी आ देहथी ताहरो पूर्ण कर्म थशे संग छे त्यांसुधी क्रोडो उपायथी पण ए देहनो भंग थवानो नथी अने तुं तो क्षायिक अभंग अंगवालो छुं ॥ १२ ॥

आगल पाछल चहुं दिने,
जे विणसी जाय।
रोगादिकथी नवि रहे,
क्रोध कोटि उपाय ॥ रे जीव० ॥ १३ ॥

अर्थः—देह तो आगल पाछल चार दिने निश्चय विनाश पामवावाली छे अने रोगादि टालवा क्रोडो उपाय करवाथी पण रहे एवी नथी ॥ १३ ॥

अंते पण एने तज्यां,
थाये शिव सुख।
ते जो छूटे आपथी,
तो तुज श्यो दुःख ॥ रे जीव० ॥ १४ ॥

अर्थः—आखर पण देहनुं ममत्व छोडवाथीज नियमा शिवसुख थाय छे तो ते देह आपथी छूटे तेमां तुजने शुं दुःख छे? देहना ममत्ववडेज अनेक जातना कर्म रोग अने दुःख खडा थयां छे तो ते ममत्व तजवाथीज सुख थाय एमां शुं शंका छे? ॥ १४ ॥

ए तन विणसे ताहरे,
नवि कोई हाण ।
जो ज्ञानादिक गुणतणो,
तुज आवे झाण ॥ रे जीव० ॥ १५ ॥

अर्थः—जो तने निज ज्ञानादिक गुणनुं ध्यान आवे अने थीर रहे तो ए देह विणसतां ताहरी कोइ प्रकारनी हानि नथी ॥ १५ ॥

तुं अजरामर आतमा,
अविचल गुण राण ।
क्षण भंगुर जड देहथी,
तुज किहां पिछाण ॥ रे जीव० ॥ १६ ॥

अर्थः—तुं जरा रहित अमर आत्म तत्त्व छे तुं ताहरा ज्ञान चारित्र कर्त्ता भोक्ता ग्राहकता व्यापकता आदि अनंत अविचल गुणोने राजा छे अने तुं पोतानो भूलथी ए गुणो मलीन कर्युं तो शोक शा उपरांतनो ताहरा गुणो मलीन करी शकते छे? माटे गुणो शुद्ध अने थीर राखी अमर

गुणोमां राज्य कर परमानंद भोगी था. एहवा क्षण भंगुर अने जड देहथी तें श्यो गुण थीडागी दोस्ती राखी छे?॥१६॥

छेदन भेदन ताडना,

वध बंधन दाह ।

पुद्गलने पुद्गल करे,

तुं अमर अगाह ॥ रे जीव० ॥ १७ ॥

अर्थः—देह उपर छेदन भेदन ताडन तर्जन वध बंधन दाह आदि जे जे वेदना थाय छे ते पुद्गलने पुद्गल करे पण तुं तो अमर अने कोइने ग्रहवा पकडवामां न आवुं एहवो छुं तो पर पुद्गल अथिर वस्तुनो ममत्व शा वास्ते करुं छुं ? ॥ १७ ॥

पूर्व कर्म उदये सही,

जे वेदना थाय ।

ध्यावे आतम तिण समे,

ते ध्यानी राय ॥ रे जीव० ॥ १८ ॥

अर्थः—पूर्व कर्म उदय वशे शरीर उपर जे जे वेदना थाय ते समय जे जीव आत्मानो अक्षय अवेदक गुण ध्याय तेज ध्यानी राजा समजवो ॥ १८ ॥

ज्ञान ध्याननी वातडी,

करणी आसान ।

अंत समे आपद पड्यां,

विरला करे ध्यान ॥ रे जीव० ॥ १९ ॥

अर्थः—ज्ञान ध्याननी वात करवी सुगम छे पण कोइ शुभाशुभ उदय आव्ये, अंत समय आफत पड्ये विरलाज ध्यान राखे छे माटे कोइ समय पण स्वसमय चूकवो नही ॥ १९ ॥

अरति करी दुःख भोगवे,
परवश जिम कोर ।
तो तुज जाणपणातणो,
गुण केवो धीर ॥ रे जीव० ॥ २० ॥

अर्थः—अशुभ कर्म उदय आव्ये पर वशता मानी आदरी कीरती पेठे अरति करी तुं दुःख भोगवुं तो ताहरा जाणपणानुं धैर्य शुं रह्युं ? माटे आत्म अंग अखंड अभंग जाणी धैर्य आदरी दीन थवुं नही ॥ २० ॥

शुद्ध निरंजन निरमलो,
निज आतम भाव ।
ते विणसे कहे दुःख किशो,
जे मिलियो आव ॥ रे जीव० ॥ २१ ॥

अर्थः—ताहरो शुद्ध निर्मल के० कर्मरज मळे नही एहवो शुद्धात्म भाव छे [illegible] निश्चय कर ते मांहे रमण कर, पण कर्म नडे आवी [illegible] पुद्गल पर्याय विणसवामां [illegible] ? [illegible] अने मोह दुःख माने ते [illegible] नवो भाव छोडी दे अने

जो कदापि जन्म मरण अने परिसहादिथी डरतो होउं तो अढार पापस्थानने जडमूल सहित पहेलेथी उखेडी फेंक एटले ते परिसहो आववाना नथी. पर द्रव्यमां अहंपणानो भर्म भेदज्ञाननी शक्ति वडे मथमथीज दूर करवो ए परमोत्तम इलाज छे ॥ २१ ॥

देह गेह भाडातणो,
ए आपणो नाहि ।
तुज गृह आतम ज्ञान ए,
तिणमांहे समाहि ॥ रे जीव० ॥ २२ ॥

अर्थः—देह ए भाडातुं घर छे पण आपणुं नथी. ताहरूं घर तो आत्मज्ञान सहित स्वप्रदेश रूप सत्ता भूमि छे. ते मांहे तुं समाइजा ! पण पुद्गल पर्याय रूप परघरमां ताहरो समावेश नथी ॥ २२ ॥

मेतारज सूकोसलो,
वली गजसुकुमाल ।
सनतकुमार चक्री परे,
तन ममता टाल ॥ रे जीव० ॥ २३ ॥

अर्थः—मेतारज मुनि, सुकोसल मुनि, गजसुकुमाल मुनि वली सनतकुमार चक्री के जेणे मथमथीज देहनी ममता त्यागी हती तो उपसर्ग आव्ये पण रूडी रीते अचल-अडोल आत्म शुद्धतामां मग्नपणे रह्या. तेम तुं पण आत्म शुद्धतामां थिर ममता आदर अने देहनी ममता टाल ॥ २३ ॥

अर्थः—ज्ञान ध्याननी वात करवी सुगम छे पण कोइ शुभाशुभ उदय आव्ये, अंत समय आफत पड्ये विरलाज ध्यान राखे छे माटे कोइ समय पण स्वसयम चूकवो नहीं ॥ १९ ॥

अरति करी दुःख भोगवे,
परवश जिम कीर ।
तो तुज जाणपणातणो,
गुण केवो धीर ॥ रे जीव० ॥ २० ॥

अर्थः—अशुभ कर्म उदय आव्ये पर वशता मानी आदरी कीरनी पेठे अरति करी तुं दुःख भोगवुं तो ताहरा जाणपणानुं धैर्य शुं रयुं ? माटे आत्म अंग अखंड अभंग जाणी धैर्य आदरी दीन थवुं नहीं ॥ २० ॥

शुद्ध निरंजन निरमलो,
निज आतम भाव ।
ते विणसे कहे दुःख किशो,
जे मिलियो आव ॥ रे जीव० ॥ २१ ॥

अर्थः—ताहरो शुद्ध निर्मल के० कर्मरज मळे नहीं एहवो शुद्धात्म भाव छे ते [illegible] निश्चय कर ते मांहे रमण कर, पण कर्म [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पर्याय विणशवामां [illegible] [illegible] [illegible] ? [illegible] [illegible] मिले अने कोइ दुःख माने ते [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कर्म भाव छोडी दे अने

जो कदापि जन्म मरण अने परिसहादिथी डरतो होउं तो अढार पापस्थानने जडमूल सहित पहेलेथी उखेडी फेंक एटले ते परिसहो आववाना नथी. पर द्रव्यमां अहंपणानो भर्म भेद-ज्ञाननी शक्ति वडे प्रथमथीज दूर करवो ए परमोत्तम इलाज छे ॥ २१ ॥

देह गेह भाडातणो,
ए आपणो नाहि ।
तुज गृह आतम ज्ञान ए,
तिणमांहे समाहि ॥ रे जीव० ॥ २२ ॥

अर्थः—देह ए भाडानुं घर छे पण आपणुं नथी. ताहरूं घर तो आत्मज्ञान सहित स्वप्रदेश रूप सत्ता भूमि छे. ते मांहे तुं समाइजा ! पण पुद्गल पर्याय रूप परघरमां ताहरो समावेश नथी ॥ २२ ॥

मेतारज सूकोसलो,
वली गजसुकुमाल ।
सनतकुमार चक्री पेरे,
तन ममता टाल ॥ रे जीव० ॥ २३ ॥

अर्थः—मेतारज मुनि, सुकोसल मुनि, गजसुकुमाल मुनि वली सनतकुमार चक्री के जेणे प्रथमथीज देहनी ममता त्यागी हती तो उपसर्ग आव्ये पण रूडी रीते अचल अडोल आत्म शुद्धतामां मग्नपणे रह्या. तेम तुं पण आत्म शुद्धतामां थिर थइने अंदर अने देहनी ममता टाल ॥ २३ ॥

अर्थः—ज्ञान ध्याननी वात करवी सुगम छे पण कोइ शुभाशुभ उदय आव्ये, अंत समय आफत पड्ये विरलाज ध्यान राखे छे माटे कोइ समय पण स्वसमय चूकवो नहीं ॥ १९ ॥

अरति करी दुःख भोगवे,
परवश जिम कीर ।
तो तुज जाणपणातणो,
गुण केवो धीर ॥ रे जीव० ॥ २० ॥

अर्थः—अशुभ कर्म उदय आव्ये पर वशता मानी आदरी कीरनी पेठे अरति करी तुं दुःख भोगवुं तो ताहरा जाणपणानुं धैर्य शुं रयुं ? माटे आत्म अंग अखंड अभंग जाणी धैर्य आदरी दीन थवुं नहीं ॥ २० ॥

शुद्ध निरंजन निरमलो,
निज आतम भाव ।
ते विणसे कहे दुःख किशो,
जे मिलियो आव ॥ रे जीव० ॥ २१ ॥

अर्थः—ताहरो शुद्ध निर्मळ के० कर्मरज मळे नहीं एहवो शुद्धात्म भाव छे ते [illegible] निश्चय कर ते मांहे रमण कर, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पुद्गल पर्याय विणसवामां [illegible] [illegible] ? [illegible] [illegible] जे अने कोइ दुःख [illegible] ते [illegible] [illegible] [illegible] कर्म भाव छोडी दे अने

जो कदापि जन्म मरण अने परिसहादिथी डरतो होउं तो अढार पापस्थानने जडमूळ सहित पहेलेथी उखेडी फेंक एटले ते परिसहो आववाना नथी. पर द्रव्यमां अहंपणानो भर्म भेद-ज्ञाननी शक्ति वडे मदमर्दीने दूर करवो ए परमोत्तम इलाज छे ॥ २१ ॥

देह गेह भाडातणो,
ए आपणो नाहि ।
तुज गृह आतम ज्ञान ए,
तिणमांहि समाहि ॥ रे जीव० ॥ २२ ॥

अर्थः—देह ए भाडानुं घर छे पण आपणुं नथी. ताहरूं घर तो आत्मज्ञान सहित स्वप्रदेश रूप सत्ता भूमि छे. ते मांहे तुं समाइजा ! पण पुद्गल पर्याय रूप परघरमां ताहरो समावेश नथी ॥ २२ ॥

मेतारज सुकोसलो,
वली गजसुकुमाल ।
सनतकुमार चक्री परे,
तन ममता टाल ॥ रे जीव० ॥ २३ ॥

अर्थ—मेतारज मुनि, सुकोशल मुनि, गजसुकुमाल मुनि तथा सनत्कुमार चक्री ए तेमणे मरणांत देहनी ममता त्यागी हती तो उपसर्ग आवे पण करी तेवे अवसर आतम अनुभव ज्ञानमां रमवुं लेश ते पण जन्म मरणमां फरि पडवा अवसर आवे देहनी ममता टाळ ॥ २३ ॥

कष्ट पड्यां समता रमे,
निज आतम ध्याय ।
देवचंद्र तिण मुनि तणा,
नित वंदु पाय ॥ रे जीव० ॥ २४ ॥

अर्थः—देवचंद्र मुनि कहे छे के कष्ट आव्या छतां पण पोताना द्रव्य क्षेत्र काळ भावमां संतोष राखी समता धरे एटले आत्म शुद्धता ध्याय तेवा मुनिना चरणकमळ वंदु छुं ॥२४॥

॥ ढाल ४ थी ॥

॥ प्राणी धरीए संवेग विचार ॥ ए देशी ॥

ज्ञान ध्यान चारित्रने रे,
जो दृढ करवा चाह ।
तो एकाकी विहरतां रे,
जिनकल्पादि साय रे
प्राणी एकल भावना भाव,
शिव मारग साधन दाव रे ॥
॥ प्राणी० ए आंकणी ॥ १ ॥

अर्थः—जे मुनि ज्ञान ध्यान अने चारित्रने दृढ करवा चहाय तो ते मुनि एकाकी विचरतो जिनकल्प आदि साय के० पकडे-आदरे. ए माटे हे प्राणी ! तुं एकत्वपणानी भावना भाव. एज मोक्षमार्ग साधवानो दाव छे ॥ १ ॥

साधु भणी गृहवासनी रे,
छुटी ममता तेह ।
तो पण गच्छवासीपणो रे,
गण गुरू पर छे नेहरे ॥ प्राणी० ॥ २ ॥

अर्थः—साधुने घरवासनी ममता तो छूटी पण गच्छवासीओना समुदाय उपर स्नेह होय छे, ते पण शुभ कर्मबंधनुं कारण थइ जीवने संसारमां रोके छे ॥ २ ॥

वन मृगनी पेरे नेहथीरे,
छांडि सकल प्रतिबंध ॥
तुं एकाकी अनादिनो रे,
किणथी तुज प्रतिबंधरे ॥ प्राणी० ॥ ३ ॥

अर्थः—हे रे वनमृगनी पेरे गच्छ आदि सर्व प्रतिबंध छोडी एकाकी विचर. [illegible] छे. तुं अनादिनो एकाकी छुं. ताहरे कोना उपरनो प्रतिबंध छे ? ॥ ३ ॥

शत्रु मित्रना संबंधो रे,
पाम्यो वार अनंत ।
कोण स्वजन दुरजन किस्यो रे,
पाले साधुनो अंतरे ॥ ४ ॥ प्राणी० ॥ ४ ॥

अर्थः—जीवनां अनंत जीवोनी साथे शत्रु अने मित्रता अनंत वार थई गयेली छे तो हवे कोण स्वजन अने कोण दुरजन ? कारण सर्व पुद्गल संबंधनो अंत छे ॥ ४ ॥

वांधे करम जीव एकलो रे,
भोगवे पण ते एक ।
किण ऊपर किण वातनी रे,
राग द्वेषनी टेक रे ॥ प्राणी० ॥ ५ ॥

अर्थः—जीव एकलो पोते पोताना अशुद्ध परिणामे
बांधे छे अने ते उदय आव्ये पोते एकलोज भोगवे छे.
अन्य कोना उपर अने कई वातनी राग द्वेषनी टेव राखवी ॥५

जो निज एकपणुं ग्रहे रे,
छोडी सकल परभाव ।
शुद्धातम ज्ञानादिशुं रे
एक स्वरूपे भाव रे ॥ प्राणी० ॥ ६ ॥

अर्थः—जो आत्मा अनंत लक्षणवालो एक ज्ञायक
पोते छुं, ए सिवाय अन्य ते हुं नथी, ज्ञायकता सिवाय
अन्य मने नथी, पुद्गलादि अन्य पदार्थो माहरा थई के
कर्ता नथी, अन्य पदार्थ कोइ पण माहरा माटे नथी, माह
रानी के शुभ आश्रित नथी, तेम माहरा के माहरामां नथी
एम जाणी मैं विभाव छोडी हुं एकज नित्य अविनाशि शुद्ध
गुण पर्यायनो एक पिंड छुं एम एकतां मटे तो अन्य द्रव्य
गुण पर्यायना शुभाशुभ संकल्प विकल्पो विलय थाय अने
निर्विकल्प समाधि पामे. ए माटे आत्माना शुद्ध ज्ञानादि
गुणोनुं एक अभेदपणुं भाव ॥ ६ ॥

आव्यो पण तुं एकलो रे,
जाईश पण तुं एक ।
तो ए सर्व कुटुंबथी रे,
प्रीत किसि अविवेक रे ॥ प्राणी० ॥ ७ ॥

अर्थः—तुं अहिंआं एकलोज आव्यो छुं अने एकलोज जईश तो आ अदि कुटुंब अने अन्य अनेक पदार्थोथी हे अविवेकी ! तुं शा माटे प्रीति राखुं छुं ? ॥ ७ ॥

वन मांहे गज सिंहादिथी रे
विहरतां न टले जेह ।
जिण आसन रवि आथमे रे,
तिण आसन निशि छेहरे ॥ प्राणी० ॥ ८ ॥

अर्थः—मुनि वनमां गज सिंहादि देखी भय पामी पाछो हठे नहीं पण विहार करतां जे आसने रवि अस्त थाय तेज आसने निर्भयपने रहि रात्री पूरी करे ॥ ८ ॥

आहार ग्रहे तप पारणेजो,
करमां लेप विहीन ।
एक वार पाणी पोअतां रे,
वनचारी चित्त अदीनरे ॥ प्राणी० ॥ ९ ॥

अर्थः—मुनि तपने पारणे स्वाद आदिकनी लोलुपता दूरादिक सर्व छैव ग्रहेन संयम अर्थे दिनमां एक वार अ-

हारले अने एकज वार पाणी पीए अने वनचारी पेठे अदीन-
मुनि एकलो विचरे ॥ ९ ॥

एह दोष पर ग्रहणथीरे
पर संगे गुण हाण ।
पर धन ग्राही चोर ते रे,
एकपणो सुखखाण रे ॥ प्राणी० ॥ १० ॥

अर्थः—जे जे दोषो छे ते पुद्गल पर्याय ग्रहणता,
व्यापकता, रक्षकता, कर्ता, भोक्ता आदिपणाथी उपज्या छे
परंतु पर पर्यायनी ग्राहकता व्यापकता रक्षकता आदि छोडी
शुद्धात्म तत्वनुं एकपणुं थडे तो ते अनंत सुखनी खाण छे
पण पर संगे तो गुणोनी हानि थाय छे माटे परसंग तजी
एक शुद्धात्म भावमां रमणता रहेवुं तेज एकत्वपणुं अनंत
सुख खाण छे. जे पर वस्तु पर धन ग्रहे ते चोर जाणवो,
पण पोतानी वस्तु भोगवे ते निर्भयपणे सहजे सुखमां वर्ते
तेम आत्मा पर परीणति ग्रहणता तजी ज्ञानादिक निज परि-
णतिमां ग्राहकता व्यापकता रक्षकता कर्ता भोक्ता आदिपणे
वर्ते तोज शाश्वत समाधिमां मग्न रहे ॥ १० ॥

पर संजोगथी बंध छेरे,
पर वियोगथी मोक्ष ।
तेणे तजी पर मेलावडोरे,
एकपणो निज पोखे ॥ प्राणी० ॥ ११ ॥

अर्थः—पर संजोगे बंध छे अने पर छोडवाथी मुक्ति

छे. ते माटे पर मेलावडो तजी पोताना एकपणाने जाणी ज्ञानादिक गुणोने पुष्ट कर ॥ ११ ॥

जन्म न पाम्यो साथ कोरे,
साथ न मरशे कोय ।
दुःख वहेंचवा को नहींरे,
क्षणभंगुर सहु लोयरे ॥ प्राणी० ॥ १२ ॥

अर्थः—कोइ साथे मलाइ करी जन्म पाम्यो नथी तेम मर्यो पण नथी तेम दुःख वहेंचवा पण कोइ समर्थ नथी पण जेने जेवां जन्म मरण दुःख आदिनो उदय होय तेवोज ते भोगवे सर्व जीवनां शरीर क्षणभंगुर छे माटे अक्षय आत्म अंगमां पोताप्णुं जाणी एकत्वपणे थिर रहो ॥१२॥

परिजन मरतो देखीनेरे,
शोक करे जन मूढ ।
अवसरे वारो आपणोरे,
सहु जननी रूढरे ॥ प्राणी० ॥ १३ ॥

अर्थः—परिवारमांथी कोइने मरतो देखी मूढ पुरुष शोक करे छे वली अवसरे सर्वनो तेम आपणो एज वारो छे एम जाणीने परिजन अने शरीर रुपपर द्रव्यमां ममता करता नथी ते अखंड शुद्ध निज आत्म स्वभाव जाणी निर्भय निराकुल रहे छे ॥ १३ ॥

सुरपति चक्री हरी वलीरे,
एकला परभव जाय ।

अर्थः—करकंडु मुनि, नमिराज ऋषी, दुम्मुह आदि ऋषीश्वरोने गाईए, वळी मृगापुत्र हरिकेशी मुनि के जेणे सत्पार्थ मुनिपणुं आदर्युं तेना चरणकमल हुं नित्ये प्रत्ये वंदु छुं ॥ १६ ॥

साधु चिलाती सुत भलोरे,
वलो अनाथी तेम ।
एम मुनि गुण अनुमोदतांरे,
देवचंद्र सुख खेमरे ॥ प्राणी० ॥ १७ ॥

अर्थः—वळी रुडो चिलातीपुत्र नामा साधु वळी अनाथी आदि निर्ग्रंथना गुणोनी अनुमोदना करतां देवचंद्र मुनि कहे छे के क्षेम कुशलना शिवपद पामीए ॥ १७ ॥

॥ ढाल ५ मी ॥

इणिपरे चंचल आउखुं जीव जाणोरे ॥ ए देशी ॥

चेतन ए तन कारिमो तुमे ध्यावोरे,
शुद्ध निरंजन देव ।
भविक तुमे ध्यावोरे,
शुद्ध स्वरूप अनूप ॥ भविक० ॥ १ ॥

अर्थः—हे चेतन ! आ शरीर कारमुं छे एटले क्षणमां छे अने क्षिणमां नहीं, क्षिणमां निरोगी अने क्षिणमां रोगाक्रांत, क्षिण सबळ निर्बल एम अथिर परीणतिवाळुं ए शरीर

तेथी कारमुं छे परवस्तु छे. माटे हे भवि ! तमे एनी ममता अने स्नेह संभाल छोडी शुद्ध निरंजन आत्मदेवने ध्यावो पोताना शुद्ध स्वरूपनो अनुपम अनुभव अभ्यास करो ॥१॥

नरभव श्रावक कुल लह्यो ॥ तु० ॥
लाधो समकित सार ॥ भविक० ॥
जिन आगम रुचिशुं सुणो ॥ तु० ॥
आलस निंद निवार ॥ भविक० ॥ २ ॥

अर्थः—उत्तम आर्य क्षेत्रमां नरभव श्रावककुल सद्गुरु अने सत्शास्त्र योग पाम्या के जे दशे द्रष्टांत पामवो दुर्लभ छे. पूर्वी सामग्री पामी विषय प्रमाद वशे फोगट न गमावो अने सार समकित पण पाम्या छो माटे आलस अने निद्रा छोडी जीनेश्वरे प्ररुपेलुं आगम के जेमां सम्यक्पराक्रम करोडी सकल कर्मनो नाश करी परमनिवृति रूप मोक्षपदनी प्राप्ति थाय ए आदि भाव प्रकाश्या छे ते आगम परम प्रेम रुचि आदर सहित सांभलो. वली आगममां पंचास्तिकायना अने नव तत्त्वना भाव प्रत्यक्षपणे सिद्ध करी देखाड्या छे ते सांभलो शंकादि दोष टाली निःशंक निर्भयपणे मोक्षमार्गे चालो ॥ २ ॥

समयांतर सहभावनो ॥ तु० ॥
दर्शन ज्ञान अनंत ॥ भ० ॥
आतम भावे थिर सदा ॥ तुं० ॥
अक्षय चरण महंत ॥ भ० ॥ ३ ॥

अर्थः—जेने सम्यांतर वस्तुना छता आत्मशाश्वता भावनुं अनंत दर्शन ज्ञान छे ते आत्मभावे सत्तापणे सदा थिर छे. अने शुद्धनयदृष्टे स्वस्वभावमां रमण करीये तो दर्शन ज्ञान चारित्र सदा आत्मभावथी अभेद अने प्रगटपणे थिर छे. ते अक्षय महा स्वभावाचरण सकळ समय परमानंद आपवावाळुं छे ॥ ३ ॥

तिन लोक त्रिहुं कालनी ॥ तु० ॥
परिणति तीन प्रकार ॥ भ० ॥
एक समे जाणे तिणे ॥ तु० ॥
नाण अनंत अपार ॥ भ० ॥ ४ ॥

अर्थः—आत्मा त्रण लोकमां रहेला द्रव्योनी उत्पाद व्यय ध्रुवरूप त्रण कालनी परिणति सकळ समय समकाळे जाणे छे तेथी तेनुं अंत रहीत अपार ज्ञान छे ॥ ४ ॥

सकल दोपहर शाश्वतो ॥ तु० ॥
धीरज परम अदीन ॥ भ० ॥
सूक्षम तनु बंधन विना ॥ तु० ॥
अवगाहना स्वाधीन ॥ भ० ॥ ५ ॥

अर्थ—आत्मा रागद्वेष अने अज्ञानादि सकळ दोषोने हरनारो पोते स्वयंसिद्ध शाश्वतो छे, वळी परम अकल अनंत वीर्यवंत अने—अक्षर तत्त्वथी दीनता रहित छे. कार्मण आदि सूक्ष्म तनु बंधन विना जेनी अवगाहना असंगपणे पोताने स्वाधीन छे ॥ ५ ॥

पुद्गल सकल विवेकथी ॥ तु० ॥
शुद्ध अमूर्ति रूप ॥ भ० ॥
ईंद्रिय सुख निस्पृह थई ॥ तु० ॥
अकपाय अवाह स्वरूप ॥ भ० ॥ ६ ॥

अर्थः—पुद्गल ते पोताना वर्ण गंध रस स्पर्श सडण पडण विध्वंसन ग्रहण त्याग ए आदि अनेक रूपी लक्षण सहित छे. एथी भिन्न आत्म ज्ञान दर्शन रमण सुख वीर्य दान लाभ भोग उपभोग उपभोगादि अनेक अरूपी अमूर्त लक्षण युक्त सदा छे. कोइ काले पण ते पुद्गलादि अन्य द्रव्यना विशेष लक्षणवालो हतो नहीं, छे नहीं, थशे नहीं माटे परलक्षणे पोतानो न जाणो. आत्मा स्वलक्षणे अस्ति परलक्षणे नास्ति रूप छे. एम परम विवेके स्वपर भिन्नता जाणी पर ममता आदि त्यागी आपणा द्रव्य क्षेत्र काल भावमां आपापणानी रूडी मति करी थिर उपयोगे अखंड समर आत्मशुद्धना ध्यावो, आत्म शुद्धतामां उपयोग रमावो, ईंद्रिय सुखथी निस्पृह थई कषायो अने कषायोनां कारण तजी अबाधित शुद्धात्म स्वरूपमां लक्ष थिर करो ॥ ६ ॥

द्रव्यतणा परिणामथी ॥ तु० ॥
अगुरु लघुत्व अनित्य ॥ भ० ॥
सत्य स्वभावमयो सदा ॥ तु० ॥
असत्य तजो तुमे मित्त ॥ भ० ॥ ७ ॥

अर्थः—द्रव्यना [illegible] अगुरुलघु [illegible]

नवे नवे समये नवा नवा पर्याये स्वद्गुण हानिवृद्धिपने ध्रुव छतां उत्पाद व्ययपणे परिणमे छे. एवो अनित्य स्वभाव छतां पण नित्य स्वभाववालो अने स्याद्वाद परिणामी आत्म स्वभाव ध्यावो, पोताना द्रव्य क्षेत्र काल अने भावे सदा सत्य स्वभाववंत आत्मा छे अने पर द्रव्य क्षेत्र काल अने भावे असत्य छे. माटे हे मित्र ! असत्य तजि सत्य स्वभावमयी आत्म स्वरुप ध्यावो ॥ ७ ॥

निज गुण रमतो राम ए ॥ तु० ॥
सकल अकल गुण खाण ॥ भ० ॥
परमातम पर ज्योति ए ॥ तु० ॥
अलख अलेप वखाण ॥ भ० ॥ ८ ॥

अर्थः—आत्मा पोताना शुद्ध गुणमां रमतो पोतेज राम छे, एटले परम आरामी छे. वली बुद्धियी कली शकाय नहीं एहवो अकल अने सकल गुणनी खाण छे. वली ए परमात्मा छे, परमभावनो भोगी छे, सूर्य चंद्र तारा नक्षत्र अग्नि आदिनी व्यावहारिक ज्योतियी पर एटले ज्ञान दर्शन रुप अलौकिक परम ज्योतिवंत छे, वली छद्मस्थपने पूर्ण लक्षमां आवे नहीं एहवो छे. वली जेम आकाशने कर्दमादि लेप लागे नहीं तेम आत्म अंगे पुद्गल लेप लागे नहीं एहवो छे, पण जे मूढो पुद्गलमां पोतापणुं जाणे माने छे तेने मिथ्यात्व रागादि लेप लाग्यो कहिये. पण शुद्धनये जेने स्वस्वरूपमां लक्ष छे तेने कर्म लेप लागतो नथी एहवो आत्मा सिद्धांतोमां वखाण्यो छे ॥ ८ ॥

पंच पुज्यथी पूज्य ए ॥ लु० ॥
सर्व ध्येयथी ध्येय ॥ भ० ॥
ध्याता ध्यान ने ध्येय ए ॥ लु० ॥
निश्चे अभेद ए श्रेय ॥ भ० ॥ १ ॥

अर्थः—अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय अने साधु ए पंच परमेष्ठी पूज्य छे तेमने पूजवाथी स्वर्ग देवादिक शुभ गति पामे केमके प्रशस्त राग ते पण पुण्याश्रव रूप छे अने पोताना परमदेवने पूजवुं ते तो राग रहित शुद्धात्म भाव छे. तो शुद्धात्म भाव सेवनो पुरुष निर्वाण पद पामे. अरिहंत अने आचार्यादि तत्त्व उपदेशना दातार छे पण ते उपदेशने ग्रहण करवावाळो अने सेववावाळो आत्मा पोतेज पूज्य छे, वळि आत्मशुद्धता शिवाय जे अन्य ध्येयपणुं ध्यावुं ते शुभाशुभ बंध प्रकृतिने वधारवावाळुं छे अने सहज शुद्धात्म स्वरूपनुं ध्यावुं ते शुभाशुभ बंध विना निर्वाण पद आपनारुं छे. माटे सकल ध्येयमां शुद्धात्म भाव ते परम ध्येय छे. शुद्ध ध्यानने ध्यावावाळो पोते आत्माज छे अने उपयोग शुद्ध ध्येयमां थिर करवो ते उपयोग पोतानोज छे अने शुद्ध ध्येय ते पोतानुंज शुद्ध स्वरूप छे, एम ध्याता ध्यान अने ध्येय व्यवहारे भेद कहीये अने निश्चयनये ए त्रणे भाव आत्माथी अभेद पणे छे एटले आत्मानाज छे तेज श्रेय के० कल्याणकारी छे ॥ १ ॥

अनुभव करतां एहनो ॥ लु० ॥
थाए परम प्रमोद ॥ भ० ॥

एक रूप अभ्यासथुं ॥ तु० ॥
शिव सुख छे तसु गोद ॥ भ० ॥ १० ॥

अर्थः—आत्म शुद्धतानो अनुभव करतां परम प्रमोद उपजे अने पुद्गल विषय अनुभव रूप अशुद्धता टळे. जे मुनि अनंत लक्षणमयी पोताना ज्ञायक एक रूपनो अभ्यास करें-थाय तेने मोक्ष सुख पोतानी गोदमां एटले पोताना खोला-मांज छे ॥ १० ॥

बंध अबंध ए आतमा ॥ तु० ॥
करता अकरता एह ॥ भ० ॥
एह भोगता अभोगता ॥ तु० ॥
स्याद्वाद गुण गेह ॥ भ० ॥ ११ ॥

अर्थः—परद्रव्यना ममत्वथी बंधातो आत्मा द्रव्यकर्म तथा भावकर्म बांधे छे पण शुद्ध आत्मस्वरूप जाणी पर परिणामिकता त्याग्या पछी स्वस्वरूपमां रमे त्यारथी ते अबंध छे. वळी व्यवहारनयथी द्रव्यकर्म अगर पुद्गल वर्गणा, जीव वर्गणा जीव बांधे छे अने निश्चय नयथी पोताना स्निग्ध रूक्षगणे करी पुद्गल परमाणुओ अगर पुद्गल वर्गणा आपसमां पुद्गलो साथे बंधाय छे पण जीव, पुद्गलो साथे बंधातो नथी. व्यवहार नयथी जीव, द्रव्य कर्मनो अने गाम नगर घट पटादिनो कर्ता कहेवाय पण निश्चयनयथी गाम नगर के घट पट तथा द्रव्यकर्म पुद्गल वर्गणा आदिनो कर्ता जीव नथी. पण स्वस्वभावनो कर्ता छे. रागादि वरो पर गुण पर्यायनो भोगी जीव कहेवाय पण निश्चय नयथी

पर गुण पर्यायनो भोगी जीव नथी. अशुद्ध निश्चये रागादि अशुद्धतानो भोगी छे पण शुद्ध निश्चयनये पोतानुं शुद्ध स्वरूप जाण्या पछी पोताना ज्ञानानंद आदि अनंत शुद्ध स्वभावनो भोगी छे एम स्याद्वाद एज गुणनुं घर छे ॥ ॥ ११ ॥

एक अनेक स्वरूप ए तु० ॥
नित्य अनित्य अनादि ॥ भ० ॥
सदसद्भावे परिणम्या ॥ तु० ॥
मुक्त सकल उन्माद ॥ भ० ॥ १२ ॥

अर्थः—आत्मा पोताना परम चेतनत्व स्वभावे निश्चय अनंत पर्यायनो एक पिंड एक रूप छे अने ज्ञान दर्शन चरण सुख वीर्यादि के व्यवहारे अनेक रूप छे. द्रव्यार्थिक नये नित्य छे. नवा नवा पर्याय परिणमवे पर्यायार्थिकनये अनित्य छे. स्वद्रव्यादिके सत्य अने परद्रव्यादिके असत्य छे. एम सर्वे द्रव्यो सकल समय सदसद्भावे परिणम्या अनादि सिद्ध छे. माटे मोह मदिरानो उन्माद छोडी यथार्थ वस्तु स्वरूप जाणी परद्रव्यनी ममता छोडी शुद्धात्म तत्त्वमां लीन थवुं जोइए ॥ १२ ॥

जप तप करिया खपयकी ॥ तु० ॥
अष्ट करम न विलाय ॥ भ० ॥
ते सहु आतम ध्यानथी ॥ तु० ॥
क्षणमें खेरू थाय ॥ भ० ॥ १३ ॥

अर्थः—तप जप किरियानो खप करवाथी जे आठ कर्मनो नाश थाय नहीं ते आठे कर्मनो शुद्धात्म ध्यानवडे क्षणमां क्षय थाय छे ॥ १३ ॥

शुद्धातम अनुभव विना ॥ तु० ॥
बंध हेतु शुभ चाल ॥ भ० ॥
आतम परिणामे रम्या ॥ तु० ॥
एहज आस्रव पाल ॥ भ० ॥ १४ ॥

अर्थः—शुद्धात्म अनुभव विना शुभाशुभ सर्व आचरण ते कर्मबंधनां हेतु छे. जे जीव शुद्धात्म परिणामे रम्या तेने आस्रवरूप पाणी आववुं अटकाववाने पाल बांधी एटले शुभाशुभ पुद्गल दल अने शुभाशुभ पुद्गल परिणाम रस आवता रोकवाने संवर रूप आडी पाट बांधी एम जाणवुं ॥ १४ ॥

ईम जाणी निज आतमा ॥ तु० ॥
वरजो सकल उपाध ॥ भ० ॥
उपादेय अवलंबने ॥ तु० ॥
परम सहोदर साध ॥ भ० ॥ १५ ॥

अर्थः—एम जाणी सकल शुभाशुभ विभाव उपाधि छांडी एकलो सहज निज शुद्धात्म भाव रूप शुद्ध तत्त्व ध्यावो. शुद्ध आत्मभाव रूप उपादेय अवलंबने वर्त्तो परम महोदय सिद्धि पद साध्य साधो-सिद्ध थवो ॥ १५ ॥

भरत ईलासुत तेतली ॥ तु० ॥
ईत्यादिक मुनि वृंद ॥ भ० ॥

पर गुण पर्यायनो भोगी जीव नथी. अशुद्ध निश्चये रागादि अशुद्धतानो भोगी छे पण शुद्ध निश्चयनये पोतानुं शुद्ध स्वरूप जाण्या पछी पोताना ज्ञानानंद आदि अनंत शुद्ध स्वभावनो भोगी छे एम स्याद्वाद एज गुणनुं घर छे ॥ ॥ ११ ॥

एक अनेक स्वरूप ए तु० ॥
नित्य अनित्य अनादि ॥ भ० ॥
सदसद्भावे परिणम्या ॥ तु० ॥
मुक्त सकल उन्माद ॥ भ० ॥ १२ ॥

अर्थः—आत्मा पोताना परम चेतनत्व स्वभावे निश्चय अनंत पर्यायनो एक पिंड एक रुप छे अने ज्ञान दर्शन चरण सुख वीर्यादि के व्यवहारे अनेक रुप छे. द्रव्यार्थिक नये नित्य छे. नवा नवा पर्याय परिणमवे पर्यायार्थिकनये अनित्य छे. स्वद्रव्यादिके सत्य अने परद्रव्यादिके असत्य छे. एम सर्वे द्रव्यो सकल समय सदसद्भावे परिणम्या अनादि सिद्ध छे. माटे मोह मदिरानो उन्माद छोडी यथावत् वस्तु स्वरुप जाणी परद्रव्यनी ममता छोडी शुद्धात्म तत्त्वमां लीन थवुं जोइए ॥ १२ ॥

जप तप करिया खपथकी ॥ तु० ॥
अष्ट करम न विलाय ॥ भ० ॥
ते सहु आतम ध्यानथी ॥ तु० ॥
क्षणमें खेरू थाय ॥ भ० ॥ १३ ॥

अर्थः—तप जप किरियानो खप करवायी जे आठ कर्मनो नाश थाय नहीं ते आठे कर्मनो शुद्धात्म ध्यानवडे क्षणमां क्षय थाय छे ॥ १३ ॥

शुद्धातम अनुभव विना ॥ तु० ॥
बंध हेतु शुभ चाल ॥ भ० ॥
आतम परिणामे रम्या ॥ तु० ॥
एहज आस्रव पाल ॥ भ० ॥ १४ ॥

अर्थः—शुद्धात्म अनुभव विना शुभाशुभ सर्व आचरण ते कर्मबंधनां हेतु छे. जे जीव शुद्धात्म परिणामे रम्या तेने आस्रवरूप पाणी आवतुं अटकाववाने पाल बांधी एटले शुभाशुभ पुद्गल दल अने शुभाशुभ पुद्गल परिणाम रस आवता रोकवाने संवर रूप आडी पाळ बांधी एम जाणवुं ॥ १४ ॥

ईम जाणी निज आतमा ॥ तु० ॥
वरजो सकल उपाध ॥ भ० ॥
उपादेय अवलंबने ॥ तु० ॥
परम सहोदर साध ॥ भ० ॥ १५ ॥

अर्थः—एम जाणी सकल शुभाशुभ विभाव उपाधि टाळी एकलो सहज निज शुद्धात्म भाव रूप शुद्ध तत्त्व ध्याओ. शुद्ध आत्मभाव रूप उपादेय अवलंबने वर्त्तो परम महोदय सिद्धि पद साध्य साधो-सिद्ध करो ॥ १५ ॥

भरत ईलासुत तेतली ॥ तु० ॥
ईत्यादिक मुनि वृंद ॥ भ० ॥

पर गुण पर्यायनो भोगी जीव नथी. अशुद्ध निश्चये रागादि अशुद्धतानो भोगी छे पण शुद्ध निश्चयनये पोतानुं शुद्ध स्वरूप जाण्या पछी पोताना ज्ञानानंद आदि अनंत शुद्ध स्वभावनो भोगी छे एम स्याद्वाद एज गुणनुं घर छे ॥ ॥ ११ ॥

एक अनेक स्वरूप ए तु० ॥
नित्य अनित्य अनादि ॥ भ० ॥
सदसद्भावे परिणम्या ॥ तु० ॥
मुक्त सकल उन्माद ॥ भ० ॥ १२ ॥

अर्थः—आतमा पोताना परम चेतनत्व स्वभावे निश्चय अनंत पर्यायनो एक पिंड एक रूप छे अने ज्ञान दर्शन चरण सुख वीर्यादि के व्यवहारे अनेक रूप छे. द्रव्यार्थिक-नये नित्य छे. नवा नवा पर्याय परिणमवे पर्यायार्थिकनये अनित्य छे. स्वद्रव्यादिके सत्य अने परद्रव्यादिके असत्य छे. एम सर्वे द्रव्यो सकल समय सदसद्भावे परिणम्या अनादि सिद्ध छे. माटे मोह मदिरानो उन्माद छोडी यथा-वत् वस्तु स्वरूप जाणी परद्रव्यनी ममता छोडी शुद्धात्म तत्त्वमां लीन थवुं जोइए ॥ १२ ॥

जप तप करिया खपथकी ॥ तु० ॥
अष्ट करम न विलाय ॥ भ० ॥
ते सहु आतम ध्यानथी ॥ तु० ॥
क्षणमें खेरू थाय ॥ भ० ॥ १३ ॥

अर्थः—तप जप किरियानो खप करतायी जे आठ कर्मनो नाश थाय नहीं ते आठे कर्मनो शुद्धात्म ध्यानवडे क्षणमां क्षय थाय छे ॥ १३ ॥

शुद्धातम अनुभव विना ॥ तु० ॥
बंध हेतु शुभ चाल ॥ भ० ॥
आतम परिणामे रम्या ॥ तु० ॥
एहज आस्रव पाल ॥ भ० ॥ १४ ॥

अर्थः—शुद्धात्म अनुभव विना शुभाशुभ सर्व आचरण ते कर्मबंधनां हेतु छे. जे जीव शुद्धात्म परिणामे रम्या तेने आस्रवरूप पानी आवतुं अटकाववाने पाल बांधी एटले शुभाशुभ पुद्गल दल अने शुभाशुभ पुद्गल परिणाम रस आवता रोकवाने संवर रूप आडी पाल बांधी एम जाणवुं ॥ १४ ॥

ईम जाणी निज आतमा ॥ तु० ॥
वरजो सकल उपाध ॥ भ० ॥
उपादेय अवलंबने ॥ तु० ॥
परम सहोदर साध ॥ भ० ॥ १५ ॥

अर्थः—एम जाणी सकल शुभाशुभ विभाव उपाधि टाली एकलो सहज निज शुद्धात्म भाव रूप शुद्ध तत्व ध्याओ. शुद्ध आत्मभाव रूप उपादेय अवलंबने वली परम महोदय सिद्धि पद साध्य साधो-सिद्ध वरो ॥ १५ ॥

भरत ईलासुत तेतली ॥ तु० ॥
ईत्यादिक मुनि वृंद ॥ भ० ॥

पर गुण पर्यायनो भोगी जीव नथी. अशुद्ध निश्चये रागादि अशुद्धतानो भोगी छे पण शुद्ध निश्चयनये पोतानुं शुद्ध स्वरूप जाण्या पछी पोताना ज्ञानानंद आदि अनंत शुद्ध स्वभावनो भोगी छे एम स्याद्वाद एज गुणनुं घर छे ॥ ॥ ११ ॥

एक अनेक स्वरूप ए तु० ॥
नित्य अनित्य अनादि ॥ भ० ॥
सदसद्भावे परिणम्या ॥ तु० ॥
मुक्त सकल उन्माद ॥ भ० ॥ १२ ॥

अर्थः—आत्मा पोताना परम चेतनत्व स्वभावे निश्चय अनंत पर्यायनो एक पिंड एक रूप छे अने ज्ञान दर्शन चरण सुख वीर्यादि के व्यवहारे अनेक रूप छे. द्रव्यार्थिक नये नित्य छे. नवा नवा पर्याय परिणमवे पर्यायार्थिकनये अनित्य छे. स्वद्रव्यादिके सत्य अने परद्रव्यादिके असत्य छे. एम सर्वे द्रव्यो सकल समय सदसद्भावे परिणम्या अनादि सिद्ध छे. माटे मोह मदिरानो उन्माद छोडी यथा-वत् वस्तु स्वरूप जाणी परद्रव्यनी ममता छोडी शुद्धात्म तत्त्वमां लीन थवुं जोइए ॥ १२ ॥

जप तप करिया खपथकी ॥ तु० ॥
अष्ट करम न विलाय ॥ भ० ॥
ते सहु आतम ध्यानथी ॥ तु० ॥
क्षणमें खेरू थाय ॥ भ० ॥ १३ ॥

बृहत्कल्प सूत्रनी वाणी,

दीठी तेम कहाणीजी ॥ भा० ॥ २ ॥

अर्थः—ए पंच भावना मुनिओना मनने संवर निपजावनारी संवर भावनी खाण वखाणी छे अने एवुं वखाण बृहत्कल्प भाष्यमां जेम देख्युं तेम अहिंआं कयुं छे ॥ २ ॥

कर्म कतरणी शिव निसरणी,

ध्यान ठाण अनुसरणीजी ।

चेतन रामतणी ए घरणी,

भव समुद्र दुःख हरणीजी ॥ भा० ॥ ३ ॥

अर्थः—ए भावनाओ दुष्ट कर्मने कापवाने कतरणी समान, शिव महेलमां चडवाने निसरणी समान, शुद्ध ध्यान वधारवावाळी अने थिरता आपवावाळी छठी गुणठाणानी श्रेणिए चडवामां आधारभूत छे, आत्मानुं घर संभाळवा सुधारवावाळी माटे चेतन घरनी अने भव समुद्रना दुःखथी तारवा नाव अने झहाज समान छे ॥ ३ ॥

जयवंता पाठक गुण धारी,

राजसागर सुविचारीजी ।

निर्मल ज्ञान धरम संभाली,

पाठक सहु हितकारीजी ॥ भा० ॥ ४ ॥

अर्थः—कर्म शत्रुने जीतवावाळा जयवंता उत्तम गुण-

१ श्रीमद् देवचंद्रनी पंचभावनानुं स्तवन मळ्युं छे पण भाषांतर करवामां समय नथी.

धारी शुद्ध तत्त्व विचारवाला राजसागर नामा पाठक तेमना शिष्य निर्मल ज्ञान अने निर्मल धर्मना भंडार सहु सेने हितकारी ज्ञानधर्म नामना पाठक यती ॥ ४ ॥

राजहंस सद्गुरु सुपसाये,
देवचंद्र गुण गायजी ।
भविक जीव जे भावना भावे,
तेह अमित सुख पायजी ॥ भा० ॥ ५ ॥

जेसलमेरी शाह सुरागी,
वर्द्धमान वड भागीजी ।
पुत्र कलत्र सकल सोभागी,
साधु गुणना रागीजी ॥ भा० ॥ ६ ॥

नगर आमदथी भावना भाई,
ढालबंधमां गाईजी ।
भणशे गुणशे जे ए ज्ञाता,
लहेशे ते सुख शाताजी ॥ भा० ॥ ७ ॥

मन शुद्ध पंच भावना भावो,
पावन जिन गुण गावोजी ।
मन मुनिवर गुण संग रमावो,
सुख संपत्ति गृह थावोजी ॥ भा० ॥ ८ ॥

अष्ट प्रवचन मातानी सज्झायो.

॥ दोहा ॥

सुकृत कल्पतरु श्रेणिनी,
वर उत्तरकुरु भोमि ।
अध्यात्म रस शशि कला,
श्री जिन वाणी भोमि (नोमि?)॥ १ ॥
दोषपद पाटक सुगुरु,
पद वंदी अवदात ।
सार श्रमण गुण भावना,
गाइशुं प्रवचन मात ॥ २ ॥
जननी पुत्र हित शुभकरी,
तिम ए पवयण माय ।
चारित्र गुण गणवर्द्धनी,
निर्मल शिव सुखदाय ॥ ३ ॥
माय अठेली वरण करि,
मुनिवर सुणि धरंत ।
जे मुनि ना नहि छाडे,
ते मुने विपरंत ॥ ४ ॥

गुप्ति एक संवरमयी,
उत्सरंगीक परिणाम ।
शेषर निर्झर समितियी,
अपवादे गुणधाम ॥ ५ ॥
द्रव्ये द्रव्यत्त परणता,
भावे भाव चरित्त ।
भाव दृष्टि द्रव्यत्त क्रिया,
रीति लहो शिव मित्त ॥ ६ ॥
आतम गुण प्रागभावथी,
जे साधक परिणाम ।
समिति गुप्ति ते जिन कहे,
साध्य सिद्धि शिव ठाम ॥ ७ ॥
निश्चय करण रुचि थई
समिति गुप्तिधर साधि ।
परम अहिंसक भावथी,
आराधे निरुपाधि ॥ ८ ॥
परम महोदय साधवा,
जेह थया उजमाल ।
श्रमण भिक्षु माहण यति,
साहू जय गुणमाल ॥ ९ ॥

॥ ढाल पहेली ॥

प्रथम गोवालतणे भवेजी ॥ ए देशी ॥

प्रथम अहिंसक व्रततणोजी,
उत्तम भावना एह ॥
संवर कारण उपदिशीजी,
समता रस गुण गेह ॥
मुनीसर इरिया समिति संभार,
आश्रव कर तनु योगथीजी,
दुष्ट चपलता वार ॥ मुनीसर० ॥ १ ॥
काय गुप्ति उत्सर्गनोजी,
प्रथम समिति अपवाद ॥
इरिया ते जे चालवोजी,
धरि आगम विधिवाद. मुनी० ॥ २ ॥
ज्ञान ध्यान सिज्झायमांजी,
थिर बेठा मुनिराज ॥
श्याने चपलपणो करेजी,
अनुभव रस सुखराज ॥ मुनी० ॥ ३ ॥
मुनि ऊठे वसही थकीजी,
पामी कारण च्यार ।

जिन वंदन ग्रामांतरेजी,
के आहार निहार ॥ मुनी० ॥ ४ ॥
परम चरण संवर धरुजी,
सर्व जाण जिन दीठ ॥
शुचि समता मनि ऊपजेजी,
तिणे मुनिने ए ईठ ॥ मुनी० ॥ ५ ॥
राग बंध थिर भावथीजी,
ज्ञानविना परमाद ॥
वीतरागता ईहताजी,
विचरे मुनि गतप्रमाद ॥ मुनी० ॥ ६ ॥
ए शरीर भव मूल छे जी,
तसु पोषक आहार ।
जाव अयोगी नवि हुवेजी,
त्यां अनादि आचार ॥ मुनी० ॥ ७ ॥
कवलाहारे निहार छे जी,
ए सब अंग व्यवहार ।
धन्य अतनु परमातमाजी,
जिहां निश्चलता सार. मुनी० ॥ ८ ॥
[illegible] कृत कायकताजी,
[illegible] सुखकारी रूप ।

एम विचारी कारणेजी,
करे गोचरी तेह ॥ मुनी० ॥ ९ ॥

क्षमावंत दयालुआजी,
निस्पृही तनु नीराग ।
निर्विषयी गजगतिपरेजी,
विचरे मुनि महा भाग ॥ मुनी० ॥ १० ॥

परमानंद रस अनुभव्याजी,
निज गुण रमता धीर ।
देवचंद मुनि वंदतांजी,
लहिये भवजल तीर ॥ मुनी० ॥ ११ ॥

॥ ढाल बीजी ॥

॥ भावना मालती चूसीए ॥ ए देशी ॥

साधुजी समिति बीजी आदरो,
वचन निर्दोष परकासरे ।
गुप्ति उत्सर्गनो समिति ते,
मार्ग अपवाद सुविलासरे ॥ साधु० ॥ १ ॥

भावना बीजा महाव्रततणी,
जिन भणी सत्यता मूलरे ।

भाव अहिंसकता वधे,
सर्व संवर अनुकूलरे ॥ साधु० ॥ २
मोनधारी मुनि नवि वहे,
वचन जे आश्रव गेहरे ।
आचरण ज्ञानने ध्याननो,
साधक उपदिशे तेहरे ॥ साधु० ॥ ३ ॥
उदित पर्याप्ति जे वचननी,
ते करी श्रुत अनुसाररे ।
बोध प्राग्भावी सभायथी,
वलि करे जगत उपगाररे ॥ साधु० ॥ ४ ॥
साधु निज वीर्यथी परतणो,
नवि करे ग्रहणने त्यागरे ।
ते भणी वचन गुप्ति रहे,
एह उत्सर्ग मुनि मार्गरे ॥ साधु० ॥ ५ ॥
योग जे आश्रवपद हतो,
ते कर्यो निर्जरा रूपरे ।
लोहथी कंचन मुनि करे,
भावना भव्य चिद्रूपरे ॥ साधु० ॥ ६ ॥
आत्म हित पर हित कारणे,
आदरे पंच सिज्झायरे ।

ते भणी असन वसनादिका,
आश्रय सर्व अववायरे ॥ साधु० ॥ ७ ॥
जिन गुण स्तवन निज तत्त्वने,
जोड़वा करे अविरोधरे ।
देशना भव्य प्रतिबोधवा,
वायणा करण निज बोधरे ॥ साधु० ॥ ८ ॥
नय गम भंग निक्षेपथी,
स्वहित स्याद्वादयुत वाणरे ।
सोल दश चार गुणयु मिलि,
कहे अनुयोग सुपहाणरे ॥ साधु० ॥ ९ ॥
सूत्रने अर्थ अनुयोग ए,
बीय निर्युक्ति संयुत्तरे,
तीय भाष्ये नये भावियो,
मुनि वदे वचन एम तंतरे ॥ साधु० ॥ १० ॥
ज्ञान समुद्र समता भर्या,
संवरी दया भंडाररे ।
तत्त्व आनंद आस्वादता,
वंदिए चरण गुणधाररे ॥ साधु० ॥ ११ ॥
मोह उदये अमोही जिसा,
शुद्ध निज साध्य लयलीनरे ।

भाव अहिंसकता वधे,
सर्व संवर अनुकूलरे ॥ साधु० ॥ २ ॥
मौनधारी मुनि नवि वहे,
वचन जे आश्रव गेहरे ।
आचरण ज्ञानने ध्याननो,
साधक उपदिशे तेहरे ॥ साधु० ॥ ३ ॥
उदित पर्याप्ति जे वचननी,
ते करी श्रुत अनुसाररे ।
बोध प्राग्भावी सज्झायथी,
वलि करे जगत उपगाररे ॥ साधु० ॥ ४ ॥
साधु निज वीर्यथी परतणो,
नवि करे ग्रहणने त्यागरे ।
ते भणी वचन गुप्ति रहे,
एह उत्सर्ग मुनि मागरे ॥ साधु० ॥ ५ ॥
योग जे आश्रवरूप हतो,
ते कर्यो निर्जरा रूपरे ।
लोहथी कंचन मुनि करे,
साधना साध्य चिद्रूपरे ॥ साधु० ॥ ६ ॥
आत्म हित पर हित कारणे,
आदरे पंच सिज्झायरे ।

ते भणी असन वसनादिका,
आश्रय सर्व अववायरे ॥ साधु० ॥ ७ ॥
जिन गुण स्तवन निज तत्त्वने,
जोडवा करे अविरोधरे ।
देशना भव्य प्रतिबोधवा,
वायणा करण निज बोधरे ॥ साधु० ॥ ८ ॥
नय गम भंग निक्षेपथी,
स्वहित स्याद्वादयुत वाणरे ।
सोल दश चार गुणसु मिलि,
कहे अनुयोग सुपहाणरे ॥ साधु० ॥ ९ ॥
सूत्रने अर्थ अनुयोग ए,
बीय निर्युक्ति संजुत्तरे,
तीय भाष्ये नये भावियो,
मुनि वदे वचन एम तंतरे ॥ साधु० ॥ १० ॥
ज्ञान समुद्र समता भर्या,
संवरी दया भंडाररे ।
तत्त्व आनंद आस्वादता,
वंदिए चरण गुणधाररे ॥ साधु० ॥ ११ ॥
मोह उदये अमोही जिसा,
शुद्ध निज साध्य लयलीनरे ।

मेघचंद्र तेह मुनि वंदिये,
ज्ञान अमृत रस पीजेरे साधु० ॥ १२ ॥

॥ ढाल त्रीजी ॥

॥ झांझरिया मुनिवर ॥ ए देशी ॥

समिति तीसरी एषणाजी,
पांच महाव्रत मूल ।
अणाहारी उपसर्गनोजी,
ए आचार अमूल;
मनमोहन मुनिवर समिति सदा चित्त धार॥१॥
चेतनता चेतनतणीजी,
नहि परसंगी तेह ।
निज पर सन्मुख नहि करेजी,
आतमरामी मुनी तेह ॥ मन० ॥ २ ॥
काय योग पुद्गल ग्रहेजी,
एह न आतम धर्म ।
जाणग कारक भोगताजी,
हुं माहरो ए मर्म ॥ मन० ॥ ३ ॥
अनभिसंधि चल वीर्यनीजी,
निरुध शक्ति अजाण ।

पण अभिसंधिज वीर्यथीजी,
कीम ग्रहे परभाव ॥ मन० ॥ ४ ॥
इम पर त्यागी संवरीजी,
न ग्रहे पुद्गल खंध ।
साधक कारण राखवाजी,
अशनादिक संबंध ॥ मन० ॥ ५ ॥
आतम तत्व अनंतताजी,
ज्ञान विना न जणाय ।
तेह प्रगट करवा भणीजी,
श्रुत सज्झाय उपाय ॥ मन० ॥ ६ ॥
तेह जेहथी देह रहेजी,
आहारे बलवान् ।
साध्य अधूरे हेतुनेजी,
केम तजे गुणवान् ॥ ७ ॥
तनु अनुयायी वीर्यनोजी,
वर्तन अशन संजोग ।
वृद्ध यष्टि सम जाणीनेजी,
अशनादिक उपभोग ॥ मन० ॥ ८ ॥
जो साधकता नवी अडेजी,
तो न ग्रहे आहार ।

बाधक परिणति वारवाजी,
अशनादिक उपचार ॥ मन० ॥९॥
शुडतालीसे द्रव्यनाजी,
दोष तजी नीराग ।
असंभ्रांति मूर्छा विनाजी,
भ्रमर परे वडभाग ॥ मन० ॥ १० ॥
तत्त्व रुचि तत्त्वाश्रयीजी,
तत्त्व रसीक निर्ग्रंथ ।
कर्म उदयें आहारताजी,
मुनि माने पलीमंथ ॥ मन० ॥ ११ ॥
लाभपणे पण घन लहेजी,
अति निःसंग करंत ।
साध्ये अंग व्यापकपणेजी,
निरमल संत महंत ॥ मन० ॥ १२ ॥
अणाहारता साधताजी,
समता अमृत कंद ।
भिक्षु श्रमण वाचंयमीजी,
ते वंदे देवचंद ॥ मन० ॥ १३ ॥

॥ ढाल चोथी ॥

॥ भोलीडा हंसारे विषय न राचीए. ॥ ए देशी. ॥

समिति चोथीरे चउ गति वारणी,
भाखी श्री जिनराज ।
राखी परम अहिंसक मुनिवरे,
चाखी ज्ञान समाज ॥ १ ॥
सहज संवेगीरे समिति परिणमे;
साधन आतम काज ।
आराधन ए संवर भावनो,
भव जल तारण जहाज. ॥ सहज० ॥ २ ॥
अभिलाषी निज आतम तत्त्वना;
साखी करि सिद्धांत ॥
नाखो सर्व परिग्रह संगने,
ध्यानाकांक्षीरे संत ॥ सहज० ॥ ३ ॥
संवर पंचतणी ए भावना,
निरुपाधिक अप्रमाद ।
सर्व परिग्रह त्याग असंगता,
तेहनो ए अपवाद ॥ सहज० ॥ ४ ॥
इयाने मुनिवर उपकरण संग्रहे,
जे परभाव विरत्त ।

देह अमोहीरे नवि लोही कदा,
रत्नत्रयी संपत्त ॥ सहज० ॥ ५ ॥
भाव अहिंसकता कारण भणी,
द्रव्य अहिंसक साधि ।
रजोहरण मुख पत्रादिक धरे,
वरवा योग समाधि ॥ सहज० ॥ ६ ॥
शिव साधननो मूल ते ज्ञान छे,
तेहनो हेतु सज्झाय ।
ते आहारे ते वलि पात्रथी,
जयणाए सहुवाय ॥ सहज० ॥ ७ ॥
बाल तरुण नर नारी जंतुने,
नग्न दुगंछानो हेतु ।
तिणे चोलपट्ट ग्रही मुनि उपदिशे,
शुद्ध धरम संकेत ॥ सहज० ॥ ८ ॥
दंस मसक शीतादि परिसहे,
न रहे ध्यान समाधि ।
कल्पक आदिक निरमोहीपणे,
धारे मुनि निराबाध ॥ सहज० ॥ ९ ॥
जेम अंतर [illegible]

दश वैकालीक भगवई साखथी,
तन थिरताने रे तंत ॥ सहज० ॥ १० ॥
लघु सजीव सचित्त रजादिनो,
वारण दुःख संघट्ट ।
देखी पूंजेरे मुनिवर तेहथी,
ए पूरव मुनिवट्ट ॥ सहज० ॥ ११ ॥
पुद्गल खंध ग्रहण निखेवना,
द्रव्ये जयणारे तास ।
भावे आतम परिणति नवनवी,
ग्रहतां समिति प्रकाश ॥ सहज० ॥ १२ ॥
बाधक भाव अद्वेषपणे तजे,
साधक ले गत राग ।
पूरव गुण रक्षक पोषकपणे,
नीपजते शिव माग ॥ सहज० ॥ १३ ॥
संजम श्रेणेरे संचरता मुनि,
हरे कर्म कलंक ।
धरता समता रस एकत्वता,
तत्त्व रमणी निशंक ॥ सहज० ॥ १४ ॥
जग उपगारीरे तारक भव्यना,
लायक पूर्णानंद ।

देवचंद्र पद्रता मुनिराजना,
वंदे पय अरविंद ॥ सहज० ॥ १५ ॥

॥ ढाल पांचमी ॥

धेनन धनजोरे ॥ ए देशी ॥

पंचमी समिति कहि अति सुंदरुं रे,
पारिठावणिया नाम ।
परम अहिंसक धर्म वधारणी रे,
मृदु करुणा परिणाम ॥ १ ॥
मुनिवर संचर्या रे,
समिति सदा सुखदाय ।
थिरता भावे संयम साधता रे,
निर्मल संवर थाय ॥ मुनि० ॥ २ ॥
देह नेहथी चंचलता वधे रे,
विकसे दुष्ट कषाय ।
तिण तनु राग तजीने मुनिजी,
ज्ञान ध्यान सुखदाय ॥ मुनि० ॥ ३ ॥
जिहां लगि जिहां मन उत्सुके रे,
देह सगो परिहार ।

करे जंतु त्रस थिर अणदूहव्यारे,
सकल दुगंछा वार ॥ मुनि० ॥ ४ ॥
संयम बाधक आत्म विराधनारे,
आणा घातक जाणि ।
उपधि अशन शिष्यादिक परठवे रे,
आयति लाभ पिछाणि ॥ मु० ॥ ५ ॥
वध्या आहारे तपीया परठवेरे,
निज कोठे अप्रमाद ।
देह अरागी भात अव्यापतारे,
वीरनो ए अपवाद मु० ॥ ६ ॥
संलोकादिक दूषण परिहरीरे,
वरजी रागने द्वेष ।
आगम रीते परठवणी करेरे,
लाघव हेतु विशेष ॥ मु० ॥ ७ ॥
कल्पातीत आहालंदी क्षमीरे,
जिन कल्पादि मुनीश ॥
तेने परठवणा एक मलतणीरे,
तेह अल्प वली दीस ॥ मु० ॥ ८ ॥
रात्रे प्रश्रवणादिक परठवेरे,
विधिकृत मंडल ठाम ।

थिविर कल्पनो प्रति अपवाद छेरे,
ग्लानादिक नहि काम ॥ मु० ॥ ९ ॥
एह द्रव्यथी भावमांरे,
बाधक जे परिणाम ।
द्वेष निवारी मादकता विनारे,
राखे विभाव विराम ॥ मु० ॥ १० ॥
आतम परिणति तत्वमयी करेरे,
परिहरता परभाव ॥
द्रव्य समिति विण भावमणी धरेरे,
मुनिनो एह स्वभाव ॥ मु० ॥ ११ ॥
पंच समिति समता परिणामथीरे,
क्षमा कोष गत रोष ।
साधन पावन संयम साधतांरे,
करता गुण गण पोष ॥ मु० ॥ १२
माध्यस्थी निज तत्वे तन्मयीरे,
उपरंगी निरमाय ।
धंग क्रिया फल भाव अवंचतारे,
शुचि अनुभव गुण दाय ॥ मु० ॥ १३ ॥
आत्मानुग भावे वर्ततीरे,
निश्चय निरुपद पंथ ।

देवचंद्र एहवा निर्ग्रंथ तेरे,
मुज गुरु तत्त्व महंत ॥ मु० ॥

॥ ढाळ छट्ठी ॥

॥ वैरागी थयोरे ॥ ए देशी ॥

मुनि मन वसि करो,
मन ए आस्त्रव गेहोरे ।
मन ममता रसी,
मनथीरे टालो यति वर तेहोरे ॥मुनि०॥१॥

दुष्ट तुरंग चित्त ते कह्युंरे,
सो मोह नृपत्ति प्रधान ।
आर्त रौद्रनो खेत्र एरे,
रोक !!! तुं ज्ञान निधानरे ॥ मुनि० ॥ २ ॥

गुप्ति प्रथम ए साधुनेरे,
धर्म शुकलनोरे कंद ॥
वस्तु धर्म चिंतन रम्यारे,
साधे पूर्णानंदरे ॥ मुनि० ॥ ३ ॥

योग ते पुद्गल जोग छेरे,
बांधे अभिनव कर्म ।

योग वर्तना कंपना रे,
नवि ए आतम धर्म रे ॥ मुनि० ॥ ४ ॥
वीर्य चपल परसंगमी रे,
एह न साधक पक्ष ।
ज्ञान चरण सहकारता रे,
वरतावे मुनि दक्ष रे ॥ मुनि० ॥ ५ ॥
सविकल्पक गुण साधना रे,
ध्यानीने न सुहाय ।
निर्विकल्प अनुभव रसी रे ॥
आत्मानंदी थाय रे ॥ मुनि० ॥ ६ ॥
रत्नत्रयीनी भेदता रे,
एह समल व्यवहार ।
त्रिगुण वीर्य एकत्वता रे,
निर्मल आतमसार रे ॥ मुनि० ॥ ७ ॥
शुक्लध्यान श्रुतालंबनी रे,
ए पण साधन दाव ।
वस्तु धर्म उत्सर्गता रे,
गुण गुणी एक स्वभाव रे ॥ मुनि० ॥ ८ ॥
पर्यायी गुण वर्तना रे,
वस्तु धर्म न कहाय ।

साध्यरसी तो कीम ग्रहेरे,
साधु विना सहायरे ॥ मुनि० ॥ ९ ॥
आत्म रुचि आत्मालयीरे,
ध्याता तत्त्व अनंत ।
स्यादवाद ज्ञानी मुनिरे,
तत्त्व रमण उपसंतरे ॥ मुनि० ॥ १० ॥
नवि अपवाद रुचि कदारे,
शिव रसीया अनगार ।
शक्ति यथागम सेवतारे,
निंदे कर्म प्रचाररे ॥ मुनि० ॥ ११ ॥
शुद्ध सिद्ध निज तत्वतारे,
पूर्णानंद समाज ।
देवचंद्र पद साधतारे,
नमीए ते मुनिराजरे ॥ मुनि० ॥ १२ ॥

॥ ढाल सातमी ॥

सुमति सदाए दीलमें धरो ॥ ए देशी ॥ हमि० ॥

वचन गुप्ति सुधी धरो,
वचन ते कर्म सहाय, सलुणा ।

उभयाश्रित जे चेतना,
निश्चय तेह अपाय, सलुणा ॥ वचन० ॥१॥
वचन अगोचर आतमा,
सिद्ध ते वचनातीत, सलुणा ।
सत्ता अस्ति स्वभावमां,
भासक भाव अतीत, सलुणा ॥ वचन० ॥२॥
अनुभव रस आस्वादता,
करता आतम ध्यान, सलुणा ।
वचन ते बाधक भाव छे,
न वदे मुनि अदीन, सलुणा ॥ वचन० ॥३॥
वचनागुप्ति पलटायवा,
मुनि साधे स्वाध्याय, सलुणा ।
तेह सर्वथा गोपवे,
परम महारस थाय, सलुणा ॥ वचन० ॥४॥
भाषा पुद्गल वर्गणा,
ग्रहण निसर्ग उपाधि, सलुणा ।
[illegible] आतम वीर्य [illegible],
[illegible], सलुणा ॥ वचन० ॥[illegible]
[illegible],
[illegible], सलुणा ।

सावत सर्वे निर्जरा,
आस्रवपर आयत्त, सलुणा ॥वचन० ॥६॥
इम जाणी थिर संजमी,
न करे चपलीनंध, सलुणा ।
आत्मानंद आराधतां,
आस्वादो निर्बंध, सलुणा ॥ वचन० ॥७॥
साध्य शुद्ध परमातमा,
तसु साधन उत्सर्ग, सलुणा ।
बार भेदे तप द्विविधे,
सकल श्रेष्ठ व्युत्सर्ग, सलुणा ॥वचन०॥८॥
समकित गुण गुणठाणे कर्यो,
साध्य अयोगी भाव, सलुणा ।
उपादानता तेहनो,
गुप्तिरूप थिरभाव, सलुणा ॥वचन०॥९॥
गुप्ति रुचि गुप्ते रम्या,
कारण समिति प्रबंध, सलुणा ।
करता चिंता ईहना,
मांहे तत्व गुण संध, सलुणा ॥वचन०॥१०॥
अपवादे उत्सर्गनो,
दृष्टि न चूके जेह, सलुणा ।

प्रणमे नित्यप्रत्ये भावशुं,
देवचंद्र मुनि तेह, सलुणा ॥ वचन ॥११

॥ ढाल आठमी ॥

॥ फूलना चोरस प्रभुजीने शिर चढे ॥ ए देशी ॥

गुप्ति संभारोरे त्रीजी मुनिवरु,
जेहथी परम आनंदोजी ।
मोह टले घनघाती परिगले,
प्रगटे ज्ञान अमंदोजी ॥ गुप्ति० ॥ १ ॥
करि शुभ अशुभे भव भ्रम जे छे,
तिण तजि तनु व्यापारोजी ।
चंचल भाव ते आस्त्रव मूल छे,
जीव अचल अविकारोजी ॥ गुप्ति० ॥ २ ॥
इंद्रि विषय सकलनो द्वार ए,
बंध हेतु द्रढ एहोजी ।
अभिनव कर्म ग्रहे तनु योगथी,
तिण थिर करिए देहोजी ॥ गुप्ति० ॥ ३ ॥
आतम वीर्य फुरे परसंग जे,
ते कहिए तनु योगजी ।

चेतन सत्ता रे परम अयोगी छे,
निर्मल थिर उपयोगजी ॥ गुप्ति० ॥ ४ ॥
जावत कंपन तावत बंध छे,
भाख्युं भगवइ अंगेजी ।
ते माटे ध्रुव तत्त्व रसे रमे,
माहण ध्यान प्रसंगेजी ॥ गुप्ति० ॥ ५ ॥
वीर्य सहायीरे आतम धर्मनो,
अचल सहज अप्रयासोजी ।
ते परभाव सहायी किम करे,
मुनिवर गुण आवासोजी ॥ गुप्ति० ॥ ६ ॥
खंत्ती मुत्ती अकिंचनी,
शौच ब्रह्मधर धीरोजी ।
विषय परिषह सैन्य विदारवा,
वीर परम सौंडीरोजी ॥ गुप्ति० ॥ ७ ॥
कर्म पडल दल क्षय करवा रसी,
आतम ऋद्धि समृद्धोजी ।
देवचंद्र जिन आणा पालता,
वंदो गुरु गुण वृद्धोजी ॥ गुप्ति० ॥ ८ ॥

॥ ढाल नवमी ॥

॥ रसीयानी देशी ॥

धर्म धुरंधर मुनिवर सद्दहीं,
नाण चरण संपन्न, सुगुण नर।
ईंद्रि भोग तजी निज सुख भजी,
भवचारक ऊद्विग्न, सुगुणनर ॥ धर्म० ॥१॥
द्रव्य भाव सांचो सरधा धरी,
परिहरी शंकादि दोष। सुगुणनर।
कारण कारज साधन आदरी,
धरी सुध्यान संतोष ॥ सुगु० ॥ २ ॥
गुण पर्याये वस्तु परखता,
शीख उभय भंडार। सु०
परिणति शक्ति स्वरूपनां परिणमि,
करता तसु व्यवहार ॥ सुगु० ॥ ३ ॥
लोकसन्न वीतिगिच्छा वारता,
करता संयम वृद्धि।
मुल उत्तर गुण सर्व संभारता,
धरता आतम शुद्धि ॥ सुगु० ॥ ४
श्रुतधारी श्रुतधरनिश्रारसी,
वसि कर्यां त्रिक जोग।

अभ्यासी अभिनय श्रुतसारना,
अविनासी उपयोग ॥ सुगु० ॥ ५ ॥
द्रव्य भाव आस्रव मल टालता,
पालता संयम सार । सुगु० ॥
साची जैन क्रिया संभालता,
गालता कर्म विकार ॥ सुगु० ॥ ६ ॥
सामायिक आदिक गुण श्रेणिमां,
रमता चडतेरे भाव । सुगु० ॥
तीन लोकथी भिन्न त्रिलोकमां,
पूजनिक छे जसु पाय ॥ सुगु० ॥ ७ ॥
अधिक गुणी निज तुल्य गुणीथकी,
मिलता ते मुनिराज । सुगु० ॥
परम समाधि निधि भवजलधिना,
तारण तरण जहाज ॥ सुगु० ॥ ८ ॥
समकितवंत संयम गुण ईहता,
ते धरवा असमर्थ । सुगु० ॥
संवेग पक्षी भावे शोभता,
कहेता साचोरे अर्थ ॥ सुगु० ॥ ९ ॥
आप प्रशंसाए नवि माचता,
राचता मुनि गुणरंग । सुगु० ॥

अप्रमत्त मुनि श्रुत तत्त्व पूछवा,
सेवे जासु अभंग ॥ सुगु० ॥ १० ॥
सद्दहणा आगम अनुमोदता,
गुणकर संयम चालि । सुगु० ॥
व्यवहारे साची ते साचवे,
आयति लाभ संभालि ॥ सुगु० ॥ ११ ॥
दुकरकारीथी अधिका कहे,
बृहत्कल्प व्यवहार । सुगु० ॥
उपदेश माला भगवई अंगने,
गीतारथ अधिकार ॥ सुगु० ॥ १२ ॥
भाव चरण स्थानक फरस्या विना,
न हुये संयम धर्म । सुगु० ॥
ते श्याने जूठ ते ऊच्चरे,
जे जाणे प्रवचन मर्म ॥ सुगु० ॥ १३ ॥
यश लाभे निज सम्मत थापवा,
परजनरंजन काज । सुगु० ॥
ज्ञान क्रिया द्रव्यत विधि साचवे,
तेह नहिं मुनिराज ॥ सुगु० ॥ १४ ॥
बाह्य दया एकांते उपदिशे,
श्रुत आशय विहीण । सुगु० ॥

घग पेरे ठगता मूरख लोकने,
बहु भमसे तेह दीन ॥ सुगु० ॥ १५ ॥
अध्यातम परिणति साधन ग्रही,
उचित वहे आचार । सुगु० ॥
जिन आणा अविराधक पुरुष जे,
धन्य तेहनो अवतार ॥ सुगु० ॥ १६ ॥
द्रव्य क्रिया नैमित्तिक हेतु छे,
भावधर्म लयलीन । सुगु० ॥
निरुपाधिकता जे निज अंशनी,
माने लाभ नवीन ॥ सुगु० ॥ १७ ॥
परिणति दोष भणी जे निंदता,
कहेता परिणति धर्म । सुगु० ॥
योग ग्रंथना भाव प्रकाशता,
तेह विदारे हो कर्म ॥ सुगु० ॥ १८ ॥
अल्प क्रिया पण उपकारीपणे,
ज्ञानि साधे हो सिद्ध । सुगु० ॥
देवचंद्र सुविहित मुनिवृंदने,
प्रणम्यां सयल समृद्धि ॥ सुगु० ॥ १९ ॥

॥ कलश ॥

॥ राग धन्याश्री ॥

ते तरियारे भाई ते तरिया,
जे जिनशाशन अनुसरियाजो ।
जेह करे सुविहित मुनि किरिया,
ज्ञानामृत रस दरियाजो ॥ ते तरिया० ॥१॥
विषय कषाय सहु परिहरिया,
उत्तम समता वरियाजो ।
शील संनाहथकी पाखरिया,
भवसमुद्र जल तरियाजो ॥ ते तरिया०॥२॥
समिति गुपतिशुं जे परिवरिया,
आत्मानंदे भरियाजो ।
आस्रव द्वार सकल आवरिया,
वर संवर संवरियाजो ॥ ते तरिया० ॥३॥
खरतर मुनि आचरणा चरिया,
राजसार गुण गिरियाजो ।
ज्ञान धरम तप ध्याने वसिया,
श्रुत रहस्यना रसियाजो ॥ ते तरिया० ॥४॥
दीपचंद पाठक पद धरिया,
विनय रयण सागरियाजो ।

देवचंद मुनि गुण उचरिया,
कर्म अरि निझरियाजी ॥ ते तरिया० ॥५॥
सुरगिरि सुंदर जिनवर मंदिर,
शोभित नगर सवाईजी ।
नवानगर चोमासु करिने,
मुनिवर गुण थुति गाईजी ॥ते तरिया०॥६॥

अरिहा अणविचार्यो
विस्तरि जस संपदा ।
निग्रंथ वंदन स्तवन करतां
परम मंगल सुख सदा ॥ १ ॥

॥ कलश ॥

॥ राग धन्याश्री ॥

ते तरिया रे भाई ते तरिया,
जे जिनशासन अनुसरियाजी।
जेह करे सुविहित मुनि किरिया,
ज्ञानामृत रस दरियाजी ॥ ते तरिया०॥१॥
विषय कषाय सहु परिहरिया,
उत्तम समता वरियाजी।
शील सन्नाहथकी पाखरिया,
भवसमुद्र जल तरियाजी ॥ ते तरिया०॥२॥
समिति गुप्तिसुं जे परवरिया,
आतमानंदे भरियाजी।
आश्रव द्वार सकल आवरिया,
वर संवर संवरियाजी ॥ ते तरिया०॥३॥
[illegible] मुनि [illegible],
[illegible] गुण [illegible]।
[illegible],
[illegible] ॥ ते तरिया० ॥४॥
[illegible],
[illegible]।

ए श्यो हित जाण्यो तुमे, एथी नवि सिद्धि हो ॥अहो एथी०॥
विषय हलाहल विष जिहां, शी अमृत बुद्धि हो ॥
अहो शी० ॥ ७ ॥

भोग संग कारमो कह्यो, जिनराज सदाई हो ॥ अहो जिन०॥
राग द्वेष संगे वधे, भव भ्रमण सदाई हो ॥
अहो भव० ॥ ८ ॥

राज सुता कहे साच ए, जे भाखो वाणी हो ॥अहो जे०॥
पण ए मूल अनादिनी, किम जाए छंडाणी हो ॥
अहो ॥ किम० ॥ ९ ॥

नेह तजे ते धन्य छे, सेवक जिनजीना हो ॥अहो सेवक०॥
हमे जड पुद्गल रस रम्या, मोहे लपटीना हो ॥
अहो मोहे० ॥ १० ॥

अध्यातम रस पानथी, मीना मुनि राया हो॥ अहो मीना०॥
ते परपरिणतिरति तजी, निज तत्त्वे समाया हो ॥
अहो निज० ॥ ११ ॥

अमने मिण करवो घटे, कारण संयोगे हो ॥ अहो कारण० ॥
पण चेतनता परिणमे, जड पुद्गलना भोगे हो ॥
अहो जड० ॥ १२ ॥

अवर कन्या पण उचरे, चिंतित हुवे कीजे हो ॥ अहो चिं०॥
पछी परम पद साधवा, उद्यम साधिजे हो ॥
अहो उद्यम० ॥ १३ ॥

प्रभंजना कहे हे सखी, ए कायर वाणी हो ॥ अहो ए कायर०॥
धर्म प्रथम करवो सदा, देवचंद्रनी वाणी हो ॥
अहो देवचंद्रनी०

॥ अथ श्री प्रभंजनानी सज्झाय लिख्यते

॥ [illegible] ॥ [illegible] ॥ [illegible] ॥

गिरि वैताढ्यने उपरे, चक्रांक नयरी हो ॥ अहो [illegible]
चक्रायुध राजा तिहां, [illegible] वयरी हो ॥
अहो श्री[illegible] ॥ १ ॥

[illegible] मदन सुंदरी, गुण [illegible] हो ॥ अहो गुण० ॥
पुत्री नाम प्रभंजना, [illegible] हो ॥
अहो [illegible] ॥ २ ॥

[illegible] ॥ अहो [illegible] ॥
[illegible] हो ॥ अहो [illegible] ॥ ३ ॥

[illegible] प्रभंजना [illegible] हो ॥ अहो [illegible] ॥
[illegible] हो ॥
अहो [illegible] ॥ ४ ॥

[illegible] हो ॥ अहो [illegible] ॥
[illegible] हो ॥
अहो [illegible] ॥ ५ ॥

[illegible] हो ॥ अहो[illegible] ॥
[illegible] हो ॥
अहो [illegible] ॥ ६ ॥

[illegible]

रागद्वेषने वहेंचनारे । अप्पा । हुं अमूर्त चिद्रूप रे ॥
कर्ता भोक्ता तत्त्वनो रे । अप्पा । अक्षय अक्रिय अनुप रे ॥
गु० ॥ १० ॥

सर्व विभाव थकी जुदो रे । अप्पा । निश्चय निज अनुभूति ॥
पूर्णानंदी परणम रे । अ० । नहि पर परिणति रीति ॥
गु० ॥ ११ ॥

सिद्ध समो ए संग्रहे रे । अप्पा० । पर रंगे पलटाय ॥
संगांगी भावे करी रे । अप्पा० । अशुद्ध विभाव अपाय रे ॥
गु० ॥ १२ ॥

शुद्ध निश्चय नये करी रे । अप्पा । आतम भाव अनंत ।
तेह अशुद्धनये करी रे । अ० । दुष्ट विभाव महंत रे ॥
गु० ॥ १३ ॥

द्रव्य करम कर्त्ता थयो रे । अप्पा० । नय अशुद्ध व्यवहार ॥
तेह निवारो स्वपदेरे । अप्पा । रमतां शुद्ध व्यवहार रे ॥
गु० ॥ १४ ॥

व्यवहारे समरे थके रे । अप्पा० । समरे निश्चय तिवार ।
प्रवृत्ति समारे विकल्पने रे । अप्पा० । सेवी परिणति सार रे ॥
गु० ॥ १५ ॥

पुद्गलने पर जीवथी रे । अप्पा० । कीधो भेद विज्ञान ॥
वायकला दूरे टलि रे । अप्पा० । हवे कुण रोके ध्यान रे ॥
गु० ॥ १६ ॥

आलंबन भावन वसे रे । अप्पा० । धरम ध्यान प्रगटाय ॥
देवचंद्र पद साधवा रे । अ० । एहिज शुद्ध उपाय रे ॥
गुणज्ञानी० ॥ १७ ॥

॥ ढाल २ जी ॥ हुं वारो घना तुझ जाण न देस ॥ए देशी॥
कहे साहुणी सुण कन्यकारे । धन्या । ए संसार कलेश ॥
एहने जे हित करि गणे रे । धन्या । ते मिथ्या आवेशरे ॥
सुज्ञानी कन्या सांभल हित उपदेश । जग हितकारी जिनेशरे॥
सुज्ञानी० । कीजे तसु आदेशरे ॥ सुज्ञानी० ॥१॥ ए आंकणी॥
खरडीने जे धोयवुंरे । कन्या । तेह न श्रेशचार ॥
रत्नत्रयी साधन करो रे । कन्या । मोहाधीनता वाररे ॥सु० २॥
जे पुरुष वरवा तणी रे । कन्या । इच्छा छे ते जीव ॥
इये संबंधपणे भणो रे । कन्या । द्वारी काल सदीव ॥सु० ३॥
तव प्रभंजना चिंतवेरे । अप्पा । तुं छे अनादि अनंत ॥
वे पण मुज सत्ता समोरे । अप्पा । सहज अकृत सुमहंतरे ॥
सु० ॥ ४ ॥
भव भमतां सवि जीवथी रे । अप्पा । पाम्या सवि संबंध ॥
मात पिता भ्राता सुतारे, अप्पा । पुत्र वधु प्रतिबंधरे ॥सु० ५॥
इयो संबंध कहुं इहांरे । अप्पा । शत्रु मित्र पण थाय ॥
मित्र शत्रुता वली लहे रे । अप्पा । इम संसार स्वभावरे ॥
सु० ॥ ६ ॥
सत्ता सम सवि जीव छे रे । अप्पा । जोतां वस्तु स्वभाव ॥
ए माहरो ए पारको रे । अप्पा । सवे आरोपित भावरे ॥
सु० ॥ ७ ॥
गुरुणी आगल एहवुं रे । अप्पा । जूठुं केम कहेवाय ॥
स्वपर विवेचन कीजतां रे । अप्पा । माहरो कोइ न थाय रे ॥
सु० ॥ ८ ॥
भोगपणो पण भूलथी रे । अप्पा । माने पुद्गल खंध ॥
हुं भोगी निज भावनोरे । अप्पा । परथी नहि प्रतिबंध रे ॥
सु० ॥ ९ ॥

सम्यक्ध्याने वहेंचतांरे । अप्पा । हुं अमूर्त चिद्रुप रे ॥
कर्त्ता भोक्ता तत्त्वनो रे । अप्पा । अक्षय अक्रिय अनुप रे ॥
सु० ॥ १० ॥

सर्व विभाव थकी जुदो रे । अप्पा । निश्चय निज अनुभूति ॥
पूर्णानंदी परणम रे । अ० । नहि पर परिणति रीति ॥
सु० ॥ ११ ॥

सिद्ध समो ए संग्रहे रे । अप्पा० । पर रंगे पलटाय ॥
संगांगी भावे करी रे । अप्पा० । अशुद्ध विभाव अपाय रे ॥
सु० ॥ १२ ॥

शुद्ध निश्चय नये करी रे । अप्पा । आतम भाव अनंत ।
तेह अशुद्धनये करी रे । अ० । दुष्ट विभाव महंत रे ॥
सु० ॥ १३ ॥

द्रव्य करम कर्त्ता थयो रे । अप्पा० । नय अशुद्ध व्यवहार ॥
तेह निवारो स्वपदेरे । अप्पा । रमतां शुद्ध व्यवहार रे ॥
सु० ॥ १४ ॥

व्यवहारे समरे थके रे । अप्पा० । समरे निश्चय तिवार ।
प्रवृत्ति समारे विकल्पने रे । अप्पा० । तेथी परिणति सार रे ॥
सु० ॥ १५ ॥

पुद्गलने पर जीवथी रे । अप्पा० । कीधो भेद विज्ञान ॥
बाधकता दूरे टलि रे । अप्पा० । हवे शुभ रोके ध्यान रे ॥
सु० ॥ १६ ॥

आलंबन भावन वने रें । अप्पा० । धरम ध्यान प्रगटाय ॥
देवचंद्र पद साधवा रे । अ० । एहिज शुद्ध उपाय रे ॥
सुज्ञानी० ॥ १७ ॥

|| ढाल ३ जी || तुठो तुठोरे मुज साहेब जगनो तुठो || ए देशी ||

आयो आयोरे अनुभव आतमनो आयो ।
शुद्ध निमित्त आलंबन भजतां, आत्मालंबन पायो रे ॥
अनुभव० ॥ १ ॥

आतमधर्मनी गुण पर्याय विधि, तिहां उपयोग रमायो ।
पर परिणति परीते जाणी, तास विकल्प गमायो रे ॥
अनुभव० ॥ २ ॥

द्रव्यक्षेत्र वितर्क शुक्ल आरोही, गुण गुणी एक समायो ।
पर्याय द्रव्य वितर्क एकता, दुर्दम मोह खपायो रे ॥
अनु० ॥ ३ ॥

अनंतानुबंधी सुभटने काढी, दर्शन मोह गमायो ।
तिण गति वेद प्रकृति क्षय करी, पायो आतमभाव तायो रे ॥
अनु० ॥ ४ ॥

द्वितीय तृतीय चोकडी खपावी, वेद युगल क्षय थायो ।
हास्यादिक [illegible], उदय वेद मिटायो रे ॥ अनु० ॥ ५ ॥

[illegible] ।
[illegible] रे ॥ अनु० ॥ ६ ॥

[illegible] ।
[illegible] रे ॥
अनु० ॥ ७ ॥

[illegible] ।
[illegible] रे ॥
अनु० ॥ ८ ॥

सयोगी केवली थया प्रभंजना, लोकालोक जणायो ।
तीन कालनी त्रिविध वर्त्तना, एक समे ओलखायो रे ॥
अनु० ॥ ९ ॥

सर्व साध्वीये वंदना कीधी, गुणी विनय उपजायो ।
देव देवी तव स्तवे गुणस्तुति, जगजय पडह वजायो रे ॥
अनु० ॥ १० ॥

सहस्र कन्यका दीक्षा लीधी, आश्रव सर्व तजायो ।
जग उपगारी देश विहारे, शुद्ध धरम दीपायो रे ॥
अनु० ॥ ११ ॥

कारण जोगे कारज साधे, तेह चतुर गाइजे ।
आतम साधन निर्मल साधे, परमानंद पाइजे रे ॥
अनुभव० ॥ १२ ॥

ए अधिकार कह्यो गुणगेहो, वैरागे मन भारी ।
वसुदेव हिंडनो अनुसारे, मुनि गुण भावना भारी रे ॥
अनु० ॥ १३ ॥

मुनि गुण गुणनां भावविशुद्धे, भव निर्वेदन पावे ।
पूर्णानंद पद पहेली उल्हे, साधन शक्ति जमावे रे ॥
अनु० ॥ १४ ॥

मुनि गुण गातो भजतो भावना, ध्यातो सहज समाधि ।
रत्नत्रयी एकत्वे खेलो, मिटे अनादि उपाधि रे ॥
अनु० ॥ १५ ॥

राजसागर पाठक उपगारी, ज्ञानधर्म दमधारी ।
दीपचंद पाठक खरतर वर, देवचंद्र सुखकारी रे ॥
अनु० ॥ १६ ॥

नयर लींबडी मांहे रहीने, वाचंयम स्तुति गाइ।
आतम रसिक श्रोता जन मनने, साचनु रुचि उपजाई रे॥
अनु० ॥ १७ ॥

इम उत्तम गुण माला गावो, पावो हरष वधाइ।
जैन धरम मारग रुचि करतां, मंगल लील सदाई रे॥
अनु० ॥ १८ ॥ संपूर्ण ॥ श्रीरस्तु ॥

॥ अथ ढंढणमुनिजीनी सज्झाय ॥

॥ वनिता विहसीने विनवें ॥ ए देशी ॥

धन धन ढंढण मुनिवरु, कृष्णनरेसर पुत्तो रे;
गुणमणि रयणिम शोभतो, लखमी लीला जुत्तो रे. धन० १

कोमल कमला कामिनी, मूकी एक हजारो रे;
नेमिवचनें वैरागीयो, लीधो संजम भारो रे. धन० २

ग्रहणा ने आसेवना, सीखी शिक्षा सारो रे;
विचरता आव्याजी द्वारिका, नेमि साथें गुणधारो रे. धन० ३

एकदिन गोचरी संचर्या, करता गवेषणा शुद्धि रे;
आहार कांइ मिल्यो नहीं, मुनि मन समता बुद्धि रे. धन० ४

मुनि चित्ते पुद्गल वशे, हवे निजगुण अभ्यासे रे;
उमंगे (उछरंगे) आतम रंगे, कीजे शिवपद वासो रे. धन० ५

शांति स्वभावे जइने, अनादि अनेरो रे;
हवे जो हंस करे, तो न करे पर टेको रे. धन० ६

नितप्रति गोचरी संचरे, न मिळे अन्नने पांनो रे;
प्रभुचरणे आवी नमी, पूछे तजी अभिमांनो रे. घन० ७
स्युं कारण कहो नाथजी, एवड़ो ए अंतरायो रे;
जिन भाखे कृत कर्मनो, एहवो छे व्यवसायो रे. घन० ८
पूरवभव धन लोभथी, कीधुं क्रूर अपायो रे;
तीव्ररसें जे बांधीयां, तेहनो फल दुःखदायो रे. घन० ९
नृप आदेशें पांचसें, हळ खेडवा अधिकारो रे;
चास एक निज क्षेत्रनी, खेडावी धरी प्यारो रे. घन० १०
भात पांणीनो सर्वने, तुम्हे कीधो अंतरायो रे;
तीव्ररसें जे बांधीयो, तसु विपाक ए आयो रे. घन० ११
मुनिवर अभिग्रह आदर्यो, एह करम क्षय कीधे रे;
लेस्युं हवे आहारनें, धीरज काज सीधे रे. घन० १२
मास गया षट इणपरें, पण मुनि समताळीनो रे;
अणपामें अति निर्जरा, जांणे तिणें नवि दीनो रे. घन० १३
वासुदेव जिन वंदीने, पूछे धरी आनंदो रे;
साधक साधुमें निरमलो, कवण कहो जिनचंदो रे. घन० १४
नेमि कहे ढंढण मुनि, संवर निर्जरा धारी रे;
सहु साधुथकी अधिक छे, समता शुद्ध विहारी रे. घन० १५
निजघर आवतां नरपति, वंद्यो मुनि शमकंदो रे;
दीठो तव इक गृहपति, पाम्यो हरख आनंदो रे. घन० १६
मुनि आव्या तसु आंगणें, पडिलाभ्या मनरागें रे;
मोदक सूजता मुनि ग्रही, चाले मन वैरागें रे. घन० १७
जिन वंदीने पूछीयो, तूट्यो ते अंतरायो रे;
नाथ कहे जदुनाथने, कारणथी तुम्हे पायो रे. घन० १८

सांभळी मुनि अति हरखीया, धन धन ए गुरुराजो रे;
वीतराग उपगारीया, कृपा करी मुज आजो रे. धन० १९
साध्य अछुरे कुंण करे, ए आहार असारो रे;
पुद्गल जगनी एंठ ए, किम ल्ये मुनि सुविचारो रे. धन० २०
साधन बधते आदरे, ए साधक व्यवहारो रे;
निःकारण परवस्तुने, छीपे नहीं अणगारो रे. धन० २१
इम चिन्वी शुद्ध थंडिलें, परठवनो ते पिंडो रे;
पुद्गल संगनी निंदना, निजगुण रमण प्रचंडो रे. धन० २२
पर परिणति विच्छेदतां, निज परिणति प्राग्भावो रे;
क्षपकश्रेणि ध्याने रम्या, पाम्यो आत्म स्वभावो रे. धन० २३
आतमतत्त्व एकाग्रता, तन्मय वीरज धारे रे;
घन घाती सवि खेरव्या, रत्नत्रयी विस्तारे रे. धन० २४
क्षीणमोह करी चरणनी, क्षायिकता करी पूरी रे;
केवलज्ञानदर्शन वर्या, अंतराय सवि चूरी रे. धन० २५
परम दान लाभ नीपनो, कीधो कारज सुधो रे,
समवसरणमें आवीया, साध्य संपूरण सीधो रे. धन० २६
एहवा मुनिनें गाइये, ध्याइयें धरी आणंदो रे;
देवचंद्र पद पाइये, लहीये परमानंदो रे. धन० २७

इति श्री ढंढणमुनिवर स्वाध्याय समाप्त.

॥ श्री समकितनी सज्झाय ॥

समकित नवि लह्यं रे, ए तो रुल्यो चतुर्गति मांहे;
त्रस थावरकी करुणा कीनी, जीव न एक विराध्यो;
तीन काळ सामायिक करतां, शुद्ध उपयोग न साध्यो. स० १
जूठ बोलवाको व्रत लीनो, चोरीको पण त्यागी;
व्यवहारादिक महा निपुण भयो, पण अंतरदृष्टि न जागी. स० २
ऊर्ध्व बाहु करी उंधो लटके, भस्म लगा धूम घटके;
जटा जूट शिर मुंडे जूठो, विण श्रद्धा भव भटके. स० ३
निज परनारी त्याग ज करके, ब्रह्मचारी व्रत लीनो;
स्वर्गादिक याको फळ पामी, निज कारज नवि सिध्यो. स० ४
बाह्य क्रिया सब त्याग परिग्रह, द्रव्य लिंग धर लीनो;
देवचंद्र कहे या विध तो हम, बहुत वार कर लीनो. स० ५

॥ गजसुकुमाल मुनीश्वर सज्झाय ॥

॥ ढाल १ ली ॥ आस फळी मेरी आस फळी ॥ ए देशी ॥

द्वारिकानगरी ऋद्धि समृद्धि, कृष्णनरेश्वर भुवन प्रसिद्ध;
चेतन सांभळो. (ए टेक)
वसुदेव देवकी अंग सुजात, गजसुकुमाल कुमर विख्यात. चे० १
नयरी परिसरें श्रीजिनराय, समवसर्या निरमम निर्माय;
यादवकुळ अवतंस मुणिंद, नेमिनाथ केवल गुण वृंद. चे० २

त्रिभुवनपति श्रीनेमजिणंद, आव्या सुणी हरख्या गोविंद;
राजी सांमईयो मंडन काज, हरखे वांद्या श्रीजिनराज. ने० १
लघु बंधे पण श्री गजसुकुमाल, रूप मनोहर तीन [illegible].
वीतराग वंदण अतिरंग, सुणिने आवे उछरंग. ने० २
समवसरण देखी [illegible], [illegible] अति [illegible];
धर्म [illegible] निज मनमांहि, गयो पाप हुं थयो [illegible]. ने० ३
हरखे वंदी जिनवर पाय, आनंद लहरी अंग न माय,
निःकामी प्रभु दीठा आंम, [illegible] बापा ने धन धाम. ने० ४
जिनमुख अमृत वयण सुणीने, भाग्यो [illegible] मोह [illegible]
[illegible] नाण [illegible] गुणठाणा, शुद्धातम निज [illegible] [illegible]. ने० ५
[illegible] सयोगी भाव, नहीं [illegible] न शुद्ध [illegible];
द्रव्यकर्म भावकर्म उपाधि, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. ने० ६
केवली [illegible] अमूरति रूप, चिन्मय चेतन निज गुण [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] भाव, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. ने० ७
नेमि वचन [illegible] [illegible], [illegible] वचन भावे [illegible],
[illegible] मुज गुण नांहि, [illegible] मुज [illegible] मांहि. ने० १०
केवली [illegible] [illegible], केवली [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] सुगणाल, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]. ने० ११

[illegible]

[illegible]

माताजी एह संसारमां, सुखतणो नहीं लवलेश रे;
वस्तुगत भाव अवलोकतां, सर्व संसार कलेश रे.　मा० १४
कर्मथी जन्म, तनु कर्मथी, कर्म ए सुखदुःख मूळ रे;
आतमधर्म नवि ए कदा, आज मुज टळी सवि भूल रे. मा० १५
नेमिचरणे रही आदरूं, चरण गुण शिवसुखकंद रे;
विषय विष हिवे मुज नवि रुचे, सांभळे अमृतानंद रे. मा० १६
माताजी अनुमति आपीये, हवे मुज एम न रहाय रे;
एक खिण अविरतिपणे, वातडी वचन न कहाय रे. मा० १७
मोहवशे मुंझी देवकी, विलवती इम कहे वात रे;
पुत्र तें ए किहां भाखियुं, तुज विरह मुज न सुहात रे. मा० १८
वत्स ! संयम अति दोहिलो, तोलवो मेरु एक हाथ रे;
प्राणजीवन मुज वालहो, माहरे तुंहिज आथ रे.　मा० १९
मात तुमे श्राविका नेमिनी, तुमें एम न कहाय रे;
मोक्ष सुख हेतु संयमतणो, किम करो मात अंतराय रे. मा० २०
वत्स ! मन भाव दुद्धर घणो, जीपवो मोह भूपाल रे;
विषय सेना सहु वारवी, तने तो बाल सुकुमाल रे. मा० २१
मातजी निजघर आंगणे, बालक रमे निर्बीह रे;
तेम मुज आतम धर्ममें, रमतां किसी बीह रे. मा० २२
मोह विष लीन जे वचनठां, ते हिवे मुज न छिवंत रे;
परम गुरु अमृत वचनथी, हुं थयो उपशमवंत रे.　मा० २३
भवतणो बंध हवे भांजशो, भाजशो मोह अतिदंद रे;
आतमानंद अनुभवशो, लहशो मोक्ष सुखकंद रे.　मा० २४
नेमजी केहे अधिको होवे. (तो) मनावे तास वचन रे;
माताजी थाईं नी मन्नीने, म्हारे करवें ग्रन्थ रे.　मा० २५

॥ ढाल १ ली ॥ धनधन साधु शिरोमणि ढंढणो ॥ ए देशी॥

धन धन ते मुनिवर ध्याने रम्या रे,
समतासागर उपशमवंत रे;
जिणे कषाय जे नडिया नही रे,
शासन प्रभावक सुमहंत रे.
धन धन ते मुनिवर ध्याने रम्या रे.(ए आंकणी)॥१
आदरणि पहिलां पालियां रे,
नेमि पासे पहुंता गजसुकुमाल रे;
मात पिता वांदे पडिभागीया रे,
वंदन भाव मनोहर भाव रे. धन धन ते० २
प्रभुमुख सांभळि [illegible] रे,
मुनि [illegible] उपाधि रे;
मुने [illegible] केम [illegible] रे,
मुजने [illegible] समाधि रे. धन धन ते० ३
प्रभु [illegible] रे,
[illegible] रे;
[illegible] रे,
[illegible] रे. धन धन ते० ४
[illegible] रे,
[illegible] रे,
[illegible] रे,
[illegible] रे. धन धन ते० ५
[illegible] रे,
[illegible] रे,

क्षमा नीरें न्हवराव्यो आतमा रे,
श्युं दाझे देहनो ए झाले-? रे. धन धन जे० ३१

दहनधर्म ते दाह जे अगनिनो रे,
हुं तो परम अदाज अगाह रे;
जे दाझे ते तो माहरो धन नथी रे,
अक्षय चिन्मय तत्त्व प्रवाह रे. धन धन जे० ३२

क्षपकश्रेणि ध्यान आरोहणें रे,
पुद्गल आतम भिन्न स्वभाव रे;
निजगुण अनुभव वळी एकाग्रता रे,
भजतां कीधो कर्म अभाव रे. धन धन जे० ३३

निरमल ध्याने तत्त्व अभेदता रे,
निर्विकल्प ध्याने तद्रूप रे;
पातकक्षयें निजगुण वल्लस्यां रे,
निर्मल केवलज्ञान अनूप रे. धन धन जे० ३४

थई अजोगी शैलेशी करी रे,
टाळ्यो सर्व संजोगीभाव रे;
आतम आतमरूपें परिणम्या रे,
प्रगट्यो पूरण वस्तुस्वभाव रे. धन धन जे० ३५

सहज अकृत्रिम वळी असंगता रे,
निरुपचरित वळी निर्द्वन्द्व रे;
निरुपम अव्याबाध सुखी थया रे,
श्रीगजसुकुमाल मुनींद रे. धन धन जे० ३६

नित्य प्रति एहवा मुनि संभारिये रे,
धरीये एहवुं मनमांहाल ध्यान रे;

इच्छा कीजे ए मुनिमाली रे,
ज्युं लहीये अनुभव परमनिधान रे. धन धन जे० ३७
आगार गच्छ पाठक दीपचंदनो रे,
देवचंद्र गुरु ए मुनिराय रे,
सकल सिद्ध सुख कारण साधुनी रे,
भव भव होज्यो सुगुरु सहाय रे. धन धन जे० ३८
इति श्री गजसुकुमाल सज्झाय समाप्त.

पंचेंद्रिय विषयत्याग.

पद.

विषयनकी तृष्णा, चेतन छोड दे,
[illegible] चे० १
[illegible]
[illegible] चे० २
[illegible]
[illegible] चे० ३
[illegible]
[illegible] चे० ४

[illegible] पद.

[illegible]
[illegible] [illegible] १
[illegible] [illegible] २
[illegible] [illegible] ३
[illegible]

मुनिगुणस्वाध्याय.

राग प्रभाति.

जगतमें सदा सुखी मुनिराज पर विभाव परिणतके त्यागी,
जागे आतम समाज निजगुण अनुभवके उपयोगी
जोगी ध्यान जिहाज ॥ ज० ॥ १ ॥
हिंसा मोस अदत्त निवारी, नहि मैथुनको पास,
द्रव्यभाव परिग्रह त्यागी, लीने तत्त्व विलास ॥ ज० ॥ २ ॥
निर्भय निर्मल चित्त निराकुल, विलगे ध्यान अभ्यास
देहादिक ममता सवि वारी, विचरे सदा उदास ॥ ज० ॥ ३ ॥
ग्रहे आहारशति पात्रादिक, संयम साधनकाज
देवचंद्र आणानुजाई, निज संपति महाराज ॥ ज० ॥ ४ ॥ इति॥

साधुपदस्वाध्याय.

साधक साधज्यो रे निज सत्ता इक चित्त,
निजगुण प्रगटपणे जे परिणमे रे, एहिज आतम वित्त ॥
सा० ॥ १ ॥
पर्याय अनंता निज कारजपणे रे, वरते ते गुण शुद्ध,
पर्यायगुण परिणामे कर्तृता रे, ते निज धर्म प्रसिद्ध ॥ सा० २ ॥
परभावानुगत वीरज चेतना रे, तेह वक्राचाल,
करता भोक्तादिक सवि शक्तिमां रे, व्याप्यो उलटो स्याल ॥
सा० ॥ ३ ॥
क्षयोपशमिक अज्ञाने उपने रे, तेहिज शक्ति अनेक,
निज स्वभाव अनुगतता अनुसरेरे, आर्जव भाव विवेक ॥ सा०॥४॥

आतमे पर संगकालादिकते, ए माया परिणाम
टाळी निजगुणनी रंगना रे, परभावे विश्राम ॥ सा० ॥ ५ ॥
साधे पाली आतमे आजती रे, न करे काइ कषाय
आतमगुण निज निजगति फोरवे रे, ए उपसर्ग अमाय ॥
सा० ॥ ६ ॥

तजीने [illegible] पावे रे, पर आणीने वनि
[illegible] आतम सुख लहे रे, जिम मृगनीति विन ॥
सा० ॥ ७ ॥

ते मांहे मुनि अनुभावे रमे रे, गमे अनादि उपाधि
समता [illegible] ना रे, पामे आत्म समाधि ॥ सा० ॥ ८ ॥
[illegible] आतमनी पर्याय रे, तजि गुण प्रगटावे ।
पूर्वे [illegible] रे, नही [illegible] ॥ सा० ॥ ९ ॥
साधनभाव प्रथमथी [illegible] रे, ते दिन पावे सिद्ध
[illegible] ॥
सा० ॥ १० ॥

[illegible] ॥
सा० ॥ ११ ॥

[illegible] ॥
सा० ॥ १२ ॥

[illegible] ॥
सा० ॥ १३ ॥

॥ इति [illegible] ॥

साधुपद सज्झाय.



साधक साधज्यो रे
निज सत्ता इक चित्त ॥
निज गुण प्रगटपणें जे परिणमें रे
एहीज आतम वित्त ॥ सा० ॥ १ ॥

× टबार्थः—अहो आत्म स्वरूपानुभव साधक भव्यो ! साधज्यो–नाम साधन करज्यो, साधने साध्यनी सिद्धता एपामयुक्तिः इहां साध्यस्वस्वरूपानुभवकारिका निज सत्ता इक चित्त–एक चित्ते नाम तदाकार वृत्तिये–तद्रूपी तन्मयी तद्रूपी छते आतम सत्ता चिंतववी, किम ते लीखे. आत्मद्रव्यमें आत्मत्वधर्म रह्युं छे, तेमां आत्मता आत्मत्वपणे रही छे, आत्मता निज सत्ता अभेदोपचारीपणो छे, एटले आत्मता निज सत्तामें भेद नहीं एक छे एटले अनादिए सिद्धनी सत्ता असंख्यात प्रदेशात्मक तिमज संसारमें रह्यो केवली असंख्यात प्रदेशाकीनी सत्ता एक सूक्ष्म निगोदीयानी आठ रुचकवर प्रदेशात्मक सत्ता एक ॥ यदुक्तं नंदि सूत्रे ॥ सव जीवाणं पिणं अक्खरस्स अणंतमो भागोनिच्चुग्घाडियो चिट्ठइ इति सिद्धांत वचन प्रामाण्यात् ॥ सत्ता एक अखंड अबाधित इंह सिद्धांत प्रीछ जोइ एपामपिमद्युक्तिपुनः स्वसत्ता इदगूरूपा ऐपामद्युक्तिः सत्तैवतत्त्वमिति सिद्धांत वचन प्रामाण्यात् ॥

× आ टबो श्रीमद् ज्ञानसारजी महाराजे लखेलो छे.

ईणहीज एकांत पक्षनें ग्रहण करी तिमहीज सप्तभंगी थकी स्यादस्ति भंगो ग्रहण करीने अद्वैतपक्ष स्थापन कर्यो छे ते एक नयात्म एक भंगात्मक छे. आत्मा तुपुष्करपत्रवन्निर्लेपः प्रकृतिः कर्त्री इति सिद्धांतः ए पक्षें हीज सिद्ध समान सत्पद मेंतो दुसेरो नथी, ओर एक आत्माही राम हे, ए कथन छे पं सत्पदनो जैनमतने आश्रये एक नय एक भंगीनुं कथन छे. सर्व नयाश्रयी नथी, सकथं भव्य १ अभव्य २ जातिभव्य ३ ए तीन जीवनी जाति छे. तेमां एक भव्य जीव जाति आश्रयी ए कथन छे. इहां जैन न्यायसम्मतित्ती ७५००० प्रकरण, तेमां हजार च्यारेक म्हारो वांचेल छे तेनुं आंइ लिखत लिखवे अर्थं वधी जाय इत्यलम्. साधक साधग्योंरे निज सत्ता इकचित्त ए वे पदोमें विरोधाभास छे ते किंचित् लिखुं, पं हुं महा निर्बुद्धि वक्रवार छुं जैनरोजिंदो ए म्हारो भाजनो अतिमंद छे; सिझाय कर्तानो मोटो भाजनो छे, पं सिद्धांत वाक्यार्थ विरोधाभास कथन लक्ष लक्षण जैन विनव जाण्या पछी न लिखवुं वे अनंत जिनवुं चोर थावुं छे, तेथी लिखुं. पेनन निर्मल मेलो थाय, मेलो उजलो थाय, ते बे हेतुए थाय. तत्र हेतु लक्षणमाह ॥ हिनोति प्रापयति साध्यमर्थमिति हेतुः साधनायोग्य कार्य तिणप्रतें प्रसिद्ध करे ते हेतु कहीजे. तद्द्विहेतुर्द्विधा सद्धेतुः असद्धेतुः । सद्धेतुश्च ॥ यन्सन्वे यन्सत्त्वमित्यन्वयः जे छते जे छतुं ते अन्वयहेतुमन्वेयेमनामत्वं—पेननामत्वे परमात्मनामत्वं परमात्मापणुं छतुं छे तदभावेनद्भावोव्यतिरेकः पेनना-

१ एहना २ तेमना ३ मारो ४ बीजो ५ मन ६ अहीं.

अभावे परमात्मनो अभावः ए व्यतिरेक हेतु ॥ अन्वय अरु व्यतिरेक हेतु लखी भेदरूप अंधेरो; परमातम अंतर बहिरातम सहिज दूवे सुहेरो. मद्भुक्ति. हिवे सझायना बे पदोमां विरोधाभास जणावुं. साध्यव्यापकत्वे साधनाव्यापकत्वमुपाधिः तिहां साधवा योग्य वस्तुने विषे व्यापीने रही छे, हेतु तेहने विषे अव्यापक रही छे ते उपाधि साध्यसमानाधिकरणात्यंताभाव प्रतियोगित्वं साधनाव्यापकत्वं. साध्य वस्तुने अधिकरण मिलाप हुवे अत्यंतपणे अभाव हुवे अत्यंतपणे विरोधी साधना व्यापकत्वं नाम तेनुं साध्य कहीजे. साधवा योग्य पदार्थने व्यापक कहीजे, साधवा योग्य पदार्थमें व्यापीने रह्यो छे इहां साधवा योग्य पदार्थ स्वरूपानुभव छे. ए गाथामां ए कथनपूर्वक दलनो कथन उत्तरदल थकी विरोध पामे छे ते आगल लिखुं छुं, तिहांथी वांची जोण लेज्यो. साधक साधज्योरे इत्यादिक पद यथार्थ गमन् ॥ निजगुण आत्मगुण अनंतज्ञानादिक क्षायिकभावें स्वस्वरूपमें साक्षात्कार अनंतकालें अविनश्वर सुभभावी ज्ञाननुं आंइ कथन नथी तेइऐ इहां केहवुं कथन छे ते लिखे. क्षयोपशमभावें ध्यानारूढ थवानी इच्छा थयें छते रेचक कुंभक पूरक मन पवननां दलियां रेचावी नाम पगना अंगूठाथी खिसोंवीनें मूलद्वारे अपान पवनथी ते दलियांनो कुंभक घडानो आकार करी पछे पूरक करे ते पोटा घडामें तेज दलियां एरे-भरे, भरीने दढो करे पछी एज पूर्वोक्त रीतें बीजा घोरीचक नाभिचकें तिमज त्रीजे स्तण माथे हाथ दीवे

१ थये २ जाणी ३ कहीं ४ त्यारे ५ सरोटी.

घडघडाट करे ए चक्रे त्यार्वीनें चोथा हृदयकमलचक्रे तेजचक्रे ध्यान निजगुण चिंतरूप करतो अंतर आत्मावंत कहिवाये, यथा **आनंदघनमुनिराजोक्तिः** पाप व्यापारवान् बहिरात्मा बहिरातम तजी काया मन वचन एहवा निश्चल कर्या छे ते कोइके कर्युं ए तो मरी गयो तेनी परीक्षा करवा कारण दशमे द्वार टोपा दीधें लोही दीठुं निर्वारें जीवतों जाण्यो ते अंतर आत्मावान्. गाथा तवननी

बहिरातम तज अंतरआतमा रूप थइ थिरभाव,
परमातमनुं आतमभाववुं आतम अरपण दाव ॥१॥

एहवो छतो थिरभावें थइनें परमातमनुं परमातमा अनंतज्ञानादिगुणमयी छतो अछेद्य, अभेद्य, अवेद्य, अक्लेद्यादि एहवुं पोताना आत्मामां भाववुं चिंतववुं विचारवुं ते क्षयोपशमभावें रयुं छे, ने सिझाय कर्ता "निजगुण प्रगटपणें जे परिणमें" ते तो ज्ञानादि गुण आत्मामां प्रगटपणे ते तो आत्मानो साक्षात्कार थए प्रगटें कहिवाय ने प्रगट कह्यां विना जे परिणमें तदाकार थावुं संभवे नही, वळी ते विना एहीज आतमवित्त ! धन छे ए तो कथन क्षायकभावें छे. पर क्षायिकभावें आतमवित्तनें सिद्धमां तो अभेदोपचारीपणुं छे ए विरोधाभास छे. तिहां पूर्वकदलें तो क्षयोपशमभावें कथन साधकस्वघर्म्यारें निजसत्ता इकचित्त ते उत्तरदलमां सिझाय कर्तायें निजगुण प्रगटपणे जे परिणमेरे एहिज आतमवित्त। एहवुं जे कयुं ए क्षायिकभावे कथन ते विरोध. इति संटंकः हिवे आगळ सिझायनी गाथाओमां स्यो वर्णन करस्यों. पर

१ कहेवाय २ त्यारें ३ हवे ४ करीशुं

ए कविराजनी योजनानो एज सुभाव छे तेज वातने गडरपडर आगेनी पाछे, पाछेनी आगे हांकतो चाल्यो जाय ते तमे पोते विचार लेज्यो. संबंध विरुद्ध अंगोपंगभंग कविता वारवार एकपद गुंथाणो ते पुनरुक्ति दूषण कविना ते एहीज सिझायमें तमेही जोइ लेज्यो, एक निजपद दश जागा गुंथ्यो छे ते निर्णेलेज्यो, इसलो मुजने दूषण मत देज्यो, बीजु एहनो एटक लिखन सप्तनयाश्रयी सप्तभंग्याश्रयी युक्त छे, -स्वरूपना कथननी योजना लेना तो गडरपडर छे, ए विना बीजी सहिज एटक योजना मटक छे, योजना करवी ए निर्ण विद्या न्यारी छे, कौमुदी कर्तायें लिख्यवी आय श्लोक कायो आपवी न थयो. थडी ए वात सुजीं न लिखुं तो ए लिखन..वांचणवालो पूर्वसंस्कार जाण ए कारणे लिखुं. गुजरातमां ए कविवर छे आनंदघन स्वमाटि, जिनराजसूरिमाथा तो अवस्थवचनी उ० यशोविजय ज्ञानसुन्दरिया पोते चाल्यो तेज उपाध्यो उ० देवचंद्रजी जांने तकपूर्वक ज्ञान हतुं तेथी गडरपडरीया. मोहनविजयपन्यास ते स्वरूपाल, मुजने आगळ अर्थ लिखवुं छे ते अक्षर प्रमाण अर्थ लिखिश, जिहां सरीखो अर्थ दीसे ते म्हारो दूषण न काढस्यो, अक्षर विरुद्ध अर्थे मारो दूषण सही इहां सर्व गाथा लिखुं. हिवे दूजी गाथानो अर्थ लिखुं.

> पर्याय अनंता निज कारणपणे रे,
> परते ते गुणशुद्ध;
> पर्यायगुण परिणामें वर्त्ततारे,
> से निज धर्म प्रसिद्ध ॥ सा० २ ॥

---

१ स्वरूप २ रूडो ३ रूपवंत ४ रूप ५ वर्ती ६ पालवो

प्रथम गाथारे अंते कह्यो छे, एहिज आतमवित्त ग्नि शब्दें आत्मद्रव्य नाम आतमारो घन बीजी गाथारे आदें पर्याय ईसो पद धर्यो छे तेथी प्रथम द्रव्यरो लक्षण लिखें पछे पर्याय लक्षण लिखसुं. किम द्रव्य विना पर्यायरो असंभव, ते माटे द्रव्यलक्षणमाह गुणपर्यायवत्वं द्रव्यत्वम् । इण कहिने ग्रं ज्ञानपदार्थ द्रव्य छे. गुण कांइ? तत्र गुणलक्षणमाह । सहजा तित्वं गुणत्वम् इतिगुणलक्षणम्॥ जिम स्वर्ण द्रव्यमें पीतता गुण सहजातिपणो छे तिमहीज ज्ञानद्रव्य प्रगट हुवा छतां घट पटादि पदार्थनो जाणपणो हुओ ते गुण कहीजे, तेथिग ज्ञानथी मिल्यो हुवो छे तिमहीज द्रव्यने विषे पर्याय रह्या छे. पर्याय लक्षणमाह । पूर्वपूर्वाकार परित्यागोत्तरोत्तराकार परि स्फूर्ति मंतोहि विशेषाः अपरमान पर्यायाः ए पर्याय रा दोय नाम छे, जिम स्वर्ण द्रव्य तिणमें पीतता लक्षण, सर्व धातुथी भारी ए पिण स्वर्ण द्रव्यनोहीज गुण लक्षण छे स्वर्णना अनेक आभूषण करणा ते पर्याय तिमहीज जगतने विषे यावंतः परिच्छेद्याः पर्यायास्तावंतः परिच्छिदिकलाय केवलज्ञानस्य स्वभावा वेदितव्याः स्वभावाश्च पर्याया इति । यावंतो नाम जितरा, परिच्छेद्याः नाम परिछेदन नाम एकेक लक्षणे करीने भिन्न करिवा योग्य नाम परिमाण करवा योग्य जे अनंता घटपटादि पदार्थ एनते ज्ञानपर्याय अनंता घटपटादि अनंता पदार्थ तेऊ एक-एकने भिन्न भिन्न लक्षणे केवलज्ञानथी ओलखवा जे ते पदार्थ परिछेद्य कहीजे, नाम पदार्थ भिन्न लक्षणे ओलखवा योग्य छे. हिवे परिछिदने

१ आत्मानो २ मिली आपने ३ कह्यो ४ इत्यादि.

सर्वे लिखुं. तावंतः परिच्छेदका: नाम तितराहीज 'परिछेद्य पदार्थ भिन्न भिन्न करी ओटखवा जाणवा ते परीछेदक कही ले, तस्य केवलज्ञानस्य स्वभावावेदितव्या: नाम विके परिछेद्य पर्यायनें इती परिछेदक पर्याय ते सर्व केवलज्ञान केवल दर्शनरा स्वभाव छे, स्वभावाच्च पर्याया: पर्याय अनंता ज्ञान द्रव्यरा पर्याय अनंता ते निज कारजपणेरे निज स्वरूपानुभव तद्रूप जे कार्य तिने स्वरूप रूप कार्य प्राप्तिपणे वरते ते गुण शुद्ध वर्ते नाम प्रवर्ते स्वरूप कार्य चितवनमें ते गुण शुद्ध तिकोशुद्ध निर्मळ आत्मारो गुण छे. पर्याय गुण परिणामें पर्याय परिणाम तिमज गुण परिणामे ज्ञानादि गुण परिणामे कर्तृतारें आत्मारे स्वरूप कार्यनी प्राप्तिमां वीर्य फोरवणो ते वीर्यने विषे आत्मानो कर्त्तापणो छे, ते निज धर्म प्रसिद्ध तेहिज निज धर्म आत्मारो आत्मत्व धर्म ते धर्मने विषे स्वरूप कार्यनी सिद्धतारो वीर्य पराक्रमीपणो आत्माने विषे रह्यो ए कथन शास्त्रारे विषे रह्यो प्रसिद्धहीज छे. एहमेंहीज विशेषपणे खुलीनें लिखुं. हिवे गाथाना अक्षर उपर एहिज वात उतारिये छे, तिहां ज्ञानावरणादि आठ कर्म छे तो आठेही द्रव्य छे ते द्रव्य द्रव्य दीठ अनंती कर्म वर्गणा तेंहीज द्रव्य द्रव्य अनंता अनंता पर्याय छे. यदुक्तं प्रज्ञापनाया: पंचम पद टीकायाम् ॥ एकमपि द्रव्य मनंत पर्यायम ॥ निज कारजपणेरे जो टाणे आत्मा आत्मिक स्वरूपानुभव प्रत्यक्ष रूप कार्यमें प्रवर्त्ते ते टाणे पोतानो कोइ ज्ञानादि गुण तेहना जे अनंता पर्याय ते कर्म

१ बे समये. २ ते समये.

वर्गणाना एक एक पर्याय दीठ ज्ञान पर्याय फहिलावीने पर्याय सहित कर्म द्रव्यनो नाश करे. पणेंरे ते पणे आत्मा वर्त्ते प्रवर्त्ते ते गुण शुद्ध नाम ते आत्मा शुद्ध आत्मिक स्वरूपनावच्छेदिकावच्छिन्न शुद्ध निर्मळ आत्मिक स्वरूपना आत्मारे विषे रह्यो जे आत्मत्वधर्म तेहने विषे रही आत्मना आत्मत्वपर्णातिणे करने अवछेदिक रहित नही पुनर्ले आत्मिक स्वरूतायें करने सहित तिणें करीनें अवछिन्न व्यासतदाकारपणे छे तेमां प्रवर्त्तीज रह्यो छे. आत्मिकशुद्धगुण छे. पछे पर्यायगुण-तामें कर्त्तृतारे ते पर्यायना जे गुणज्ञान पर्यायना जे गुण ते एकेक गुण दीठ आत्मारे कर्त्तृतापणो; छे कर्त्ता गणो छे. ते निजधर्म प्रसिद्ध नाम आत्मत्वधर्म ते आत्मारे विषे तेहने थये आत्माने विषे प्रसिद्ध छे. जिम केवली केवल समुद्घात करते चोथे समये अंतरालपूरते १४ राजलोकमें सातमा नी तिम एकेका कर्मनी अनंती अनंतीकर्मवर्गणा, वर्गणा लक्ष-णमाह ॥ पंचमकर्म ग्रंथनी गाथा ॥ इगदुगुणू गाइजा अभव-णंत गुणाअणूर्णवाउरलोचियवग्गणाउ ॥ इत्यादि व्याख्या अणू शब्दः प्रत्येकं संबध्यते अणू शब्द छे ति को इग करे एकेक शब्द देइ मित्रायणो ततः केवलोअगुरेवाणुकः परमाणु रित्यर्थः तिष्ठंति इत्येतेजे केवलदृष्टिए एहनो बीजो न हुवे ते अण कहिये अणु तेहिज अणुक कहि जे तिण अणु कने परमाणु कहि जे, इह जगतने विषे समस्त जे लोकाकाश प्रदेश तिणांमांहि ते एकाकी परमाणु विद्यमान छे. त्यां छे तिम परमाणु वगे समुदाय समान जाति पुद्गलना कही जे, इम बीज संदर्भ अनंता जे द्वि प्रदेशी स्कंध तिणांरे समान जातिना हुई

१ परमाणुओ. २ तेमना.

दूजीवर्गणा कही जे इणेहि प्रकारे अनन्ता जे त्रिप्रदेशी स्कंधति-
णरि समान जातीय पणाहुति त्रिजी वर्गणा. इणे हीज प्रकारे एकेक
परमाणु वृद्धियें करनें वधारणें करनें अनंता जे संख्यानप्रदेशी स्कंध
तिणारे समान जातीयपणानुं संख्यान वर्गणा कहिजे, इण ही
प्रकारें असंख्यानवर्गणा जाणवी, अनंतपरमाणु वेकर निष्पन्न
हुस्या जे स्कंध तिके समान जातीयपणानुं अनंतवर्गणा कही जे,
इणंही प्रकारे अनंनानंतवर्गणा कहीजे, इणां सर्व वर्गणां प्रतें
उल्लंघने अभव्य हुंती अनंनगुणा सिद्धरे अनंतमें भाग जे पर-
माणु तिणें करी नीपज्या जे स्कंध ते उदारिक शरीर लेवा
जोग्यवर्गणा हुवे ॥ १ ॥ उदारिकर्यु वैक्रिय सूक्ष्म २ वैक्रि-
यसों आहारिक सूक्ष्म ३ आहारकयुं तेजस सूक्ष्म ४ तेजस-
थुं भाषा सूक्ष्म ५ भाषासों श्वासोश्वास ६ श्वासोश्वासथुं मन
७ मनथुं कर्म ८ ओ संबंध टीकामें घणोहे पण गारव
भयात्पाठ्यम [illegible] १४ राजमें सइनों अणी टिके एतो
मोटुं क्षेत्र [illegible] असंख्यानगुण क्षेत्रही नदी थाकी
रवाली [illegible] कर्म दलीयां जीगक्षेत्र प्रत्यइ
भोगव स्वपात्रणा तिण तिण क्षेत्र प्रत्यइ भोगवने कर्मदलीयां
अवशेष आयु स्थिति अवशेष रही ते प्रमाने ७ तेहां कर्म
प्रकृतिनां अवशेष दलियां रहे, तिम कोइ निश्चनी जीव
अंतगड केवली थइ मुक्तें जावावालो छे ते निश्चे शुद्ध
क्षायकीव हुवे तेने अवशेष एक अंतर्मुहूर्त आयुस्थिति रही
छे ने एटला कालमें सात कर्म प्रकृति तेनां एकेकी कर्म
दीठ अनंती अनंती कर्म वर्गणा खपाववी छे ते थने आत्मा
आत्मत्व घणे सहित छतो आत्मा अनंत वली छतो पोताना
अनंत वीर्यनी शक्ति पोताना अनंत ज्ञानादि गुण निमन

र्याय अनंतोमां आत्मधर्म संचवित- आत्मत्व- शक्तिने फोर-
ीने अनंती कर्म वर्गणाओमां एकेकी वर्गणा दीठ ज्ञानादि
गुणना अनंत पर्याय वर्गणा दीठ फेलावीने खपावे, निरसेर
सर्वथा कर्म नाश करीने अंतर्मुहूर्तमां सिद्ध जाय विराजे- ं
आशये सिझाय. कर्तांये पर्याय गुण परिणामें. कर्तृतारे: ।
निज धर्म प्रसिद्ध-सिद्ध सुखी पोढधावी चुका. ए बे गाथा-
थांमे स्वरूप ग्राहक आत्मारी शुद्धता लिखी. हिवे परपरिणमन
आत्मारी वात लिखे.

परभावानुगत वीरज चेतनारे,

तेह वक्रता चाल;

करता भोक्तादिक सवि शक्तिमांरे;

व्याप्यो उलटो ख्याल ॥ सा० ॥ ३ ॥

परभावानुगत वीरज चेतनारे, परभाव नाम क्रोध मान
माया लोभ राग द्वेष मोह मिथ्यात्व इत्यादि स्वरूप प्रापक
आत्मारे विषे नयी, परभावमे प्रवर्तते आत्मारे विषे तिणरे
विषे अनुगत नाम प्राप्ति [illegible] वीर्य चेतना एतले परभावरे
विषे आत्माये वीर्य पराक्रम फोरव्यो. चेतनारे विषे वीरज
फोरव्यो तिवारे आत्मा गहिलो हुवो भांग पीधी टहिरि
तिवारे जे आत्मा करे ते लिखे यथामद्दुक्तिः ॥ परपरणमन
विभावे आतम अजा कृपाणी न्याये मिथ्यात्वादि हेतु आतम
आपही बंध उदीरे आपही उदये सुख दुःख वेदे गत्यागति
थिति मीरे ए जे चालां छे ते स्वरूप प्रापक आत्मारी नयी
तेह वक्रता चाल आत्मारी वक्रता चाल टहिरी, वांकी चाल
टहिरी. कर्ता भोक्ता तिवारे आत्माने विचारी जोतां वक्र

वीर्य आत्माए फोरवीने मिथ्यात्वादिक आत्मानुगत कीना आत्मारे विषे कीना आत्मारे विषे तो ए नहता अने आ-रमाए कीना सवि शक्तिमां रेते आत्मशक्तिए करने कीना भोगव्या पिण आत्माहीज तिवारे कर्ताही आत्मा भोक्ताही आत्मा टहियों यदुक्त मागमे यः कर्त्ता कर्म भेदानां, भोक्तए कर्म फलस्यच, संसर्त्ता परिनिर्वाता, सह्यात्मा नाऽन्य लक्षणः १ व्याप्यो उलटो ख्याल के तो स्वरूप कर्त्ता आत्माहीज छे के विरूप कर्त्ता पिण आत्माहीज टहियों आत्मा सागारो सागाहीज तिने आत्माहीज उलटो ख्याल खेल्यो, आत्मारे करवा योग्य नथी ते आत्माए कीनो तेथी उलटो ख्याल टहियों ॥

> क्षयोपशमिकऋजुताने उपनेंरे,
> तेहिज शक्ति अनेक;
> निज स्वभाव अनुगतता अनुसरेरे,
> आर्यव भाव विवेक ॥ सा० ॥ ४ ॥

हिवे तेहीज जीवनेविषे अनंता भव भ्रमण करतां थकां अनंतो काल व्यतीत हुवो हवे ते जीव जाते भव्य हुनो तेथी क्षयोपशमक क्षयोपशम भावे " खओवसमियं असंख-धारहोइ इति सिद्धांत वचन प्रमाणात् " ते अकंदपातिवारनां प्रथम विरियां क्षयोपशम सम्यक्त्व पाम्यां थकां ऋजुता प-रतो निहि ऋजुताने उपनेंरे सरळता उपनी तेहिज शक्ति अनेक ते जीवनी हीज अनेक शक्ति छे, तेहिज आत्मा शक्ति ए करने निज स्वभाव आत्मनो स्वनन्त ज्ञान-

दर्शन चारित्रादि तेहनो अनुगनना निजस्वभावमें आत्मा हुवो निज स्वभावमें रमण हुवो एटले आत्मा पोताना उ भाव पाम्याथी अनुसरे, ग्रहण करे. आर्जवभाव सरलता स्वभावीपणो ग्रहण करे, तिमहीज वली आत्म स्वभाव प्राप्ति रूप विवेक ग्रहण करे आर्यवपणेरो भाव प्रगटे ए तो आत्मानो क्षयोपशम सम्यक्त्वथी उत्सर्ग कथन छे.

अपवादें परवंचकनादिकारे,
ए माया परिणाम;
उत्सर्गें निज गुणनी वंचनारे,
परभावे विश्राम ॥ सा० ॥ ५ ॥

हिवे आत्मानो विशेष कथन लिखें अपवादें विशेष कथन करनें ए आत्मा क्षयोपशम भावि छे. क्षायिकभावे नथी तेथी परवंचना अन्यने ठगणो ए कपटनो परिणाम परिणमन छे, क्षयोपशमी छे तेथी जीवमें माया परिणमी छे, परं उत्सर्गें सामान्ये आत्मगुणनी ठगाइ थाय, सामान्ये आत्मगुण ठगी जे विशेषपणे न ठगी जे कीग विरियां तेहिज जीवं स्वभावमें प्रवर्तनो तिग विरियां तो नही ने स्वभावमें प्रवर्तनो छतो एहिज जीव परभाव नाम आर्तरौद्रध्यान रूप विभावमें विश्राम ले विभावे जाय ठहिरें तिवारे उ० निज-गुणनी सामान्ये वंचना ठगाइ करे क्षयोपशमात् क्षयोपशम छे तेथी—

साते वरजी अपवादें आर्जवीरे,
न करे कपट कषाय;

आतमगुण निज निज गति फोरवेरे,
ए उत्सर्ग अमाय ॥ सा० ॥ ६ ॥

पांचमी गाथामें क्षयोपशम भावथी विशेष कह्यो, हिवे छठी गाथामें क्षायिकभावे विशेषपणो कहे छे. अपवादे नाम तेहिज जीव विशेषपणे साते पगडी सात कर्मप्रकृति अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व मोहनी, मिश्रमोहनी, सम्यक्त्व मोहनी, ए साते परडी तिवारे अपवादे नाम विशेष आंजवी धाय. विशेषपणें सम्यक् स्वभावीपणो ग्रहण करे. फलट नो अनंतानुबंधी चोकडी क्षपायां थकां शेष रह्या से अप्रत्याख्यानादिक तिण गंठवी माया परिणामीपणें म थइने निवारे आत्मा आत्मगुण अनंतज्ञान दर्शनादि निपाने निज निज गति फोरवे शक्तिने प्रवर्तावे तेथिज एटला गुणी ही आत्मा उत्सर्गे सामान्ये अमायी अपवादे विशेषने हजी गुणी आत्मा अमायी नथी, मायानी दोड टलीने सुलहने रे अप्रमत्त समय गुणी छे. तिम क्षपकश्रेणि हजी गुणी नथी केवी तेवी भाजन उपशमी छे तिम तेहने क्षपकी नथी. कर्म केवलज्ञान केवलदर्शन नथी पाम्यो ते माटे तिहां शुद्ध क्षायिकी थकां केवलज्ञान केवलदर्शन उपन्या ते पहेलां जे क्षायिकीपणो छे तेहने सिद्धांतें शुद्ध इत्यादिक कह्यो छे. षडुत्कमागमे, ननुज्ञलक्षणे क्षायिक इत्युत्पत्वात् तानिक्षायिक सम्यक्त्वे औपशमिकाद्युत्व श्रेणिस्थायनोपरमात् केवलिस्य प्रथमान्विति इमो प्रकारेणे केवलोत्पन्नात् क्षायिकादिका गुणस्थानेवेति ॥ मत्र श्री कृष्ण श्रेणिकयोर्गुणं क्षायिकं । कल्लारेणो गढेतुमाह ॥ नन्वत्रतत्ववसि-

तत्त्वादिति न विरोधः यदुक्तं श्री नवपद प्रकरण वृत्तौ ॥
तथाहि । क्षायिकस्यशुद्धाशुद्धभेदेनद्विभेदत्वात् ॥ तत्रा-
पायसद्द्रव्यवर्तिना भवस्थ केवलिना मुक्तानांचया
सम्यग्दृष्टिस्तच्छुद्धं क्षायिकम् । तस्यच साद्य पर्यवसा-
नत्वात्सास्त्येवभंगः तस्यनाम तिण क्षायकरे सादि अपर्य-
वसितरूपचउथो भंग नही यदाहुः गंधहस्ति ॥ भवस्थ केवलिनो
द्विविधस्यसयोगायोगभेदस्य सिद्धस्य दर्शन मोहनीय
सप्तक्षयाविर्भूता सम्यग्दृष्टिः सादिर पर्यवसितेति ॥
यात्व पापसहचारिणी श्री श्रेणिकादेरिव सम्यग्दृष्टि-
स्तदशुद्धं क्षायिकं तिण शुद्ध क्षायकरे सादि सांत भांगो
हुवे अस्ति प्रतिपाता तिण औसरे क्षायकुं पडणो छे किण
हेते तिणो हेतु श्री गंधहस्तीजी लिखे तथोवाच अपाय-
सद्द्रव्यवर्तिनो श्री [illegible] सद्द्रव्यापगमे
भवत्यपायसहचारिणीसा स[illegible] सहित
स्तस्य दशि हुवे तिणरे श्री [illegible]
स्तस्य प्रग[illegible]
हुवे तो नहि [illegible] हुवे
सहचारिणी
भांगो [illegible]
हुवे [illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]

तत्वादिति न विरोधः यदुक्तं श्री नवपद प्रकरण वृत्तौ॥ तथाहि। क्षायिकस्यशुद्धाशुद्धभेदेनद्विभेदत्वात् ॥ तत्रापायसद्द्रव्यविकला भवस्थ केवलिना मुक्तानांचया सम्यग्दृष्टिस्तच्छुद्धं क्षायिकम्। तस्यच साद्य पर्यवसानत्वान्नास्त्येवभंगः तस्यनाम तिण क्षायकरे सादि अपर्यवसितपणाहुंती भंग नही यदाहुः गंधहस्ति॥ भवस्थ केवलिनो द्विविधस्यसयोगायोगभेदस्य सिद्धस्य दर्शन मोहनीय सप्तकक्षयाविर्भूता सम्यग्दृष्टिः सादिर पर्यवसितेति॥ यात्व पायसहचारिणी श्री श्रेणिकादेरिव सम्यग्दृष्टिस्तदशुद्धं क्षायिकं तिण शुद्ध क्षायकरे सादि सांत भांगो हुवे अरिन प्रतिपातः तिण जीवरे क्षायकसुं पडणो छे किण हेते तिको हेतु श्री गंधहस्तीजी लिखे तथोवाच अपायसद्द्रव्यवर्त्तिनी श्री श्रेणिकादीनांच सद्द्रव्यापगमे भवत्यपायसहचारिणीसा सादिः मति ज्ञानांशकर सहित सम्यग् दृष्टि हुवे तिवारे मति ज्ञानांशकर सहित क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट होवणेसुं सादि कहीजे, केवल ज्ञानरी उत्पत्ति हुवे छते मतिज्ञानांश क्षय हुवे तिवारे सांत कहीजे. अपाय सहचारिणी सम्यग् दृष्टिरो अंत हुवो तिवारे सादि सांत भांगो टहियों, केवल ज्ञान उपन्यां पछे मतिज्ञानांश क्षय हुवे छते शुद्ध क्षायिकरो आदि हुई तीन कालमें ओण क्षायकरो नाश नहीं तिणसुं अनंत अतएव सादि अनंत भांगो शुद्ध क्षायिकमें पामें इति॥ ६॥

सत्ताराध भ्रमण गति चारमें रे,
पर आधीनें वृत्ति;

चक्र चालथी आतम दुःख लहे रे,
जिम नृप नीति विरत्त ॥ सा० ॥ ७

ओ जीव अशुद्ध क्षायिकीपणामाटे सत्ता आत्म
ते आत्म सत्तानें रोध-रोकने भ्रमण गति चारमें
गति चोरासी लाख जीवयोनीरो प्रवर्तणो-भमणो
जडादिकनी आधीनवृत्ति छे एटले जीव जडाधीन
करनें चार गतिमां परि समस्तपणे भ्रमण करे. तव द्र
जिम कृष्ण वासुदेव अशुद्ध क्षायिक सम्यक्त्व पामके
तरे मरण पाय तीजी नरकमें सात सागरोपमरी स्थिति
ज्यो उपज्यां पछे तीजी नरकरो आउखो संपूर्ण
मनुष्यभव करनें पांचमें देवलोकमें दस सागरोपमरी
उपज्यां, तिहांथी चविकर बारमें अममजी ईसेनामे
चोवीसीमें तीर्थंकर हुसी. यदुक्तं श्री संघदा
कृत वसुदेव हिंडी तथाहि । कहा तइ आए
उवट्टित्ताइ इहे भारहेवासे सय दुवारे नयरे जि
स्सरणो पुत्तत्ताएउववज्जिऊणपत्त मंडलिय भावो
पडियज्जिय तित्थयरणाम कम्मं समुज्जणित्ता
कप्पे दस सागरोवमाउण तउचुओ बारसमो अमम
अरहा भविस्सई ॥ ते आत्मारो विचारी जोतां ते
स्थानक सिद्धहीज छे, पण ते आत्मा जडादिकने आधीन
करने परिभ्रमण करे ते आत्मानी चक्रचाल ते दुःख पा
स्वचालछोड पर चालसे चालवा लागो तारे पराई
आत्मा दुख पामे पोतानी चालें प्रवर्त्ततो थको सिद्ध
हीज भोक्ता छे, एतो आत्मा परचाले दुःख पाम्यो तिहां

जिम नृप नीति विरत्त जिम राजा राजनीतिमां प्रवर्त्ततो थको सर्व वातें साता पामे तेहिज राजा नीतिने विरत्त छोड्यां थकां दुःख पामे इत्यर्थः ॥ ७ ॥

ते माटें मुनिऋजुतायें रमे रे,
वमे अनादि उपाधि;
समता रंगी संगी तत्त्वना रे,
साधे आत्म समाधि ॥ सा० ॥ ८ ॥

ते माटे तिण कारणें मुनिराज परभाव छोडनें रुजुता सरलता आत्मिक स्वभाव संबंधित जीर्णे करनें आत्म स्वभावमें रमे-रमण करे दिनरात फिरी तेहिज मुनिराज. अनादि कालनो मिथ्यात्वादि उपाधिलक्षणमाह ॥ साध्य व्यापकत्वे सति साधना व्यापकत्वमुपाधिः ॥ साधवा योग्य वस्तु तिणरे विषे तो सर्वथा प्रकाररूप स्वरूपता व्यापी रही छे. व्याप रह्यां थकां ते साधन जे कारण तेने विषे अव्यापकत्वं व्यापन रही छे एटले स्वरूप कार्य साधवावालो ते साधन इहियों तेहनें विषे रुजुतापणो व्यापीने रह्यो तेहिज उपाधि, इहां साधवा योग्य आत्मिक स्वरूप सरलता तेहने विषे व्याप रही छे साधन मुनिराज तिणरे विषे अनादि कालीन मिथ्यात्वादिक उपाधि तिणसुं रुजुता नावे तिण कारणें मुनिराज रुजुतानें ग्रहण कीयां स्वरूप प्राप्ति हुवे ते कारने उपाधि वमें दूर करे निवारे साधुरे विषे स्वरूप ग्राहक शक्ति उपजे सुमता रंगी शुभमति स्वरूप संबंधनी मती जे मति तिणसुं मुनिराज रक्त हुवे. अहोनिशी सुमतिमयी प्रवर्ते. संगी. तत्त्वनारे शुद्धात्मतत्त्व तेहनो अहोनिशि चिंतवन

तद्रूपे संगी हुवे तिवारे साधे आत्म समाधि ॥ समाधि-श्चित्त वृत्तिरोधः मुनिराजनी चित्तनी चित्त-मन तेहनी जो वृत्ति प्रवर्तन तिण प्रवर्तनें आत्मिक स्वरूपमयी चिंतवन मनमें साधन करे ॥ ८ ॥

मायक्षयें आर्जवनी पूर्णता रे,
सवि गुण ऋजुतावंत;
पूर्वे प्रयोगें परसंगीपणो रे,
नही तसू कर्त्तावंत ॥ सा० ॥ ९ ॥

हिवे आठमी गाथारे अंत पदमां साधे आत्म समाधि ए पद धर्यो, आत्म समाधि साधे ईहयो कह्यां छतां क्षपकी तो निश्चय टहियों क्षपकी ईग्यारमें गुण टाणानें फरसे नही आगे नवमी गाथारे पहिला पदमें मायक्षये आर्जवनी पूर्णतारे इसोपद गुंथ्यो ओ पदनो संबंध बारमें गुणठाणे विना मिले नही पण कर्ताए कथ्यो तेथी हुने पदरो अर्थ करणो वे लिखुं मायानो क्षय थया छतां आर्जवनी पूर्णतारे प्रथम आर्जव भावरी संपूर्णता नहुंती हिवे बारमें गुणठाणे प्रवर्त्त्यां छतां सरलतानी पूर्णता हुइ एतले आत्माविषे संपूर्ण आर्जवता आवी ऋजुतारो रमण आत्मसमाधिपणें होयचूको पिण सिझायकर्त्ताए आर्जवपद गुंथ्यो तेथी पुनरुक्ति अर्थ लिख्यो. सव गुण जो गुण साधुपणेरा खंतीमद्दव अज्जवादि ए दशविध यतिधर्म है सर्व गुण दशेही ऋजुतावंत थया पूर्व प्रयोगें ए मुनिराजने जीवे पूर्व भवें बांध्यां जिके शुभाशुभ मिथ्यात्वादि हेतु करने उपार्ज्यां जीके कर्म तेथी परसंगीपणोरे पर ते जडादि तेहनु

संगथी बंधाणो जे शरीर तेहनो खानपानादि बाह्य शुश्रूषा रही छे एतलें शरीर संबंधी परसंगीपणो रह्यो छे. नही तत्र कर्त्तावंत तत्र ते जे कर्मबंधणा शरीरनी शुश्रूषादिके करनें तिणरो कर्त्तापणो तिणारे नहीं रह्यो छे, कर्मरो कर्त्तापणो थकी न रह्यो ॥ ९ ॥

साधनभाव प्रथमथी नीपजे रे,
तेहीज थाये सिद्ध;
द्रव्यत साधन विघन निवारणा रे,
नैमित्तिक सुप्रसिद्ध ॥ सा० ॥ १० ॥

कर्मरो कर्त्तावंतपणो नही तेयीज साधकभाव आत्मिक गुण साधक स्वभाव आत्मारा आत्मिक गुणज्ञान दर्शनादि साधक साधन करणो सिद्ध करणो तिणरोभाव प्रथमथी– पहिलां हुंती एटले ए हवे आत्मा थयें छवे नीपजे थाय तेहिज आत्मा थाय सिद्ध सिद्धपणे थाय पामे तो ते हवे थये आत्मारे द्रव्यत साधन द्रव्यत्व साधनपणो बाह्य साधनपणो चारित्रादि तेहना द्रव्यत्व साधनना जे कोई विघन ते विघनोनो निवारणारे निवारण करणो दूर करणो नैमित्तिक ए तो निमित्तकारण छे; साधारण असाधारणमांथी एकही नथी जीम कुंभकाररे दंड चक्रचीवरादि निमित्त कारण घटरूप कार्य सिद्धि करतां थकां छे तिम द्रव्यत साधन द्रव्य साधूपणारो एहवो थयो आत्मा तेहनें पांचेई जे प्राणाति पाताश्रवरो निवारण द्रव्य साधुपणारे विषे प्राणातिपातादिक नो विघन न पडे प्राणातिपात मृषावादादिक लागे तद्रूप

द्रव्य साधनपणातो विघन ते विघननो निवारणो एहवे थये आतमारे सहित निवारणो छे, तेथी नैमित्तिक कारण कह्यो तिको नैमित्तक कारण सुप्रसिद्ध-प्रसिद्धहिज छे, ए सर्व द्रव्य साधन छे, द्रव्य साधनथी तथा विघ साधनता नथी ॥१०॥

भावें साधन जे इक चित्तथी रे,
भाव साधन निज भाव ।
भाव सिद्ध सामग्री हेतु तेरे,
निस्संगी मुनिभाव ॥ सा० ॥ ११ ॥

द्रव्य साधन कह्यो, हवे निज स्वभाव साधनथी स्वस्वरूप सिद्ध थाय ते सिद्धे ते भावसाधन छे, तेथी भावें साधन स्वरूपानुयायी जो भावसाधन आत्मिक स्वरूपने सिद्ध क एहवो जे भावसाधन. जे इक चित्तथी रे जीसो एक चित्त वृत्तियें करनें तदाकारभावपणें प्रवर्त्तवुं ते भावसाधन कहिया ए लिखन शुक्लध्यानना चोथा पायानो छे. हिवे रूपातीतध्या कहे छे, निरंजन निर्मल संकल्प विकल्प रहित अभेद ए शुद्धसत्तारूप निर्मल चिदानंद तत्त्वभूत असंग, अखंड, अन गुणपर्यायरूप आत्मस्वरूपनो ध्यान ते रूपातीत ध्यान जाण तेथीज शिक्षाकर्त्ता आगळ पदमां इम कुंभ्यो छे, भा साधन भावे साधन छे ते निज भाव निज स्वभावनो आत्मातो. हिवे ते जे निज भाव ते निज भावथी भावसि सामग्री भाव निज स्वभावनी सिद्धना निज स्वभावनो सिद्ध प तद्रूप सामग्री ते सामग्री संबंधीहेतु नामथी संबन्धि कारण तेरे नाम ते कारण स्योकितो निस्संगी मुनिभाव निस्

मुनिपणो निस्संगी मुनिभावपणो ते स्युं संग नामसंबंध नामशरीर पुद्गलादिक पण रह्या छे, परणम्या ते पुद्गल ते पुद्गलोथी निस्संगपणो छे. पोताना पुद्गल नथी जाणता, पुद्गलोनी परचर्या मात्र मूकी दीधी छे, मुनिभाव नामस्वभावे मुनिराजपणो ते छे, एटले तदाकारवृत्तिपणो तेहने कहिये तेरमें गुणठाणानो अंत अरु चौदमो गुणठाणो हिवे थास्ये ते पोतेज कर्त्ता आगळ गुंथ्युं छे. तेहिज लिखे ॥ ११ ॥

हेयत्यागथी ग्रहण स्वधर्मनोरे,
करे भोगवे साध्य ।
स्वस्वभाव रसिया ते अनुभवेरे,
निजसुख अव्याबाध ॥ सा० ॥ १२ ॥

हेय त्यागथी भावसाधन जिवारे सिद्ध थयो तिवारे हेय-त्याग-छोडवा योग्य जीवो वस्तु स्वस्वरूपनो विघ्नकारी जे पंच्यासी प्रकृति जुना कपडा प्राय तेहनो जे अंत कस्वो खपाववो तद्रूप हेय-त्यागथी, ग्रहण स्वधर्मनोरे लेवो स्वधर्मनो आत्मस्वधर्म अनंतज्ञानदर्शन चारित्रादिकनो ग्रहण करे तद्रूप स्वरूपनो ग्रहण करे भोगवे साध्य साधवा योग्य वस्तु स्वधर्म तेहनी सिद्धता ते जे भोगवे, वसु पांच अक्षर नो उच्चारणने काळ तिण प्रमाणे चौदमा गुणठाणामें भोगवे पछे स्वस्वभाव रसियाने आगे स्वभाव पूर्ण कह्यो ते अनंतज्ञानादि तेहनो रसियो थयो छतो निज सुख अव्याबाध पीडावर रहित तेहने अनंतकाल तांइ भोगवे, चौदमें गुणठाणेरे अंतिमें एक समयस्थितिमें प्रथम समयनें सिद्ध पहुंचसे. एहवा

पछे प्रथम समय सो तो आदि छे, सिद्धमां पुद्दगारी अ
छे. अनंतेकाले उठेहीज रहणो तिणतुं अनंत छे, तेथी स
अनंत भांगो सिद्धमां छे इतिश्रेयः ॥ १२ ॥

निःस्पृह निर्भय निर्मम निर्मलारे,
करता निज साम्राज ।
देवचंद आणायें विचरतारे,
नमिये ते मुनिराज ॥ सा० ॥ १३ ॥ इति

आगली गाथारो संबंध जोरावरी मिलावणो पडे छे, सि
कर्त्ता महा मोटा तेथी विरुद्ध कहिवाय नही. प्रथम गाथ
ते संबंध अंतिम ए संबंध ते पोतेही विचारी लेज्यो, निर
वांछा रहित इसा ते मुनिराज छे, निर्भय इहलोक परलोक
भय तेणें कर रहित इसा ते मुनिराज छे, निर्मल गा
कर्ममल जे हुंती इसा थका करता निज साम्राज स्वरूप सं
निज राज्य-आपणो राज्य कर रह्या छे देवचंद्र आण
विचरतारे ॥ देवेषुचन्द्रइव चन्द्रदेवचन्द्र संसार संबंधी दे
विषे चंद्रमारी परे कर्मरहितपणामाटे उज्वल महाइस्या ते व
राग द्वेष तीणांरी आणा आज्ञा ते विषे विचरता-प्रव
नमिये ते मुनिराज इसा जे मुनिराजने नमियें, ए दोय अं
पदारो प्रथम पक्ष संबंधित अर्थ छे. हिवे द्वितीय पक्ष
धित होय अंतिम पदारो अर्थ लिखीये छे, देवचंद्र कवि
एहतुं कहे-जिनेश्वरनी आज्ञा समय प्रमाणे प्रवर्त्तता ए
जे मुनिराज तेनें नमस्कार करीये वारंवार इति संटंका
इति ज्ञानसारजी कृत स्वाध्याय बालावबोध संपूर्णम् ॥

श्री बाहुजिन स्तवन स्वोपज्ञटबासह.*

वाहुजिणंद दयामयी,
वर्तमान भगवान, प्रभुजी;
महाविदेहे विचरता,
केवल ज्ञान निधान, प्रभुजी. बाहु० ॥ १ ॥

ॐ हवे बीजा विहरमान पश्चिम जंबुद्वीपनेविषे वच्छविजय सूसिमा नगरी, सुग्रीव राजा, विजयामाना पुत्र, मोहनी राणीना भरतार, हिरण लांच्छन, श्री बाहु स्वामीने जे दया नीपनी छे ते दिखाडे छे, अने प्रभुने स्तवे छे. श्री बाहु स्वामी दयामयी छे. इहां यथार्थ ज्ञान करवाने दयानुं तथा अहिंसानुं स्वरूप कहीए छीए. जे कोइने हणवो नहिं ते अहिंसा कहीए. ते विभावपरिणतिए परिणमीने जे आत्मगुणनो हणवो ते भावहिंसा. अने गुणी तथा ज्ञानादिक गुणने अनुयायी वीर्य उपयोग करतां आत्मगुण हणायज नहिं. ते भाव अहिंसा. तथा जे आत्माना ज्ञानादिक गुण आस्रवथी हणाता जाणीने ते आस्रवथी टाळीने आत्माने संवरने विषे परिणमवुं ते भावदया जाणवी. तथा कोइ परजीवना दश प्राण न हणवा ते द्रव्य अहिंसा. अने कोइना द्रव्य प्राण हणाता उगारवा ते द्रव्यदया, एनुं स्वरूप विशेष-

---

* आ स्तवन श्रीमद् देवचंद्रजीए रचेलुं होई तेओना समयनी गुर्जर भाषा समजीने अमे प्रसिद्ध करीए छीए, अने ते टबानो अर्थ पण तेओश्रीएज करेलो छे.

वश्यके चतुर्थ गणधरवादथी जोज्यो. तथा श्री हरिभद्र
कृत अहिंसाष्टकथी तथा ओघनिर्युक्तिथी जोज्यो. इहां
अहिंसानो एकपणो ते कारणे कार्योपचार माटे छे, दय
अहिंसानो कारण छे. अहिंसा ते कार्य छे. स्वपरना ज्ञा
दिक गुण न हणवा ए भाव अहिंसा. ए धर्म यतः "
धम्मे धुवे नीतिए " इत्यादिक आगम वचन छे. ते
बाहु जिन कहेतां वीतरागना इंद्र पुष्टोपगारी माटे ती
ते परमदयामयी छे. आत्मानी दया संपूर्ण करी छे, पर्ना
दया उपदिशे छे. वर्नमानकाळे विचरता भव्य जीवोने देशन
सिंचता महाविदेहक्षेत्रे तेहि केवळ-जे सकल लोकालोकना
जेहथी प्रत्यक्ष परसहाय विना एक समये जाणे ते वे
ज्ञानना निधान छे. एवा श्री बाहुजिन छे ते परमदयाल

> द्रव्य दया छकायने,
>
> न हणे जेह लगार प्रभुजी,
>
> भावदया परिणामनो,
>
> एहिज छे व्यवहार. प्रभुजी. बाहु० ॥ २

द्रव्यथी छ काय. १. पृथ्वीकाय. २. अप्काय. ३.
काय. ४. वाउकाय. ५. वनस्पतिकाय. ६. त्रसकाय. ते न
जेह्थी अरिहंत लिगार अंसमात्रपिण. इहां कोइ पूछये
केवलीना पगथी पारेवाना बच्चां प्रमुख हणाये छे. तं
हणे किम कहो छो ? तेनो उत्तर जे श्री भगवतीसूत्रे
ळीना पगथी पारेवा प्रमुखनां बच्चां हणाय पिण तेहने
यावही कही पण हिंसा न कही ते माटे न हणे इम व
जे छठे गुण ठाणे मुनिने प्राणातिपातिकी क्रिया उत्तरी

तो केवलीने किम होवे ? इया माटे जे भावदया आत्मगुणनो रखवालवो तेना धणी जे उत्तम गुणी निर्ग्रंथादिक तेहनो ए व्यवहार कहेनां प्रवर्तन छे, जे जेमां जेहवा गुण हुवे तेहनो आचरण प्रवर्तन पिण तेहनोज हवे, जे पोते साहुकार हवे तेहनो देश चाली पिण समी हवे. जेहनो लांठीयो हवे तेहनो देश चाली पिण वांकी हुवे, ए दृष्टांते जे परमेश्वर भावदया परिणामे परणम्या छे तेहनो विहार पण छकायने राखवानोज हवे इम जाणवो. ए द्रव्य दयारूप प्रथम भेद कह्यो.

रूपअनुत्तर देवथी,
अनंत गुणो अभिराम प्रभुजी;
जोतां पिण जग जीवने,
न वधे विषय विराम, प्रभुजी. बाहु० ॥ ३ ॥

बीजा सगगी जीवनो रूप हुवे ते घणा जीवने विकारनो तथा संसारी रागादिकनो हेतु थाय तिवारे ते जीवना आत्म गुण हणाये, तिवारे ते रूप हिंसानो हेतु थयो, अने श्री प्रभुजीनो रूप ते अनुत्तर विमानना देवनाथी अनंतगुणो अभिराम कहेनां मनोहर छे, एहवो रूप छे. पिण जगतना जीवने जोतां धर्म राग उपजे पिण विषयनो विकार न उपजे इनते जे रूपनी मनोहरता ते पिण दयानो कारण जाणवो. ए बीजो दयापणो छे. ३.

कर्म उदय जिनराजनो,
भविजन धर्म सहाय, प्रभुजी;
नामादिक संभारतां,
मिथ्या दोष विलाय, प्रभुजी. बाहु० ॥ ४ ॥

वळी श्रीजी दया कहे छे. हे देवाधिदेव जिनराज तुम्हारो कर्मनो उदय, जे तीर्थंकर नाम कर्मनो उदय तथा भाषा वर्गणानो उदय प्रमुख ते जगत्रयना भव्य जीवने धर्मनो सहायनो कारण थाय छे. उक्तं चावश्यकनिर्युक्तौ, तंच कहं वेइज्जइ अगिलाए धम्मदेसणयाए इत्यादि भाषने सांभळवे घणा जीव धर्म पामे. अतिशय महिमा देखीने घणा जीवने विस्मय सर्वोत्तमपणो भासे. ते अतिशयनो स्वरूप प्रथमच्यार अतिशय सहजना जन्मना छे. इग्यार घनघाती कर्मक्षय थया पछी उदय थाय छे; ओगणीस अतिशय देवता गुणरागी थकी जग–जीवनी भाव करुणा माटे करे छे. ए चोत्रीस अतिशय, पांत्रीस वचनातिशय एवं तीर्थंकर नाम-कर्मनो औदयिक विपाक छे. पिण भव्य जीवने धर्म पमाडवानो कारण थाय छे. जेहथी घणा जीव संसार समुद्र मध्ये पडतां उगरे छे. तिणे ए श्रीजो दयावंतपणो, तथा तुम्हारा नामादिक इन्द्रे नाम निक्षेप संभारतां मिथ्यात्व दोष विलय जाये. तथा चागमः महाफलं खलु तहारूवाणं अरिहंताणं भगवंताण नामगोअस्स विसवणया किमंगपुण अभिगमण वंदण नमंसणाए इहांनाम सांभळवानो महा फळ छे इम कह्यो. थापनानी भक्तिनो आलावो, श्रीरायपसेणीए हिआए सुहाए खेमाए निस्सेससाए आणुगामिचत्ताए भविस्सइ. तथा प्रश्न व्याकरणे प्रथम संवरद्वारे दयाना नाम कह्या छे ते मध्ये "पूजीएजी" (१) ए नाम दयानो कह्यो छे. तथा त्रीजे संवरद्वारे चैत्यनो वेयावच्च निर्जरानो अर्थी होय ते करे. इहां चैत्यनो अर्थ ज्ञान करे ते खोटो बोले छे. ज्ञाननो विनय थाय पिण वेयावच्च न थाय ते मा

चैत्यशब्दे जिन प्रतिमा छे. वळी भगवती सूत्रे चमर अधिकारे सौधर्म इंद्रे अरिहंत तथा अरिहंत प्रतिमानी आशातना एक कही छे तथा करेमिभंते सामाइयं ए शब्द उच्चरतां " भंते " थापनानो संबोधन छे. तथा अंगचूलीया सूत्रे कह्यो छे जे गुणीनी थापना गुणी समान वेवडवी. तथा द्रव्यनिक्षेपो जंबूद्वीपपन्नत्ती मध्ये निर्वाण कल्याणके श्री ऋषभदेवना शरीरने नवरावी चंदन विलेपन करी फूल चडावी गहणा पहिरावीने शक्रस्तव कर्यो छे. तथा उववाईसूत्रे अप्पे गइया वंदणवत्तियाए अप्पेगइया पूअण वत्तियाए ए पाठे फूलनी पूजा ते गवेषी छे. तथा नंदीसूत्रे निक्षेप महिय पूइएहिं अरिहंते पन्नवीए इत्यादी पाठ जोवो. तथा भाव निक्षेपो-परम केवलादि गुणमयी श्री अरिहंतनी सेवना वंदण नमन ध्यान ते च्यार निक्षेपा जे नाम अरिहंत, थापना अरिहंत, द्रव्य अरिहंत, भाव अरिहंतने संभारतां मिथ्यात्व कुश्रद्धादिक दोष विलाय कहेतां जाय. हे प्रभुजी तारा नामादिरूपिण परजीवने आत्मगुणना कारण छे. इनथे वेपिण दयानाज हेतु छे ए चोथो दयापणो छे.

आतम गुण अविराधना,
भाव दया भंडार प्रभुजी ।
क्षायिक गुण पर्यायमे,
नवि पर धर्म प्रचार, प्रभुजी ॥ बाहु० ॥५॥

ए सर्व उपगारीपणे परजीवना हितमय, द्रव्यभावरूप दयावंतपणो दाख्यो. पिण जे पोतना आत्मनवे अहिंसकपणो निपनो छे. ते दयावंतपणो ओळखावे छे. सिद्धांते अनादि

संसारी जीव परानुयायी क्षयोपशमी उपयोग वीर्यने प्र
स्वगुणअनंतताने आवरण करतो हतो. ते आत्मगुण
हती. तथा पोताना गुण, पुद्गल लेई भोगववे प्रवर्त
आत्मगुण विराधना थती हती, ते हे श्री बाहु स्वामी
तुमे तुम्हारा कारण गुण, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य,
लाभ, भोग, उपभोग, कर्तापणो, भोक्तापणो, ज्ञायक
ग्राहकपणो, व्यापकपणो, रक्षकपणो प्रमुख सर्व स्वरूपानु
लायकत्व स्वरुप, कर्ता स्वरुप ज्ञाता स्वरुप, ग्राहक स्
भोक्ता स्वरुप, रक्षक स्वरुपाश्रयी स्वरूप तन्मयतादिपणो
सर्वआत्मगुणना अविराधक थया ते माटे स्वरूपना
निरावरणपणे रहीयो, ते आत्माना गुणने विराधवा नाहि
भाव दया छे. तेना तुम्हे हे प्रभुजी ! हे परमेश्वर ! पर
तुम्हे भंडार छो. इहाँ स्वस्वरूपने निर्मलपणे राखी रक्ष
एहज भाव दया छे. तेना भंडार छोजी. तेनो कारण
छे. जे क्षायिक निरावरण जे गुण केवळ ज्ञानादिक
सकल वेधकादिक तेहमें छिवें, परधर्म जे पुद्गल रागादि
परधर्म रागादिक तेहनो प्रचार बहतां. प्रदेश नहि
नथी, जे क्षयोपशमी गुण ते कदाचित् शक्तिव्यक्तना
परानुयायी थाये. ते सावरणपणे व्यापार रहे, पर क्षायिक
जे गुण ते ते स्वशक्तिनी संहलवाये, स्वकार्य करे, परं
थती थाये नहि. एहज पण स्वरूप अविराधना
अनंत भावे निरती, ते पण अहिंसा निरती छे, ए
गुणनी परणति छे. ते दर्पणवतने परे प्रवर्ते छे. ते
कर्ता नीपजी. दिनेदिन समये समये वरेव छे. ते माटे

रीते थाय. ते दया कही छे. ते ए पांचमें बोले स्वरूप अविरावकरूप भावदयाना पात्र छोजी.

सर्व जीवे, सर्व आगम मध्ये एहवा भाव दया अरूपी आतमपरिणति ते धर्म सरदहीवो. अरूपी धर्मेज अरूपी परमानंद नीपजे. ए धारवो. तथा श्री भगवती सूत्रे अ.या सामाईयं ए पाठ तथा श्री विशेषावश्यक मध्ये जीवो गुण पडियन्नो नयस्स दव्वट्ठियस्स सामाईयं, आत्मगुणस्वधर्म प्रवृत्तिः तत्स्याबाधकनो अहिंसा, इति व्याख्यानात् तथा धर्म संग्रहण्यां नाम ठवणा दव्व ? खित्ते काले तहेय भावेअ एसोखलु धम्मनिख्खेवो छव्विहो होई. ए गाथानी प्रथम संक्षेप व्याख्या पहिलां करीने पछी विस्तर वाचनाए स्वगुणपर्यायाधारत्वं द्रव्यत्वं तस्य परसंगित्वमेवाधर्मः पंक्ति ? रथ न्यायात् अधर्म एव हिंसा ए आसमये तेहनो न करवो ते अहिंसा ए आशये गाथा सूत्रे कहे छे.

गुण गुण परिणति परिणमे,
बाधक भाव विहोन, प्रभुजी।
द्रव्य असंगी अन्यनो,
शुद्ध अहिंसक पोन. प्रभुजी ॥ बाहु० ॥६॥

तथा गुण जे ज्ञानादिक ते गुणनो परिणति जाणवादिक स्वस्वकार्ये परिणमे गुण परिणतिनो बाधक भाव जे आवरण तेहथी विहीन कहेतां रहित एटले निरावरण गुण परिणाम तेहज स्वस्वकार्य करे, ते निरावरण गुण थयो ते ज्ञायी थयो ? जे कारणे द्रव्य आतमा अन्यनो असंगी थयो तिवारे गुण निरावरण थयो एहज द्रव्यनो अहिंसकपणो नीपनो. तथा

श्रीपंचवस्तु टीकायाम, हेतुभ्योऽभिनवकर्मग्रहणं हिं
तन्निवृत्तिः अहिंसा तथा श्री विशेषावश्यके भगवती
एहवा अधिकार अनेक छे. ते मिथ्यात्व, अविरति, कषा
योग एहवा चार भाव संसार कह्या छे, ते माटे सर
प्रदेश सकल भाव धर्म, अन्य जे परभाव तेहनो असं
सर्व संग रहितपणो ते द्रव्य अहिंसकपणो निपजे छे, ते म
तेहथी रहित ते द्रव्य अहिंसक कहीयेजी, परसंगी आत्म
हिंसक कहीये छे. ए शुद्ध उत्सर्गनये अहिंसकपणो पीन कहे
पुष्ट जे योग कह्यो छे, ते असत्यपणो कांइ बाह्यपणे साथ
रीते नथी. पण उत्सर्गे ते न घटे. शब्द द्रव्य श्रुतावलंबी अ
योग ते इहां उभो छे. ते माटे असत्य वचनयोग कह्यो
तथा श्री भगवतीसूत्रे सूक्ष्मसंपराय गुणठाणे संपरायकी क्रि
छे, ते माटे उत्सत्तंतियत्ति ए पाठ छे ए पिण वस्तु ध
आश्रयी छे. ते माटे असृपावगाहना थइ एक मोटो आत
धर्म प्रगट्यो. ते माटे क्षेत्र जे अवगाहना चलपणे आत
हणतो हतो ते अचलपणे थयो ए क्षेत्र अहिंसकपणो, अ
त्माने विषे नीपनो, इम भाववो. इहां कोइ पुछशे जे क्षेत्र
संकोच दुःख आत्माने किम मनाये ? तिहां उत्तर जे सिद्ध
अवगाहना रहि ते पिण नानी मोटी छे, पिण हवे सिद्ध
नानी मोटी अवगाहना करवी नथी. ते माटे इम कह्यो

उत्पाद व्यय ध्रुवपणे,
सहजे परणति थाय, प्रभुजी ।
छेदन योजनता नहीं,
वस्तु स्वभाव समाय, प्रभुजी ॥ बाहु० ॥

हिवे–भावनाये कालधर्मनी शुद्धता कहे छे. कालधर्म लं-क्षण, धर्मसंग्रहणीये कहीये छे. वत्तणा लक्खो कालो दव-स्सचेव पज्जाओ सोचेव तउधम्मो कालस्स वजस्सजोए तथा तत्त्वार्थे विशेषावश्यके पंचास्तिकायनी वर्तना तेहनेज कालपणो कह्यो छे, तथा अनुयोगद्वार सूत्रे पिण कह्यो छे जे किं भंते अद्धा समएत्तिवुच्चति गोयमा जीवाचेव अजीवाचेव तिहां पिण जीव अजीवनी वर्तना ते काल तथा स्वद्रव्य स्वक्षेत्र स्वकाल स्वभावत्वेन स्यात् अस्ति ए पद संमति तथा रत्नाकरावतारिका मध्ये छे, ए अस्तिपणो ते स्वधर्मेज हुवे. परधर्मनो अस्तिपणो ते द्रव्यनुं धर्म नहि. ते माटे काल उत्पाद व्ययरूप वर्तना ते स्वधर्म छे. आत्माना विशेष पर्या-यास्तिमयी परिणमन छे. ते उत्पाद तथा व्यय तथा ध्रुवपणे जे आत्मा परिणमे तेहने सहेजे परिणमे छे. इनले उत्पाद व्यय ते कोइने पर निमित्ते थतो नथी. ते माटे सहेजे ए परिणति थाय छे. संयोगीभावनो व्यय ते छेदन कर्यो थाय छे अने उत्पाद ते कोइ योजन करेतां कोइकने जोरे थाय छे, अने आत्मगुणनो उत्पाद ते परभावनी योजना विना थायछे. ए उत्पाद वस्तु स्वभावे समाय छे. वस्तु धर्मे समाय छे. ए काल परिणति सर्व द्रव्यनी किवारे हणाती नथी. ते वस्तुपणे तिमहिज परिणमे छे. ते वस्तुधर्मे दिखाडवा माटे कह्यो छे. तथा गुणनी वर्तना ते गुणावरक कर्म रोधे छे. ते तो रोधक-पणो हिंसा छे, ते निरावरण अवस्थाये भाव्भावी वर्तना ते हिवें हणाती नथी. ते माटे एहने अहिंसक वर्तना कहीए, ते नीपनी छे. हे परमेश्वर परमदयाल तुम्हें स्वदया संपूर्ण नीपजावी छे श्री यशोविजयोपाध्याये निजदया परदयानो स्व-

रूप उपदेश रहस्यमें वर्णव्यो छे ते जोज्यो. निज दया विणु
कहो पर दया हवें कवण प्रकारे ए वचनने अधिकारनो आ
शय पिण एहज छे.

गुणपर्याय अनंतता,
कारक परिणति तेम, प्रभुजी ।
निज निज परिणति परिणमें,
भाव अहिंसक एम, प्रभुजी. ॥ वा० ॥९॥

हवे भावधर्मनी अहिंसकता कहे छे. तथा श्री भगवती सू
भावओणं जीवे अणंता नाण पज्जवा । अणंता दंस
पज्जवा, अणंता चारित्त पज्जवा, अणंता अगुरुलघु पज्जव
इत्यादि ग्रंथाधिकारे तथा भावजीवः उत्तराध्ययन निर्युक्ति
जीवाजीव विभक्तिने विषे जोइ लेज्यो. नवरं तद्व्यति
रिक्तश्च जीवद्रव्यं द्रव्यजीवः उच्यते इति प्रक्रमस्तु वि
पयोनकः रुचिरियं न कदाचित्तत्पर्याय वियुक्तं द्र
तथापि च यदानादियुक्ततया विवक्ष्यते तदातद्द्रव्य
धान्यनो द्रव्य जीवो भावेतु दशविध एव परिणा
कर्मक्षय क्षयोपशमोदयापेक्षः परिणतिरूपो भावजी
इति २ ए शांतियादि ग्रंथालटीका पाठ छे. तथा धर्म
हर्णाने विषे तरमेव धम्मकवे नियररूवे हि अत्थिनत्थि
भिन्न पवत्ति निमित्तं तम्हानत्तंअणेगंसो १ ए भावधर्म
श्री दशवैकालिक निर्युक्ति अहिंसाना [illegible] निक्षेपा कर्या
तेहनी टीका मध्ये पाठ छे,ते स्वगुणाघाघः अहिंसा '
वृत्त्या अन्यातत् कारणत्वाद् हिंसा ' इत्यादि ते माटे
गुण ज्ञानादिक पर्याय अवधे ' अगंये ' इत्यादि तथा क

कर्ता १ कर्म २ करण ३ संप्रदान ४ अपादान ५ आधार ए छे ६ ते गुणपर्याय तो अनादिकालना अवराणा पड्या छे तथा जे वीर्य चेतनना क्षयोपशमी थइ ते परानुयायीपणे प्रवर्तता स्वगुणावरणरूप कार्य करवे स्वगुण प्रवृत्ति घातरूप स्वहिंसा करे छे, ते हे नाथ तुम्हे स्वकीय सर्व गुण प्रगट करवे वळी स्वरूप प्रवर्तन करवे ते हिंसकपणो निवारीने स्वभाव धर्मना अहिंसक थया छो. तथा कारकचक्रनी परणति अवराती नथी, पिण अनादिकालनी संगांगीपणे परकर्त्तापणे थयाथी आत्माविभावकर्त्ता, कार्य, कारण संप्रदान, अपादान, विभाव परिणमनरूप परानुयायी क्षयोपशम ते अभिनवाश्रव परिणति वृद्धि ते लाभरूप स्वशक्ति रोकयारूप ते हानि ते आत्मक्षेत्रे परभाव ग्राहकता परभाव भोग्यता रक्षणतादिरूपणे आधारकारक, इम छ कारक हिंसक थया छे. संसारी जीव ते तुम्हारा खटकारक साधनपणे करी पछी केवल ज्ञानादिक गुण प्रवृत्तिपणे प्रवर्त्ताव्यो ते कर्त्तापणो, कार्य, करण, संप्रदान, अपादान, आधार, सर्वज्ञतादिक गुण प्रवृत्ति ते उपगरण ते भासनतादि लाभ ते परभाव सन्मुख न थवो ते स्वरूप रक्षणता, ते ए [illegible] कारक स्वगुण कार्य करवारूप परिणते पराम्या एहज भाव अहिंसकता नीपनी. ते भाव अहिंसा अध्यवसायपणो नीपनो. एहज स्वधर्म नीपनो. इनले आत्मगुण आत्मपर्याय तथा आत्मानाकारक ते सर्व अनंता परिणामकतादि रोक धर्म ते सर्व निज निज कहेना पोतापोतानी जागण छे. तथा देखवो तथा रमण आनंदादिक परिणमन परणमे छे. ते हिज भावअहिंसकपणो छे. इनले जे द्रव्यनो भाव अहिंसक थयो तेहना द्रव्यक्षेत्रकाल नियमा अहिंसक थाय. ते, हे श्री बाहुस्वामी तुम्हारो भावधर्म गुरु

हणता नथी अने पर कोइ हणी शके नही ए अहिंसकता जे साध्यमां हती ते तुम्हारे नीपनी छे. इतले तुम्हें परम अहिंसक छो अने अहिंसकताना कारण छोजी, ए रीते भाव अहिंसकता नीपनी छे. ते अहिंसकपणो सर्वने ध्येय छे. श्री जिनराज तुम्हारो अहिंसकपणो जे जीव अवलंबीने तन्मयी थाये-तेहनो पोतानो परम अहिंसकपणो नीपजे, ते माटे तुम्हे परम आधार छो. भव्यजीवना परम उपगारी छो, दयाल छो, शरणभूत छोजी. ९

> एम अहिंसकतामयी,
> दीठो तुं जिनराज, प्रभुजी;
> रक्षक निज पर जीवनो,
> तारण तरण जिहाज, प्रभुजी ॥ वा० ॥ १० ॥

एम कहतां ए रीते सर्व गुणे सर्व पर्याये उपादानपने, निमित्तपणे, उपगारीपणे, आधारपने, उपदेशपणे, अतिशयादिक ऋद्धीरूपणे हे वीतराग तुम्हे परमदयाल छो. ते हे प्रभुजी में मिथ्यात्व असंयमनी प्रबलताये अनादिकाल स्वरूपावृत्तपणे भव भटकतां आत्मधर्म उछेदीपणे प्रवर्त्ततां तुम्ह समान तत्वी स्व पर भावनो अकर्त्ता अभोक्ता ते किवारे दीठो नहतो. इतले उपयोग गोचर कर्यो नहतो. ति हवणां कोइक थिर सांढुगल घोलना न्याये श्री वीतराग आगम श्रवण यथार्थ भासक गुरु उपगारे हे जिनराज तहरो स्वरूपानंदीपणो तत्त्वोपकारीपणो ए अवसरे भासनगोचर थयो ते माहरे आज परम कल्याण थयो. ते माटे श्री जिनराज तुम्हे रक्षक छो. निज कहतां स्वधर्मनो तथा कारणपणे परजीवना पिण रक्षक छो.

ते माटे निमित्त कारणने कर्त्तापणाने आरोपे तारण कहतां परजीवना तारवाना कारण छो. अने पोते तर्या छो. ते माटे जिहाजनी उपमा छे तुम्हने हे देव. १०.

परमातम परमेसरु,
भाव दया दातार, प्रभुजी;
सेवो ध्यावो एहने,
देवचंद्र सुखकार. प्रभुजी. ॥ बा० ॥ ११ ॥

पूर्णानंदीपणा माटे स्वसत्ता प्राग्भाव माटे सकल गुण अनवछिन्न स्वभाव भोगीपणे हे प्रभुजी, तुम्हे परमात्मा छो. उत्कृष्ट आत्मा छो. वळी समस्त स्वशक्ति गुणपर्याय रूप स्वाधीनपणामाटे परमेश्वर छो. वळी शुद्धोपदेशक, तत्त्वधर्म देशकपणाथी, स्वधर्म राखवारूप भावदयाना दातार छो. एहवा परमात्मा परम पुरुष निरामय, निर्द्वंद्व, निस्संग, निस्सहाय, निर्मल, निःप्रयास, आत्मानंदभोगी श्रीबाहु विहरमान तीर्थंकर प्रत्ये सेवो. तेहनी आज्ञा प्रमाणे प्रवर्त्तो, ध्यावो. ते बाहु स्वामी स्वरूप संपदा उपकार संपदा अतिशय संपदा मध्ये तन्मय उपयोगी थावो. ए बाहु स्वामी केवा छे. देव जे च्यार निकायना देवता तेहना चंद्र जे इंद्रादिक तेहने आत्मिक सुखना करणहार छे, अथवा स्तुति कर्त्ता ये देवचंद्र नामे प्रभु गुण रसिक तेहने सुखना करणहार छे, इनसे जे निरभिमानपणे श्री वीतराग सेवना करे ते परम अव्याबाध सुख वरे, महानंद पामे. निस्संगानंदी थाये. ए श्री निस्संग श्री बाहुस्वामीनी स्तवना भावदयारूप परम करुणारूप कही छे. ११

श्रीमद् देवचंद्रजीना लखेला पत्र.

(१)

अत्र विवहारथी सुख छे, तुम्हारा भाव सुखसाता समाचार लिखाय तो लिखजो, जीम संतोष उपजे. तथा कोइ कहेस्ये जे व्यवहारथी तो सुख छे, तिवारे निश्चयथी दुःख ठयों एहवो शब्द लिख्यो तेहनो स्यो कारण ? तिहां उत्तर कहे छे के सातावेदनी कर्मना उदयथी उपन्यो जे सुख ते पर धर्म माटे जाते ए सुख ते दुःखरूप छे. उक्तंच साया साया दुःखं, नहिरइम्मिपसुहं जओ तेणं, देहिंदियसुदुःखं सुक्खं देहिंदियाभावो ॥ इति वचनात्. ते कारणे सातावेदनीना उदयथी उपन्यो जे सुख ते दुःखरूप छे. साता ते आत्मानो जे अव्याबाध गुण तेहनो रोधक छे, तथा कोइक आचार्य अव्याबाधने पर्याय पण करे छे, ते माटे गुणपर्यायनो रोधक ते सातावेदनी कर्म तेहना उदयथी उदयावलिकाए आव्या जे पुद्गल ते आत्माने भोग्यपणे थाय छे, पिण निश्चयनये पुद्गलनो भोगववो ते आत्माने युक्त नथी. ते स्यामाटे जे निश्चयनये पुद्गलनो आत्मा अभोगी छे. तिवारे कोइ कहेस्ये जे आत्मा तो पुद्गलनो अभोगी छे, तो ए आत्मा पुद्गलभोगी किम थाय छे, अने पुद्गलनो भोगववो किम करे छे, तिहां कहिये जे आत्माने विषे एक भोग गुण छे, ते इहां भोग स्वगुणपर्याय कहेवो, ते भोग गुण अंतराय कर्मे आवर्यो छे, तेनो नाम भोगांतराय कर्म कहिये. ते भोगांतराय कर्म संबंधी क्षयोपशमने पाम सकलं क्षय थाय छे, तिवारे स्वगुण

ज्ञान प्रवर्त्तनावसरे ते वीर्यनो सहकार ते सकाम पंडित वीर्य कहीयें अने ज्ञान स्वपर ज्ञायक होय पिण सदा आत्म प्रदेशावगाही रहे. इणी रीते स्वगुणने विषे थिरता स्वगुणभोग आस्वादननी रमणता ते भावचारित्र कहीये. ए रत्नत्रयी ज्ञानी स्वगुण उपादेय करे, परगुण हेयपणे प्रवर्त्ते, संसारीभाव ज्ञेयपणे प्रवर्त्ते. सर्व एकेंद्रियादि जीव प्रथम गुणस्थानकवर्त्ती होय ते उपरे मध्यस्थ अने कारुण्य भावनाए वर्ते. स्वगुण निरावरण थाते छते प्रमोदभावनायें वर्त्ते, साधर्मी उपरे सदा मैत्रीभावना राखे स्वपर औदयिक सन्मुख दृष्टि न दियें, तव श्रद्धा शुद्ध जीवने धर्म ध्यान कहवाय तो कहेजोजी, ते जीव शुद्ध प्रवर्त्तनाए प्रवर्त्त्या प्रवर्त्ते छे, प्रवर्त्तशे ते जीव धन्य छे, इम विचारवु पिण मादकभाव करवो नही. इणीरीते व्यवहारिक सुख छे. भाव सुख तो परिणामनी धारायें होय इति तत्त्वम् ॥

(२)

श्री.

॥ स्वस्ति श्री आदिजिनं प्रणम्य । अहम्मदावादथी पं० देवचंद्र लिखितं श्रीदुरितवंदरे जिनागमतत्त्वरसिक सुश्राविका जानकीबाई हरषबाई प्रमुख धर्मस्वरूपरुचि आत्मा योग्य धर्मलाभ वांचजो जी । अत्र साता छे । अहिंसाना स्वरूप तो पूर्वे तुम्हने जणाव्या छइ अने वली समजवो । मूल अहिंसा अनुबंध होइ, ते मध्ये उपयोगीनइं भावथी अने अनउपयोगीनें द्रव्यथी, ते तो जिहां ते गुण स्थानक ते माफक जाणवी. ते मध्ये सुखताइं दिशिथी लेवी अनें तेहनो कारण आश्री लिखुं, ते तो उपादान कारण सर्व टाले आत्म परिणाम

तथा अनुबंध अहिंसा आश्री तो सामान्यें तो इंमज जे गुणठाणइं जिहां जिहां कल्प लगइं रहे ते त्रिष्पे अहिंसा तिहां तिहां साधीइं अतिक्रमादिक ३ लगइं भजना एकेक्नी कहिइं अनाचारलुं तो कहवुं नहीं इत्यादि घणो विचार छे, तेतो श्रीयशोविजयगनी कृत नयरहस्य ग्रंथमध्यें छे, स्पष्टपणें, सुबुद्धिनेइं ते तो वली कोइक समये जणाइं ते प्रीछवुं तथा अनंतचतुष्टय आश्री लिख्युं ते तो केवली भगवाननें निरुपाधिक च्यार कर्म घातीइंसर्थे ज्ञान १ दर्शन २ समकित ३ वीर्य ४ स्वाभाविक चतुष्टय थयां अनंतपणे शेष च्यार कर्मना क्षयथी अक्षयस्थिति–१ अक्षयअनिर्वाच्य अपौद्गलिक सुख–२ एकत्वावगाहना अरूपी–३ अगुरुलघुपणुं क्षयसायें पर्यायनुं अविनाशपणुं–४ ए चतुष्टय सिद्धने थयां, ते माटे सिद्धनें तथा केवलीनें आपापणे गुणें फेर नहीं न्यूनाधिक नहीं इत्यादि, तथा बिंबनें उगटणा आश्री लिख्युं ते जाण्युं बिंबनें भक्तिनें आशयें उगटणुं करतां दोष नथी, पनि आंष कान नासिकादि अवयवें उपयोगथी उगटणुं करइं अने बीजे ठेकाणे जेतली मर्दननी थाइं तेतलुं वेयावच करें, इम करतां जो अंशे कांइं थाइं तो पनि शुभाशय माटे दूषण नथी जाण्युं, श्राद्धविधि प्रमुख ग्रंथे पनि प्रतिमानें उगटणां नां वेयावच करवां कह्यां छे, ते माटि वेयावच करतां दोष नहीं ते जाणवुं.

दूहा।

संजागम बक बानरी धारयो आनन्दधर्म।
और धर्म मन भर्म है जानों चोरइ कर्म ॥ १ ॥
क्षेत्र स्पर्शनातें उदे तुम्ह जन दर्शन होय।
मनोरथनका को मिलन, चाहत हैं निज मोय ॥ २ ॥

५

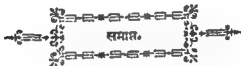
तुम्ह जेसे ज्ञायक गुणी समझो श्रुतसंतोष ।
मिल्यां ज्ञान विमणो वधे, लहें ज्ञान भरपोष ॥ ३ ॥
या चित्तसे नित वांचज्यो, श्रीजिनायनमः शुद्ध ।
स्वामि तुम्ह वलपुरी अह निशि जान विशुद्ध ॥ ४ ॥
इति लिः पादलीप्ततीर्थे रत्नचंद्रेण ।

(३)

॥ स्वस्ति श्री आदिजिनं प्रणम्य अहम्मदावादथी पं० देवचंद लिखितं श्री सुरतबिंदरे सुश्राविका जिनागमरुचि बाई जानकीबाई हरषबाई प्रमुख स्वरूप धर्मरुचि जीव योग्य धर्मलाभ वांचज्योजी. अत्र साता छें अपरंच तुम्हे यथार्थ ज्ञानी वीतराग सर्वज्ञ सर्वदर्शी अरिहंत परमात्मा ये प्रगट कर्यो सिद्धात्माने जे संपूर्ण नीपनो छे, ते सर्व जीवनें असंख्यात प्रदेशें व्याप्य व्यापकपणें अनादि अनंत संबंध रह्यो छे, ते स्वभावधर्मनी रुचिपणें रह्यो जे धर्म ते आत्मानो अन्वय स्वभाव छें, सहज अकृत स्वरूप छे, ते उच्छरंग धर्म छे, जाणवो देषवो ते स्वकार्य छें. तेहनी प्रवृत्ति ते रमणादिक छें, ते शुद्ध धर्म जेहनें समरणे प्रगट्यो ते देवतत्त्व ते संपूर्ण धर्मनी इहा ये संपूर्ण धर्मी सिद्ध परमात्मानो बहुमान करवो ते साधन परिणतिनें संपूर्ण थवाना कारणपणा माटे तेहनें धर्म कहीयें. मूल वस्तु धर्में स्वस्वभाव तेहज धर्म ए श्रद्धा करवी. जे बाह्य प्रवृत्ति योगनी आचरणी तेहनें धर्म माने तेहना कह्यामें सिद्ध ते धर्म रहित थायें, ते माटें कारण ते मूल धर्मथी भिन्न छें, यद्यपि उपादान कारण आत्मपरिणति छें पिण साधननी रीत

ते सिद्धमानथी तेनटो भे [?] छे. दशमा गुणठाणाना मुनिनें श्री भगवतीसूत्रें उसत्तं रिसति इम कह्यो छे, तो जे स्वरूपरुचि विना सातादि गारव माटें संयम शुनाभ्यासनें संसार हेतु छे, ए आचारांगे धूताध्ययने चोथें उद्देशें कह्यो छे, ते माटें पूरण सिद्धावस्थायें जे छतो पर्यायें ते धर्म जाणवो. तेहनी रुचि जे आगम प्रमाणें पोताना प्राग्भावी गुण तथा उदीक गुणी अनुयायी करवो ए साधकता छे, ने करतां संपूर्ण धर्म प्रगटे तेहनो उद्यम करवो ए सर्व जीवनें हित छे, ए आत्मसत्ता प्रगट करवा माटें परमेश्वर परमपुरुष परमानंदमयी संपूर्ण आत्मसत्ताऽभोगी सहज आत्यंतिक एकांतिक ज्ञानानंदभोगी परमात्मानो बहुमान ध्यान करवो. आत्मिक शक्ति कर्त्ता भोक्तादिक कारक चक्र ते विभावरूप कार्य कर्तापणें अशुद्ध संसार कर्तापणे करतां अनंत पुद्गल-परावर्त वही गयां, ते क्षयोपशमी चेतनादिक शुद्ध निरंजन निरामय निर्द्वंद्व निष्पन्न परमात्मगुणानुयायीक, ते स्वरुप प्रगट करवाना कारण थया, ते पछी स्वरूपावलंबी थया एनटें परम सिद्धताना कारण थायें, ते माटे प्रथम प्रशस्तालंबी थई स्वरूपालंबीपणें परणमी स्वरूप निष्पति करवी ए हित जाणवोजी। तथा द्रव्य साधन ते भावसाधन नो कारण, भावसाधन ते संपूर्ण सिद्धनो हेतु छे, ते रीतें श्रद्धा राखवीजी. पौद्गलिक भावनो त्याग ते आत्मानें स्वस्वरूप प्रगट करवानें करवो ए निमित्तकारण साधन छे, अने आत्मचेतना आत्मस्वरूपालंबीपणें वर्त्ते ते उपादान साधन छे, ते उपादान शक्ति प्रगट थवा माटे सिद्ध बुद्ध अविरुद्ध निष्पन्न निर्मल अज सहज अविनाशी अप्रपाती ज्ञानानंद पूर्ण क्षायिक सहज पारिणामिक रत्नत्रयीनो पात्र जे

परमात्मा परमैश्वर्यमय तेहनी सेवना ते प्रभु बहुमान भासन रमणपणें करवा वर्तमानकालें स्वरूप निर्द्धार भासनपिण दुर्लभ छें, तो स्वरूपनो रमण ते तो श्रेणिप्रतिपन्न जीवनें हुवे संपूर्ण स्वरूपानंदी वीतरागनी भक्तिनें अवलंबनें रहवोजी. श्रीआचारांगें लोकसाराध्ययनें आत्मस्वरूपावलंबी जीव ते साधक छें, बीजा साधक नथी, इम कह्यो छें. ते माटें शुद्ध साध्यरुचि अने यथापणें वस्तु परमार्थज्ञानी कर्मक्षय करवानो अर्थी निरसंग आत्मानो परिणमन ते धर्म तेहना प्रागूभावना अर्थी ते साधक जीव परमसिद्धतानें वरें, ए रीते प्रतीत राखवीजी. आज्ञा श्री तीर्थंकर देवनी ते प्रमाण, साधन रसी गुणी बहुमान स्वतत्त्व पूर्णताना रसिकपणें वरतज्यो ए तत्त्व छें जी ।





श्री महावीर जन्म जयंती गीत पारणुं.

माता त्रिशला झूलावे पुत्र पारणे. ए राग.

आजे महावीर जन्म्या जगमां आनंद आपवा,
कोटि चंद्र सूरजनी झळकी जगमां ज्योत;
प्रगट्यो पण भुवनमां आनंदमय उद्योत,
विरम्या जडवादी पापी पंडित खद्योत. आ० १

जगमां सात्विक आनंदना वाया शुभ वायरा,
पाम्या नारकीओ पण मनमांहि आनंद;
रुडा आनंदना वरस्या बहुला शुभ मेहुला,
भाग्य उघड्युं हरखे पाप पलायां [illegible]. आ० २

हसी सर्व दिशाओ आनंद ओघे नीतरे,
टलोटल देव देवीथी भरियुं बहु आकाश;
इंद्रो गावे हरखे ने नाचे इंद्राणीओ,
पांडा वेले भावे रुपासन आवास. आ० ३

म्होटे ने होकलाट बहु गावे वीरनां गीतडां,
त्रिलोकनायक प्रभुनो जाणीने अवतार;
प्रभुने मेरुपर न्हवरावे सुरपति भावथी,
करी भाग्य [illegible] मनथी मंगळचार. आ० ४

[illegible] आदि हरखी [illegible] त्रिजन्मथी,
[illegible] नर [illegible] घर अवतार;
सर्वे इंदननां मंगल वाजां वाजीयां,
म्हारां मोटां म्हने आनंदनो नहि पार. आ० ५

प्रेमे आनंदना श्वासो ले भारत गाजीने,
शांति आनंदना उश्वासो ले नरनार;
हरख्यां त्रिशलामाताने सिद्धारथ राजवी,
हरख्या जोषीओ जाणी भारत उद्धार. आ० ६

राजा वैशाली चेटक मनमां आनंदिया,
घरघर आनंद उत्सव वर्ते जयजयकार;
आखा भारत देशे घरघर पुत्र वधामणां,
प्रगट्यो जगद्गुरु प्रभु महावीरनो अवतार आ० ७

चोवीश तीर्थंकर भाखित चोविशमा जिनपति,
आजे प्रकट्या जाणी सौने थयो निर्धार;
माळे बेसी करतां कल्लोलो सहु पंखीओ,
करतां आनंदना नादो तेम पशुओ सार. आ० ८

सघळे प्रसिद्ध थइ तेरस महावीरना जन्मथी,
जगमां महावीर तेरस घेरेघेर गवाय;
सोनुं रत्न अने रुपा हीराना पारणे,
वीरने झुलावे त्रिशला माता सुखदाय. आ० ९

त्रिशला बोले मारी कुखे प्रगट्या वीरजिन,
तेथी सर्वीओमांही थइ प्रथम शिरताज;
म्हारी कुखे आव्या धर्मोद्धारक राजवी,
राखी भारतजननी धर्मनगी शुभ लाज. आ० १०

प्रभुनी जननी जांघे लंछन सिंहनुं शोभतुं,
प्रभुजी सिंहनी पेठे करो पराक्रम वेश;
दयाना उपदेशे निर्दयता टाळी विश्वथी,
टाळ्यो नरनारी पशु पंखीना सहु क्लेश. आ० ११

वीरजिन एक हजार ने स्हात्त आठे शोभता,
तेवी जाण्या चोवीशमा मोटा जिनराज;
केशीकुमर मुखथी त्रिशला जाणी गावती,
रुडां हालरडानां गीतो गुण शिरताज. आ० १२
जगमां जोर मगज्नुं ज्यारे हिंसा पापनुं,
करतां नरनारीओ त्राहि त्राहि पोकार;
जगमां जुल्म घणा ने अंधकार अज्ञाननो,
त्यारे तीर्थंकरनो जन्म थाय निर्धार. आ० १३
भारत आर्य देशमां सोनासूरज उगीयो,
आजे जाग्युं भारत सर्वे देश गुरुराज;
साथे जन्म्या केइक गणधर आदि ऋषियो,
जन्म्या देवी जीवो करवा संघे साज. आ० १४
रुडुं भारतनुं तप फळ्युं जिनेश्वर जन्मथी,
करवा सर्व वेदनो साचो अर्थ प्रकाश;
जन्म्या जाण्या इंद्रादिकना वचने भारते,
पाम्या ऋषि तपस्वी योगीयो उल्लास. आ० १५
बंदीखानेथी छोड्या सघळा बंदिजनो,
भारत देश नगरमां उत्सव बहुला थाय;
नगरमां नाटारंभो ठेर ठेर थाता घणा,
अमरापुर समुं क्षत्रीकुंड सुख उभराय. आ० १६
प्रभुने जोवा आवे देवदेवी नरनारीओ,
जोपी जोगीओ सहु जोवा आवे दोडि;
वरसे सिद्धारथ घर कंचननी खूब कोडीओ,
प्रभुनी जगमां जोतां मळे न बीजी जोड,
वीरना वेजयथी कोइ करे न जगमां होड– आ० १७

प्रभुजी तीर्थ स्थापशे समवसरणमां वेशीने,
करशे केवलज्ञाने सत्य धर्म उपदेश;
गणधर द्वादशांगी गुंथीने धर्म वधारशे,
जेथी टळशे आधि व्याधिना सहु क्लेश. आ० १८

महावीर भारत घर घर ज्ञानाग्नि प्रगटावशे,
करशे दुर्गुणोनो बोधथकी संहार;
सर्वे आर्यो एक स्वरूपी थइने चालशे,
राजा रंक सकलने सरखा हक्क निर्धार. आ० १९

सर्वे आर्यो दुःख बंधनने छेदी नाखशे,
ऊंचा नीचानो रहेशे नहीं मन अहंकार;
सहुनो न्याय थशे समभावपणे जग सारीखो,
टळशे हिंसायज्ञो तथा मनुज संहार. आ० २०

थाशे प्रजासंघनां राज्य अने सुनीतिओ,
रक्तथी खरडाशे नहीं सर्व प्रजानो संघ;
राजा रैयत सर्वे आत्मरूपथी एक थइ,
करशे अरसपरस साहाय्य धरी मनरंग. आ० २१

प्रभुजी आत्मज्ञानथी ब्राह्मण मुख्य कहावशे,
क्षत्री बनीने करशे सर्व कर्म संहार;
जगत्मां धर्मशूरानो क्षत्रपणाथी जणावशे,
अंतर वैश्य बनीने करशे गुण व्यापार. आ० २२

केवलज्ञानी बनीने सेवा सहुनी सारशे,
गामोगाम करीने पादथकी विहार;
सेवाधर्मतणो फेलावो करशे विश्वमां,
चतुर्विध संघ बनावी करशे जग उद्धार. आ० २३

तारी भक्ति साथां बधों ज्ञाने जगाडशे,
रिपुओ आत्मोमां थाशे बहु हताश,
दयानो फेलावो करशे भारतमां आजथी,
पशोना पंखीओ माटा करशे निर्दोष.   अ० २४

ज्ञानी समाजे पंथे दुनिया करशे निर्भय,
आवो छीनो जिनने अनुसरो दिनरात;
ब्राह्मण आत्मज्ञानीओ थाशे शिष्य तमारा,
मराठी रहुं मराठु भारत पवित्र.   अ० २५

[illegible]
पशोना आत्मज्ञानना प्रगटशे बहुरूप,
[illegible]
ज्ञानीओ लोको [illegible] आव माना गुरु.   अ० २६

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]   अ० २७

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]   अ० २८

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]   अ० २९

श्री महावीर प्रभुनुं पारणुं.

श्रीशला मातानुं गान. श्री महावीर प्रभुनुं हालरडुं.

म्हालो म्हालो हृदयनो प्राण, महावीर वालुडो;
मारुं सर्व मनोरथ स्थान, महावीर वालुडो,
आंखडी अणीयाळी अमूली, जोतां तृप्ति न थाती रे;
नाच नचावे आंख इसारे, निर्मल नेहे सोहाती. म०

ब्रह्मतेज आंखे ऊभरातुं, मियजनो झट परखेरे;
आंख उलाळे विश्व उलाळे, सहु हरखावी हरखे. म० १

कानमां नयणां लोकोत्तर दयां, काळजडांने कोरे रे;
नाजुक नाकुं नाक मजानुं, उभरे आनन्द छोळे. म० २

दाडमकळी सम दांतनी पंक्ति, हंस पंक्ति झट जीते रे;
उपमादायक कोइ न जगमां, अनुभव रीत प्रतीते. म० ३

हसतां पुष्प खरे उत्तम मोति, हास्य मधुरं सुहातुं रे;
सर्व ब्रह्मांडोनी सहु लीला, करतुं दील जणातुं. म० ४

कालडुं हरे कालुं बोली, करे तन्मय मन टारी रे;
अद्वैत ब्रह्मना मेळे झबोळे, प्रेमोदधि अवतारी. म० ५

रक्त कमळ अळताना जेवां, पुनित पगलां भरतोरे;
डगुमगु चाली विश्व डोलावे, छातीए वाझी पडतो. म० ६

उछळी आनंदजोब उछाळे, खोळे पडी शुभ खेले रे;
अंगुठो मुखमांही धावी, रमतो नव नव गेले. म० ७

नाचे राचे धावे प्रेमे, मींची आंख उघाडे रे;
जोइ रहे मुज सामुं धानां, अंतर बझ जगाडे. म० १९

व्हाल करीने अंगे वळगे, अंगे नहीं क्षणवारे रे;
विश्वासीमां सहुथी साचो; शुद्ध सरलता धारे. म० २०

कुदरती शोभा सौथी सारी, रवि शशी वारी जाउं रे;
बालक राजा आनंद ताजा, गुण केटला हुं गाउं. म० २१

आत्मप्रतिबिंब निर्मल व्हालुं, मलके मुखथी मझानुं रे;
दिलथी दिल परखावे नयने, मौन रही कहे छानुं. म० २२

तृप्ति न पामुं लाड लडावे, प्रभु खेले मुज खोळे रे;
जन्म सफल थयो पुण्योदयथी, आवे न को मुज तोले. म० २३

अलंकारथी अंग ओपावुं, झभलां सरस पेहेरावुं रे;
दिल आंगणीए वालुडाने, लय लावी पधरावुं. म० २४

वालुडाना लाडना ल्हावे, हरखी धानो धाते रे;
पूर्यां पूर्ण मनोरथ प्रभुए, जाय जीवन हरखाते. म० २५

कल्पवृक्ष बीज चंद्रनी पेठे, वधनो हर्ष वधारे रे;
वेरीने पण व्हालो लागे, वेरी बनी अवतारे. म० २६

बालुडा प्रभु आगळ गाती, गरबो नव नव गाने रे;
प्रभुमय गानो तानो जगानां, मने समजावे साने. म० २७

वालुडामां सर्व भर्युं छे, बाकी रह्युं नहीं कांइ रे;
सर्व मनोरथ फळीया मारा, रही कल्पवृक्षनी छांही. म० २८

जीवनमां अमीरस रेडायो, फली जीवन शुभ सिच्युं रे;
कोटि वर्षनक नंदन जीवो, प्रभु चुंबी अमृत पीयुं. म० २९

रत्न कुक्षीने जननी शिरोमणि, त्रिशला मात गणाणी रे;
त्रण भुवनमां थइ हुं चात्री, विश्ववत्सल ब्रह्माणी. म०

अंबादेवी शक्ति पुराणी, नाम अनेके गवाइ रे;
दुनिया शांति श्वास ग्रहंतो, घरघर करती वधाइ; म०

बाल प्रभुमां देव देवीओ, प्रियपणु सहु जोती रे;
बुद्धिसागर वारि जाउं, प्रभुने वधावुं मोती. म०

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
४२१	२२	[illegible]	[illegible]
४२४	९	[illegible]	[illegible]
४२५	२१	[illegible]	[illegible]
४४०	४	[illegible]	पानी
,,	९	[illegible]	[illegible]
४४१	१५	[illegible]	[illegible]
४४२	२	[illegible]	[illegible] पोताना ज्ञानादि अनन्तगुण ओगरे छे, ते भोग-[illegible] ह उपभोगांतराय कर्मे [illegible] गये
,,	२०	[illegible]	ओगे
४५३	६	[illegible] और सह-[illegible] पाने [illegible]	
४६४	११	गुणेकग	गुणे
४६६	१४	भेद	भेद
,,	१७	[illegible] आते	आते
४६८	२१	विगतमान	विगतमान
४७०	४	कर्ता	कर्ता कार्य
४७१	११	[illegible]	[illegible]
४७२	२०	[illegible]	[illegible]
४८२	६	[illegible]	[illegible] सदीव
४८४	६	अनंतगुण	अनन्तस
,,	१६	बतीस	एकतीस
४८९	१७	पर्तीक	पांडिक

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
४९१	७	अषिपतन म	अछिपत नु
"	८	समुद्	भो समुद्र
४९४	११	थाउं	टांउ
"	"	मृन	मृत
"	१३	गउं	टाउ
"	२३	तेसें	तैसें ए
४९५	९	होन	हेन
४९७	१७	मेती	सेती
"	१८	विससे	विलसे
४९८	११	फरसं	फरस
"	२३	नासी	नामी
४९९	२३	मिथ्याको	मिथ्याको प्रपंच
५००	७	अछाद	छाद
"	१४	दोप	दोष दंसन परन जो
५०२	१९	उत्कट	उत्कृष्ट
५०५	११	संत	संत अक्षार निगुण इ
५०६	१०	इकतीसा	तेतीसा
"	२३	कर्म	कर्मेद्रे
५०८	१	नादात्मयता	तादात्म्यता
५१४	१०	उद्यम	उद्यम सो करे कर्मभाव होई आत्मा को उद्यम
५१६	१०	वडो आप	[illegible]
"	"	हेइन	हैहैन
५२०	२	धरं है	हो धरं है

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
५२५	२१	मिथ्पा	मिथ्या
५२६	१९	दो	दोप
५२८	६	टेकहे	टेकहे, ज्ञानिजड कौ विभेद होय नांहि ऐतै खेद यातें यह वात भैया गुन अति रेक है
		द्रव्य	द्रव्य भोज
५४८	१५	घर्नी	धरनी
५५४	१७	सायान्य	सामान्य
,,	१९	तुउ	तुज
५५५	१२	पारमार्थिकत्व	पारमार्थिक
,,	१४	इदयते	हृदयन्ते
,,	१८	सर्वेया	सर्वथा
,,	२२	कृतः	कुतः
५५६	२	वेतृ	येचृ
५५९	२०	सम्य	सम्प
५६४	६	मवृत्ती	मवर्त्ती
,,	२२	पणण	पन
५६५	१२	नियामक	[illegible]
५७६	५	टंकोत्कर्ण	टंकोत्कीर्ण
,,	१५	आका	[illegible]
,,	१०	नहा	[illegible]
,,	२३	पत्रति	[illegible]
५८१	२	पोतानी	पोताना

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
५८३	१०	द्रव्या	द्रव्य
,,	१८	पद्य	पज्ज
५८५	१७	तदेव	तत्त्व
,,	,,	प्रेष्टव्या	प्येष्टव्या
५८७	८	अनंर्या	अनंती
५८८	११	कार्मे	कार्य
५८९	१	मूल	मूल
,,	४	ये	यो
,,	,,	व्याचक्ष्यते	व्याचक्ष्येते
,,	५	पुत्पाद	युत्पाद
,,	७	व्यापितं	व्यापित्वं
,,	११	विरूद्ध	विरुद्ध
,,	१३	तेयी	ॐ
५९०	१४	कतेतां	कहेतां
५९१	९	भाग	भाग।
५९९	११	जीना	जीनना
६००	२१	प्रभु	प्रभु
,,	२४	शत्रु	स्रत्रु
६०३	१०	निष्प	निष्पन्न
,,	२१	म	तेम
६०४	२	करतां	कहेतां
,,	४	केमम	केमन
६०५	१५	प्रश्न	प्रभ
६०७	२	मुर्यांसः	मूयांसः

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
६०८	४	भावयोर्भेद	भावयोरभेद
६०९	२२	सपन्नावा	सपन्नवा
६१२	३	समह	समूह
६१८	१६	छे	छे
६२६	१४	मपत्त्व	पृथक्त्व
६४०	१३	प्रभुयीं	प्रभुनी
६४८	१४	छे,	छो,
६६३	१४	रह्य	रह्यो
	१६	गुणस्थना	गुणस्थाना
६६८	१०	विम्हआ	विम्हओ
६७१	१८	केतां	सुरवटकेतां
६७२	१	माहा	महा
६७५	१	नीपजव	नीपजाव
६७८	५	पत्यैव	पत्यैव
६७९	१९	वस्तुः	वस्तु
"	२३	अतो	अतः
६८०	६	भोक्तृ	भोक्तृ
"	२०	अक्रिया	अक्रिय
६८२	१४	दशम	दसं
६८६	१८	पूरणम्	पूर्णम्
६८७	३	गाईएं	गाईएं
७०३	१२	जिनपारंगन	[illegible]
७१२	३	ज्ञान	ज्ञानी
"	८	अर्पिते	अर्पिंत

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
७१३	८	संन्नपि	सन्नपि
,,	,,	वचन	वचनेना
,,	२३	समयक्	सम्यक्
७२५	२	कार्ययी	कार्यंयी
७३०	६	चिंतां	चिंता
७३४	२	प्रवृत्तें	प्रवर्तें
७३७	४	ना	नां
७५४	११	मेवने	मेवने
७५७	७	मेवन	सेवन
७६५	१७	पुरपा	पुरुपा
७७३	६	तुझा	तुझ
७७५	१६	छो,	छे,
७६६	४	काइ	कोइ
७७९	१३	प्रकासे	प्रकाशे
७८३	७	पर	परि
,,	१७	श्रेष्ट	श्रेष्ठ
,,	२०	शीष्य	शिष्य
७८४	२	उवज्ञा	उवज्झा
७८९	१९	गुणगुण	गुण
,,	२०	नही	नहीं
७९८	२२	प्रमु	प्रभु
७९९	७	चं	चं०
८००	१	विभन्न	विभिन्न
,,	४	मर्वे	भावें.

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
८०२	१३	नी	जी
८०९	२	अतित	अतीत
८२३	१९	मानता,	मानता हो,
८२७	४	स्वरुप	स्वरूप
८३२	५	रूचि	रुचि
८४०	१३	ननि	नमीं
”	१६	लो	लोल
”	१८	”	”
८४२	७	स्वारर्थ	स्वार्थ
८४३	८	सपय	समय
८४८	२	अनिनाशी	अविनाशी
८५१	९	कलशा	कलशो
८५८	१२	घतिने	घातिने
”	२०	क्षमन्वं	क्षमत्व
८६१	८	स्व	स्व
८६२	१७	मच्छ	मन्थ
८६९	१८	मुद्दव	मद्दव
८७१	२	शंसय	संशय
८७२	५	उवझाप	उवज्झाप
८७४	१५	झुगल	जुगल
८७५	२०	पंत्रम	पंचम
८७७	२१	गुणाकार	गुणाकर
८७९	१८	द्रग	दग
८८०	२३	पुजा	छनत्रयपूजा

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
८८२	१४	दोषें	देषें
८८७	२०	श्रीमजि	श्रीमज्जि
८८८	२२	जनाः	जनाः ॥ ८ ।
८९०	१४	उतारणं	लूण उत्तारणम्
८९३	८	दूसमे	दुःषमे
"	१२	प्रमु	प्रमु
"	१९	श्रई	श्राई
"	२१	दाई	टाई
८९४	७	पाशक	पासक
"	९	तिड	तिग
"	१०	मारगसि	मारगरसि
८९५	१५	हुम	द्रुम
८९६	९	वंझाजी	वंद्याजी
"	"	ज राया	जगराया
"	१७	गृह।	गृह्या
"	१९	गृहे	ग्रहे
८९७	२	कर	कारी
"	९	मत	नमन
"	२०	सुरति	सुरत
"	२३	भूठो	बुठो
८९९	१७	दया	दयाल
९०३	१४	दिन	दीन
"	१८	सहस्त्र	सहस्र
९०८	६	व्याय	व्यापक

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
९०९	११	साशन	शासन
"	१३	निर्वाण	निर्वाणं
"	१४	तुं	तु
९११	१७	प्रमु	प्रमु
९१२	११	"	"
"	१०	आनंत	अनंत
९१७	२२	दीत	दित
"	"	"	"
९१९	१९	नीशिये	निशीये
९२१	१३	तत्वामृ	तत्वामृत
"	१८	पृ,	पृ, ४॥
९२४	१३	तोरे ॥	तोरे
९२४	२	भाश	मास
"	५	तापीत	तापित
"	८	तिमर	तिमिर
"	९	अनंद	अनंत
"	१०	पुप्प	पुप्प
९२७	१२	काउस	काउसग्ग
"	१७	शानिधि	सानिधि
९३१	२४	नैन	नन
९३३	१७	अनुं	अनु
"	१२	छावीस	छवीस
९३८	१९	वंद्द	वंदु
"	"	मुवत	सुव्रत

पृ.	पं.	अशुद्धि.	शुद्धि.
१०४६	९	गुणज्ञान	गुण ज्ञान
,,	१२	पसिद्व	प्रसिद्व
,,	२०	कहिजे	कहिजे
१०४७	१५	एहुपी	एहुवी
१०४८	१९	परणमन	परिणमन
१०४९	७	केतो	येतां
१०५२	६	गंधहस्ति॥	गंधहस्ति
,,	१२	हेते	हेतो
१०५३	१७	वज्ञिय	वज्जिय
१०५९	१५	विधनारे	विधरतारे
,,	,,	थंद्र	थंद्रः
,,	२२	संदक	संदष्टः
१०७०	८	कारण	करण
१०७२	९	अनवच्छिन्न	अवच्छिन्न